

श्री तुलसी पुस्तकालय

[संरक्षक :- श्रीराम मन्दिर, भोगगज मंडी]

कोटा जं० (राजस्थान)

पुस्तक संख्या - ५० - - - - -

क्रम संख्या - ६० - - - - -

वर्ग सं - ६० - - - - - मूल्य - १००

मत्स्य पुराण

[द्वितीय खण्ड]

सरल भाषानुवाद सहित



सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनि

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्दशोत्तर

२० स्मृतियाँ और अठारह पुराणों

के प्रसिद्ध भाष्यकार



प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर), वरेली (उ० प्र०)

प्रकाशक :

डॉ० चमनलाल गोतम

संस्कृति संस्थान, स्वाजा कुतुब,
बरेली ।



सम्पादक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य



सर्वाधिकार सुरक्षित



प्रथम संस्करण

१९७०



मुद्रक :

विनोदकुमार मिश्र

राजेश्वरी प्रिंटिंग प्रेस,

आर्य समाज राड, मथुरा



मूल्य :

सात रुपये पचास पैसे

दो शब्द

पुराणों का मुख्य उद्देश्य धर्म-कथाओं और धर्म-इतिहास का वर्णन करना माना गया है, पर बहुसंख्यक पुराणों में इनके अतिरिक्त विभिन्न कलाओं और विद्याओं का विवेचन भी बड़े विस्तारपूर्वक किया गया है। नारद पुराण, गरुड़ पुराण, अग्नि पुराण, विष्णु धर्मोत्तर पुराण आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। नारद पुराण में वेद के छः अंगों—शिक्षा, कला, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द शास्त्र का जैसा विस्तृत और विशद वर्णन किया गया है उसे देखकर आश्चर्य होता है। गरुड़ पुराण में रोग और औषधियों का जितना वर्णन मिलता है, उसे एक छोटा-मोटा पृथक आयुर्वेद ग्रंथ ही कहा जा सकता है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में राज-धर्म और राज्य-सञ्चालन सम्बन्धी सैकड़ों पृष्ठव्यापी एक पूरा शास्त्र ही मौजूद है।

'मत्स्यपुराण' के इस दूसरे खण्ड में भी 'राज-धर्म' 'राजनीति' 'गृह निर्माण विद्या' और 'मूर्तिकला' का पर्याप्त विस्तार के साथ वर्णन पाया जाता है। इसमें न केवल राजा के कर्तव्य और प्रजापालन का उपदेश दिया गया है, बरन् राजधानी का नगर किस प्रकार बसाया जाय, किलाबन्दी किस प्रकार की जाय, अपनी रक्षा और शत्रुओं का सामना करने के लिये उसमें कैसे अस्त्र-शस्त्रों, युद्ध-सामग्रियों और हर तरह की घायलों की चिकित्सायें जड़ी-बूटियों तथा औषधियों का संग्रह किया जाय इसका वर्णन दस-बीस अध्यायों में विस्तार के साथ किया गया है।

प्रसाद, भवन, गृह आदि के निर्माण में भी इस देश के प्राचीन 'वास्तु-विद्या' (इंजीनियरिङ्ग) का ज्ञान भली प्रकार प्रदर्शित किया गया है। भवानों में द्वार किस तरफ कैसे बनाये जायें और खम्भों के निर्माण में किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है? इसमें चौकोर से लेकर बत्तीस पहनों तक के तरह-तरह के खम्भों का जो वर्णन मिलता है उससे उस जमाने के लोगों की कलाप्रियता का परिचय मिलता है।

देवताओं की मूर्ति निर्माण में तो काफी जानकारी का होना अनिवार्य ही है। प्रत्येक देवता की मूर्ति में क्या विशेष लक्षण रखे जायें जिसे उसे ठीक-ठीक पहिचाना जाय और उसके गमस्त साम्प्रदायिक चिन्ह उसमें स्पष्ट दिखाई पड़ सकें? उदाहरण के लिये विष्णु-भगवान् की मूर्ति-निर्माण में वर्णन किये कुछ लक्षण यहाँ दिये जाते हैं—

“शंख, चक्र, पद्म और गदा धारण करने वाला—परम प्रशान्त उनका मस्तक छत्र के आकार से संयुक्त होता है। शंख के समान घोषा, शुभ नेत्र, ऊँची नाक, मीप के से कान, परम प्रशान्त उरु वाला उनका रूप होता है। उनकी मूर्ति कटी आठ भुजाओं और कहीं चार भुजाओं में युक्त होती है। यदि आठ भुजा बनाई जायें तो खड्ग, गदा, शर, दिव्य पद्म ये सब प्रायुक्त विष्णु जी के दक्षिण भाग में होने चाहिये और धनुष, शेटक, शख, चक्र ये चार वाम भाग में रहने चाहिये। चार भुजा वाले स्वरूप में गदा और पद्म दक्षिण भाग में और शख तथा चक्र वाम भाग में रखे जायें। उनके नीचे की ओर पैरों के मध्य भाग में पृथ्वी की कल्पना करनी चाहिये। दक्षिण भाग में प्रणति करते हुये गरुण और वाम भाग में हाथों में पद्म धारण किये लक्ष्मी देवी को विराजमान करना चाहिये। विभूति की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को गरुण की स्थापना भगवान् के सम्मुख भाग में करनी चाहिये। दोनों पाशवों में पद्म से संयुक्त श्री तथा पुण्ड्र की स्थापना करे। विद्याधरो के ऊपर तोरण बनायें और उसे दुःखुभिनाद करते हुये गन्धर्व, लतायें, सिंह और व्याघ्र प्रादि से सजायें।”

इसी प्रकार प्रत्येक देवता के विशेष चिन्हों को मूर्तियों में दर्शाने का पूरा विवरण दिया गया है। अन्त में सब मूर्तियों के अग अनुपात के अनुसार बड़े और छोटे होने चाहिये इसको भी स्पष्ट कर दिया गया है। एक जगह कहा गया है कि “मूर्ति की कटि अठारह अंगुल की होनी चाहिये। स्त्री-मूर्ति की कटि बाईस अंगुल की रखी जाती है और दोनों स्तन बारह-बारह अंगुल के होते हैं। नाभिके मध्य का परीणाह

वयालीस अंगुल का अभीष्ट होता है । पुरुषों में यह विस्तार पचपन अंगुल होता है । दोनों क-धे छः-छः अंगुल के बताये गये हैं । ग्रीवा भाठ अंगुल और दोनों भुजाओं का आयाम व्यालीस अंगुल का होता है ।" इसी प्रकार शरीर के प्रत्येक अंग की—हथेलियों और पाँवों अंगुलियों तक की नाप ठीक-ठीक बतलाई गई है, जिससे मूर्ति सब प्रकार से सुन्दर दिखलाई दे और उसमें कही बेडौलपन प्रकार हो ।

और भी कई अन्य महत्त्वपूर्ण विषय इस खण्ड में मिलते हैं । भृगु, अग्निरस, अत्रि कुशिक, कश्यप, वसिष्ठ आदि सभी प्रमुख ऋषियों के नाम, गोत्र, वंश, प्रवर स्पष्ट रूप में दिये गये हैं । ये ही ऋषि भारतीय सभ्यता के आदि जनक माने जाते हैं और अधिकांश पौराणिक उपाख्यान इन्हीं वंशों से किसी न किसी रूप में सम्बन्धित है । नरसिंह और वाराह अवतारों के चरित्र के विषय में भी मत्स्य पुराण का वर्णन कुछ विशेषता लिये हुए है । देवासुर युद्ध में दानों पक्षों के सेना-नायकों तथा वीरों का परिचय और उनका संग्राम कवि कल्पना का अच्छा परिचय देने वाला है । सावित्री-सत्यवान की कथा इस पुराण में भी छः-सत अध्यायों में दी गई है और उसकी वर्णन शैली प्रभावशाली है । मंगल-अमंगल सूचक शकुनी, तरह-तरह के स्वप्नों और अगों के फटकने का जो फनादेश दिया गया है वह अधिकांश पाठकों को आकषक ज्ञान पड़ेगा ।

अठारहों पुराणों के स्तर पर विचार करते हुये 'मत्स्य पुराण' को महत्त्वपूर्ण ही माना जायगा । यह न बहुत अधिक बड़ा है और न बहुत छोटा और पुराण के पाँचों अंगों के साथ इसमें पर्याप्त जीवनी-योगी और समाज की दृष्टि से प्रगतिशील विद्याओं और कलाओं का परिचय दिया गया है । यद्यपि हम एक हजार पृष्ठ में सब बातों को पूरे विस्तार के साथ नहीं दे सकते तब भी इस सशोधित संस्करण में पाठकों को सभी आवश्यकताओं का ज्ञान हो सकेगा और वे स्वयं इसके महत्त्व को अनुभव कर सकेंगे ।

विषय-सूची

(द्वितीय खण्ड)

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
६१	— नरसिंह माहात्म्य वर्णन	६
६२	— नरसिंह हिरण्यकशिपु युद्ध वर्णन... ..	२१
६३	—अस्य दानवो के साथ नरसिंह का युद्ध	७८
६४	—मनु मत्स्य सम्वाद वर्णन	४६
६५	—विष्णु प्रादुर्भाव वर्णन	५०
६६	—दैत्य सभ्य विस्तार वर्णन	६०
६७	—सुरसंघ्य विस्तार वर्णन	६५
६८	—देवासुर सग्राम वर्णन (१)	७४
६९	—देवासुर सग्राम वर्णन २)	८७
७०	—कालनेमि कृतान्त वर्णन	९७
७१	—कालनेमि घोर विष्णु का युद्ध	१०७
७२	—भव माहात्म्य वर्णन	१२२
७३	—वाराणसी क्षेत्र माहात्म्य	१३६
७४	—वाराणसी माहात्म्य	१५५
७५	—नर्मदा माहात्म्य	१६१
७६	—नर्मदा से सम्बन्धित अन्य तीर्थों का माहात्म्य	१७२
७७	—भृगु वंशज ऋषियों के नाम-गोत्र-वंश-प्रवर वर्णन	१८१
७८	—अङ्गिरस वंशज ऋषियों के नाम-गोत्र-वंश-प्रवर वर्णन... ..	१८८
७९	—व्यास वंशज ऋषियों के नाम-गोत्र-वंश-प्रवर वर्णन	१९४

क्रम	विषय	पृष्ठ
८०—	कुशिक वंशज ऋषियों के नाम-गोत्र-वंश-प्रवर वर्णन ...	१६६
८१—	कश्यप वंशज ऋषियों के नाम-गोत्र-वंश-वर्णन	१६६
८२—	वशिष्ठ वंशज ऋषियों के नाम-गोत्र-वंश-प्रवर वर्णन ...	२०२
८३—	ऋषियों के आख्यान में निमि का वर्णन	२०४
८४—	ऋषियों के नाम-गोत्र-वंश-प्रवर वर्णन	२११
८५—	मनु-मत्स्य सम्वाद में धर्म वंश वर्णन	२१३
८६—	पतिव्रता माहात्म्य में सावित्री-उपाख्यान	२१५
८७—	सावित्री-उपाख्यान (१)	२१६
८८—	सावित्री-उपाख्यान (२)	२२५
८९—	सावित्री-उपाख्यान (३)	२३०
९०—	सावित्री-उपाख्यान (४)	२३५
९१—	सावित्री-उपाख्यान (५)	२४०
९२—	सावित्री-उपाख्यान (६)	२४३
९३—	अभिषिक्त राजा का कृत्य वर्णन... ..	२४७
९४—	राजकृत्य वर्णन (१)	२६५
९५—	राजकृत्य वर्णन (२)	२७०
९६—	राजधर्म वर्णन (१)	२८५
९७—	राजधर्म वर्णन (२)	२९०
९८—	राजधर्म वर्णन (३)	२९६
९९—	देव और पुरुषार्थ में कौन बड़ा है ?	३०४
१००—	राजधर्म वर्णन में मम प्रयोग वर्णन	३०७
१०१—	राजधर्म वर्णन में भेद प्रयोग वर्णन	३०९
१०२—	राजधर्म वर्णन में दान प्रयोग वर्णन	३११
१०३—	राजधर्म वर्णन में दण्डोपाय वर्णन	३१३
१०४—	राजधर्म वर्णन में देव साम्यत्व वर्णन	३१६

१०५-ग्रह रक्षादि का विधान वर्णन	३१८
१०६-यात्राकाल विधान वर्णन	३२१
१०७-अग स्फुरण विचार	३३०
१०८-स्वप्न दर्शन वर्णन	३३२
१०९-यात्रा क समय मङ्गल-अमङ्गल सूचक राकुन वर्णन	३३८
११०-बराहावतार क विषय मे अर्जुन का प्रश्न	३४२
१११-बराहावतार चरित्र वर्णन	३५०
११२-क्षीरोद मथन वर्णन (१)	३६३
११३-क्षीरोद मथन वर्णन (२)	३७६
११४-क्षीरोद मथन वर्णन (३)	३८७
११५-प्रासाद, भवन आदि निर्माण	३९४
११६-गृह निर्माण काल वर्णन	३९७
११७-भवन निर्माण वर्णन	४०६
११८-स्तम्भमान निर्णय वर्णन	४१३
११९-भवन निर्माण वर्णन	४१८
१२०-दार्वाङ्गण वर्णन	४२४
१२१-प्रतिमा निर्माण वर्णन... ..	४२६
१२२-देवाकार प्रमाण वर्णन (१)	४४२
१२३-देवाकार प्रमाण वर्णन (२)	४४८
१२४-नानादेव प्रतिमा प्रमाण वर्णन	४५३
१२५-पीठिका लक्षण वर्णन	४६३
१२६-निग लक्षण वर्णन	४६३
१२७-देव प्रतिष्ठा विधि वर्णन (१)... ..	४७७
१२८-देव प्रतिष्ठा विधि वर्णन(२)	४८४
१२९-कलियुगीन भावी राजा	४९३

मत्स्य पुराण

[द्वितीय खण्ड]

★

६१—नरसिंह माहात्म्य वर्णन

इदानीं श्रोतुमिच्छामो हिरण्यकशिपोर्वधम् ।
नरसिंहस्य माहात्म्यं तथा पापविनाशनम् ॥१॥
पुरा कृतयुगे विप्रा हिरण्यकशिपु प्रभुः ।
देत्यानामादिपुरुषश्चकार स सहस्रतपः ॥२॥
दशवपसहस्राणि दशवपशतानि च ।
जलवासी समभवन् स्नानमौनघृतव्रत- ॥३॥
ततः शमदमाभ्याञ्च ब्रह्मचर्येण चं व हि ।
ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च ॥४॥
ततः स्वयम्भूभगवान् स्वयमागम्य तत्र ह ।
विमानेनार्कवर्णेन हसयुक्तेन भास्वता ॥५॥
आदित्यं वसुभिः साध्यं मरुद्भिर्देवतैस्तथा ।
रुद्रं विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसपन्नगैः ॥६॥
दिग्भिश्चैत्रं विदिग्भिश्च नदीभिः सागरैस्तथा ।
नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः ॥७॥

शृणुमिच्छामो न कदा—हे मुनिवर ! इस समय में हम लोग हिरण्यकशिपु के वध के विषय में श्रवण करने की इच्छा रखते हैं तथा भगवान्

नरसिंह प्रभु के माहात्म्य को भी सुनना चाहते हैं जो सम्पूर्ण पापों का विनाश करने वाला है ॥ १ ॥ महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—हे विप्र-वृन्द ! पहिले कृत युग में हिरण्य कशिपु प्रभु दैत्यों का आदि परप था और उसने दश सौ दश हजार वर्ष तक महान् घोर तपश्चर्या की थी । वह स्नान-मौन और व्रत को धारण करने वाला होकर जल में ही निवास करने वाला हो गया था ॥ २, ३ ॥ इसके अनन्तर उस हिरण्य कशिपु दैत्यराज के उस महान् उग्र तप से और नियमों के परिपालन से-शम-दम और ब्रह्मचर्या के द्वारा ब्रह्माजी उस पर बहुत प्रसन्न हो गये थे । जब वे अर्थाधिक प्रसन्न हो गये तो स्वयम्भू भगवान् स्वयं ही वहाँ पर उसके तप के स्थल पर आ गये थे । हसमुवत-सूर्य के समान वर्ण वाले आम्बान् विमान के द्वारा ब्रह्माजी ने वहाँ पर पदार्पण किया था । उस समय में उनके साथ प्रादित्य-वसुगण-साध्य-मरुद्गण-देवत-रुद्र-विश्व सहायक-यक्ष-राक्षस-यन्तग-दिशाऐं-विदिशाऐं-नदियाँ-सागर नक्षत्र-मुहूर्त-सेचर और महान् ग्रह सब थे ॥ ४ । ५ । ६ । ७ ॥

देवैर्ब्रह्मर्षिभिः साद्धं सिद्धं सप्तर्षिभिस्तथा ।
 राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिर्गन्धर्वाप्सरसाङ्गणैः ॥५
 चराचरगुरुः श्रीमान् वृतः सर्वैर्दिवोकसैः ।
 ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्य वचनमध्रवीत् ॥६
 प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसाऽनेनमुव्रत । ।
 वरं वरय भद्र तै यथेष्टं काममाप्नुहि ॥१०
 न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ।
 न मानुषाः पिशाचा वा हन्युर्मान्देवसत्तम ! ॥११
 ऋषयो वा न मा शापः शपेभ्युः प्रपितामह ।
 याद मे भगवान् प्रीतो वर एष वृतीमया ॥१२
 न चास्त्रेण न शस्त्रेण गिरिणा पादपेन च ।
 न शक्येण न चार्द्रेण न दिवा न निशाऽथवा ॥१३

भवेयमहमेवार्कः सोमोवायुर्हुताशनः ।

सलिलञ्चान्तरिक्षञ्च नक्षत्राणि दिशो दश ॥१४

अहं क्रोधश्च कामश्च ऋणो वासवोयमः ।

घनदश्च घनाध्यक्षो यक्षः किंपुरुपाधिपः ॥१५

ब्रह्माजी जब वहाँ आये थे तो वे देवगण—ब्रह्मर्षि—सिद्ध और

सप्तर्षियों के साथ में थे । बड़े २ राजर्षि—पुण्यवान्—गन्धर्व—अप्सराओं के समुदाय तथा समस्त दिवोकसो के साथ मैं वे चरों और अचरो के गुरु—ब्रह्मवेत्ताओं में परम श्रेष्ठ श्रीमान् ब्रह्माजी परिवृत थे । वहाँ पहुँच कर जगद्गुरु ब्रह्माजी ने उस दैत्यराज से यह वचन कहा था ॥ ८ ॥ ६ ॥ हे सुव्रत ! तुम मेरे परम भक्त हो । मैं इस समय में आपके इस अत्यन्त उग्र तप से परम प्रसन्न हो गया हूँ । आपका कल्याण ही, अब जो भी कोई वरदान मुझसे चाहते हो माँग लो और जो भी आपको परम अभीष्ट कामना ही उमें प्राप्त करलो ॥ १० ॥ यह ब्रह्माजी का वचन सुनकर हिरण्य कशिपु ने कहा—हे देव सत्तम ! मैं यही चाहता हूँ कि देव—असुर—गन्धर्व—यक्ष—उरग—राक्षस—पिशाच और मानुष कोई भी मेरा हनन न करें ॥ ११ ॥ हे प्रपितामह ! ये ऋषिगण भी अपने शापो के द्वारा मुझे अभिशप्त न करने पावें । यदि भगवान् आप मुझ पर पूर्णतया प्रसन्न हो गये हैं तो मैं आपसे यही वरदान प्राप्त करना चाहता हूँ ॥ १२ ॥ हे भगवन् ! मेरी मृत्यु का साधन कोई भी अस्त्र—शस्त्र—गिरि—पदपद्मादि न होवे अर्थात् इनमें किसी के भी द्वारा मैं न मारा जा सकूँ । मैं किसी भी शुष्क स्थल में अर्थात् भूमि पर और आर्द्र भाग में अर्थात् जल में न मरूँ । मुझे दिन में तथा रात्रि में किसी भी समय में मृत्यु न आवे अर्थात् मुझे दिन और रात में कोई भी न मार सकें ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैं ही सूर्य हो जाऊँ तथा सोम—वायु और हुताशन मैं ही वन जाऊँ अर्थात् इन सबकी शक्ति मेरे अन्दर ही हो जावे ; मैं ही सनिख—अग्निरिक्ष—नक्षत्र—दशो दिशाएँ हो जाऊँ अर्थात् इन सबकी शक्ति मेरे ही

अन्दर उपस्थित हो जावे । हिरण्यकशिपु ने कहा कि मैं ही क्रोध-काम-
वह्म-इन्द्र-यम-प्रनश-घन का स्वामी किम्पुरुषो का अधिप यक्ष होजाऊँ
अर्थात् इन सबकी क्षमता मेरे ही अन्दर हो जानी चाहिए और मेरे सामने
ये सब शक्तिहीन हो जावे ॥११-॥१५॥

एते दिव्या वगस्तात ! मया दत्तास्तवाद्भुताः ।
सर्वान् कामान् सदा वत्स ! प्राप्स्यसे त्व न संशयः ॥१६
एवमुक्त्वा स भगवान् जगामाकाश एव हि ।
वराज ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥१७
ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा ऋषिभिः सह ।
वरप्रदानं श्रुत्वा पितामहमुपस्थिताः ॥१८
वरप्रदानाद्भुगवन् ! यधिष्यति स नोऽसुरः ।
तत्प्रसीदाशु भगवन् ! यधोऽप्यस्य विचिन्तयताम् ॥१९
भगवन् ! सर्वंभूतानामादिकर्ता स्वयं प्रभु ।
रुष्टा त्वं हव्यकव्यानामव्यक्तप्रकृतिबुधः ॥२०
सर्वलोकहितवाच्यं श्रुत्वा देव प्रजापतिः ।
आश्वासयामास सुरान् सुशीतैर्वचनान्बुभिः ॥२१

ब्रह्माजी ने कहा—हे तात ! ये सब दिव्य वरदान हैं और बहुत
ही अद्भुत हैं किन्तु मैंने तुमको ये सभी वरदान दे दिये हैं । हे वत्स !
तुम अपने सम्पूर्ण कामों को सदा प्राप्त कर लोगे—इसमें लेश मात्र भी
संशय नहीं है ॥ १६ ॥ इस प्रकार से उन भगवान् ब्रह्माजी ने कहा था
धीर फिर आकाश के मार्ग से ही वापिस चले गये थे । ब्रह्माजी उस
समय में ऋषि गणों से सेविन ब्रह्माजी का घर वराज को चले गये थे
॥ १७ ॥ इसने पश्चात् देव-नाग-गन्धर्व आदि सब ऋषिगण के साथ
इस वरों के प्रदान को सुनकर ही ब्रह्माजी पितामह व समीप में उपस्थित
हुए थे ॥ १८ ॥ देवगण ने कहा—हे भगवन् ! आपके इस प्रकार के
वरदानों के दे देने में तो यह हमारा सबका वध कर डालेगा ।

हे भगवन् ! इसलिये आप प्रसन्न होइये और शोचन 'हो' इसका कोई
 वध होने का उपाय भी सोचिए ॥ १६ ॥ हे भगवन् ! आप तो
 समस्त भूतो के आदि कर्ता है और स्वयं प्रभु हैं । आप हृद्यकव्यों
 के सृजन करने वाले हैं । अव्यक्त प्रकृति और परम वृष है । इस
 समस्त लोकों के हित करने वाले वाष्य को मुनकर प्रजापति देव ने
 सब सुरों को सुगीत वचन रूपी सुन्दर जलो के द्वारा समाश्वासन दिया
 था ॥२०॥२१॥

अवश्य त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः परम् ॥
 तपसोऽन्तेऽस्य भगवान् वधं विष्णुः करिष्यति ॥२२
 तच्छ्रुत्वा विबुधा वाक्यं सर्वं पङ्कजजन्मनः ।
 स्वानि स्थानानि दिव्यानि विप्रा जग्मुर्मुदान्विताः ॥२३
 लब्धमात्रे वरे चाथ सर्वाः सोऽवाधत प्रजाः ।
 हिरण्यकशिपुर्दंत्यो वरदानेन दर्पितः ॥२४
 आश्रमेऽपुमहाभागान् स मुनीन्घसितद्रतान् ।
 सत्यधर्मपराञ्च दान्तान् धर्मग्रामासदानवः ॥२५
 देवांस्त्रिभुवनस्थांश्च पराजित्य महासुरः ।
 त्रैलोक्य वशमानीय स्वर्गे वसति दानयः ॥२६
 यदा वरमर्षोत्सक्तश्चोदित कालघसतः ।
 यज्ञिमानकरोर्दृत्यानयजियांश्च देवताः ॥२७
 तदादित्याश्च साध्याश्च विश्वे च वसवस्तथा ।
 सेन्द्रा देवगणायक्षाः सिद्धद्विजमहर्षयः ॥२८
 शरण शरण विष्णुमुपतस्थुमंहायतम् ।
 देवदेव यज्ञमयं वासुदेव सनातनम् ॥२९

हे देवगणो ! उस अमुर न तपस्या की है अतएव उसका फल तो
 उसे अवश्य ही प्राप्त करना ही था । इस तप के फल के अन्त ही जाने
 पर इसका वध भगवान् विष्णु ही करेंगे ॥२२॥ हे विप्रो ! उस समय में

सब देवों ने पङ्कज से जन्म ग्रहण करने वाले पितामह के इस वाक्य को श्रवण कर प्रसन्नता से युक्त होकर अपने २ दिव्य स्थानों को वे सब चले गये थे ॥ २३ ॥ ऐसे वरदानों को प्राप्त होने के साथ ही वह दैत्यराज सम्पूर्ण प्रजाओं को बाधा में पहुँचाने लगा था । वह दैत्यराज हिरण्यकशिपु वरदान प्राप्त करने से अत्यन्त हर्षित हो गया था अर्थात् उसे बड़ा धमण्ड हो गया था ॥ २३ ॥ २४ ॥ वह दानव जो अपने २ आश्रमों में रहने वाले महाभाग मुनिगण थे और जो शासित ब्रतों वाले—सत्यधर्म में परायण एवं परम दमनशील सत्पुरुष थे उन सबको धर्षित करने लगा था ॥ २५ ॥ त्रिभुवनों में स्थित देवों को उस महासुर ने पराजित करके पूर्ण त्रैलोक्य को अपने वश में ले लिया था और वह दानव स्वयं स्वर्ग में निवास किया करता था । जिस समय में वह वरदान के मद से अत्यन्त ही उत्तम्वन हो गया था तब वह काल के धर्म से प्रेरित हो गया और दैत्यों को यज्ञिय बना दिया था और अयज्ञियों को देवता कर दिया था ॥ २६, २७ ॥ उस समय में आदित्य—साध्य—विश्वेदेवा—वसुगण—इन्द्र के सहित देवगण—यक्ष—सिद्ध—द्विज और महर्षिवृन्द सबके सब महान् बल सम्पन्न भगवान् विष्णु की धारणागति में पहुँचे थे जो प्रभु देवों के भी देव—यज्ञमय सनातन वासुदेव थे और आप ही हमारे शरण अर्थात् रक्षक हैं—यह प्रार्थना करने लगे थे ॥ २८, २९ ॥

नारायण ! महाभाग ! देवास्त्वां शरणगताः ।
 त्रायस्व जहि दैत्येन्द्रं हिरण्यकशिपुं प्रभो ! ॥३०
 त्व हि नःपरमो धाता त्व हि न परमो गुरुः ।
 त्व हि न परमो देवो ब्रह्मादीना सुरोत्तम ॥३१
 भयन्त्यजध्वममरा अभय वो ददाम्यहम् ।
 तथैव त्रिदि देवाः प्रतिपद्यत मा चिरम् ॥३२

एषोऽहं सगण दैत्यं वरदानेन दत्तम् ।
 अवध्यममरेन्द्राणं दानवेन्द्रं निहन्म्यहम् ॥३३
 एवमुक्त्वा तु भगवान् विसृज्यधिदशेध्वरान् ।
 वधं सङ्कल्पयामास सिरण्यकशिपोः प्रभुः ॥३४
 सहायश्च महाबाहुरोद्धार गृह्णा सत्वरम् ।
 अथोद्धारसपायस्तु भगवान् विष्णुरव्ययः ॥३५

देवगण ने भगवान् विष्णु से कहा - हे नारायण ! आप तो महान् भाग वाले हैं । हम समस्त देवगण आपकी शरणागति में उपस्थित हो गये हैं । हे प्रभो ! आप हमारी रक्षा करो और इस दैत्येन्द्र हिरण्य कशिपु का वध करो ॥३०॥ हे मुरोत्तम ! हम सयके आप ही परम धाता हैं और आप ही हमारे परम गुरु हैं—आप ही हमारे सर्वोपरि विराजमान देव हैं और ब्रह्मा आदि सब में आप सर्वश्रेष्ठ देव हैं ॥३१॥ भगवान् विष्णु ने कहा—हे अमर गणो ! भय का पूर्ण रूप से त्याग करदो—मैं आपको अभय का दान करता हूँ । हे देवताओ ! पूर्ण की ही भाँति आप सब लोग अपने त्रिदश को पुनः बहुत ही शीघ्र प्राप्त कर लीये ॥३२॥ यह मैं ही शरदान प्राप्त करने से पर्यन्त घमण्ड में भरा हुआ जो यह दैत्यराज है उसको गणों के सहित मार दूँगा जो कि यह दानवेन्द्र अन्य सध क्षमरेन्द्रों के द्वारा अवध्य है ॥३३॥ इस प्रकार में कहकर भगवान् ने उन सध त्रिदशेश्वरों को विसर्जित कर दिया था और फिर प्रभु ने उस दैत्येन्द्र हिरण्य कशिपु के वध के करने के लिये मन में संकल्प किया था । ३४॥ सहायता करने वाले महाबाहु प्रभु ने बहुत ही शीघ्र ओद्धार का ग्रहण किया था । इसके अनन्तर अवध्य भगवान् विष्णु ओद्धार की सहायता वाले हो गये थे ॥३५॥

हिरण्यकशिपुस्थान जगाम हरिरोश्वरः ।
 तेजसा भास्कराकारः शशी कान्त्येवचापरः ॥३६
 नरस्य कृत्वाद्धतनुं सिंहस्याद्धतनुं तथा ।

नारसिंहेन वपुषा पाणि संस्पृश्य पाणिना ॥३७
 ततोऽपश्यत् विस्तीर्णा दिव्यां रम्यां मनोरमाम् ।
 सर्वकामवृतां शुभा हिरण्यकशिपोः सभाम् ॥३८
 विस्तीर्णा योजनशत शतमध्यद्धमायताम् ।
 वैहायसीङ्कामगमां पञ्चयोजनविस्तृताम् ॥३९
 जराशोकबलमापेता निष्प्रकम्पां शिवां सुखाम् ।
 वेश्महर्म्यवती रम्या ज्वलन्तीमिव तेजसा ॥४०
 अन्तःमलिलसंयुक्ता विहितां विश्वकम्मणा ।
 दिव्यरत्नमयंवृक्षैः भलपुष्पप्रदंयुताम् ॥४१
 नीलपीतसिश्याभैः कृष्णैर्लोहितकैरपि ।
 अवतानंस्तथा गुल्ममञ्जरीशतधारिभिः ॥४२

ईश्वर हरि भगवान् हिरण्य कशिपु के स्थान को गये थे । उस
 समय में वह तेज से भास्कर के आकार के तुल्य और कान्ति से एक
 दूसरे चन्द्रमा के समान थे । नर का आधा शरीर बना कर तथा आधा
 शरीर सिंह का धारण करके नरसिंह वपु से युक्त होकर, पाणि के द्वारा
 पाणि का स्पर्श करते हुए हरि हिरण्य कशिपु की सभा में पहुँचे थे । वहाँ
 पहुँच कर उन्होंने अत्यन्त विस्तीर्ण-दिव्य-रम्य-मनोरम-समस्त कामो
 से समन्वित और शुभ देत्यराज हिरण्य कशिपु की सभा का अवलोकन
 किया था ॥३७, ३७, ३८॥ वह सभा सी योजन विस्तार वाली-शत
 मध्यद्ध आयत-वैहायसी-काम पूर्वक गमन करने वाली तथा पाँच योजन
 विस्तृत थी ॥३९॥ हिरण्यकशिपु की सभा जरा, शोक और बलम से अपेत
 अर्थात् रक्ति थी तथा निष्प्राकम्प-शिव-सुखप्रद-वेश्म और हर्म्यो से
 सम्युत रम्य एव तेज से जाज्वल्यमान जैसी थी ॥ ४० ॥ इस सभा के
 मध्य में सजिन रहना था और इसकी रचना विश्वकम्पा के द्वारा
 की गयी थी । वह सभा परम दिव्य फल-पुष्प प्रदान करने वाले
 रत्नों से परिपूर्ण वृक्षों से समन्वित थी । नील-पीत-सित-श्याम-कृष्ण

लोहित अवतारों से युक्त तथा मन्जरी शतधारी गुल्मो से संसृत वह सभा थी जिसकी अवर्णनीय शोभा हो रही थी ॥४१, ४२॥

सिताभ्रघनसङ्काशा प्लवन्तीव व्यदृश्यत ।

रश्मिवती भास्वरा च दिव्यगन्धमनोरमा ॥४३

सुसुखा न च दुःखा सा न शोक्ता न च घर्षदा ।

न क्षुत्पिपासे ग्लानि वा प्राप्यतां प्राप्नुवन्ति ते ॥४४

नानारूपैरुपकृतां विचित्रैरति भास्वरं ।

स्तम्भैश्च विभृता सा च शाश्वती चाक्षया सदा ॥४५

सर्वे च कामाः प्रचुरा ये दिव्या ये च मानुषाः ।

रसयुक्तं प्रभूतञ्च भक्षयाभोज्यमनन्तकम् ॥४६

पुण्यगन्धस्रजश्चात्र नित्यपुष्पफलद्रुमाः ।

उष्णे शीतानि तीर्यानि शीतैवोष्णानिसन्ति च ॥४७

पुष्पिताया महाशाखाः प्रवालाकुरधारिणः ।

लतावितानसच्छन्ना नदापु च सरःसु च ॥४८

वृक्षान् बहुविधास्तत्र मृगेन्द्रा ददशे प्रभुः ।

गन्धवन्ति च पुष्पाणि रसवन्ति फलानि च ॥४९

सित मेघाभ्र क सदृश वह सभा प्लवम करती हुई जैसी दिखलाई दिया करती थी । रश्मियो से युक्त—परम भास्कर और दिव्यगन्ध से समन्वित एवं मनोहर थी ॥४३॥ मुन्दर सुखों से परिपूर्ण-दुखों से रहित-न अधिक शीत युक्त और न घर्ष को प्रदान करने वाली थी । वहाँ पर जो भी पहुँच जाया करते थे वे फिर भूख-व्यास और ग्लानि को प्राप्त नहीं हुआ करते थे । नाना प्रकार के रूपों वाले—विचित्र और भास्कर स्तम्भों से उपकृत वह सभा थी । वह विभृता नहीं थी प्रत्युत शाश्वती तथा सदा अक्षया थी । उस सभा ने सभी कामनाएँ चाहे वे दिव्य हों या मानुषी हों प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहा करती थी । रस से युक्त—अन्त से दृग्म प्रभूत भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थ उसमें रहा करते थे ॥४४, ४५॥

॥४६॥ इस दैत्यराज की महासभा में पुण्य गन्ध वाले सराज भी और वहाँ के वृक्ष बारहो महीने नित्य ही पुष्प और फलों के प्रदान करने वाले थे । वहाँ पर उष्ण काल में शीतल और शीत काल में उष्ण जल रहा करते थे ॥४७॥ नदियों में और सरोवरों में ऐसे वृक्ष थे जिनके अप्रसर पुण्यित थे—जिनकी महान् दाखाएँ थी और जो प्रवालांकुरों के धारण करने वाले थे तथा लताओं के वितानों से सच्छन्न थे ॥४८॥ भृगेन्द्र प्रभु ने वहाँ पर इस प्रकार के बहुत-सी तरह के वृक्षों को देखा था जिनमें गन्ध से युक्त पुष्प थे और रस से समन्वित फल थे ॥४९॥

तस्यां सभाया दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुस्तदा ।
 स्त्रीसहस्रं : परिवृतो विचित्राभरणाम्बरः ॥५०॥
 धनर्घ्यमणिवज्राचिशिखाज्वलितकुण्डलः ।
 आसीनश्चासने चित्री दश नखप्रमाणातः ॥५१॥
 दिवाकरनिभे दिव्ये दिव्यास्तरणसस्तृते ।
 दिभ्यगन्धवहस्तत्रमारुत सुमुखोववो ॥५२॥
 हिरण्यकशिपर्देत्य आस्ते ज्वलितकुण्डलः ।
 उपचेरमहादैत्य हिरण्यकशिपुं तदा ॥५३॥
 दिश्यतानन गोतानि जगुर्गन्धर्वसत्तमाः ।
 विश्वाची सहजन्याच प्रम्लोचेत्यभिविश्रुता ॥५४॥
 दिभ्याथ मीरुभेयीच समीचो पृञ्जिकस्यली ।
 मिश्रकेशीचरम्भाचच्चित्रलेखाशुचिस्मिता ॥५५॥
 चारुकेशी घृताची च मेनका चोवशीतथा ।
 एताः सहस्रशश्चान्या नृप्यगीतविशारदाः ॥५६॥

उक्त समय में उक्त सभा में वह दैत्येन्द्र हिरण्य कशिपु समवन्धित था जो स्त्री समुदायों की सहस्र सख्या से परिवृत था तथा विचित्र आभरण और वस्त्रों से समलङ्कृत था ॥५०॥ बहुमूल्य मणि और वज्रों की रश्मियों की शिखाओं से ज्वलित कुण्डलों कासा था । दश नख प्रमाण से युक्त

विचित्र सिंहासन पर बहू दैत्य राज समावेशित था । वह सिंहासन सूर्य के समान परम दिव्य एवं दिव्य अन्तरण से सम्भूत था । वहाँ पर दिव्य गन्ध के बहन करने वाला सुन्दर सुख का देने वाला वायु बहन कर रहा था ॥१११, ११२॥ वहाँ पर जागृतस्वमान कुण्डली वाला हिरण्य कशिपु दैत्यराज स्थित था । उस समय मे हिरण्य कशिपु दैत्यराज की परिचर्या बहून ही अम्भराएँ कर रही थीं ॥११३॥ श्रेष्ठ यन्त्रवैगण दिव्यतान के द्वारा गीतों का गान कर रहे थे । मिश्रवाची—सहजग्या—अभिविभ्रुत-प्रम्लोचा—दिव्या—सौरभेयो—रुप्रीच—पुञ्जक स्थली—मिथ केशी—रम्भा—शुचिस्मित वाली चित्र लेखा—बाहू केशी—पूनायी—भेषका और उर्वशी ये और सहस्रों अन्य अम्भराएँ जो नृत्य तथा गीतों के गायन करने में परम विगारद् उस दैत्य राज की परिचर्या कर रही थीं ॥ ११४ ॥

॥ ११५, ११६ ॥

उपतिष्ठन्त राजान हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ।
 तत्रासीन महाबाहु हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ॥११७
 उपासन्त द्विते पुत्राः सर्वे लब्धवस्तथा ।
 तमप्रतिमकर्मणिं शतशोऽथ सहस्रश ॥११८
 बलिबिरोचनस्तत्र नरकः पृथिवीमुत ।
 प्रह्लादो विप्रचित्तिश्च गविष्ठश्च महाभुरः । ११९
 सुग्रहन्ता दुःखहन्ता मुनामा सुमतिवराः ।
 घटादग्रे महापाश्वः क्रथनः कठिनस्तथा ॥१२०
 विश्वरूपः सुहृपश्च स्वतश्च महाबलः ।
 दशग्रीवश्च वालीच भेषवासा महाभुरः । १२१
 घटास्यो कम्पनश्चैव प्रजनश्चेद्गतापनः ।
 दैत्यदानसंघास्ते सर्वे ज्वलितकुण्डलाः ॥१२२
 स्रग्विणो वाग्मिनः सर्वे सदैव चरितव्रताः ।
 सर्वे लब्धवराः शूराः सर्वे विगतमृत्पवः ॥१२३

वहा पर उस मृत्यो राज सभा मे समवस्थित महान् बाहुओं वाले महाराज हिरण्य कशियु प्रभु की सेवा मे सब उपस्थित होकर सेवाएँ कर रहे थे ॥५७॥ दिति के सभी पुत्र जिन्होंने वरदान प्राप्त कर लिये थे वे सब सैकड़ों और सहस्रों की संख्या मे अप्रतिम कर्म वाले उस दैत्यराज की उपासना कर रहे थे । उन दैत्यों मे बलि-विरोचन-नरक-पृथिवी सुत प्रह्लाद-विप्रचित्ति-श्रदासुर गविष्ठ-सुरहन्ता दुःख हन्त-गुनामा-सुमति वर-घटोदर-महापाशर्व-ऋधन-कठिन-विश्वरूप-सुरूप-सबल-महाबक-हृशप्रोव-बाली-महामुर मेघ वासा-धरास्य-घम्पन-प्रजन-इन्द्र तापन आदि थे । इन सब दैत्य दानवों के सघ थे जो सभी जाज्वल्यमान कुण्डलों वाले थे ॥५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२॥ सभी लोग सग्वी अथात् मालाधारी-वाग्मी और सर्वैव चरित व्रत वाले थे । इन सभी ने वरदान प्राप्त कर लिये थे-सब शूर वीर और मृत्यु के भव से रहित थे ॥६२॥

एते चान्ये च ब्रह्मवो हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ।

उपासन्ति महात्मान सर्वे दिव्यपरिच्छदाः ॥६४

विम नैविविधाकारैर्भ्रजमानैरिवाग्निभिः ।

महेन्द्रवपुषः सर्वे विचित्राङ्गदवाहवः ॥६५

भूपिताङ्गा दितेः पुत्रास्तमुपासन्त सर्वशः ।

तस्या सभायान्द्विषा याममुगपवतोपमा ॥६६

हिरण्यवपुषः सर्वे दिवाकरसमप्रभाः ।

न श्रुतन्न दृष्ट हि हिरण्यकशिपोयथा ॥६७

ऐश्वर्यं दैत्यसिंहस्य यथा तस्य महात्मनः ।

कनकरजतत्रिवेदिकाया परिहृतरत्नविचित्रवीथिरायाम् ।

स इदर्श मृगाधिपः सभाया सुरचितरत्नगवाक्षणोमितायाम् । १८

कनकविमलहारविभूषिताङ्गा दितितमय स मृगाधिपोददशं ।

दिवसकरमहाप्रभालसं तन्दिवातजसहस्रशतं निषेव्यमाणम् ॥६८

ये तथा अन्य बहुत-से दिव्य परिच्छदो वाले सब अमुरगण महान् आम्ना वाले उस प्रभु हिरण्य कशिपु की तपासना कर रहे थे ॥६४॥ त्रिदिश भ्रान्ति के आकार-प्रकार वाले अग्नि के सहण आजमाने विमानो के द्वारा अद्भुत अङ्गुलीं मे समलङ्कित बाहुओं वाले और महेन्द्र के तुल्य वपु को धारण करने वाले-भूषित अङ्गों से युक्त सब दिश के पुत्र सभी ओर से उस दैत्यराज की समुपासना कर रहे थे । उस महान् राजनभा में जो कि अत्यन्त दिव्य थी सभी अमुरगण पर्वत के समान विमान थे । ॥६५, ६६॥ सभी लोग हिरण्य वपु वाले वहा पर थे जिनकी दिवाकर के तुल्य प्रभा थी दैत्यो मे सिंह के समान उस महान् आत्मा वाले हिरण्य कशिपु का जैमा ऐश्वर्य था वैसा न तो कभी किमो का देखा गया था और न कही पर सुना ही गया था । जिस सभा मे स्थित होकर वह मृगाक्षिप नरसिंह देख रहे थे वह भली भानि निहित गवाक्षो से मुसोभित थी और परित्त किये हुए रत्नों से विचित्र वीथिका वाली थी तथा सुवर्ण एव चाँदी की निर्मित अद्भुत वादका से सम्न्वित थी ॥ उन मृगाक्षिप नरसिंह प्रभु ने सुवर्ण के बिगल हारो से विभूषित अङ्गुली वाले तथा मूर्ध के तुल्य महती प्रभा से युक्त और संकडो एवं महती दैत्यो के द्वारा भेजित सब दिशि के पुत्र हिरण्य कशिपु की देखा था ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

६२ — नरसिंह हिरण्यकशिपु युद्ध वर्णन

ततो दृष्ट्वा महात्मानं कालनक्रमिवागतम् ।
 नरसिंहवपुच्छन्न भ्रमन्त्यश्मिवागतम् ॥१॥
 हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादात्नाम बोधवान् ।
 दिव्येन चक्षुषः सिंहवपुश्चन्द्रमागतम् ॥२॥

तं दृष्ट्वा रुक्मशैलाभतपूर्वान्तनुमाश्रितम् ।
 विस्मिता दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः ॥३
 महाबाहो ! महाराज ! दैत्यानामादिसम्भव ।
 न श्रुतं न च नोदृष्ट नारसिंहमिदं वपुः ॥४
 महाबाहो ! महाराज ! दैत्यानामादिसम्भव ।
 दैत्यान्तकरण घोर संशतीव ननो मम ॥५
 अस्य देवाः शरीरस्थाः सागराः सरित्तश्चयाः ।
 हिमवान्पारियात्रश्चयेचान्येकुलपर्वताः ॥६
 चन्द्रमाश्च सप्तक्षत्रीरादित्यवंसुभिः सह ।
 धनदो वरुणश्चैव यमः शक्रः शचीपतिः ॥७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा—जिस समय मे नरसिंह भगवान् उस
 सभा मे पहुँचे थे तो उस समय मे हिरण्य कशिपु के पुत्र वीर्यवान् प्रह्लाद
 ने महान् आत्मा वाले नरसिंह के शरीर मे छिपे हुए साक्षात् आये हुए
 काल चक्र के समान तथा भस्म मे छन्न अग्नि के समा उनको आरम्भ मे
 देखा था ॥७, २॥ वहा पर स्थित सब दानवो ने और उस हिरण्य कशिपु
 ने भी पूर्व शरीर मे समाश्रित सुवर्ण के पर्वत की आभा वाले उन नरसिंह
 प्रभु को देखकर सभी को उस समय मे बहुत विस्मय हो गया था ॥३॥
 उसी समय मे प्रह्लाद ने कहा था—हे महान् बाहुओ वाले ! हे महा-
 राज ! हे दैत्यो के प्रादि जन्मधारी ! मैंने तो अब तक ऐसा नारसिंह
 वपु न कभी देखा है और न कही पर सुना हो है । यह भय्यक्त प्रभव
 (जन्म) वाला—परम दिव्य क्या रूप सामने मे आ गया है ? मेरे मन
 मे तो ऐसा ही सशय हो रहा है कि यह कोई घोर स्वरूप वाला दैत्यो
 के अन्त कर देने वाला ही यहाँ आकर समुपास्थन हुआ है ॥४, ५॥ इनके
 इस विशाल शरीर मे समस्त देवगण स्थित है—सब सागर—समस्त
 नदियाँ—हिमवान्—पारियात्र और अन्य सब कुल पर्वत भी इनके शरीर
 मे विद्यमान है । समस्त नक्षत्रो के साथ तथा वसु गण और आदित्यो के

सहित चन्द्रमा भी इसमें वर्तमान हैं । घनद (कुवेर)—वरुण—यम और शची का पति इन्द्र देव भी इनके इस नारसिंह शरीर में विद्यमान दिखलाई दे रहे हैं ॥६, ७॥

मरुतो देवगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः ।

नागा यक्षाः पिशाचाश्च राक्षसा भीमविक्रमाः ॥८

ब्रह्मा देवः पशुपतिलंलाटस्था भ्रमन्ति च ।

स्यावराणि च सर्वाणि जङ्गमानितथैवच ॥९

भवांश्च सहितोऽस्माभिः सर्वैर्देवगणैर्वृतः ।

विमानशतसङ्कीर्णा तथैव भवतः सभा ॥१०

सर्वं त्रिभुवन राजन् ! लोकधर्माश्च शाश्वताः ।

दृश्यन्ते नारसिंहेऽस्मिस्तथेदमखिलं जगत् ॥११

प्रजापतिश्चात्र मनुर्महात्मा ब्रह्माश्च योगश्च महीरुहाश्च ।

उत्पात्कालश्च धृतिर्मतश्च रतिश्च सत्यञ्च तपो दमश्च ॥१२

सतत्कुमारश्च महानुभावो विश्वे च देवा ऋषयश्च सर्वे ।

काश्यश्च कामश्च तथैव हर्षा धर्मश्च मोह पितरश्च सर्वे ॥१३

प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा हिरण्यकशिपुः प्रभुः ।

उवाच दानवान् सर्वान् गणाश्च म गणाधिपः ॥१४

मृगेन्द्रा गृह्यतामेप अपूर्वं सत्वमास्थितः ।

यदि वा सशयः कश्चिद्वधयतां वनगोचरः ॥१५

महद्गण—देव—गन्धर्व—तप के ही घनो वाले सब ऋषि वृन्द—नाग—यक्ष—पिशाच—भीम विक्रम वाले राक्षस—ब्रह्मा—देव पशुपति ये सब इनके ललाट प्रदेश में स्थित हुए भ्रमण कर रहे हैं । सम्पूर्ण स्यावर तथा सभी जङ्गम जीव इनके शरीर में दिखलाई दे रहे हैं ॥८, ९॥ सब देवों से परिवृत हम सबके सहित आप भी इनके शरीर में स्थित देखे जा रहे हैं । सैकड़ों विमानों से सङ्कीर्ण यह आपकी महती राज सभा तथा हे राजन् यह सम्पूर्ण त्रिभुवन और समस्त प्रायवत लोक धर्म इस नारसिंह

शरीर में दिखाई दे रहे हैं । उसी भाँति यह सम्पूर्ण जगत्-महात्मा प्रजा-
पति मनु—सब ग्रह—योग—महीरुद्र इसमें दृष्टिगत हो रहे हैं ॥१०॥
॥११, १२॥ इनके अतिरिक्त उत्पात का काल—घृति—मति—रति—
सत्य—सप—दम इममें विद्यमान है । महानुभाव सनत्कुमार—विश्वेदेवा—
सब ऋषिगण—क्रोध—काम—हर्ष—धर्म—मोह—सब पितृगण इनके इस
महान् विशाल एव परम दिव्य शरीर में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई दे रहे हैं ।
॥१३॥ इस प्रकार के वहे हुए वचन का श्रवण कर वह गणों का अधिप
प्रभु हिरण्यकशिपु समस्त दानवों और गणों से यह बोला था—देखो,
आप सब मिलकर इस अश्वत्थ अद्भुत अपूर्व शस्त्र के रूप में सन्निवृत नर-
सिंह को पकड़ लो और यदि कुछ भी सज्जद । तो इन वन में श्रमण करने
वाले को मार डाला ॥१४, १५॥

ते दानवगणः सर्वे मृगेन्द्रं भीमविक्रमम् ।
परिक्षिपन्ता मुदितास्त्रासयामा पुरोजसा ॥१६
सिंहनाद विमुक्त्याः नरसिंहो महाबलः ।
वभञ्ज तां सभा सर्वा व्यादितास्य इवान्तकः ॥१७
सगायागज्यमानायाहिरण्यकशिपु स्वयम् ।
त्रिदोषान्त्राणिसिहस्यरापाद्दद्यात्तुल्लोचनः ॥१८
सर्वत्राणामथ ज्येष्ठदण्डमस्य सुदारुणम् ।
वालचक्रं तथा घोरत्रिष्णुचक्रं तथा परम् ॥१९
पैतामहं तथात्युग्रं नीलोक्यदहनं महत् ।
विविधमशनीञ्चैव दुष्कार्दं चाशनिद्वयम् ॥२०
गौद्रं तथोग्रं शूलञ्च कङ्कालमुमलं तथा ।
माहनशोपणञ्चैव सन्तापनविलापनम् ॥२१

हिरण्यकशिपु ने इस आदेश को प्राप्त करके ये मभस्त्र दानवगण
उस भीम विक्रम वाले मृगेन्द्र पर परिक्षण करते हुए बहुत ही प्रपन्न हो
रहे थे और वे सब अग्न ओज के यत्न से उन नरसिंह प्रभु को प्राप्त देन

लगे थे ॥१६॥ उस समय में महान् बलशाली नरसिंह प्रभु ने एक तिह-
नाद करके उस सम्पूर्ण हिरण्य कशिपु की सभा का फैलाये हुए मुँह वाले
अन्तक काल के समान भङ्ग कर दिया था ॥१७॥ जिस समय में वह
पूरी सभा भङ्गमान हो गई थी तब हिरण्य कशिपु ने स्वयं ही रोप से
व्याकुल नेत्रों वाला होकर उन नरसिंह भगवान् के शरीर पर अपने ही
अस्त्रों का प्रयोग आरम्भ कर दिया था । समस्त अस्त्रों में सबसे बड़ा—
महान् दारुण दण्ड अस्त्र—घोर काल चक्र—परमोत्तम विष्णुचक्र तथा
अत्यन्त ही उग्र पितामह का अस्त्र जो इस महान् त्रैलोक्य के दाह कर
देने वाला था इन सब अस्त्रों से हिरण्य कशिपु ने नरसिंह वपु पर प्रहार
किये थे । विचित्र अशनी तथा घुष्क और आर्द्र दोनो प्रकार के अग्नि-
रोद्र तथा उपशूल—कङ्काल—मुसल—मोहन—शोषण—सन्तापन—बिला-
पन नाम वाले अस्त्रों से दैत्यराज ने नरसिंह प्रभु के शरीर पर डर-डर
कर प्रहार पर प्रहार किये थे ॥१८, १९, २०, २१॥

वायव्यं मथनं चैव कापालमथ कङ्करम् ।
तथाप्रतिहतां शक्तिं क्रीञ्चमस्त्रं तथैव च ॥२२
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव सोमास्त्रं शिशिरं तथा ।
कम्पन शतनञ्चैव त्वाष्ट्रञ्चैव सुभरवम् ॥२३
कालमुद्गरमक्षोभ्यं तपनञ्च महाबलम् ।
संवर्तन मादनञ्च तथा गायाधर परम् ॥२४
गान्धर्वमस्त्रं दपितमसिरत्नं च नन्दकम् ।
प्रस्थापन प्रमथनं वारुणं चास्त्रमुत्तमम् ॥
अस्त्रं पाशुपतञ्चैव यम्याप्रतिहता गतिः ॥२५
अस्त्रं ह्यशिरश्चैव ब्राह्ममस्त्रं तथैव च ।
नारायणास्त्रमन्द्रञ्च सापमस्त्रं तथाद्भुतम् ॥२६
पैशाचमस्त्रमजित शोषदं शामन तथा ।
महाबल भावनं च प्रस्थापनविकम्पने ॥२७

एतान्यस्त्राणि दिव्याणि हिरण्यकशिपुस्तदा ।

असृजन्नरसिंहस्य दीप्तस्याग्नेरिवाहुतिम् ॥ ८

वायव्य, मघन, कापाल, कङ्कुर, अमुतिहता शक्ति, श्रोत्र्य अस्त्र, ब्रह्म शिरास्त्र, सोमास्त्र, शिशिर, कम्पन, शतन, त्वाष्ट्र, सुभंरव, कालमुद्गर, अक्षोभ्य, महाबल, तपन, सम्वर्त्ति, मादन, परमायाधर, गान्धर्वास्त्र, दयिन, अस्तिरत्न, नन्दक, प्रस्वापन, प्रमयन, उत्तम वाष्पास्त्र और पशुपत अस्त्र जिसकी गति अप्रतिहत हुआ करती है ॥२२, २३, २४, २५॥ ह्यग्निर अस्त्र, ब्राह्म्यास्त्र, नारायणास्त्र, ऐन्द्र, अद्भुत साप अस्त्र, पैशाचास्त्र, अजित, शोषद, शामन, महाबल, भावन, प्रस्थापन, विकम्पन इन सब अस्त्रो को जो महान् दिव्य थे दैत्यराज हिरण्य कशिपु ने भगवान् नरसिंह के शरीर पर छोड़ दिया था किन्तु वे सब अस्त्र उनके शरीर का स्पर्श करते ही ऐसे नष्ट भ्रष्ट होकर भस्मसात् हो गये थे जिस तरह से प्रदीप्त हुई अग्नि में हवि पड़ते ही जल कर भस्म हो जाया करती है ॥२६॥ ॥ २७, २८ ॥

अस्त्रैः प्रज्वलितं सिंहमावृणोदतुरोत्तमाः ।

विवस्वान् घर्मंसमयेहिमवन्तमिवाशुभिः ॥२८

स ह्यमर्षानिलोद्धृतो दैत्यानां सैन्यसागरः ।

क्षणेन प्लावयामास मंताकमिव सागरः ॥३०

प्रासैः पाशैश्च खड्गैश्च गदाभिर्मुसलैस्तथा ।

वज्रशनिभिश्चैव साग्निभिश्च महाद्रुमः ॥३१

मुद्गरैर्भिदिपालैश्च शिलोलखलपर्वतैः ।

शतध्नीभिश्च दीप्ताभिर्दण्डैरपि सुदारणं ॥३२

ते दानवाः पादागृहोतहस्ता महेन्द्रतुल्याशनिवश्रवेगाः ।

समन्ततोऽभ्युद्यतवाहृकाया हिमतास्त्रिशीर्षा इव नागपशा ॥३३

सुवर्णमान्नाकुलभूपिताङ्गा पीताशुवाभोगविभाविताङ्गाः ।

मुक्तावलीदामसनाश्वक्षा हस्ता इवा भासित विशालपक्षाः ॥ ३४

उन असुरोत्तमों ने घर्म के समय में विवस्वान् अपनी किरणों से हिमवान् की तरह प्रज्वलित अस्त्रों के द्वारा उन नृसिंह प्रभु को आवृत्त कर दिया था ॥ २६ ॥ अमर्ष की अग्नि से उद्भूत दैत्यों के उस सेना-रूपी सागर ने क्षण भर में मनाक को समुद्र की भाँति सबको प्लावित कर दिया था ॥ ३० ॥ असुरों की उस विशाल सेना ने प्राश-पाश-खड्ग-गदा-मूसल-बध्न-अशनि-अग्नि के सहित महान् द्रुम-मुद्गर-भिन्दिपाल, शिला, उलूखल, पर्वत, दीप्त शतधनी और सुदारुण दण्ड आदि के द्वारा नृसिंह प्रभु पर प्रहारों की भरमार करदी थी ॥ ३१, ३२ ॥ पाशों को हाथों में ग्रहण करने वाले, महेन्द्र के समान अशनि बध्न के वेग से युक्त सभी ओर से अभ्युदित बाहू और काया वाले वे सब दानव तीन शीर्षों वाले नागपाशों की भाँति स्थित थे ॥ ३३ ॥ सुवर्ण की मालाओं के समूह से विभूषित अङ्गों वाले तथा पीत वर्ण के वस्त्ररूपी आभोग से विभावित अङ्गों से युक्त और गुत्तावली की माला से समन्वित कक्षों से सयुक्त विशाल पक्षों वाले हंसों के तुल्य वे दानवगण शोभित हो रहे थे ॥ ३४ ॥

तेषां तु वायुप्रतिभीजसां वै केयूरमौलीवलयोत्कटानाम् ।
 तान्युत्तमाङ्गान्यभितो विभान्ति प्रभातसूर्यांशुसमप्रभाणि ॥ ३५
 क्षिपद्भिः रुद्रज्वलितैर्महावलंमहास्त्रपूगैः मुसमावृतो वभा ।
 गिरियथा मन्ततवपिभिर्घनैः कृतान्धकागन्तरकन्दरोद्गमैः ॥ ३६
 तैर्हृन्मनोऽपि महास्त्रजालैर्महावलदैत्यगणैः समेतैः ।
 नाकम्पताजौ भगवान् प्रतापस्थितप्रकृत्या हिमवानिवाचलः ॥ ३७
 सन्ध्रामितास्तेन नृसिंहरूपिणा दितेः सुताः पावकतुल्यतेजसा ।
 भयाद्विचेलुः पवनोद्गुताङ्गा यथोमंयः सागरवारिसम्भवाः ॥ ३८

वायु के समान ओज से युक्त, केयूर-मौली और बलय में उत्कट उन दानवों के उत्तम अङ्ग सभी ओर से प्राण काल के नूर्य की किरणों के तुल्य प्रभा वाले विभात हो रहे थे ॥ ३५ ॥ वह नरसिंह प्रभु महान

बलो वाले, उग्र, ज्वलित, दानवों के द्वारा प्रक्षिप्त किये हुए महान् अस्त्रों के समूहों से भली भाँति आयत होकर कन्दराओं के अन्दर अन्धकार कर देने वाले द्रुमों से और निरन्तर वर्षा करते हुए मेघों से पर्वत की भाँति सुशोभित हो रहे थे ॥ ३६ ॥ महान् बलवान्—सब ओर से एकत्रित हुए उन दैत्य गणों के द्वारा महान् अस्त्रों के जाल से हन्यमान भी वह नृसिंह प्रभु उस युद्ध स्थल में प्रताप से स्थित प्रवृत्ति के द्वारा हिमाचल की भाँति विन्कुल भी कल्पायमान नहीं हुए थे ॥ ३७ ॥ उन नृसिंह के रूपधारी भगवान् के द्वारा जिनका पावक के समान तेज था वे सब दिति के पुत्र दैत्य सन्त्रासित कर दिये गये थे और वे सब भय से भीत होकर पवन से उद्धूत अङ्गो वाली सागर के जल में समुत्पन्न उर्मियों की भाँति भय से बिचलित हो गये थे अर्थात् भयभीत होकर द्धर-उधर भाग गये थे ॥ ३८ ॥

६२—अन्य दानवों के साथ नरसिंह का युद्ध

पराः स्वरमुखाश्चैव मकराशीविपाननाः ।
 ईहामृगमुखाश्चान्ये वराहमुरासस्थिताः ॥१
 बालसूर्यमुखाश्चान्ये धूमकेतुमुखास्तथा ।
 अर्द्धचन्द्रार्धवक्राश्च अग्निदोपामुखास्तथा ॥२
 हंसकुक्कुटवक्त्राश्च व्यादितास्या भयावहाः ।
 सिंहास्यालिलहानाश्च काकगृध्रमुखास्तथा ॥३
 द्विजिह्वकावयत्रशीर्षास्तथोत्का मुखसस्थिताः ।
 महाप्राहमुखाश्चान्ये दानवावलदपिताः ॥४
 शैलसर्वप्रेमणरतस्य शरीरे शरदृष्टाभः ।
 अवध्यस्य मृगेन्द्रस्य न व्यथाञ्चक्रुराहवे ॥५
 एव भ्रूयोऽगान् घोरानगृजन् दानवेश्वरा ।

मृगेन्द्रस्योपरि क्रुद्धा निश्वसन्त इवोरगाः ॥६
 ते दानवक्षरा घोरा दानवेन्द्रसमीरिताः ।
 विलयं जग्मुराकाशे खद्योता इव पर्वते ॥७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—उस महान् भीषण युद्ध में बहुत से दानवों ने नृसिंह भगवान् से युद्ध किया था जिनके नाम ये हैं—खर, खर मुख, मकराशी, विपातन, ईहामृगमुख, वराह मुख, बाल सूर्यमुख, घूमकेतु मुख, अर्द्ध चन्द्रार्ध मुख, अग्निदीप्तमुख, हस कुक्कुट मुख व्यादितास्य, मयावह सिंहास्य लेलिहान, काक गृध्रमुख, द्विजिह्व, द्विवक्त्र, द्विशोषं, उल्कामुख, महाग्राह मुख आदि महान् भीषण मुखाकृतियों वाले बल के घमण्ड से परिपूर्ण दानव थे जो शैल के समान संवर्षर्ण वाले और वध के अयोग्य भगवान् मृगेन्द्र के शरीर में निरन्तर शरों की वर्षा से भी युद्ध में किञ्चित् मात्र भी व्यथा न कर सके थे ॥ १, २, ३, ४, ५॥ इसी प्रकार से फिर दूसरी बार उन दानवेश्वरों ने अत्यन्त शीघ्र होकर गर्भ श्वास छोड़ते हुए फुस्कारें करने वाले सर्पों की भाँति मृगेन्द्र प्रभु के शरीर के ऊपर दूसरे परम घोर अस्त्रों को छोड़ा था ॥ ६ ॥ वे सब दानवेन्द्रों के द्वारा प्रक्षिप्त किये हुए अतीव घोर दानवीय शर पर्वत में खद्योतो की भाँति आकाश में जा र विलय को प्राप्त हो गये थे ॥७॥

ततश्चक्राणि दिव्यानि दंत्या क्रोधसमन्विताः ।
 मृगेन्द्रायासृजन्नाशु ज्वलितानिसमन्ततः ॥८
 तं गसीद्गगनं चक्रैः सम्पतद्भिर्भरितस्ततः ।
 युगात्ते सम्प्रकाशद्भिश्चन्द्रादित्यग्रहैरिव ॥९
 तानि सर्वाणिचक्राणिमृगेन्द्रेणाशमात्मना ।
 प्रस्तान्युदीर्णानि तदापावकार्क्षिसमानिव ॥१०
 तानि चक्राणि वदनं विशमानानि भान्ति वै ।
 मेघोदरदरीप्वेव चन्द्रसूर्यग्रहा इव ॥११
 हिरण्यकशिपुर्दंत्यो भूयः प्रासृजदूर्जताम् ।

शक्ति प्रज्वलितां घोरां धीतशस्त्रतडित्प्रभाम् ॥१२

तामापतन्ती संप्रेक्ष्य मृगेन्द्रः शक्तिमुज्वलाम् ।

हुङ्कारेणैव रोद्रेण बभञ्ज भगवांस्तदा ॥१३

रराज भग्नासाशक्तिमृगेणमहीतले ।

स विस्फुलिङ्गा ज्वलिता महोत्केवदिवश्च्युता ॥१४

इसके उपरान्त उन दैत्यो ने महान् क्रोध से समन्वित होकर चारों ओर से प्रज्वलित होने वाले दिव्य चक्रों को नरसिंह प्रभु के शरीर पर बड़ी ही शीघ्रता से छोड़ दिये थे ॥ ८ ॥ इधर-उधर गिरते वाले उन चक्रों से युग के अन्त में मली भाँति प्रकाश करने वाले चन्द्र-सूर्य ग्रहों की भाँति उस समय में प्रकाश था ॥ ९ ॥ अतमात्मा उन मृगेन्द्र (नरसिंह) के द्वारा वे समस्त चक्र उस समय में अग्नि की अदियों के तुल्य प्रस्त और उदीर्ण होते थे ॥ १० ॥ वे सब चक्र जो दानवों के द्वारा नरसिंह प्रभु पर छोड़े गये थे उन्हीं के मुख में प्रवेश प्राप्त करते हुए मेघोदर हरीशो में चन्द्र-सूर्य ग्रहों के समान रोभा दे रहे थे ॥ ११ ॥ हिरण्य कशिपु ईश्वरराज ने पुनः अत्यन्त प्रज्वलित-परम घोर-धीत शस्त्र विद्युत् की प्रभा से समन्वित अतीव अजित शक्ति का प्रहार नरसिंह भगवान् पर किया था ॥ १२ ॥ उस समय में अत्यन्त समुज्वल अपने ऊपर आघतन करती हुई शक्ति को देखकर नृसिंह भगवान् ने महान् रोद हुङ्कार की ध्वनि से ही उसका भञ्जन कर दिया था ॥ १३ ॥ महीतल में मृगेन्द्र भगवान् के द्वारा भग्न की हुई वह शक्ति विस्फुलिङ्गों से मुक्त ओर प्रज्वलित दिवलोक से च्युत महोत्का के समान शोभित हो रही थी ॥ १४ ॥

नाराचपङ्क्तिः सिंहस्य प्राप्ता रेजे विदूरतः ।

नीलोत्पलपलाशाना मालेवोज्ज्वलदर्शना ॥१५

स गजित्वा यथान्याय विक्रम्य च यथासुखम् ।

तत्सैन्यमप्सारितवान् तृणाग्राणोव मारुतः ॥१६

ततोऽश्मवर्षं दैत्येन्द्रा व्यसृजन्त नभोगताः ।
 नगमात्रैः शिलाखण्डैर्गिरिशृङ्गैर्महाप्रभैः ॥१७
 तदश्मवर्षं सिंहस्य महन्मूढं निपातितम् ।
 दिशादश विकीर्णा वै खद्योतप्रकरा इव ॥१८
 तदाश्मौघदैत्यगणाः पुनः सिंहमरिन्दमम् ।
 छायायां चक्रिरे मेघा धाराभिरिव पर्वतम् ॥१९
 न च तं चालयामासुर्दैत्योघादेवसत्तमम् ।
 भीभवेगोऽचलश्रेष्ठ समुद्र इव मन्दरम् ॥२०
 ततोऽश्मवर्षैर्विहिते जलवर्षमनन्तरम् ।
 धाराभिरक्षमात्राभिः प्रादुरासीत् समन्ततः ॥२१

नृसिंह भगवान् के शरीर पर प्राप्त हुई नाराचों की शक्ति से ही नीलोत्पल के पलाशों की उज्वल दर्शन वाली माला के समान दीप्तिमान हो रही थी ॥ १५ ॥ नृसिंह महाप्रभु ने व्यायानुसार गर्जना करके और सुखपूर्वक बल-विक्रम दिखाकर उस दानवेन्द्र को सेना को तिनकों के अग्रभागों को वायु की तरह अपसारित कर दिया था ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त दैत्येन्द्रों ने आकाश में स्थिति होन हुए नग मात्र शिला खण्डों के द्वारा, महती प्रभा में युवन गिरि के शृङ्गों के द्वारा पाषाणों की वर्षा का विसर्जन कर रहे थे । वह पत्थरों की महान् वर्षा नरसिंह प्रभु के मस्तक पर डाली गयी थी और वह दशों दिशाओं में खद्योनों के प्रकारों की भाँति विकीर्ण हो गयी थी ॥ १७, १८ ॥ अरियों के दान करने वाले नृसिंह प्रभु को फिर उन दैत्यों के गणों ने पाषाणों की वृष्टि में डाले हुए पत्थरों के द्वारा मेघ जैसे अपनी वर्षाई हुई जल की धाराओं से पर्वत को ढाँक दिया करते हैं वैसे ही छाया में कर दिया था ॥ १९ ॥ उन दैत्यों के विशाल समुदायो ने देवों में परम श्रेष्ठ नृसिंह महा प्रभु को जिस प्रकार से भीम वेग वाला सागर अबलों में श्रेष्ठ मन्दराचल को चलायमान कर दिया करता है उसी तरह से चलायमान कर दिया था ॥ २० ॥

इसके उपरान्त उस पाषाणों की की गई वर्षा के अनन्तर जल की वृष्टि से अक्षमात्र धाराओं के द्वारा चारों ओर से प्रादुर्भूत हो गये थे ॥ २१ ॥

नभसःप्रच्युताधारास्तिरमवेगाः समन्ततः ।
 आवृत्पसर्वतो व्योमदिशश्चोपदिशस्तथा ॥२२
 धारा दिवि च सर्वत्र वसुधायाश्च सर्वशः ।
 न स्पृशन्ति च ता देवं निपतन्तोऽनिशं भुवि ॥२३
 वाह्यतो ववृपुर्वपं नोपरिष्ठाच्च ववृपुः ।
 मृगेन्द्रप्रतिरूपस्य स्थितस्य युधि मायया ॥२४
 हतेऽश्मवर्षे तुमुले जलवर्षे च शोपिते ।
 सोऽमृजद्दानवो मायामग्निवायुसमीरिताम् ॥२५
 महेन्द्रस्तोयदैः साद्धं सहस्राक्षो महाद्युतिः ।
 महता तोयवर्षेण शमयामास पावकम् ॥२६
 तस्या प्रतिहृतायां तु मायायां युधि दानवः ।
 अमृजत् घोरसकाश तमस्तोघ्रं समन्ततः ॥२७
 तभसा संवृते लोके दत्येष्वात्तायुधेषु च ।
 स्रतेजसा परिवृती दिवाकर इवावभौ ॥२८

आकाश से अत्यन्त तीव्र वेगो वाली गिरी हुई धाराएँ चारों ओर से आवृत्त करके सभी व्योम-दिशाओं और उप दिशाओं को घेर करके हो रही थी तथा दिवलोक में और सर्वत्र पृथ्वी में निरन्तर गिरती हुईं वे धाराएँ इस भूमण्डल में उन नृसिंहदेव का फिर स्पर्श नहीं कर रही थी ॥ २२, २३ ॥ वे धाराएँ बाहिर से वर्षा रहीं थीं किन्तु उनके ऊपर वे नहीं घरम रही थीं उस युद्ध स्थल में एक मृगेन्द्र के प्रतिरूप धारण करने वाले प्रभु की माया से उस तुमुल पाषाणों की वर्षा के हत होने पर तथा जल की वर्षा के एकदम शोपित कर डालने पर फिर उस दानव ने अग्नि और वायु से समीरित माया का सृजन किया था ॥ २४, २५ ॥

ही
।ने

उस समय में महान् घृति वाले सहस्राक्ष महेश्वरदेव ने जलदों के द्वारा महान् जल की कृष्टि से उस मायाहृत अग्नि का जयन कर दिया था । जब वह माया भी प्रतिहत करदी गई तो उसके पीछे युद्ध में उस महा-दानव ने चारों ओर में महान् घोर तम का बड़ी ही तीव्रता के साथ विधोष रूप से सृजन किया था ॥ २६, २७ ॥ सम्पूर्ण लोक तम से जब परिवृत हो गया था तो उस समय में आयुर्वों के धारण करने वाले उन दैत्यों को विनाश समुदाय में वह महाप्रभू नृसिंहदेव अपने ही तेज से परिवृत होकर दिवाकर के समान शोभा सम्पन्न होगये थे ॥२८॥

विशाखां भृकुटीञ्चाम्य ददृशुर्दानवा रणे ।
ललाटस्था त्रिशूलाङ्गा गङ्गां त्रिपयगामिव ॥२६
ततः सर्वान् मायासु हतासु दितिनन्दनाः ।
हिरण्यकशिपुं दैत्य विवर्णाः शरण ययुः ॥२७
ततः प्रज्वलितः क्रोधात् प्रदहन्निव तेजसा ।
तस्मिन् कृद्धे तु दैत्येन्द्रे तमोभूतमशूज्जगत् ॥२८
आवाहः प्रवहश्चैव विवहोऽथ ह्यु दाबहः ।
पराबहः सबहश्च महाबलपराक्रमाः ॥२९
तया परिवहः श्रीमानुत्पातभयर्गसनाः ।
इत्येवं क्षुभिताः सप्त भरुतो गगनेचराः ॥३०
ये ग्रहाः सर्वलोकस्य क्षये प्रादुर्भवन्ति वै ।
ते सर्वे गगने दृष्टा द्यचरन्त ययासुखम् ॥३१
अन्यङ्गते चाप्यचरन्मार्गं निशि निशाचरः ।
संग्रहः सहनक्षत्रै राकापतिररिन्दमः ॥३२

रणस्थल में स्थित दानवों ने फिर इन नृसिंह प्रभु की तीन शाखाओं वाली भृकुटी का त्रिशूल से अङ्घ्रिन ललाट प्रदेश में स्थित त्रिपय गामिनी गङ्गा की भाँति दर्शन किया था । इसके अनन्तर जब सभी की गयी मायाएँ हृत हो गयी थीं तो वे सब दिति के पुत्र महादैत्य गण विवर्ण

होकर दैत्यराज हिरण्य कशिपु की शरणागति में प्राप्त हो गये थे ॥ २६,
 ३० ॥ इसके पश्चात् वह मानो अपने ही तेज से सबको प्रद्रव्य कर रहा
 था वह दैत्यराज महान् क्रोध से प्रज्वलित हो गया था । जब वह दैत्येन्द्र
 इस भाँति क्रुद्ध हो गया तो उस समय में सम्पूर्ण जगत् अन्धकार से परि-
 पूर्ण हो गया था ॥ ३१ ॥ उत्पातो के भय को सूचित करने वाले और
 महान् बल तथा पराक्रम से युक्त आवह-प्रवह-विवह-उ दावह-परावह-
 संवह और परिवह ये सात प्रकार के महत् परम क्षुभित होते हुए
 आकाश में सञ्चरण करने वाले दिखलाई दे रहे थे ॥ ३२, ३३ ॥ जो ग्रह
 सम्पूर्ण लोको के क्षय होने के समय में प्रादुर्भूत हुआ करते हैं वे सभी
 ग्रह यथा सुख आकाश में विचरण करते हुए देखे गये थे । रात्रि में
 निशाचर मार्ग में अन्यगत हो जाने पर विचरण कर रहा था और
 अरिन्दम राकापति का नक्षत्रों के सहित सप्रहीत कर लिया गया था
 ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

विवर्णताञ्च भगवान् गतो दिवि दिवाकरः ।
 कृष्ण कवन्धं च तथा लक्ष्यते मुमहृद्वि ॥३६
 अमुञ्चवाचिषा वृन्द भूमिवृत्तिविभावसुः ।
 गगनस्यश्च भगवानभीक्षण परिदृश्यते ॥ ७
 सप्त धूम्रनिभा घोराः सूर्या दिवि समुत्थिताः ।
 सोमस्य गगनस्यस्य ग्रहास्तिष्ठन्ति शृङ्गाः ॥३८
 वामेन दक्षिणे षोडशस्थितौ शुक्रवृहस्पती ।
 शनैश्चरौ लोहिताङ्गो ज्वलनाङ्गसमुद्यती ॥३९
 सम समधिरोहन्तः सर्वे ते गगनेचराः ।
 शृङ्गाणि शनकैर्घोरा युगान्तावर्तिनो ग्रहाः ॥४०
 चन्द्रमाश्च सनक्षत्रं ग्रहैः सह तमोनुदः ।
 चराचरविनाशाय रोहिणी नाभ्यनन्दत ॥४१
 गृह्यते राहुणाचन्द्र उल्काभरिभहन्यते ।

उत्तमाः प्रज्वलिताश्चान्द्रे विचरन्ति यथासुखम् ॥४२॥

भगवान् दिवाकर दिव लोक में विवर्णता को प्राप्त हो गये थे और वह उस सुमहान् दिवलोक में कृष्ण कवच की भाँति दिखलाई दे रहे थे । ॥३६॥ अश्विनियों का वृद्ध यह—भूमि वृत्ति—विभावसु और गगन में स्थित भगवान् प्रतीक्षण में परिदृश्यमान हो रहे थे ॥३७॥ दिवलोक में धूम्र के तुल्य महान् घोर सात सूर्य समुत्थित हो गये थे । गगन में स्थित सोम के शृङ्ग में गगन कग्ने वाले ग्रह स्थित हो गये थे ॥३८॥ उसके वाम भाग में और दक्षिण भाग में शुक्र और वृहस्पति ग्रह स्थित हो गये थे । शनैश्वर और लोहितरङ्ग अग्नि के शृङ्ग के समान घुति वाले थे । वे सम्पूर्ण गगन चर समरूप से ही समधि रोहण कर रहे थे । ये युगान्त में आवर्तन करने वाले महान् घोर ग्रह, शनैः—शनैः शृङ्गों पर अधिरोहण और करते थे । तमका नोदन करने वाला चन्द्रमा नक्षत्रों और ग्रहों के सहित चराचर सबके विनाश करने के लिये रोहिणी का अभिनन्दन नहीं कर रहा था । ॥३६, ४०, ४१॥ राहु के द्वारा चन्द्र निगृहीत हो रहा था और उल्काओं से उसका अभिहनन किया जा रहा था । प्रज्वलित उल्काएँ मुख पूर्वक चन्द्रमा में विचरण कर रही थीं ॥४२॥

देवानामपि यो देवः साऽप्यवपंतशोणितम् ।

अपतन् गगनादुल्का विद्युद्रूपामहा स्वनाः ॥४३॥

अकाले च द्रुमाःसर्वे पुष्पन्ति च फलन्ति च ।

लताश्च सफलाःसर्वा येचाहुर्दत्पनाशनम् ॥४४॥

फले.फलान्यजायन्त पुष्पैःपुष्पं तथैव च ।

उन्मीलन्ति निमीलन्ति हसन्ति च रुदन्ति च ॥४५॥

विक्रोशन्ति च गम्भीरा धूमयन्ति ज्वलन्ति च ।

प्रतिमाः सर्वदेवानां वेदयन्ति महद्भयम् ॥४६॥

आरण्यैः सह ससृष्टा ग्राम्याश्च मृगपक्षिणः ।

चक्रुः सुभैरव तत्र महायुद्धमुपस्थितम् ॥४७॥

नद्यश्च प्रतिकूलानि वहन्ति कलुषोदकाः ।
 न प्रकाशन्ति च दिशो रक्तरेणुसमाकुलाः ॥४३॥
 वानस्पत्यो न पूज्यन्ते पूजनार्हाः कथञ्चन ।
 वायुवेगेन हन्यन्ते भज्यन्ते प्रणमन्ति च ॥४६॥

ज्योतिष के अनुसार युगान्तकारी महान् भीषण ग्रहों की स्थिति जो उस समय हुई थी—यह जतला कर उसका प्रतिफल बतलाते हुए कहते हैं कि समस्त देवों का भी जो देव है वह भी इस भीषण ग्रहों की स्थिति के कारण रक्त की वर्षा कर रहा था और गगन से महान् घोर ध्वनि करने वाली विद्युत् के स्वरूप में स्थित उल्काओं का पतन हो रहा था ॥४३॥ अकाल में ही सब वृक्ष पुष्प और फल देने वाले हो गये थे जो कि महान् उत्पात के सूचक थे । सम्पूर्ण लताएँ भी फलों से युक्त हो गईं थी जो दैत्यों के विनाश को स्पष्ट तथा बतला रही थी ॥४४॥ फलों में से फल और पुष्पों के द्वारा पुष्पों की उत्पत्ति होने लग गयी थी । ये सब उन्मीलित और निमीलित हुआ करते थे तथा कभी २ हँमते थे और किसी समय में रुदन करने वाले थे। ये सब महा विनाश की सूचना करने वाले हो गये थे ॥४५॥ समस्त देवों की प्रतिमाएँ जो अति गम्भीर थी—धूमित बना रही थी और प्रज्वलित हो जाया करती थी । ये सभी महान् भय के समागम को प्रकट कर रही थी और महान् असगुन को ज्ञात कराती थी । घाम्य पशुगण और पक्षिवृन्द आरण्यक (जंगली) पशु-पक्षियों के साथ समुष्ट होने लगे थे । वहा पर अत्यन्त भँरव उपस्थित महान् युद्ध करने लगे थे । कलुषित जलों से युक्त होकर सभी नदियाँ प्रतिकूल रूप से बहने लगी थी । सभी दिशाएँ लाल वर्ण की रेणुओं से समाकुल होकर प्रकाश नहीं करने वाली हो गई थी । पूजन करने के योग्य वनस्पतियाँ किसी भी समय में पूजित नहीं हो रही थी और वायु के वेग से वे सब हन्यमान—मञ्जन शील और नीचे की ओर झुकी हुई हो गई थी ॥ ४६ ॥

॥४७, ४८, ४९॥

यदा च सर्वभूतानां छाया न परिवर्तते ।
 अपहृणगते सूर्ये लोकानां युगसक्षये ॥५०
 तदा हिरण्यकशिपोर्दैत्यस्योपरि वेश्मनः ।
 भाण्डागारे युधागारे निविष्टमभवन्मधु ॥५१
 असुराणां विनाशायसुराणांविजयाय च ।
 दृश्यन्ते विविधोत्पाता घोराघोरनिदर्शनाः ॥५२
 एते चान्ये च बहवो घोरोत्पाताः समुत्थिताः ।
 दैत्येन्द्रस्य विनाशायदृश्यन्ते कालनिर्मिताः ॥५३
 मेदिन्यां कम्पमानायां दैत्येन्द्रेण महात्मना ।
 महीधरा नागगणा निपेतुरमितीजसः ॥५४
 विपज्ज्वालाकुर्लवंशकत्रं विमुञ्चन्तो हुताशनम् ।
 चातुःशीर्षाः पञ्चाशीर्षाः सप्तशीर्षाश्चापन्नगाः ॥५५
 वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनञ्जयी ।
 एलामुख, कालिकश्च महापद्मश्च वीर्यवान् ॥५६
 सहस्रशीर्षा नागावै हेमतालध्वजः प्रभुः ।
 शेषाऽनन्तोमहाभागो दुष्प्रकम्प्यःप्रकाम्पतः । ५७
 दीप्तान्यन्तर्जलस्थानि पृथिवीधरणानि च ।
 तदा क्रुद्धेन महता कम्पितानि समन्ततः ॥५८

जिस समय में समस्त प्राणियों की छाया परिवर्तित नहीं होती है और लोको के युग सक्षय में सूर्य भगवान् अपराह्न गत हो जाया करते हैं ॥५०॥ उस समय में दैत्यराज हिरण्य कशिपु के निवास-गृह के ऊपर भाण्डागार और आपुधागारमें मधु निविष्ट हो गया था ॥५१॥ घोर निदर्शन वाले विविध भूतों के स्वरूप वाले महान् उत्पात इन असुरों के विनाश के लिये तथा देवगणों की विजय प्राप्त होने के लिये दिखलाई दे रहे थे ॥५२॥ अन्य भी और जो बहुत-से अत्यन्त घोर उत्पात उठ खड़े हुए थे वे सब काल बलों के द्वारा विनिर्मित उस दैत्येन्द्र के सर्व तो भाव

से विनाश के लिये ही दिखलाई दे रहे थे ॥५३॥ उस महान् आत्मा वाले दैत्येन्द्र के द्वारा कम्पायमान इस मेदिनी में अमित ओज से सम्पन्न महीघर और नागगण गिर गये थे ॥५४॥ चार क्षीर्य वाले-पाँच कण्ठओ से युक्त और सात मस्तकों वाले पन्नग (सर्प) विष की ज्वालाओ से समाकुल मुखो से हुताशन का विमुञ्चन कर रहे थे । प्रमुख पन्नगो में वासुकि-लक्षक-कूर्कोटक-धनञ्जय-एलामुख-कालिक और महान् वीर्य-शाली महापद्म एव सहस्र शीर्यो वाला-नग-हेमताल ध्वज-प्रभु शेष और महाभाग भनन्त-दुःप्रकव्य-प्रकम्पित-जल के अन्दर स्थित रहने वाले दोस्त और पृथिवी धारण थे । उस समय में ये सब चारो ओर में महान् क्रुद्ध उसके द्वारा कम्पित हो गये थे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

नागास्तेजोधराश्चापि पातालतलचारिणः ।
 हि-कशिपुर्द्वैत्यस्तदा सस्पृष्टवान्महीम् ॥५६
 सन्स्पृष्टपुटः क्रोधाद्वाराह इव पूवजः ।
 नदी भागीरथो चैव सरयूः कौशिकी तथा ॥६०
 यमुना त्वथ कावेरी कृष्णवेशो च निम्नगा ।
 सुवेणा च महाभागा नदी गोदावरीतथा ॥६१
 चमण्वती च सिन्धुश्च तथा नदनदीपतिः ।
 कमलप्रभवश्चैव शोणोमणिनिभोदकः ॥६२
 नर्मदा शुभतीया च तथा वेप्रवती नदी ।
 गोमती गोकुलानीर्णा तथा पूर्वसरस्वती ॥६३
 मही कालमही चैव तमसा पुष्पवाहिनी ।
 जम्बूद्वीप रत्नवट मयूरत्नोपशोभितम् ॥६४

तेज के धारण करने वाले और पाताल तल में सचरण करने वाले नाग भी कम्पायमान हो गये थे । उस समय में दैत्यराज द्विरण्य कशिपु ने इस मही को सम्पन्न किया था और यह क्रोध से अपने होटो की

काटता हुआ पूर्वज वाराह की भाँति हो गया था । समस्त नद और नदियाँ भी प्रकम्पित हो गये थे जिनके प्रमुख नाम ये हैं—भागीरथी नदी—सरयू—कृष्णकी—यमुना—कावेरी—कृष्ण वेणी निम्नगा—सुवेणा—महाभाग गोदावरी नदी—चर्मण्वती—मिन्धुनद—नद नदीपति—कमल प्रभन और मणि के सदृश स्वच्छ जल वाला शोणनद—शुभ तोया नर्मदा—वेत्रवती नदी—गोमती—गोकुलाकीर्ण तथा पूर्व सरस्वती—मही—कालमही—तमसा और पुष्प वाहिनी ये सभी नद और नदियाँ प्रकम्पित हो गये थे । जम्बू द्वीप और सब प्रकार के रत्नों से उपशोभित रत्नवर्षः कम्पायमान थे । ॥५६, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४॥

सुवर्णप्रकटञ्चैव सुवर्णाकिरमण्डितम् ।

महानदञ्च लौहित्य शैलकाननशाभितम् ॥६५

पत्तनं कोशकरणं ऋषिवीरजनाकरम् ।

मागघाश्च महाग्रामा मुडाः शुङ्गास्तथैव च ॥६६

सुह्या भल्ला विदेहाश्च मालवाः काशिकोसलाः ।

भवन वनतेयस्य दैत्येन्द्रणाभिकम्पितम् ॥६७

कैलासशिखराकारं यत् कृतं विश्वकम्पणा ।

रक्ततोयो महाभीमो लौहित्यो नाम सागरः ॥६८

उदयश्च महाशैल उच्छ्रित शतयोजनम् ।

सुवर्णवेदिकः श्रीमान् मेघङ्कितनिषेवितः ॥

आजमानोऽसदृशैर्जातरूममयंर्द्धमैः ।

शालैस्तालेरतमालैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितैः ॥६९

सुवर्ण के धाकरों (खानों) से मण्डित सुवर्ण प्रकट तथा शैल और काननों से शोभा सयुक्त लौहित्य महान्-ऋषि और वीरजनों की खान कोश करण पत्तन—मागघ—महाग्राम—मुड तथा शुङ्ग—सुह्य—भल्ला—विदेह—गतव—वाशी—कोसल और वनतेय का भवन ये सब देश और स्थल उस दैत्येन्द्र हिरण्य कशिपु के द्वारा अभिकम्पित होगये थे ॥६५, ६६, ६७॥ यह भवन

कैलास पर्वत की गिखर के समान आकार वाला था और विश्वकर्मा के द्वारा इसकी रचना की गयी थी। महान् भीम स्वरूप वाला जिसका जलरक्त वर्ण का था ऐसा लौहित्य नाम वाला सागर—उदय महाशील जिसकी सी योजन ऊँचाई थी—मेघो की पंक्तियों से निषेवित सुवर्ण वेदिक जो पुष्पित कर्णिकार, शाल, ताल, तमाल, सूर्य के सदृश जात रूपमय द्रुमों से भ्राजमान था ॥६८, ६९॥

अयोमुखश्च विख्यातः सर्वतो घातुमण्डितः ।
 तमालवनगन्धश्च पर्वतो मलयः शुभः ॥७०
 सुराष्ट्राश्च सवाल्हीकाः शूराभीरास्थं वच ॥७१
 भोजा.पाण्ड्याश्च वज्राश्च कलिङ्गास्ताम्रलिप्तकाः ॥७२
 तथंबोड्राश्च पौण्ड्राश्च वामचूडाः सकेरलाः ।
 क्षीमितास्तेन दैत्येन सदेवाश्चाप्सरोगणाः ॥७३
 अगस्त्यभवनञ्चैव यदगम्यङ्कृतं पुरा
 सिद्धचारणसङ्घैश्च विप्रकीर्णं मनोहरम् ॥७४
 विभिन्नानाविहगं सुपुष्पितमहाद्रुमम् ।
 जातरूपमयैः शृङ्गैर्गङ्गविलिखांश्व ॥७५
 चन्द्रसूर्याशुसङ्घातैः सागराम्बुसमावृतैः ।
 विद्युत्त्वान् सर्वैः श्रीमानायतः शतयोजनम् ॥७६
 विद्युतां यत्न सङ्घाता निपात्यन्ते नगोत्तमे ।
 ऋषभ. पर्वतरौ व श्रीमान् वृषभसंज्ञितः ॥७७

अयोमुख परम विख्यात था जो सभी ओर से घातुओं से मण्डित था तथा तमाल के बनो की गन्ध से युक्त मलय पर्वत परम शुभ था। सुराष्ट्र—वाल्हीक—धूर—आमीर—भोज—पाण्ड्य—वज्र—कलिङ्ग—ताम्रलिप्त—उड्ग—पौण्ड्र—वाम चूड—केरल इन सब देशों को उस दैत्य ने क्षीम युक्त बना दिया था और देवों के सहित अप्सराओं के समुदायों को भी शुभ्र कर दिया था ॥७०, ७१, ७२, ७३॥ अगस्त्य भवन

जो कि पहिले अगम्य कर दिया था वह सिद्ध-चारणों के समूहों से विप्रकीर्ण और अत्यन्त मनोहर था ॥७४॥ उसमे विचित्र भाँति के अनेक विहंग रहते थे तथा सुन्दर पुष्पों से युक्त महान् वृक्ष लगे हुए थे । उसके सुवर्णमय शिखर इतने ऊँचे थे मानो वे गगन को लिखित बना रहे हैं । ॥७५॥ वह सागर के जलो से समावृत चन्द्र सूर्य की किरणों के सदृश विद्युत् वाला शोभा से सुसम्पन्न सी योजन पर्यन्त आयति वाला था । जिस नगोत्तम पर विद्युत्तों के संघातों का निपातन किया जाता था ऋषभ और श्री सम्पन्न दृषभ संज्ञा वाला पर्वत था ॥७६, ७७॥

कुञ्जरः पर्वतः श्रीमानगस्त्यस्य गृहं शुभम् ।
 विशालाक्षश्च दुर्धर्षः सर्पाणामालयः पुरी ॥७८
 तथा भोगवतीचाणि दैत्येन्द्रेणाभिकम्पिताः ।
 महासेनो गिरिञ्चव पारियात्रश्च पर्वतः ॥७९
 चक्रवांश्च गिरिश्रेष्ठो वाराहश्चैव पर्वतः ।
 प्राग्ज्योतिपपुरञ्चमापि जातरूपमय शुभम् ॥८०
 यस्मिन्वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः ।
 विशालाक्षश्च दुर्धर्षो मेघगर्भी निस्वनः ॥८१
 पण्डितस्तत्र सहस्राणि पर्वतानां द्विजोत्तमाः ।
 तरुणादित्यसङ्काशो मेरुस्तत्र महागिरिः ॥८२
 यक्षराक्षसगन्धर्वैर्नित्यं सेवितकन्दरः ।
 हेमगर्भो महाशैलस्तथा हेमसखोगिरिः ॥८३
 कंतासश्चैव शैलेन्द्रो दानवेन्द्रेण कम्पिताः ।
 हेमपुष्परसक्षेत्रं तेन बह्वानसं सरः ॥८४

श्री से सम्पन्न कुञ्जर पर्वत अगस्त्य का परम शुभ गृह था भोगवती भी उस दैत्येन्द्र के द्वारा अभिकम्पित हो रही थी । महासेन पर्वत—पारियात्र गिरि-चक्रवान् श्रेष्ठ गिरि-वाराह पर्वत-प्राग्ज्योतिपपुर जो परम शुभ और जातरूप मय था । जिसमे दुष्ट आत्मा वाला नरक नाम-

धारी दानव निवास किया करता था वह मेघ के समान गम्भीर ध्वनि वाला दुर्घर्ष विशालाक्ष था ॥७८, ७९, ८०, ८१॥ हे द्विजोत्तमो ! वहा पर साठ हजार पर्वत थे और वहा तरुण आदित्य के सहस्र महान् गिरि मेघ था ॥८२॥ यक्ष-गन्धर्व—राक्षसों के द्वारा नित्य ही जिनकी कन्दराओं का सेवन किया जाता था वह महान् शैल हेम गर्भ था तथा हेम सखा गिरि था ॥८३॥ ये समस्त महा शैल और शैलो का प्रमुख स्वामी कंलास को भी उस दासवेन्द्र ने कम्पित कर दिया था । उसने हेम पुष्प रस दौल वैखानस सरोवर को भी प्रकम्पित कर दिया था ॥८४॥

कम्पित मानसञ्चोव हसकारण्डवाकुलम् ।

त्रिशृङ्गपर्वतञ्चैव कुमारी च सरिद्वरा ॥८५

तुपारचयसञ्छन्ना मन्दरश्चापि पर्वतः ।

उशीरश्चिन्दुश्च गिरिश्चन्द्रप्रस्थस्तथाद्रिवाट् ॥८६

प्रजापतिगिरिश्चैव तथा पुष्करपर्वतः ।

देवाभ्रपर्वतश्चैव यथावै रेणुकोगिरिः ॥८७

क्रौञ्च सप्तदिशीलश्च धूम्रवर्णश्च पर्वतः ।

एते चान्ये च गिरयो देशा जनपदास्तथा ॥८८

नद्य ससागराः सर्वाः सोऽकम्पयत दानवः ।

कपिलश्च महीपुत्रो व्याघ्रवांश्चैव कम्पितः ॥८९

खेचराश्चैव सतीपुत्राः पातालतलवासिनः ।

गणस्तथा परोरीदो मेघनामाकुशायुधः ॥९०

ऊर्ध्वगो भीमवेगश्च सर्वं एवाभिकम्पिता ।

गदी शूली करालश्च हिरण्यकशिपुस्तदा ॥९१

हंसो और कारण्डवो से समाकुल मानस सरोवर का भी कम्पाय मान कर डाला था । त्रिशृङ्ग पर्वत, सरिताओ मे परम थोपठ, तुपार के समुदाय से सञ्छन्न कुमारी नदी, मन्दर पर्वत, उशीर चिन्दु गिरि, अद्रियो का राजा चन्द्रप्रस्थ, प्रजापति गिरि, पुष्कर पर्वत, देवाभ्र पर्वत,

रेणुक विरि, क्रौञ्च, सप्तपि, शैल, धूम्रवर्ण पर्वत, तथा अन्य गिरिगण, देश तथा जनपद, सागरों के सहित समस्त नदियों आदि को उस महा दानव ने कल्पित कर दिया था। मही का पुत्र कपिल और व्याघ्रवान् पर्वत को भी कम्पायमान बना दिया था ॥८५, ८६, ८७, ८८, ८९॥
 धेचर, सतीपुत्र, पाताल तल के निवासिगण, पर रौद्र, मेघ नाम वाला अक्रुशायुध, ऊर्ध्वग और भीम वेग ये सभी अन्निकम्पित हो गये थे। उस समय में हिरण्य कशिपु गदा के धारण करने वाला, मूलधारी और महान् कराल हो गया था ॥९०, ९१॥

जीमूतघनसङ्काशो जीमूतघननिस्वनः ।

जीमूतघननिर्घोषो जीमूत इव वेगवान् ॥९२

देवारिदितिजो वीरो नृसिंहं समुपाद्रवत् ।

समुत्पत्य ततस्तीक्ष्णमृगेन्द्रेण महानखैः ॥९३

तदोङ्कारसहायेन विदार्य निहतोयुधि ।

मही च कालश्च वशी नमश्च ग्रहाश्च सूर्यश्च दिशश्च सर्वाः ।

नद्यश्च शैलाश्च महार्णवाश्च गलाः प्रलादन्दितिपुत्रनाशात् ॥९४

ततः प्रमूदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः ।

तुण्डुवृर्ताभिर्दिव्यैरादिवेव सनातनम् ॥९५

यत्त्रया विहित देव ! नारसिंहमिदं वपुः ।

एतदेवार्चयिष्यन्ति परावरविदोजनाः ॥९६

भवान् ब्रह्मा च रुद्रश्च महेंद्रो देवसत्तमाः ! ।

भवान् कर्ता विकर्ता च लाकानां प्रभवाप्ययः ॥९७

पराञ्च सिद्धाञ्च परञ्च देव परञ्च मन्त्रं परमं हृदिश्च ।

परञ्च धर्मं परमञ्च विश्व त्वामाहुरयं पुरुष पुराणम् ॥९८

उस हिरण्य कशिपु का स्वहृत् उस काल में जीमूत कुण्ठमेष के समान था और मेघ के ही तुल्य घोर ध्वनि वाला वह था। उसकी घोर

गर्जना भी मेघ के ही तुल्य थी तथा जंभूत के समान ही वेग से सुन्नत
 पा ॥ ६२ ॥ इस प्रकार के स्वरूप वाला वह दिति का पुत्र क्षीर
 देवों का शत्रु था उस वीर ने नृसिंह महाप्रभु पर आक्रमण किया था ।
 इसके बन्तर उसी समय में ओङ्कार की सहायता वाले रुद्र ने उच्चल
 भाकर अपने परम तीक्ष्ण विशाल नखों से उस दानवेन्द्र हिरण्य कशिपु
 को पकड़ कर विदीर्ण कर दिया था और नृसिंह प्रभु के द्वारा वह दुष्ट में
 निहल हो गया था । दिति-पुत्र के विनाश हो जाने से यह मही—वात—
 वशीतन—सूर्य—सम्पूर्ण ग्रह—समस्त दिशाएँ—नदियाँ—शैल और महासागर
 सब परम प्रसन्नता को प्राप्त हो गये थे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ इसके पश्चात् सब
 देव वृन्द—ऋषिवर्य और तापन गण परम प्रसन्नित हो गये थे और फिर
 उन्होंने दिव्य नामों के द्वारा उन सनातन आदि देव का स्तवन किया था
 ॥ ६५ ॥ उन्होंने कहा—हे देव ! आपने जो यह नारसिंह षण्णु धारण
 किया है आपके इसी स्वरूप का परावर वेत्ता जन सर्वत्र किया करेंगे
 ॥ ६६ ॥ ब्रह्माभी ने कहा—हे भगवन् ! आप ही ब्रह्मा—रुद्र—महेन्द्र और
 परम श्रेष्ठ देव हैं । आप ही इन लोकों के कर्ता—विकर्ता—प्रभव और
 स्वयम्भू हैं ॥ ६७ ॥ आपको ही परम सिद्ध—परात्पर देव—परम मन्त्र—परम
 हवि—परम धर्म—परम विश्व और स्रष्टे मादि में होने वाले पुगतन पुष्ट्य
 कहते हैं ॥ ६७, ६८ ॥

परं शरीरं परमञ्च ब्रह्म परञ्च योगं परमाञ्च वाणीम् ।

पर रहस्यं परमाङ्गतिञ्च त्वामाहुरग्यं पुरुष पुराणम् ॥ ६९

एवं परस्यापि परं पदं यत् पर परस्यापि परञ्च देवम् ।

परं परस्यापि परञ्च भूतत्त्वामाहुरग्यं पुराणम् ॥ ७०

परं परस्यापि परं निधानं पर परस्यापि पर पवित्रम् ।

पर परस्यापि परं च दान्तन्त्वामाहुरग्यं पुरुष पुराणम् ॥ ७१

एवमुक्तवा नु भगवान् सर्वलोकगिनामहम् ।

स्त्वाम् नारायणं देव रत्न लोकं गतं प्रभुः ॥ ७२

तप्तो नदत्सु तूर्येषु नृत्यन्तीष्वसरःसु च ।
 क्षीरोदस्यात्तरं कूलं जगाम हरिरीश्वरः ॥१०३॥
 नारसिंह वपुर्देवः स्थापयित्वा मुदीप्तिमत् ।
 पौराणं रूपमास्थाय प्रययौ गरुडध्वजः ॥१०४॥
 अष्टचक्रेण यानेन भूतयुक्तेन भास्वता ।
 अव्यक्तप्रकृतिदेवः स्वस्थानं गतवान् प्रभुः ॥१०५॥

हे भगवन् ! आपको ही परम शरीर—परम ब्रह्म—परमयोग—परम
 घाणी—परम रहस्य तथा परम गति एवं आद्य पुराण पुरुष कहा करते
 हैं । इस प्रकार से जो परकामी परम पद है और परकामी परम देव है
 तथा परकामी परमभूत है उस आद्य पुरुष एवं परम पुराण आपको ही
 कहते हैं ॥ ६६ । १०० ॥ इसी भाँति परकामी परम निघान—परकामी
 परम पवित्र तथा परसेवी परम दान्त आद्य पुराण पुरुष आपको ही कहते
 हैं ॥ १०१ ॥ इस रीति से समस्त लोकों के पितामह भगवान् ने नारायण
 देव का स्तवन करके प्रार्थना की और फिर वे प्रभु अपने ब्रह्मलोक को
 वापिस चले गये थे ॥ १०२ ॥ इसके अनन्तर तूर्यों के घोष होने पर और
 अप्सराओं के नृत्य होने पर ईश्वर श्री हरि क्षीरसागर के उत्तर कूल पर
 गमन कर गये थे ॥ १०३ ॥ देवेश्वर ने मुदीप्ति से युक्त नारसिंह वपु
 की स्थापना कराकर फिर गरुडध्वज प्रभु पौराण स्वरूप में समास्थित
 होकर प्रयाण कर गये थे । भूतयुक्त-भास्वान् आठ चक्रों वाले यान
 के द्वारा अव्यक्त प्रकृति देव प्रभु अपने स्थान को चले गये थे ॥ १०४
 ॥ १०५ ॥

६४—मनुमत्स्य संवाद वर्णन

पद्मरूपमभूदेतत् कथं हेममयं जगत् ॥१
 कथञ्च वैष्णवी सृष्टिः पद्ममध्येऽभवत्पुरा ॥२
 श्रुत्वा च नरसिंह माहात्म्यं रविनन्दनः ।
 विस्मयोत्फुल्लनयनः पुनः प्रप्रच्छकेशवम् ॥३
 कथं पार्श्वे महाकल्पे तव पद्ममयं जगत् ।
 जलाणवगतस्येह नाभौ जातं जनार्दन ! ॥४
 प्रभावात् पद्मनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि ।
 पुष्करे च कथं भूता देवाः सर्पिगणाः पुरा ॥५
 एनमाख्याहि निखिलयोगयोगविदास्पते ! ।
 श्रूण्वत्स्तस्य मे कीर्तिं नंतृप्तिरुपजायते ॥६
 कियता चैव कालेन शेते व पुरुषोत्तमः ।
 कियन्त वा स्वयिति च कोऽस्य कालस्य सम्भवः ॥७

श्रुतिगण ने कहा—हमारी यह पार्श्वना है कि सृष्टि रचना को कुछ और अधिक विस्तार के साथ आप वर्णन कीजिए ॥ १, २ ॥ यह सम्पूर्ण जगत् किस प्रकार से हेममय पद्म के स्वरूप वाला हो गया था और पहिले उस पद्म के मध्य में यह वैष्णवी सृष्टि किस प्रकार से हुई थी ॥ ३ ॥ महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—रविनन्दन ने प्रभु नारसिंह के माहात्म्य का अध्ययन करके विस्मय से उत्फुल्ल नेत्रों वाला होकर पुनः समने केशव प्रभु से पूछा था ॥ ४ ॥ मनु ने कहा—हे जनार्दन ! पद्म महा कल्प में जिस समय में आप जलाणव में सीन होकर स्थित थे तब यह पद्ममय जगत् आपकी नाभि से किस प्रकार उत्पन्न हुआ था ? सागर के जल में शयन करने वाली पद्मनाभ के प्रभाव से उस पुष्कर में पहिले देव-श्रुतिगण और समस्त भूत किस रीति से समुत्पन्न हुए थे ॥ ५ ॥ हे योग के योद्धाओं के स्वामिन् ! इस सम्पूर्ण योग का वर्णन

कृपा करके कीजिए ! उसकी कीर्ति का ध्वज करने वाले मेरे हृदय की तृप्ति नहीं हो रही है । पुरुषोत्तम प्रभु कितने लम्बे समय से वहाँ पर शयन किया करते हैं और किस काल पर्यन्त शयन करते रहते हैं । इस काल की उत्पत्ति क्या है ? ॥६, ७॥

कियतावाथ कालेन ह्युत्तिष्ठति महायशाः ।
 कथञ्चोत्थाय भगवान् सृजते निखिलंजगत् ॥८
 के प्रजापतयस्तावदासन् पूर्व महामुने ! ।
 कथं निर्मितवाञ्छ्वैव चित्रं लोकं सनातनम् ॥९
 प्रथमेकार्णवे घ्न्ये नष्टस्थावरजङ्गमे ।
 दग्धदेवासुरनरे प्रनष्टोरगराक्षसे ॥१०
 नष्टानिलानले लोके नष्टाकाशमहीतले ।
 केवलं गह्वरीभूते महाभूतविपर्यये ॥११
 विभुर्महाभूतपतिर्महातेजा महाकृतिः ।
 आस्ते सुरवरश्रेष्ठो विधिमास्थाय योगवित् ॥१२
 शृणुयां परया भवत्या ब्रह्मन्नेतदशेषतः ।
 वक्तुमर्हसि घर्मिष्ठ ! यशो नारायणात्मकम् ॥१३

यह महान् यशस्वी प्रभु कितने काल में वहाँ पर उत्थित हुआ करते हैं और किस प्रकार से उठकर इस सम्पूर्ण जगत् का सृजन भगवान् किया करते हैं ? हे महामुने ! पहिले कौन प्रजापति थे और इस अत्यन्त विचित्र जगत् तथा सनातन लोक का किस प्रकार से निर्माण किया था ? ॥ ८, ९ ॥ प्रथम इस एक मात्र आर्णवे में जब कि सभी स्थावर और जङ्गल नष्ट होकर यह एकदम घ्न्य था—और सब देव—असुर एवं नर दग्ध हो गये थे तथा उरग और राक्षस भी सब नष्ट हो गये थे । अनित और अनल भी विनष्ट हो गये थे । लोक में आकाश एवं महीतल का नाम निशान भी नहीं था । महाभूतों के विपर्यय हो जाने पर यह केवल एक गह्वर के तुल्य ही था । उस समय में महान् आकृति वाले—महान्

तेषां त्वी—तुरवरों में परम धोह—नहामूर्तों के स्वामी—योमवेता विमु
 द्विधि में उनास्तिव होकर ये ॥ १०, ११, १२ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैं परम
 मत्स्यपूर्वक पूर्वोक्त से इस सबको ध्वंस करना चाहता हूँ । हे धम्मिष्ठ !
 आप इस नारायण के ही स्वस्व होते परम दस का वर्णन करने के योग्य
 होते हैं ॥ १३ ॥

धृष्ट्या चोपविष्टाना भगवान् ! वक्तुमर्हसि ।
 नारायणस्य वशसः श्रवणे वा तव स्पृहा ॥१४
 तद्दवंश्यान्वयभूतस्य न्याय्यं रविकुलपंथ ! ।
 शृणुष्वदिपुराणेषु वेदेभ्यश्च यथाश्रुतम् ॥१५
 ब्राह्मणानाञ्च वदतां श्रुत्वा वै सुमहात्मनाम् ।
 यथा च तपसा दृष्ट्वा बृहस्पतिसप्तमयुतिः ॥१६
 पराशरमुतः धीमान् गुरुर्द्वैपायनोऽब्रवीत् ।
 तत्तेज्ज् कथयिष्यामि यथाशक्ति यथाश्रुति ॥१७
 यद्विज्ञातुं मया शक्यमृषिमात्रेण सत्तमाः ! ।
 कः समुत्सहते ज्ञातुं परं नारायणात्मकम् ॥१८
 विद्वायनश्च यद्ब्रह्मा न वेदमति तत्त्वतः ।
 तत्कर्मं विश्ववेदानां तद्रहस्य महर्षिणाम् ॥१९
 तमोज्य सर्वयज्ञानां तत्तत्त्वं सर्वं दर्शिताम् ।
 तदध्यात्मविदां चिन्त्यंनरकन विकर्मिणाम् ॥२०
 अधिदेवञ्च यद्देवमर्षियज्ञं सुसंज्ञितम् ।
 तद्बभूत्विभूतञ्च तत्पर परमर्षिणाम् ॥२१

हम सब धृष्टा के साथ ध्वंस करने के लिए पर समुपस्थित हैं
 आप अब कहने की कृपा कीलिए क्योंकि इसके वर्णन करने की पूर्ण
 क्षमता रखते हैं । मत्स्य भगवान् ने कहा—जो यह आपकी स्पृहा भगवान्
 नारायण के दस को ध्वंस करने की समुत्पन्न हुई है वह हे रविकुलपंथ !
 सभी वंश में होने वाले धर्म में उन्मत्त आपकी बहुत उचित ही है ।

वेदों से तथा आदि पुराणों में जिस प्रकार से सुना गया है उसका अब श्रवण करो ॥ १४, १५ ॥ सुन्दर और महान् आत्मा वाले बीसते हुए ब्राह्मणों का कथन सुनकर और बृहस्पति के समान श्रुति वाले, पाराशर के पुत्र श्रीमान् गुरु द्वैपायन ने जिस प्रकार से तपश्चर्या के द्वारा देखकर बीला या उसी को मैं अपनी शक्ति और श्रवण के अनुसार आपको सब कहूँगा ॥ १६, १७ ॥ हे श्रेष्ठतमो ! ऋषि मात्र मेरे द्वारा जो भी जाना जा सकता है उस परम नारायण के स्वस्व को अन्य कौन जानने का उत्साह कर सकता है ॥ ८ ॥ विश्व जिसको अपने बनाता है वह ब्रह्माजी तात्त्विक रूप से जिसको नहीं जानते हैं । विश्व वेदों का यह ब्रह्म मह-पियों के लिये भी एक रहस्य है । सब यज्ञों के यजन करने के योग्य वह सर्व वशियों का तत्त्व है । वह अध्यात्म के वेत्ताओं के चिन्तन के योग्य विषय है और विकर्मियों का नरक नहीं है । वह अधिदैव और अधियज्ञ सजा से मुक्त एवं वह भूत मन्त्रिभूत है तथा परमपियों का वह परम है ॥ १६, १७, २ ॥

स यज्ञो वेदनिर्दिष्टस्तत्तपः कवयो विदुः ।

यः कर्त्ता कारको बुद्धिमनः श्रेष्ठज्ञ एव च ॥२२

प्रणवः पुरुषः शास्ता एकश्चेति विभाषते ।

प्राणः पञ्चविधश्चैव ध्रुव अक्षर एव च ॥२३

कानः शाकश्च यन्ता चक्षुष्टारवाध्यायएव च ।

उच्यते विविधैर्देवः स एवाय न तत्परम् ॥२४

स एव भगवान् सर्वं करोति विकरोति च ।

मोऽस्मान् कारयते सर्वान् सोऽत्येति व्याकुलोकृतान् ॥२५

यतामहे तमेवाद्यन्तमेवेन्ताम निवृत्ताः ।

यो यक्ता यच्च यतव्य यच्चाहन्तद्भवोमि चः ॥२६

श्रूयते यच्च वै धाव्यं यच्चान्यत् परिजल्प्यते ।

याः कथाश्चैव वर्तन्ते अतयो वाथ तत्पराः ॥२७

पहिले प्रसन्न आत्मा इस प्रभु ने ब्रह्मा का सृजन किया था । फिर उस पूर्व पुरुष ने पहिले कल्प में प्रजापतियों का सृजन किया था ॥ ६ । ७ ॥

अमृजन्मानवांस्तत्र प्रह्लाद्यंशाननुत्तमान् ।
 तेभ्योऽभवन्महात्मभ्यो बहुधाब्रह्म शाश्वतम् ॥८
 एतदाश्चर्यंभूतस्य विष्णोः कर्मानुकीर्तनम् ।
 कीर्तनीयस्य लोकेषु कीर्त्यमानं निबोध मे ॥९
 वृत्ती वृत्रवधे तत्र वर्तमाने कृते युगे ।
 आसीत्त्रैलोक्यविख्यातः संग्रामस्तारकामयः ॥१०
 यत्र ते दानवा घोराः सर्वे संग्रामदुर्जयाः ।
 घ्नन्तिदेवगणान् सर्वान् सयक्षोरगराक्षसान् ॥११
 ते वध्यमाना विमुखाः क्षीणप्रहरणा रणे ।
 सातार मनसा जामुर्द्व नारायण प्रभुः ॥१२
 एतस्मिन्नन्तरे मेघा निर्वाणाङ्गारवर्चसः ।
 सार्कचन्द्रग्रहगणच्छादयन्ता नमस्तलम् ॥१३
 वेणुर्विद्युद्गणोपेता घोरनिह्लादकारणः ।
 अन्योन्यवेगाभिहता प्रववुः सप्त मारुताः ॥१४

वहाँ पर अश्रुतम ब्रह्मा के वंश वाले मानवों का उनसे सृजन किया था फिर उन सब महान् आत्माओं वालों से यह शाश्वत ब्रह्म ही बहुत से स्वरूपों में समुत्पन्न हुआ था । यह ही आश्चर्य स्वरूप वाले भगवान् विष्णु के कर्मों का अनुकीर्तन है । लोकों में कीर्तन करने के योग्य के उस कीर्त्यमान कर्म को अब मुझसे सुम प्रतीपति समझ लो । ॥ ८ । ९ ॥ वर्तमान कृत युग में वृत्रागुर के वध उपस्थित होने पर वहाँ पर त्रिमुवन में विद्यमान सारकामय संग्राम हुआ था । जिस युद्ध में संग्राम में दुर्जय समस्त घोर दानव गण यथा—उरग और राक्षसों के सहित सब देशों का हनन किया करते थे ॥ १० । ११ ॥ उस रण में वध क्रिये

जाते हुए क्षीण आयुषों वाले विमुक्त होकर सबके सब मन से राण करने वाले प्रभु देव नारायण की शरण में गये थे ॥१२॥ इसी बीच में निर्वाण अङ्गार धर्म के वाले वैश, मूयं, धन्व आदि ग्रहों ने युक्त नभस्तल का व्यावहारिक करते हुए छा गये थे । ये भेष वैष्णु विद्युद्गण से युक्त थे तथा घोर गर्जन करने वाले थे । परस्पर में वैश से अभिहत नातो मरुत बहल करने लगे थे ॥ १३ । १४ ॥

दीप्ततोयानिनेर्चयवेदान्तानिलैः ।

रवं भुधोरैरुत्पातेदं ह्यमानमिवाम्बरम् ॥१५

तत उत्कामहस्ताणि निपेतुः खगताभ्यपि ।

दिश्यानि च दिग्मानानि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च ॥१६

चतुर्गुणान्ते पर्याये लोकाना यद्भयं भवेत् ।

अल्पवन्ति त्पाणि तस्मिन् उत्पातलक्षणे ॥१७

जातञ्च निष्प्रभ सर्वे न प्राप्तापत किञ्चन ।

तिमिरौघपरिक्षप्ता न रेजुश्च दिशोदश ॥१८

चिवेश हृषिणी कान्ती कालभेदावगुणित्वा ।

द्यौर्नभात्यभिभूतावर्का धोरेण तमसा युता ॥१९

ताव धनौघात् सतिमिरान् द्यौर्भ्यामाक्षिप्य स प्रभुः ।

वपुः स्रग्दशपीमाम दिव्यं कृष्णवर्हृरिः ॥२०

बलाहकाञ्जनिमम गलाह तनूरुहम् ।

तैरुसा वपुषा चैव वृष्णं कृष्णमियाचलम् ॥२१

उस समय में यह सम्पूर्ण आकाश दोषों और अशान्ति (बदल) से नैमुन धनो के द्वारा—पल्ल वेग अवन और अजिनो के द्वारा—सुधोर चरनि और उत्पातों से दह्यमान की तरह हो रहा था ॥ २१ ॥ इसके पश्चात् आकाश में स्थित भी महसूस उत्काटों गिर गयीं थीं तथा दिव्य विमान उड़ते थे और नीचे की ओर गिरते थे ॥१६॥ चतुर्गुणों के अन्त में तीनों के पर्याय में जो भय होता है उग उत्पात के लक्षण में मयी म्य

बिना रूप वाले हो जाते हैं ॥ १७ ॥ लोको में सभी कुछ प्रभा से हीन हो जाता है और कुछ भी नहीं जाना या समझा जाया करता है । अन्धकार के अत्यन्त घोर एव गहन समुदाय से परिधिप्त हुई दशों दिशाएँ प्रकाशित नहीं होती थी । उस समय में काल मेघ में अवगुण्ठित होकर ह्यधारिणी काली का प्रवेश हो जाता था । अत्यन्त घोर तम से समावृत दिवलीक तथा अन्तरिक्ष तिममे सूर्य एकदम अभिभूत होजाता है बिल्कुल भी दिखलाई नहीं दिया करता है ॥ १८, १९ ॥ तिमिर से परिपूर्ण घन घनो कि समूहो को वह प्रभु अपने हाथों से भागिप्त करके कृष्ण वपुधारी श्री हरि अपने दिव्य शरीर को दिखाया करते थे ॥ २० ॥ बलाइक के सदृश काले बलाइक के समान गोमो से मुक्त-वपु और तेज से एक वृष्ण अचल की भाँति कृष्ण स्वरूप को प्रकट किया था ॥ २१ ॥

दीप्तापोताम्बरधरं तप्तपञ्चनभूषणम् ।
 धूमाभ्रकारवपुष युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ॥२२
 चन्द्राकारणोद्योत गिरिकटमिवोच्छ्रितम् ।
 तन्दनानग्दितकर शराशीविपधारिणम् ॥२४
 शवितन्त्रिफलोदग्रशङ्खचक्रगदाधरम् ।
 विष्णुर्शल क्षमामूल श्रीवृक्ष शाङ्गघन्वितम् ॥२५
 त्रिदशोदारफलद स्वर्णश्रीचापस्तवम् ।
 सर्वलोषमनः कान्त सर्वसत्वमनोहरम् ॥२६
 नानाविमानविटपन्तोयदाश्वुमधुसूतम् ।
 विद्याहृद्धारसारोद्य महाभूतप्ररोहणम् ॥२७
 विशेषपद्मीनिवित ग्रहनक्षत्रपूर्णासम् ।
 दत्यलोकमहारकघ्न मत्स्यलोके प्रकाशितम् ॥२८

वह दीप्तियुक्त पीत अम्बर को धारण करने वाला—तथा तपे हुए
 मुवर्ण के मूषणों में संयुक्त—धूम सहित अन्धकार के शरीर वाला युगान्त
 करने वाली अग्नि के तुल्य समुपस्थित हुआ था ॥ २२ ॥ चौगुने घोर
 दुगुने पीत जंस से समयुक्त—किरीट से समाच्छन्न केसों वाला वह दिव्य
 वपु चापीर प्रक्षय आयुधों से उपशोभित होकर प्रकट हो रहा था ॥ २३ ॥
 चन्द्र और सूर्य की किरणों के उद्योत वाला अत्यन्त ऊँचे गिरि के शिखर
 के सदृश था । तन्दक से आनन्दित कर्णे वाला—शर तथा आशीविष के
 धारण करने वाला—क्षमा का मूल—विष्णु धीन—श्री वृक्ष और शार्ङ्ग
 धनुष के धारण करने वाला वह दिव्य स्वरूप था ॥ २४, २५ ॥ उसी
 दिव्य स्वरूप का वर्णन किया जा रहा है—वह देशों का उदार फल देने
 वाला—स्वर्गादि स्थानों का चाह पत्नव—मन्त्र लोगों के मन की रमणीय—
 सब जीवों से अत्यन्त मनोहर—नाना विमानों के विटपी वाला—देवों के
 जनरूप मधु का श्रवण करने वाला—विद्या के अहङ्कार—सार का आद्य—
 महान् भूतों का प्ररोहण करने वाला—विशेष पत्नी से निश्चिन—ग्रह
 और नक्षत्र त्थी पुष्पों में समुत्त और वह दिव्य रूप दैत्यों के लोक का
 महान् स्कन्ध था जो कि इस मर्त्य लोक में प्रकाशित हुआ था ॥ २६ ।
 २७ । २८ ॥

सागराकारनिर्हृदि रसातलमहाश्रयम् ।
 मृगेन्द्राशर्वितत पञ्चजन्तुनिर्षवितम् ॥२६
 शीलायंचारुगन्धाढ्य सवनोकमहाद्रुमम् ।
 अव्यक्तान्तसत्तिलं व्यक्ताहङ्कारफेनिलम् ॥२७
 महाभूततरङ्गौघ ग्रहनक्षत्रवृद्धवृद्धम् ।
 विमानगर्भतुष्यार्त्तं तीयदाहम्बराकुतम् ॥२८
 जन्तुमत्सजनाकीर्णं शंलशङ्खकुलंयुतम् ।
 त्रीगुणविषयावर्तं सबलोरुतमिङ्गिलम् ॥२९
 दीरवृक्षलतामुख्यं भुजगोत्कृष्टदौवलम् ।

द्वादशार्कमहाद्वीपं रुद्रैकादशपत्तनम् ॥३३
 वस्वष्टपर्वतोपेत त्रीलोक्याम्भोमहोदधिम् ।
 सन्ध्यासङ्ख्योर्मिसलिल सुपर्णानिलसेवितम् । ३४
 दैत्यरक्षोगणग्राहं यक्षोरगभूपाकुलम् ।
 पितामहमहावीर्यं सर्वस्त्रीरत्नशोभितम् ॥३५

पुनरपि उसी परम दिव्य स्वरूप को वर्णित किया जा रहा है कि सागर के आकार के तुल्य निर्हाद था और रसातल के महान् आश्रय वाला था । मृगेन्द्र के पाशो से वितत-पक्षिगण एवं जन्तुओ से निषेवित-शीलार्थ और सुन्दर गन्ध से आढ्य-सब लोकों का महान् द्रुम-अव्यक्त एवं अनन्त सलिल वाला—व्यक्त अहङ्कार से केनयुक्त-महान् भूतो की तरङ्गो के ओष वाला—ग्रह तथा नक्षत्रो के बुलबुलो से समवित-विमान गरुड ध्याप्त और तोषक्षो के आडम्बर से समाकुल था ॥ २६, ३० ६१ ॥ वह रूप जन्तुओ वाला—जनों से समाकीर्ण—शंल शयो के कुलो से समुन-त्रैगुण्य के त्रिपयो का श्रावर्त्त—सगस्त लोको का तिमिङ्गित—वीर रूपी वृक्ष लता और गुल्मो वाता-भुजङ्गो के उत्कृष्ट शोवाल वाला—द्वादश सूर्यो के महाद्वीपो वाला—एषादश रुद्रो के पत्तनो से युक्त—आठ वसुरूपी पर्वतो से युक्त-त्रैलोक्य रूपी महा सागरो वाला—सन्ध्या सख्या की ऊर्मियो का सलिल—सुपर्ण की वायु से सेवित—दैत्य और रक्षोगण रूपी ग्राहो वाला—यक्ष और उरग रूपी भुजो से समाकुल—पितामह के समान महान् वीर्य वाला और सब स्त्रियों के स्वरूप वाले रत्नो से गुशोभित था ॥३२-३४॥

श्रीकीर्तिकान्तिलक्ष्मीमिर्नदीमिरुपशोभितम् ।
 कानयोगिमहापर्वप्रलयोत्त्तिवेगिनम् ॥३६
 सन्तु योगमहापारं नारायणमपार्णवम् ।
 देवाधिदेवं वन्द भक्तानां भक्तिवत्सलम् ॥३७

अनुग्रहकरं देवं प्रशान्तिकरणं शुभम् ।
 ह्यंश्वरधसंयुक्ते सुपर्णञ्जसेविते ॥३८
 ग्रहचन्द्रार्करचिते मन्दरान्धरावृते ।
 अनन्तरश्मिभिर्गुच्छे विस्तीर्णे मेरुगह्वरे ॥३९
 तारकाचित्रकुसुमे ग्रहनक्षत्रबन्धुरे ।
 भयेऽवभयदं व्योम्नि देवा वैद्यपराजिताः ॥४०
 ददृशुस्तेस्थितं देव दिव्ये लोकमये रथे ।
 ते कृताञ्जलयः सर्व देवाः शक्रपुरोगमा ॥४१
 जयशब्द पुरस्कृत्य शरण्या शरणाङ्गताः ।
 स तेषां ताङ्गिर ध्रुव्या विष्णुर्देवतदैवतम् ॥ ४२

उमी दिव्य स्वरूप का वर्णन करते हुए बतलाते हैं कि वह
 दिव्यस्व श्रीकान्ति और लक्ष्मी से तथा नादयो से उपशोभित था—
 कानयोगी और महापर्व एव प्रलयतथा उत्पत्ति के वेग वाला था ।
 तन्मुख का महापार—नागयण रूपी महापर्व से युक्त—देवों का भी
 अधिदेव—वर देने वाला जो अपन भक्तों का प्रदाय करते थे—भक्तों
 पर प्यार करते वाला वह स्वरूप था ॥ ३६, ३७ ॥ वह अनुग्रह करने
 वाला—देव—प्रशान्ति करने वाला—शुभ था । ह्यंश्वर य से समन्वित—ध्वज
 से सेवित—ग्रह चन्द्र और सूर्य से विरचित—मन्दरान्धर से आवृत—
 अनन्तरश्मियों से युक्त—विस्तीर्ण मेरु गह्वर से युक्त—तारे रूप विचित्र
 कुसुमों से परिपूर्ण—ग्रह और नक्षत्रों से बन्धुर सुशील—भय के भयसरो
 पर अवय देन वाले उस स्वरूप की व्याप्त से देवों से पराजित देवों ने
 देखा था । उन देवों ने परम दिव्य लोकमय रथ से स्थित देव का दर्शन
 प्राप्त किया था । उस समय से दुष्ट को अपना अग्रणा बना करके उन
 ममस्त देवों ने अपनी अर्जियों को नष्ट कर दिया था । अयकार के
 शब्द को पहिले समुच्चरित बरके शरण्या श्रु की वे शब्द शरणागति
 से प्राप्त होगये थे । उन देवों के भी देवैश्वर्य विष्णु भगवान् ने देवगण

की शरणागति में प्राप्त होने के लिए कथित वाणी का श्रवण किया या
॥ ३८-४२ ॥

मनश्चक्रे विनाशाय दानवानां महामृधे ।
आकाशे तु स्थितो विष्णुरुत्तमं वपुरास्थितः ॥४३
उवाच देवता सर्वाः सप्रतिज्ञमिदं वचः ।
शान्तिं द्रजत भद्र वो मा भैष्ट मरुताङ्गणाः ॥४४
जिता मे दानवाः सर्वे त्रैलोक्यं परिगृह्यताम् ।
ते तस्य सत्यसन्धस्य विष्णोर्वाक्येन तोषिताः ॥४५
देवाः प्रीतिं समाजग्मुः प्राश्यामृतमनुत्तमम् ।
ततस्तम सहस्रं तद्विनेयुश्च बलाहकाः ॥४६
प्रवक्षुश्च शिवा वाताः प्रसारश्च दिशो दश ।
शुद्धप्रभाणि ज्यातीपि सोमश्चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥४७
न विग्रहं ग्रहाश्चक्रुः प्रशान्ताश्चापि सिन्धवः ।
विरजस्का भवन्मार्गा नाकवर्गदिवस्त्रयः ॥४८
याथायंमूह सरितो नापिचक्षुभिरेऽणवाः ।
आसश्छुभानीन्द्रियाणि नराणामन्तरात्मसु ॥४९
मह्यंयो वीतशो हा वेदानुच्चैरघोयत ।
यज्ञेषु च हविः पाकं शिवमाप च पावकः ॥५०
प्रकृतधर्माः सवृत्ता लोका मुदितमानसाः ।
विष्णोर्दत्तप्रतिज्ञस्य श्रुत्वारिनिधने गिरम् ॥५१

देवी को परित्राण के लिये बही हुई वाणी को गुनते ही विष्णुदेव
ने उस महान् युद्ध में दानवों के विनाश करने के लिए मन में स्थिरता
करली थी । उस समय में भगवान् विष्णु उत्तम वपु में समास्थित होकर
आकाश में ही स्थित थे । उन्होंने समस्त देवों से प्रतिज्ञा के सहित यह
वचन कहा था कि अब आग मय योग दान धारण करें अर्थात् एकदम
प्रणाम हो जावे । हे मरुता व गणा ! अब आप इतों मन—भाषका

कल्याण होगा। मैंने सभी दानवों की जीत ही लिया है—ऐसा ममज्ञ लो
 और अब इस त्रिलोक्य की जो तुमसे उन्होंने छीनकर अपना अधिकार
 कर लिया है पुनः वापिस ग्रहण करलो। इस प्रकार के वचन जब उन
 समस्त देवगण ने सत्य प्रतिज्ञा वाले विष्णु भगवान के मुने थे तो उनके
 वाक्य में सबको बहुत ही अधिक सुतोष हो गया था ॥ ४३, ४४, ४५॥
 उस समय में उस अत्युत्तम अमृत का प्राशन करके देवगण परम प्रीति
 को प्राप्त हो गये थे। इसके बाद वह सम्पूर्ण अन्धकार नष्ट हो गया था
 और सभी वल्बाहक विनाश को प्राप्त हो गये थे। सर्वत्र परम मङ्गल-
 कारी वायु बहने करने लगी थी और दशो विशाएँ एक दम प्रशान्त हो
 गयी थी शुद्ध प्रभा वाली ज्योतिषा अर्थात् नक्षत्राणि ज्ञान की प्रदर्शिकाएँ
 करने लगी थी ॥४६॥४७॥ उस समय में ब्रह्म गण परस्पर में कोई भी
 विशह नहीं करने थे और सभी सिन्धु परम प्रशान्त हो गये थे। स्वर्ग
 वर्णादि तीनों ही रज से रहित भागों वाले हो गये थे। सम्पूर्ण सन्निहारे
 ठीक मार्ग से यथार्थ रूप में बहने कर रही थी और आर्षवो में भी किसी
 भी प्रकार का क्षोभ नहीं हो रहा था। सभी मनुष्यों की अन्तरात्माओं
 में परम शान्ति थी और इन्द्रियाँ परम शुभ वृत्ति वाली होगई थी ॥४८,
 ४९॥ सब महर्षिगण लोक से रहित होकर वेदो का उच्च स्वर से
 अध्ययन कर रहे थे। यज्ञों में जा भी हवि प्रक्षिप्त किया जाता था
 पाक उमका अति शिव पाक करने लगा था ॥ ५० ॥ सभी लोक परम
 प्रसुखित मनो वाले होकर अपने २ धर्मों में प्रवृत्त हो गये थे जिस समय
 में सत्य प्रतिज्ञा वाले भगवन् विष्णु की समस्त शत्रुओं के विनाश कर
 देने की वाणी का सबने श्रवण कर लिया था सभी को परमानन्द
 प्राप्त हो गया था ॥५१॥

६६—दैत्य सैन्य विस्तार वर्णन

ततो भय विष्णुवचः श्रुत्वा देत्याश्च दानवाः ।
 उद्योगविपुल चक्रयुद्धाय विजयाय च ॥१
 मयस्तु काञ्चनमय त्रिनल्वायतमक्षयम् ।
 चतुश्चक्र सुविपुल सुकल्पितमहायुगम् ॥२
 किङ्किणीजालनिर्घोष द्वीपिचमपरिष्कृतम् ।
 रुचिर रत्नजालंश्च हेमजालंश्च शाभितम् ॥३
 ईहामृगगणाकीर्णं पक्षिपङ्क्तिविराजितम् ।
 दिव्यास्त्रतूणीन्धरं पयोधरविनादितम् ॥४
 स्वक्ष स्थवरोदार सूपस्था गगनापमम् ।
 गदपरिघसंपूर्णं मूतिमन्तमिवाणवम् ॥५
 हेमकेयूरवलय स्वणमण्डलकूवरम् ।
 सपताकध्वजोपेत सादित्यमिव मन्दरम् ॥६
 गजेन्द्राभोगवभुष क्वचित् केसरिवचसम् ।
 युक्तमृक्षसहस्रेण समृद्धाम्बुदनादितम् ॥७
 दीप्तमाकाशग दिव्य रथा पररथारुजम् ।
 अध्यतिष्ठद्रणाकाङ्क्षी मेरुं दीप्तमिवांशुमान् ॥८

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—इसके अनन्तर उस अभय से पूर्ण भगवान् विष्णु के वचन का श्रवण करके दैत्यो और दानवो ने विजय की प्राप्ति करने के लिए विपुल उद्योग वाला युद्ध किया था ॥ १ ॥ विभिन्न दानवो के द्वारा किये जाने वाले युद्ध का वर्णन किया जाता है—मय दानव ने जिस रथ मे त्रिराजमान होकर समर किया था वह काञ्चनमय था—त्रिनत्व आयत और अक्षय था । उस रथ मे चार चक्र थे—अतीव विपुल था और सुन्दर कल्पना किया हुआ महायुग वाला था ॥ २ ॥ मय का रथ किङ्किणी जालो के निर्घोष से युक्त—दायियों के चर्म से परिष्कृत—

रत्नों के जालों में अत्यन्त मनोरम—हुम रचित जालों से शोभित—ईहा मृग गणों से समाकीर्ण—पक्षियों की पंक्ति से शोभा सम्पन्न—दिव्य अस्त्र और तूणीर को धरने वाला तथा पयोधरों के समान ध्वनि से पूर्ण था ॥ ३, ४ ॥ मन्दर अशों वाला श्रेष्ठ ग्यों में भी अतीव उदार—सूपस्थ—गगन के सहस्र—गदा और परिध से परिपूर्ण मूर्तिमान एक अणव के ही समान वह यम का रथ था ॥ ५ ॥ वह हेम के केयूर और धलय से युक्त—स्वर्ण मण्डप कूबर वाला—पताकाश्री के सहित ध्वजा वाला और आदित्य से मन्दराचल के समान दिखलाई देता था ॥ ६ ॥ गजेन्द्र के आभोग वपु वाला—जिसी स्थल पर केशरी के वर्चम से युक्त—सहस्रों ऋषीं से युक्त—समृद्ध अम्बुद के समान गजन वाला—दीप्त—आकाश में गमन करने वाला—पर रथाहज वह अतीव दिव्य रथ था । जिस तरह से अधुमान् दीप्त मेरु पर अक्षिराहण किया करता है कि ठीक उसी भाँति वह रथ की आकाशा रखने वाला मय दानव उस अपने पूर्वोक्त प्रकार के रथ पर अधिष्ठित हुआ था ॥ ७, ८ ॥

नारमुत्क्रोशविस्तार हेममय रथम् ।

शैलाकारमसम्बाध नीलाञ्जनचयोपमम् ॥६

काष्णीयसमय दिव्य लोहेपावककूबरम् ।

तिमिरोद्गारिकिरण गजन्तमिव तोयदम् ॥१०

लोहजालेन महता सगशशेण दक्षितम् ।

शायसं परिधै पूर्णं क्षेपणामश्च मुद्गरैः ॥११

प्र सैः पाशीश्च वितर्तनैरसंयुक्तकण्टकैः ।

शोभित प्रासयानैश्च तीमरैश्च परश्वधैः ॥१२

उद्यन्त द्विपतां हेतोर्द्वितीयमिव मन्दरम् ।

युक्त धरसहस्रेण सोऽध्यारोहद्वयात्तमम् ॥१३

विरोचनस्तु सक्रुद्धा गदापाणिरवस्त्रितः ।

प्रमुग्धे तस्य सैन्यस्य दीप्तग्रह इवाचलः ॥१४

तार का रथ उरक्रीण के विस्तार वाला था और वह सम्पूर्ण रथ हेम से परिपूर्ण था । वह रथ शैल के समान आकार वाला — बाधाओं से रहित — नील अज्जन के निचय की उपमा वाला — काले लोह से पूर्ण — दिव्य-लोहेवा से वृद्ध बूढ़र वाला — निमिर के उद्गरण करने वाली किरणों में समुन्नत — गर्जना करने वाले तोषद के सदृश — गवाक्ष से युक्त महान् हेम जाल से दणित — आवम परिधो से तथा क्षेपणीय और मुद्गरों से पूर्ण — प्रायो, पाशो और वितत नर समुक्त बण्डकी से शोभित — प्रास यानो, तोमरो और परश्वधो से शोभा सम्पन्न — द्विष पुद्गलो के कारण ही उदीयमान दूमरे मन्दर के ही समान वह रथ था । सहस्र खरो से समुन्नत वह उत्तम रथ था जिस पर उस दानव ने अध्यारोहण किया था ॥ ६ । १० । ११ । १२ । १३ ॥ विरोचन तो गली भाँति वृद्ध होता हुआ अपने हाथ में गदा उठाकर उसकी सेवा के सामने दीप्तप्रहो वाले अचल के समान अर्वास्थित होगया था ॥ १४ ॥

युक्त रथसहस्रेण हयग्रीवस्तु दानवः ।
 स्यन्दने वाहयामास सपत्नानीकमर्दनः ॥१५
 व्यायत किष्कुमाहस्र धनुर्विस्फारयन्महत् ।
 वागहः प्रमुत्ते तस्थौ सप्ररोह इवाचलः ॥१६
 स्रस्तु विक्षरन्दपन्निश्राभ्या रोपज जलम् ।
 स्फुरद्दन्तोऽठनयन सग्राम साऽभ्यकाङ्क्षत ॥१७
 स्वष्टा त्वष्टगज धीर यानमास्थाय दानवः ।
 व्यूहितुं दानवव्यूह परिचक्राम वीर्यवान् ॥१८
 विप्रचित्तिवपुश्चैव श्वेतकुण्डलभूषणः ।
 श्वेतः श्वेतप्रतीकाशो युद्धायाभिमुखे स्थितः ॥१९
 अरिष्टोऽलिपुत्रश्च वरिष्ठोऽद्रिलामुघः ।
 युद्धायाभिमुखस्तस्थौ घराघरविकम्पनः ॥२०
 किंशारस्त्वभिगर्पात् किशोर इति चोदितः ।

सबला दानवाश्चैव सन्नह्यन्ते यथाक्रमम् ॥२॥

शत्रुओं की सेना का मर्दन करने वाला हयग्रीव नाम वाले दानव ने एक सहस्र रथों से युक्त अपने स्यन्दन (रथ) को वाहित किया था ॥ १५ ॥ एक सहस्र किष्कुओं से समन्वित—ध्यायत महान् धनुष को विस्फारित करता हुआ धाराह संमुख में प्रगेह से संयुक्त एक अबल की भाँति समवस्थित हो गया था ॥ १६ ॥ खर नामधारी दानव घमण्ड से अपने नेत्रों के द्वारा रोष से समुत्पन्न जल को विक्षरित कर रहा था और वह भी जिसके दाँत—ओष्ठ और नेत्र फड़क रहे थे संग्राम करने का आकांक्षा कर रहा था ॥ १७ ॥ त्वष्टा नाम वाला दानव आठ हाथियों वाले परम घोर गान में समास्थित होकर वीर्य वाला वह दानवों के व्यूह को भली भाँति व्यूहित करने के लिये चारों ओर घूम रहा था ॥ १८ ॥ श्वेत वर्ण के कुण्डलो से विभूषित विप्रचित्त ध्यु वाला श्वेत प्रतीकाश श्वेत पुद्गल करने के लिए आभमुख में समवस्थित हो गया था ॥ १९ ॥ बड़े बड़े पर्वतों को भी काँपित कर देने वाला—वरिष्ठ पर्वत की शिलाओं के आमुद्यो से समन्वित होकर अरिष्ट और बलि का पुत्र सग्राम करने के लिए सामने स्थित हो गया था ॥ २० ॥ अभि सङ्घर्ष से किशोर और किशोर इनी नाम से प्रेरित होने वाला था । इस प्रकार से अपने अपने बलों के सहित दानव मण यथा क्रम युद्ध के लिये सन्नद्ध हो रहे थे ॥ २१ ॥

अभवदैत्यसैन्यस्य मध्ये रविरिवोदितः ।

लम्बस्तु नवमेघाम् प्रलम्बावरभूषणः ॥२॥

दैत्यव्यूहगतो भाति सनीहार इवाशुमान् ।

स्वर्भानुरास्ययोत्री तु दशनीष्टेक्षणायुधः । २३

हस्तास्तिष्ठति दैत्याना प्रमुखे स महाग्रहः ।

अन्ये ह्यगतास्तत्र गजस्कन्धगताः परे ॥२४

सिंहव्याघ्रगताश्चान्ये वराहर्क्षेषु चापरे ।

केवित् खरोप्ट्रयातारः केचिच्छवापदवाहनाः ॥२५

पतिनस्त्वपरे दंत्या भीषणा विकृताननाः ।

एकपादाद्द्वपादाश्च ननृतुयद्धकाङ्क्षिणः ॥२६

आस्फोटयन्तो बहवः क्ष्वेडन्तश्च तथापरे ।

हृष्टशाङ्खं लनिर्घोषा नेदुर्दानवपुङ्गवाः ॥२७

ते गदापरिर्घंरुम्रः शिलामुसलपाणयः ।

वाहुभिः परिघाकारंस्तजयन्तिस्म देवताः ॥२८

दंत्यो की सेना के मध्य में प्रलम्ब अम्बर और भूषणों से न्यून-
नूनन मेघ की आभा के तुल्य आभा वाला लम्ब नाम वाला दंत्य सूर्य के
समान उदित हो गया था ॥ २२ ॥ दंत्यो के द्यूह में प्राप्त होने वाला-
अस्म्ययोधी-दांत, घ्राष्ट, नेत्र और आयुषो वाला स्वभानुनी हार से युक्त
अशुमान् के समान शोभित हो रहा था । २३ ॥ वह महान् ग्रह दंत्यो के
समक्ष में हंसता हुआ स्थित था । वहाँ पर अन्य हयो पर स्थित थे और
दूसरे गजों के स्कन्धो पर समवस्थित थे ॥ २४ ॥ कुछ सिंहों तथा व्याघ्रों
पर सवार थे और दूसरे बराह एवं पृथुओं पर अधिरूढ थे । कुछ लोग
घरो तथा उन्द्री के द्वारा गमन करने वाले और कुछ श्वापदों के वाहनो
वाले थे ॥ २५ ॥ अन्य सेनापति दंत्य परम भीषण और विकृत मुखो
वाले थे । कुछ एक पैर वाले और कोई आधे पैरों वाले थे जो युद्ध करने
की इच्छा में युक्त होकर नृत्य कर रहे थे ॥ २६ ॥ बहुत से आस्फोटन
कर रहे थे-दूसरे क्ष्वेडन करने वाले थे । प्रसन्न शाङ्ख के समान गजन
की ध्वनि करने वाले दानव श्रेष्ठ निर्घोष कर रहे थे ॥ २७ ॥ वे सब
शिलाएँ और मूसल हाथों में लिये हुए अत्यन्त उग्र गदा और वारिधों के
द्वारा तथा परिघों के आकार वाले बाहुओं के द्वारा देवगणों की तर्जनाएँ
(कटकारे) दे रहे थे ॥ २८ ॥

पाशं प्रासंश्च परिर्घंस्तोमराङ्क शपट्टिशां ।

चिक्रीडुस्ते शतघनीभिः शतघारंश्च मुद्गरैः ॥२९

गण्डशैलेश्च शैलेश्च परिघेश्चोत्तमायसः ।

शक्रेश्च दैत्यप्रवराश्चक्रुरानन्दितं वलम् ॥३०

एतद्दानवसैन्यां तत्सर्वं युद्धमदोत्कटम् ।

देवानभिमुखे तस्थौ मेघानीकमिवोद्धतम् ॥३१

तद्भुतं दैत्यसहस्रगाढं वायवग्निशैलाम्बुदतीयकल्पम् ।

वलं रणौघाभ्युदयेऽभ्युदीर्णं युयूत्सयोन्मत्तमिवावभासे ॥३२

वे दानव गणो पाशों—प्रासों—परिघो—तोमर—अंकुश और
पटिशो—शतघ्नी—शतघार और मुद्गरो से क्रीडा कर रहे थे ॥ २६ ॥
वे दैत्यों में प्रवर गण्डशैलो—शैलो—उत्तम आपस वाले परिघों और
चक्रों के द्वारा अपने वल को आनन्द से युक्त बना रहे थे ॥ ३० ॥ युद्ध
करने के मद से अत्यन्त उत्कट यह सम्पूर्ण दानवों की सेना उद्धत मेघों
की अनीक के समान देवों के अभिमुख में स्थित थी ॥ ३१ ॥ वह अति
प्रदमन—सहस्रो दैत्यों से अत्यन्त गहन—वायु अग्नि, शैल और अम्बुद
तीय के तुल्य दानवों का वल (सेना) रणों के समूह के अभ्युदय में
अभ्युदीर्ण युद्ध करने की इच्छा से उन्मत्त के समान अवभासित हो रहा
था ॥ ३२ ॥

६७—सुरसैन्य विस्तार वर्णन

श्रुतस्ते दैत्सैन्यस्य विस्तरो रविनन्दन ! ।

सुराणामपि सैन्यस्य विस्तरं वैष्णव शृणु ॥१

आदित्या वसवोरुद्रा अश्विनोच महाबलो ।

सवलाः सानुगाश्च व सन्नह्यन्त यथाक्रमम् ॥२

पुरुहूतस्तु पुरतो लोकपालाः सहस्रदृक् ।

ग्रामणी. सर्वदेवानामारुहोहसुरुद्विपम् ॥३

मध्ये चास्य रथ सर्वपक्षिप्रवररहसः ।
 सुचारुचक्रचरणो हेमवज्रपरिष्कृतः ॥४
 देवगन्धर्वयज्ञोर्ध्वरनुयातः सहस्रशः ।
 दीप्तिगद्विम मदस्यौश्च ब्रह्मर्षिभरभष्टुतः ॥५
 वज्रविस्फूर्जितोद्भूतं विद्युदिन्द्रायुन्द्रायुधादितेः ।
 युवतो बलाहकगणैः पवतैरिव कामर्ग ॥६
 यमाहूढः स भगवान् परोति सकल जगत् ।
 हविर्घनिषु गायन्ति विश्वा मखमुत्ते स्थिताः ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे रविनन्दन ! तुमने दैत्यो की सेना के विस्तार का वर्णन श्रवण गत कर लिया है । अब सुरगणों की सेना का भी वर्णन विस्तार श्रवण करलो । द्वादश आदित्य—आठ वसुगण—एकादश रुद्र—महान् बल सम्पन्न अश्विनीकुमार ये सब दलों ओर अनुगामियों के सहित क्रम के अनुसार ही मन्मथ हो गये थे ॥ १ । २ ॥ समक्ष में सहस्र नेत्रो वाले इन्द्रदेव—समस्त लोकपाल—सब देवों की प्रामाणी सुगो के शत्रु पर समारोहण करने वाले हो गये थे ॥ ३ ॥ मध्य में समस्त पशुपति में श्रेष्ठ (गण्ड) के वेग वाले इतना सुचारु (सुन्दर चक्र चरणी वाला हेम और वज्र से परिष्कृत रथ था ॥ ४ ॥ उस रथ के पीछे सहस्रो देव—गन्धर्व—और यक्षों के समुदाय अनुममन करने वाले थे तथा वे क्षीतिमान् सदस्यो के द्वारा ओषधियों के द्वाग अभिदुन हो रहे थे ॥ ५ ॥ वज्र के तुल्य विस्फूर्जित एव उद्भूत—विद्युत् धीर इन्द्रायुधो म समुदित स्वेच्छया गमन करने वाले पर्वतो वे समान बलाश्वो के गहो में युक्त थे ॥ ६ ॥ जिस रथ पर वह भगवान् समाहूढ थे वह रथ गमहत जगत् में पशुपति करता था और प्रज्जालाओ में समवस्थित दिग्गण हविर्घानो में गायन किया करते थे । ७ ॥

स्वर्गे शक्रानुयातेषु देवतूर्गनिनादिषु ।

मुन्दर्याः परिभूत्यान्त शतशोऽस्रसाङ्गणे ॥८

केतुना नागराजेन राजमानो यथा रविः ।
युक्तो ह्यसस्त्रेण तमो माहतरंहसा ॥६
सस्यन्दनवरोभाति गुप्तोमातलिना तदा ।
कृत्स्नः परिवृत्तो मेरुर्भास्करस्येव तेजसा ॥१०
यमस्तु दण्डमुद्यम्य कालयुक्तश्च मुद्गरम् ।
तस्थौ सुरगणानीके दंत्याघ्नादेन भीषयन् ॥११
चतुर्भिः सागरैर्युक्तो लेलिहानैश्च पन्नगैः ।
शङ्खमुक्ताङ्गदधरो विभ्रत्तीयमयं वपुः ॥१२
कालपाशान् समाविध्यन् हयैः शशिकरोपमैः ।
वाय्वीरितैर्जलाकारैः कुर्वन् लीलाः सहस्रशः ॥१३
पाण्डुरोद्धूतवसनः प्रचलन् रुचिराङ्गदः ।
मणिश्यामोत्तमवपुर्हृरिभारःपितोवरः ॥१४
वरुणः पशुघट्टमध्ये देवानीकस्य तस्थिवान् ।
युद्धवेलामभिलपन् भिन्नवेल इवाणवः ॥१५

स्वर्ग में देव तूथों को निवाहित करने वालो का इन्द्र के पीछे अनुगमन होने पर अप्सराओं के आँगन में सँकड़ो सुन्दरियाँ नृत्य कर रहों थीं ॥ ८ ॥ नागराज केतु से युवन वह रथ सूर्य के समान राजमान हो रहा था तथा माहुर के तुल्य वेग से समुन एक सहस्र अश्वों से सम्पन्न माना गया है ॥ ९ ॥ उस समय में मातलि के द्वारा परम सुरक्षित वह श्रेष्ठतम स्यन्दन (रथ) पूर्णतया चारों ओर से परिवृत होकर भगवान् भास्कर के तेज से मेरु के समान शोभित हो रहा था ॥ १० ॥ काल से युक्त यमराज दण्ड और मुद्गर को उठाकर घोर गर्जन के द्वारा दंत्यों को भय उत्पन्न करते हुए सुरगणों की सेना में सस्थित थे ॥ १० । ११ ॥ देवगणों की सेना के मध्य में युद्ध के समय की अभिलाषा करते हुए वेल के भेदन करने वाले आणव के सहस्र पाश को धारण करने वाले वरुणदेव स्थित हो रहे थे जो चारों सागरों तथा जीम निकाल कर फुस्कारते हुए

सर्पों से युक्त थे और तीर्थमय वपु को धारण करने वाले शंख-युक्ताङ्गद को धारण कर रहे थे । वायु से प्रेरित-जल के आकार वाले—चन्द्र की किरणों के द्वारा कालनाभों को समाविद्ध करने वाले थे और सहस्रो प्रकार की लीलाएँ कर रहे थे । पाण्डुर वर्ण के वस्त्र को उद्धृत करने हुए तथा हिलने वाले रुचिर अङ्गदों के धारी—ऋषि के सहस्र श्याम एवं उत्तम वपु वाले और हृदिमार से अपित वग्दान से युक्त वरुण देव थे ॥ १२-१५ ॥

यक्षराक्षससंभेन गुह्यकानां गणैरपि ।

युवतश्च शङ्खपद्माभ्या निधीनामधिनः प्रभुः ॥१६

राजराजेश्वर श्रीमान् गदापाणिरदृश्यत ।

विमानयोधो घनशो विमाने पुष्पके स्थितः ॥१७

स राजराज. शुशुभे युद्धार्थी नरवाहनः ।

उत्थाणमास्थित सरये साक्षादिव शिवः स्वयम् ॥१८

पूर्वपक्ष. सहस्राक्षः पितृराजस्तु दक्षिणः ।

वरुण. पश्चिम पक्षमुत्तर नरवाहनः ॥१९

चतुर्षु युक्ताश्चत्वारो लोकपाला महाबलाः ।

स्वामु दिक्षुस्वरक्षन्त तस्य देववलस्य ते ॥२०

यक्षों और राक्षसों की सेना और गुह्यकों के गणों से समन्वित तथा शङ्ख-पद्मों को धारण करने वाले निधीणों के स्वामी प्रभु-गदा हाथ में ग्रहण किये हुए—विमानों के द्वारा युद्ध करने वाले राजराजेश्वर श्रीमान् घनशर्षान् कुबेर पुष्पक विमान में स्थित दिखलाई दे रहे थे ॥ १६, १७ ॥ युद्ध करने की इच्छा रखने वाले राजाओं के श्री राजा नरवाहन वृषभ पर समास्थित युद्ध में साक्षान् स्वयं शिव के ही समान शोभित हो रहे थे ॥ १८ ॥ पूर्व दिशा में पक्ष वाले सहस्राक्ष इन्द्र देव थे । दक्षिण दिशा में पितृराज थे—पश्चिम में वरुण देव और उत्तर पक्ष में नरवाहन थे । इस तरह से चारों पक्षों में चार महान् बल विभक्त शाली लोकापाल थे

और वे अपनी-अपनी दिशाओं में उद्य देवों की सेना की रक्षा कर रहे थे ॥१६।२०॥

सूर्यः सप्ताश्वयुक्तेन रथेनामितगामिना ।
 थ्रिया जाज्वल्यमानेन दीप्यमानैश्च रश्मिभिः ॥२१
 उदयास्तगचक्रेण मेरुपर्वतगामिना ।
 त्रिदिवद्वारचक्रेण तपता लोकमव्ययम् ॥२२
 सहस्ररश्मियुक्तेन भ्राजमानेन तेजसा ।
 चचार मध्ये लोकाना द्वादशात्मा दिनेश्वरः ॥२३
 सोमः श्वेतहये भाति स्यन्दने शीतरश्मिवान् ।
 हिमवतोऽपपूर्णाभिर्भाभिराह्लादयञ्जगत् ॥२४
 तमृक्षपूमानुगत शिदिगणुं द्विजेश्वरम् ।
 शशच्छायाङ्किततनु नशस्य तमसः क्षयम् ॥२५
 ज्योतिषामीश्वर व्योम्नि रसाना रसद प्रभुम् ।
 ओषधीना सहस्राणानिधानममृतस्यच ॥२६
 जगतः प्रथमं भाग सौम्य सत्यमय रथम् ।
 ददृशुर्दानवाः सोम हिमप्रहरण स्थितम् ॥२७
 यः प्राणः सर्वभूताना पञ्चधा भिद्यते नृपु ।
 सप्तधातुगतो लोकां स्त्रोन्दधार चचार च ॥२८

अमितगामी—श्री से तथा दीप्यमान रश्मियों से जाज्वल्यमान रथ के द्वारा द्वादश स्वरूप वाले दिनेश्वर लोकों के मध्य में सचरणा कर रहे थे । वह सूर्यदेव का रथ उदय और अस्त में गमन करने वाला—मेरु पर्वत पर जाने वाला—त्रिदिव द्वार के चक्र से समायुक्त—अव्यय लोक को ताप देने वाला—सहस्र रश्मियों से युक्त और भ्राजमान तेज से सम्पन्न था ॥ २१, २२, २३ ॥ शीत रश्मियों वाले सोमदेव हिम से समन्वित जल से परिपूर्ण दीप्तियों से सम्पूर्ण जगत् को समाह्लादित करते हुए श्वेत अश्वों वाले रथ में शोभा पा रहे थे ॥ २४ ॥ उन सब दानवों

ने हिम के अस्त्र वाले वहाँ पर स्थित सोमदेव को देखा था जो नक्षत्रों के समुदाय से अनुगत—शिशिर किरणों वाला—द्विजेश्वर—शश की छाया से चिह्नित शरीर के धारण करने वाला—रात्रि के तम का क्षय करने वाला—समस्त ज्योतियों के व्योम में इवामी—रसों में रस का प्रदात करने वाले—प्रभु—महत्तो औषधियों के तथा अमृत के निधान थे ॥ २५, २६, २७ ॥ जो समस्त भूतों का प्राण है और नरों में पाँच प्रकार का होकर स्थित रहा करता है तथा सातों धातुओं में जल होकर तीनों लोकों का धारण किया करता है और सञ्चरण करने वाला भी था ॥ २८ ॥

यमाहुरग्नि कर्तारिं सर्वप्रभवमीश्वरम् ।
 सप्तस्वरवगतोयश्च नितङ्गीभिर्हृदोयन्ते ॥२६
 य वदन्त्युत्तम भूत य वदन्त्यक्षरीरिणम् ।
 यमाहुराकाशगम शीघ्रगंशब्दयोगिनम् ॥२७
 स वायुः सर्वभूतायुरुद्भूतः स्वेन तेजसा ।
 ववौ प्रव्यथयन् दंत्यान् प्रतिलोमसतोयदः ॥२८
 महतो दिव्यगन्धर्वविद्याधरगणैः सह ।
 चिक्रीडुरसिभिः क्षुभ्रंतिर्मुवतैर्ग्विपन्नगः ॥२९
 सृजन्त मर्षपतयस्त्वं वतोयमय दिव्यम् ।
 शरभता दिवोन्द्राणाञ्चेह्यतिानना दिवि ॥३०
 पवतंश्च शिलाशृङ्गैः शतशश्चैव पादपैः ।
 उपतस्थुः सुरगणाः प्रहृत्सुं दानवे वते ॥३१
 यः सदेवोद्दृपीवेशः पश्यनाभस्त्रिविधमः ।
 युगात्ते कृष्णवर्णामो विश्वस्वजगत प्रभु ॥ ५

त्रिजगत्तों अग्नि की रचना करने वाला—सबका प्रभव उत्पत्ति—
 ईश्वर—कहा गया है और जो सात स्वर्गों में रहने वाला नित्यज्ज्ञियों व
 द्वारा उदीरित किया जाना है । त्रिजगत्तों सबका उत्तम भूत रहने है और

जिसको बिना शरीर वाला कहते हैं तथा जिसको आकाश में गमन करने वाला-शोघ्रगामी और शब्दयोगी कहा गया है ॥ २६, ३० ॥ वह वायु अपने तेज से सम्पूर्ण भूतों का आयु उद्भूत हुआ है वह तोय देने वाला प्रतिलोम में दैत्यों को प्रकृष्ट रूप से व्यथित करता हुआ वहन करने लगा था । दिव्य गन्धर्वों के और विद्याघर गणों के साथ मस्त शुभ्र नियुक्त पन्नगों के तुल्य असियो (खड्गों) से काड़ा करने वाला था । ॥ ३१, ३२ ॥ सर्पों के स्वामी गण तीव्र तायपूर्ण विष का सृजन करते हुई दिवीन्द्रों के शरभूत बनकर दिवलोक में मुख फँजाये हुए संचरण कर रहे थे ॥ ३३ ॥ सुरगण पर्वतो शिला के शिखरो और सैकड़ो पादपों के द्वारा दानवो की सेना मे प्रहार करने के लिये उपस्थित हो गये थे ॥ ३४ ॥ जो वह देव हृषीकेश थे वह पद्मनाभ-त्रिविक्रम-इस विश्व और और जगत् के प्रभु युग के अन्त में कृष्ण वर्ण की भाभा वाले थे ॥ ३५ ॥

सर्वयोनिः स मधुहा हव्यभुक् क्रतुसस्थितः ।
 भूम्यपोव्योमभूतात्मा श्यामः शान्तिकरोऽरिहा ॥३६
 अरिघ्नममरादीनाञ्चक गृह्य गदाधरः ।
 अकं नगादिवोद्यन्तमुद्यम्योत्तमतेजसा ॥३७
 सव्येनालम्ब्य महती सर्वासुरविनाशिनीम् ।
 करेण काली वपुषा शत्रुकालप्रदाङ्गदाम् ॥३८
 अन्येभुजैः प्रदीप्ताभभुजगारिध्वजः प्रभुः ।
 दधारायुधजातानि शाङ्गिदीनि महाबलः ॥३९
 सकश्यपस्यात्मभुवद्विज भुजगभाजनम् ।
 पवनाधकसम्पात गगनक्षाभणं खगम् ॥४०
 भुजगेन्द्रेण वदने निविष्टेन विराजतम् ।
 अमृतारम्भ निभुक्त मन्दराद्रिमिवाच्छ्रुतम् ॥४१
 देवासुरविमर्देषु बहुशाहद्विक्रमम् ।

महेन्द्रणामृतस्यार्थं वज्रेण कृतलक्षणम् ॥४२

वह मधुदेव का हनन करने वाले—सबकी योनि तथा उत्पत्ति का स्थान-हव्य को खाने वाला—ऋतुओं में संस्थित-भूमि, जल और व्योम भूत स्वरूप-श्याम और अरियो का हनन करने वाला शान्तिकर था ॥ ३६ ॥ उन गदाधर प्रभु ने देवगणों के अरियो के मारने वाला चक्र ग्रहण किया था । वह चक्र अपने उत्तम तेज से मग से उदीयमान सूर्य के सदृश प्रतीत हो रहा था ॥३७॥ सव्य कर से समस्त अशुरों के विनाश करने वाली महती और वपु से शत्रुओं के काल का प्रदान करने वाली गदा को प्रभु ने ग्रहण किया था ॥३८॥ भुजगो क क्षारे (गहड़) की ध्वजा वाले महान् बलवान् प्रभु ने अपनी अन्य भुजाओं के द्वारा जो कि प्रदीप्त श्यामा वाली घी आदू आदि श्रायुओं को धारण किया था । ॥३९॥ वह प्रभु कश्यप महर्षि के पुत्र - भजनी का भोजन करने वाला पत्नी - पवन से भी अधिक वेग से युक्त - गगन को धुँध करने वाला—छग—पुण्ड्रमे निविष्ट भुजगेन्द्र व द्वारा विराजमान—अमृत के आरम्भ से निर्मुक्त अत्यन्त उच्च मन्दरणों के समान स्थित थे । वह गरुड देवों के और अशुरों के विमर्दन करने वाले युद्धों में बहुत ही अधिक विक्रम से युक्त अमृत के लिये वज्र के द्वारा महेन्द्र से कृत लक्षण वाले थे ॥४०॥ ॥४१॥४२॥

शिखिन वलिनञ्चैव तप्तकुण्डलभूषणम् ।

विचित्रपत्रयसनःघातुमन्तमिवाचलम् ॥४३

स्पीतक्रोडावलम्बेन शीतानुसमतेजसा ।

भोगिभोगावसिधतेन मणिरत्नेन भाश्वता ॥४४

पक्षाभ्याञ्चरुपत्राभ्यामावृत्त्यदिविलीलया ।

युगान्तेसेन्द्रचापाभ्यान्तोयदाभ्यामिवास्वरम् ॥४५

नीलनोहितपोताभिः पक्षाणाभिरलङ्कृतम् ।

वेतुवेपप्रतिच्छन्नं महाभापनिवेतनम् ॥४६

अरुणावरजं श्रीमानारुह्य समरे विभुः ।
 सुवर्णस्वर्णवपुषा सुपर्णं खेचरोत्तमम् ॥४७
 तमन्वयुर्देवगणा मुनयश्च समाहिताः ।
 गीर्भि परममन्त्राभिस्तुष्टुवुश्च जनार्दनम् ॥४८
 तद्वैश्रवणसंश्लिष्टं वैवस्वतपुरःसरम् ।
 द्विजराजपतिक्षिप्तं देवराजविराजितम् ॥४९
 चन्द्रप्रभाभिर्विपुल वृद्धाय समवर्तत ।
 स्वस्त्यस्तु देवेभ्य इति वृहस्पतिभारपत ॥
 स्वस्त्यस्तु दानवार्नाके उशनः वाक्यमाददे ॥५०॥

वह गरुड पक्षिराज—शिखी—बनी—तप्त कुण्डल भूषण वाला—
 विचित्र पत्रों के वस्त्रों में युक्त धातुमान् एक अचल के तुल्य स्थित था
 ॥ ४३ ॥ वह गरुड स्फीत (लम्बे चौड़े) कोड में अवलम्ब वाले—
 शीतानु (चन्द्रमा) के समान तेजयुक्त—भोगियों के भोग से अवसिक्त
 भास्वान् मणि रत्न से शोभित था । वह अपने सुन्दर पत्रों वाले पक्षों से
 युगान्त में इन्द्र के चापों से युक्त तोयदों से अम्बर की भाँति दिवलोक
 में लीला से आवरण करके स्थित था । वह गरुड देव नील—लोहित
 शौर पीत वर्ण वाली पताकाओं से समलंकृत—केतु के वेप में प्रतिच्छन्न—
 महान् काया के निकेतन वाले अरुणदेव के छोटे भाई थे । उन गरुड पर
 जो सुन्दर वर्ण वाले सुवर्ण के वपु से सुपर्ण और खेचरों में सर्वोत्तम थे
 श्रीमान् प्रभु ने समर के अवसर पर समारोहण किया था ॥ ४४, ४५,
 ४६, ४७ ॥ उन प्रभु रु पीछे गमन करने वाले देवगण और परम समा-
 हिन मुनिगण थे । जिन्होंने परम श्रेष्ठ मन्त्रों से समन्वित वाणियों के
 द्वारा भगवान् जनार्दन प्रभु का स तवन किया था ॥ ४८ ॥ उन प्रभु के
 माप में वैश्रवण कुवेर थे और वैवस्वत (यमराज) उनके आगे थे । वे
 द्विजराजों के पति से क्षिप्त और देवराज से शोभित थे इस प्रकार चन्द्र
 की प्रभाओं से परम विपुल वह प्रभु युद्ध करने के लिये प्रस्तुत हुए थे ।

उस अवसर पर सुरों के गुरु बृहस्पति ने देवों का मञ्जल हो—ऐसा
 आशीर्वादात्मक वचन कहा था । उधर उधना असुरों के गुरु ने दानवों की
 सेना में स्वस्ति हो—यह वाक्य कहा था ।

६८—देवासुर संग्राम वर्णन (१)

ताभ्यां बलाभ्या संजज्ञे तुमुलोविग्रहस्तदा ।
 सुराणामसुराणाञ्च परस्परजयपिणाम् ॥१॥
 दानवा दैवतैः साद्धै नानाप्रहरणोद्यताः ।
 समीयुर्बुध्यमाना वै पर्वता इव पर्वतैः ॥२॥
 तत् सुरासुरसयुक्त युद्धमत्यद्भुत बभौ ।
 धर्माधर्मसमायुक्त दर्पेण विनयेन च ॥३॥
 ततो रथैर्विप्रयुक्तैर्वारिणश्च प्रचोदितैः ।
 उत्पतद्भिभश्च गगनमसिहस्तैः समन्ततः ॥४॥
 क्षिप्यमाणैश्च मुसतैः सम्पतद्भिभश्च सायकैः ।
 चापैर्विस्फायमाणैश्च पात्यमानैश्च मुद्गरैः ॥५॥
 तद्युद्धमभवद्घोर देवदानवसङ्कुलम् ।
 जगतस्त्रासजनं युगसर्वतंकोपमम् ॥६॥
 हस्तमुवर्तैश्च परिर्धैर्विप्रयुवर्तैश्च पर्वतैः ।
 शानवाः समरेजघ्नुर्देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥७॥

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—उस समय में उन दोनों सेनाओं से
 एक महान् तुमुल युद्ध उत्पन्न हो गया था । यह युद्ध परस्पर में त्रय की
 अभिनाशायें रखने वाले सुर और असुर इन दोनों का ही दृष्टा था ॥१॥
 अनेक प्रकार के अस्त्रायुधों से उद्यत होने वाले दानव देवगणों के साथ
 एतनों की ही भाँति युद्ध करते हुए समक्ष में घनुरम्मित हो गये थे ॥ २ ॥

वह सुरों और असुरों का संयुक्त युद्ध अत्यन्त ही अद्भुत शोभा दे रहा था क्योंकि वह विनय और दर्प से, धर्म तथा अधर्म से समायुक्त था । देवों में विनय और धर्म था तो असुरों में अधर्म और अघर्म था ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर विशेष रूप से प्रयुक्त और प्रकृष्ट रूप से प्रेरित यज्ञों के द्वारा षड्ग हाथों में ग्रहण करने वाले चारों ओर से गगन में उत्पतन कर रहे थे । प्रसिद्ध किये हुए मुमल—सम्पतन वाले सायक—विस्फार्यमाण चाप और पात्यमान मुद्गरो के द्वारा वह देवों और दानवों का संकुल महान् घोर युद्ध हुआ था और यह युद्ध सब जगत् को त्रास देने वाला था तथा युग के सम्पर्क के ही तुल्य था ॥ ४, ५, ६ ॥ हाथों से छोड़े हुए परिघों के द्वारा तथा विशेष रूप से प्रयोग में लाये हुए पर्वतों के द्वारा दानव पण देवों का जिहमे महेन्द्र प्रमुख अग्रणी था हनन करने लगे थे ॥ ७ ॥

ते ब्रह्मयमाना बलिभिर्दानवैर्जयकाशिभिः ।
 निपण्णवदना देवा जग्मुरार्तिं परामृष्टे ॥८
 तेऽस्त्रशूलप्रमथिताः परिर्घभिर्न्नमस्तकाः ।
 मिश्रोरस्का दितिसर्तवैर्भूरक्तं व्रणैर्वहु ॥९
 वेष्टिताः शरजालैश्च निर्यत्नाश्चासुरैः कृताः ।
 प्रविष्टा दानवी मायान्न शेकुस्ते विवेष्टितुम् ॥१०
 अस्त गतमिवाभाति निष्प्राणसदृशकृति ।
 वल सुराणामसुरैर्निष्प्रयत्वायुधं कृतम् ॥११
 दैत्यचापयुतान् घोराश्छित्वा वज्रण तांश्छरान् ।
 शक्रो दैत्यवलं धीर विवेश बहुलोचनः ॥१२
 स दैत्यप्रमुखान् हत्वा तद्दानववलं महत् ।
 तामसेनास्त्रजालेन तमोभूतमथाकरोत् ॥१३
 तेऽन्योन्य नाब्रुवन्त देवानां वाहनानि च ।
 घोरेण तमसाविष्टाः पुरुहूतस्य तेजसा ॥१४

उस महान् युद्ध में जय काशी बलशाली दानवों के द्वारा वध किये जाने वाले वे देवगण विषाद युक्त मुखों वाले होकर महान् पीड़ा को प्राप्त हुए थे ॥ ८ ॥ वे सब देवता लोग त्रिशूलों से प्रमथित—परिधों के द्वारा भिन्न मस्तकों वाले और दिति के पुत्रों के द्वारा भिन्न उरःस्थल वाले शरीरों में होने वाले व्रणों से बहुत रक्त का वमन करने लगे थे ॥ ९ ॥ शरो के जालों से उनको एकदम वेष्टित करके असुरों ने यत्नों से रहित कर दिया था । देवगण दानवों की माया में प्रविष्ट होकर कुछ भी विशेष चेष्टा करने में समर्थ नहीं रहे थे ॥ १० ॥ असुरों के द्वारा सुरगणों के बल को प्रयत्न से रहित आयुषों वाला बना दिया था और वह प्राणों से रहित के समान आकृति वाला अर्थात् मुर्दे की भाँति अन्त को प्राप्त हुआ सा ही प्रतीत हो रहा था ॥ ११ ॥ दैत्यों के चापों से छूटे हुए उन परम घोर शरों को बज्र के द्वारा छेदन करके बहुत अधिक नेत्रों वाले इन्द्र ने उस अत्यन्त घोर दैत्यों को सेना में प्रवेश किया था ॥ १२ ॥ उस महेन्द्र ने प्रमुख दैत्यों का हनन करके फिर उस महान् दानवों के बल को तामस अस्त्रों के जाल से उसे एकदम तमोभूत अथवा अन्धकार मय कर दिया था ॥ १३ ॥ इन्द्र के तेज के प्रभाव से उस परम घोर तप से आविष्ट होकर वे दैत्यगण परस्पर में दैत्यों की ओर देवों के साहनों की भी नहीं जान पा रहे थे ॥ १४ ॥

मायापाशैविमुक्तास्तु यत्नवन्तः सुरोत्तमाः ।
 ययू पि दैत्यसिंहानान्तमोभूतान्यपातयन् ॥ १५
 अपध्वस्ता विसन्नाश्च तमसा नीलवर्चसा ।
 पेतुस्ते दानवणादिछन्नरक्षा इवाद्रयः ॥ १६
 तद्घनोभूतदैत्येन्द्रमन्धकार इवाणवे ।
 दानवन्देवदन्तमाभूर्तामिवाभयन् ॥ १७
 तदा मृजन्महामाया मयस्ता तामसीन्दहन् ।
 युगान्ताघोतजननी मृष्टामोर्वेण वह्निना ॥ १८

सा ददाह ततः सर्वान् मायामयविकल्पिता ।
 दंत्याश्वाशित्यवपुषः सद्य उत्तस्थुराहवे ॥१६
 मायामौवी समासाद्य दह्यमाना दिवोकसः ।
 भोजिरे चेन्द्रविषयं शीतांशु सलिलप्रदम् ॥२०
 ते दह्यमाना ह्यीर्वेण वह्निना नष्टचेतसः ।
 दाशंमुवंज्जिग्रां देवाः सन्तप्ताः शरण्यापिणः ॥२१

माया के पापों से विमुक्त हुए यत्नो वाले सुरोत्तम तमोभूत
 दैत्यों के मित्रों के समान पत्नीरों को भूमि पर मार कर बिराने लगे थे
 ॥ १५ ॥ नील वर्णस तम से एकदम अपश्यस्त और संज्ञा (चेतना एवं
 शीघ्र) से रहित वे दानव गण पक्षों के छेदन हो जाने वाले पर्वतों के ही
 समान भूमि पर पतित हो रहे थे ॥ १६ ॥ अर्जुन ने अश्वकार के समान
 उस घनीभूत दैत्येन्द्र और सेवों के द्वारा बदन किये गये दानव तमोभूत
 को ही तरह ही मया था ॥ १७ ॥ उस समय में मया दानव ने देवों के
 द्वारा की हुई उस तामसी पापा को दग्ध करते हुए एक अपनी महामाया
 का सृजन किया था जो भीम वह्नि के द्वारा सृजि हुई थी और युगान्त
 में उद्योत (प्रकाश) की जलती थी ॥ १८ ॥ मया दानव के द्वारा
 विग्विन् उस माया ने सबका दहन कर दिया था और फिर तुरन्त ही
 दैत्यगण देवों के वपु वाले होकर उस रण स्थल में समुत्थित हो गये थे ।
 श्रीर्वो माया को प्राप्त करके दग्ध होते हुए देवगण इन्द्र का विषय सलिल
 का प्रदान करने वाले शीतांशु का सेवन करने लगे थे । श्रीर्वं वह्नि से
 दह्यमान होकर वे देवगण एकदम नष्ट चेष्टाओं वाले हो गये थे । और
 फिर वे सतप्त हुए देवता लोग शरण की इच्छा करने लगे हुए इन्द्र से
 कहने लगे थे ॥ १६, २०, २१ ॥

सन्तप्ते मायया सैव्ये ह्यभ्यमाने च दानवैः ।
 चोदितो देवराजेन वरुणो चावयमववीत् ॥२२
 श्रीर्वो ब्रह्मापिणः शक्र ! तपस्तेषु सुदारुणम् ॥

श्रीं स पूर्वतेजस्वी सदृशो ब्रह्मणो गुणं ॥२३
 त तपन्तमिवादित्य तपसा जद्वद्वरयम् ।
 उपतरधुमुं निगणा दिव्यो देवपिंभि सह ॥२४
 हिरण्यकशिपुञ्चैव दानवो दानवेश्वरः ।
 ऋषिं विज्ञापयामासुः पुरा परमतेजसम् ॥२५
 ऊचुरंह्यप्यगस्त तु वचन धर्मसहितम् ।
 ऋषिवशेषु भगवश्छिन्नमूलमिद पदम् ॥२६
 एकस्त्वमनपत्यश्च गोत्रायान्यो न वसते ।
 कीमान् व्रतमास्थाय वलेशमेवानुवर्त्तसे ॥२७
 वहूनि विप्र ! गोत्राणि मुनीनां भावितात्मनाम् ।
 एकदेहानि तिष्ठन्ति विविक्तानि विना प्रजाः ॥२८

मय दानव को रचित माया से सेना क सन्तप्त हो जाने पर तथा
 दानवों के द्वारा हनन किये जाने पर देवराज के द्वारा प्रेरित किये हुए
 वरुण देव ने यह वाक्य कहा था—हे इन्द्र ! ब्रह्मर्षि से जन्म लेने वाले
 श्रीं ने अशोक धारण तपश्चर्या की थी । वह श्रीं पूर्व का ही तेजस्वी
 था तथा गुणों क द्वारा ब्रह्मा के सदृश था ॥ २३ ॥ २४ ॥ तप के द्वारा
 हम अठारह जगन्मूकों जातिस्थ के समान तपाने हुये उसका देवर्षियों के
 सहित दिव्य मुनिगणों न समतवन किया था । दानवेश्वर दानव ने
 हिरण्य कशिपु को पहिले परम तेजस्वी ऋषि को विज्ञापित किया था ।
 ॥ २४ ॥ २५ ॥ ब्रह्मर्षियों ने उससे परम धर्म से सहित वचन कहा था—
 हे भगवन् ! ऋषियों के वर्गों में यह छिन्न मूल वाला ही है । आप एक
 ही मन्तान से रहते हैं और गोत्र के लिये अन्य कोई भी नहीं । आप
 हम कीमार व्रत में समास्थित होकर केवल व्रत का ही अनुवर्तन कर
 रहे हैं । हे विप्र ! भावितात्मना वापि मुनिगणों के बहूत—ने गोत्र ऐसे हैं
 जो प्रजाओं के विना एक ही देहों वाले विविक्त स्थित रहते हैं
 ॥ २६, २७, २८ ॥

एवमुच्छिन्नमूलैश्च पुत्रैर्नो नाति कारणम् ।
 भवांस्तु तपसा श्रेष्ठो प्रजापतिसमद्युतिः ॥२६
 तत्र वर्तस्व वंशात् वद्धंयात्मानवात्मना ।
 स्वया धर्मोऽजिनस्तेन द्वितीयांकुरु वै तनुम् ॥३०
 स एवमुक्तो मुनिभिर्ह्योवमीमंसु ताडितः ।
 जगहं तान् ऋषिगणान् वचनं वेदमत्रवीत् ॥३१
 यथाय विहितो धर्मो मुनीना शाश्वतस्तु स ।
 आर्षं वै सेवतःकर्म वन्द्यमूलफलाशितः ॥३२
 ब्रह्मयोनीं प्रसूतस्य ब्राह्मणस्यात्मदर्शिनः ।
 ब्रह्मचर्यं सुचरितं ब्रह्मणमपि चालयेत् ॥३३
 जनानां वृत्तयस्तिस्त्रो महं गृहाश्रमवासिनाम् ।
 अम्माकन्तु वरं वर्त्तवनाश्रमनिवासिनाम् ॥३४

इस प्रकार से उच्छिन्न मूलो वाले पुत्रों से हमारा कोई कारण
 नहीं है और आप तो तपस्या में परम श्रेष्ठ एव प्रजापति के समान द्युति
 वाले हैं । अब उसमें अपवशा के लिये ही बरताने करें और आत्मा के
 द्वारा आत्मा की वृद्धि करें । आपन धर्म का तो पर्याप्त अर्जन कर ही
 लिया है । अब दूसरा शरीर भी बनाइये ॥२६ । ३० ॥ मुनिगणों के द्वारा
 जब इस प्रकार से उस मुनि से कहा गया था तो वह ओव मर्म स्थल में
 ताडित किया गया था । उसने उन ऋषिगणों की गद्दी की थी और फिर
 उनसे यह वचन बोला था । जिस प्रकार से मेरे द्वारा यह धर्म विहित
 किया गया है वह मुनियों का परम शाश्वत धर्म है । वन में समुत्पन्न
 मूल और फलों का अशन करने वाले तथा आर्ष कर्म को सेवन करने
 वाले—ब्रह्म योनि में समुत्पन्न—आत्मदर्शी ब्राह्मण का भली भाँति चरित
 ब्रह्मचर्य मत का बड़ा महान् नाहात्म्य है यह तो ब्रह्म को भी चलित
 कर देने वाला होता है । जो गृहाश्रम के निवासी जन हैं उनकी तीन

वृत्तियां होती है । हम जो बनाधन निधानी है उनकी यही वृत्ति परम
योग्य है ॥ २३-२४ ॥

अम्भगा वायुभःशाश्च दन्तोसूखतिनस्तथा ।

अम्भुदृष्टा दग तथा पञ्चातपसहाञ्च ये ॥३५

एते तपसि तिष्ठन्ति ब्रह्मैरपि सुदुष्टरैः ।

ब्रह्मचर्यं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्ति पराङ्गतिम् ॥३६

ब्रह्मचर्याद् ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्व विधीयते ।

एवमाहुः परे लोके ब्रह्मचर्यविदो जनाः ॥३७

ब्रह्मचर्ये स्थित धर्म्य ब्रह्मचर्ये स्थित तपः ।

ये स्थिता ब्रह्मचर्येषु ब्राह्मणा दिवि संस्थिता ॥३८

नास्ति योग विना सिद्धिर्न वा सिद्धि विना यशः ।

नास्ति लोके यशा मूलं ब्रह्मचर्यात् परन्तपः ॥३९

या निगृह्यन्द्रियग्रामं भूतग्रामं च पञ्चकम् ।

ब्रह्मचर्यं समावृत्तो किमत्र परम तपः ॥ ४०

अयोगे रजधरणममद्भुत्पवतत्रिया ।

अब्रह्मचर्ये नर्मा च दय स्याद् दम्भसन्नकम् ॥४१

क्व द रा क्वच सयोग, क्वच भावविपर्ययः ।

नन्विय ब्रह्मणा नृष्टा मनसा मानधी प्रजा ॥४२

जन के मक्षण करने वाले - वायु के मक्षण करने वाले तथा
दग्नोन्मुखनी - दग अम्भु दृष्टा घोर जो पांच आतपों के सहन करने वाले
है । ये तप में आस्थित रहा करते हैं और जो परम दुखरोगों के द्वारा
ब्रह्मचर्यं का पूर्ण परिपालन करके परांगति की प्रार्थना किया करते हैं ।
॥३५॥३६॥ परलोक में भी ब्रह्मचर्यं के महान् महत्व के ज्ञाता लोग इसी
प्रकार से कहा करते हैं कि ब्रह्मचर्यं में ही ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व सिद्ध
रहा करता है । ३७। इस ब्रह्मचर्यं में ही धर्म्य की सिद्धि रहा करती है
घोर दग ब्रह्मचर्यं में ही तप सिद्ध रहा है । जो ब्राह्मण अपने पूर्ण

ब्रह्मचर्यं व्रत मे टिके हुये हैं वे द्विलोक में गस्तिवति रक्ता करते हैं ।
 ॥३८॥ योग के बिना कोई भी सिद्धि नहीं हुआ करती है और जब कोई
 सिद्धि नहीं होती है यश भी लोह में नहीं हुआ करता है तथा लोक में
 यश का भूत नहीं है और ब्रह्मचर्य से अधिक कोई भी तप नहीं होता
 है ॥३९॥ जो कोई भी पुण्य अपनी इन्द्रियों के समूह को पाँचों भूत-
 प्राणों को निग्रहीत करके ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्ण पालन किया करता है
 फिर इससे अधिक अन्य क्या तप हो सकता है । यही सबसे परम ध्येष्ठ
 तप होता है ॥४०॥ अयोग में केशा का धारण करना — बिना ही किसी
 सङ्कुला के प्रती की क्रिया का सम्पादन करना और ब्रह्मचर्य में अपनी
 धर्मा रक्षना ये तीनों कर्म दम्भ की सजा वाले ही कहें गये हैं ॥ ४१ ॥
 कहाँ तो दारा का संयोग हुआ था और कहाँ भावों का विपर्यय ही हुआ
 था अर्थात् दारा—संयोग और भावों की विपरीनता ये तीनों ही बातों
 का विरक्त सभाव या तो भी ब्रह्म के द्वारा मन में ही यह भ्रमसो
 प्रजा का सृजन किया गया था ॥४२॥

सद्यस्ति तपसो वीर्यं युष्मार्कं विदितारमनाम् ।
 सृजन्ध्व म नसान् पुमान् प्रजापत्येन कर्मणा ॥४३॥
 मनसा निर्मिता योनिराघातव्या तपस्विभिः ।
 न दारयोगो बीज वा इतमुक्त तपस्विनाम् ॥४४॥
 यद्विद लुप्तधर्मार्थं युष्याभरिह भिभयो ।

५

एवमात्मानमात्मा मे द्वितीय जनयिष्यति ।
 अन्येनानेन विधिना विधिदन्तमिव प्रजाः ॥४७॥
 ओषंस्तु नपसाविष्टोनिवेश्योरु हुताशनं ।
 ममन्थेकेन दर्शेण मुतस्त प्रमथारणिम् ॥४८॥
 तस्योरुं सहसा भित्वा ज्वालामाली ह्यनिन्धनः ।

जगतो दहनाकाङ्क्षी पुत्रोऽग्निः समपद्यत ॥ ४६

यदि आत्मा व ज्ञान को जानने वाले आप लोगो में कुछ भी तप
का धीर्य विद्यमान है तो आप प्रजा पत्य धर्म के द्वारा मा-स पुत्रो का
सृजन करिए ॥ ४३ ॥ मन के द्वारा ही निमित्त की हुई योनि ही
तपस्वीयो को आधान करनी चाहिए । द्वारा व साथ दोग करना तथा
बीज का प्रयोग करना तपस्वीयो का अत नहीं बताया गया है ॥ ४४ ॥
यहाँ पर आप लोगो ने जो भी निर्भय होकर इस लुप्त धर्म और अर्थ से
युक्त वचन को कह डाला है । यद्यपि आप लोक समुद्र है जि-होने
इसको यहाँ पर प्रति पादन किया है तोभा यह मुझको असमुरूप के वचन
के समान ही प्रतीत होता है मैं इस हीत अतरःत्मा वाले यपु को
मनासक करते द्वारा व योनि के बिना ही आत्म तनुरुह पुत्र का सृजन
करूँगा । इसी प्रकार में यह मेरी आत्मा द्वितीय आत्मा को जन्म ग्रहण
करायेंगी और इसी समय त्रिधि के द्वारा प्रजा की भाँति ही जलाने वाली
ही जायगी । उस ओर ने तप से समाविष्ट होकर अपने ऊपर ही दुताशनों
निरीक्षण कर लिया गा और एन धर्म में गुणकी रक्षारिण का मयन किया
या ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ उस व अह का सहसा भेदन करके
बिना ही ईधन वाला ज्वालाशानी और इस जगत् का सृजन कर देने की
आउदया यात्रा अग्नि पुत्र समुद्र हुआ या ॥ ४६ ॥

ऊर्ध्वधारु विनिभित्तौर्चा नामान्मकोऽनलः ।

दिधक्ष्णिन्य लोकास्त्राञ्जयोपरमकोपनः ॥४०

उत्पन्नमात्रद्वोवाच पितर इतणया गिरा ।

शुधामे वाधते तात । जगद्द्रुह्ये त्यज्म्वमाम् ॥४१

निदिवागर्हिभिर्जालज्भमाणा दिशादश ।

नदंयन् गवंभूतानिधत्त्रे माऽन्नकोऽनलः ४२

एतस्मिन्नन्तरे यत्ना मुनिमर्थं सभाजयन् ।

उत्राच यामंती पृथा जगत्सत्त्व दयातुम् ॥४३

अस्यापत्यस्य ते विप्र ! करिष्ये स्थानमुत्तमम् ।
 तथ्यमेतद्वचः पुत्र ! शृणु त्वंवदताम्बरः ॥५४
 घन्योऽभ्यनुगृहीतोऽस्मि यत्मेऽद्य भगवांच्छिशोः ।
 मतिमेतां ददातीह परमानुग्रहाय वै ॥५५
 प्रभातकाले संप्राप्ते काङ्क्षितव्ये समागमे ।
 भगवन् ! तपितः पुत्रः कंहंव्यः प्राप्स्यते सुखम् ॥ ५६
 कुत्र चास्य निवासः स्याद्भोजनं वा किमात्मकम् ।
 विधास्यतीह भगवान् वीर्यतुल्यं महीजसः ॥ ५७

उस ऊर्ब की ऊरु का विनिर्भेदन करके 'ओर्वा' नाम वाला अनल अन्त कर देने वाला परम कोप से समन्वित तीनों लोको को दग्ध सा करता हुआ समुत्पन्न हुआ था । उत्पन्न होने के ही साथ उसने परम विनम्र वाणी से अपने पिता से प्रार्थना की थी कि हे तात! मुझे यह क्षुब्ध अत्यन्त अधिकता के साथ सता रही है । मैं इस जगत् का भक्षण करूँगा आप मुझे अपनी क्षुब्धा के निवारण करने के लिये मुझे छुट्टी दे दीजिए ॥५०, ५१॥ त्रिदिश्व मे समारोहण करने वाली जब लाओ स दशों दिशाओ में जूझमाण होना हुआ नमस्त भूयो को दग्ध से रहित होकर दलित करता हुआ गया था । इसी बीच में वह अन्तक अनल वृद्धि को प्राप्त हो प्रह्ला ने ऊर्ब मुनि का समाजन करते हुए उससे कहा था कि हे पुत्र! इसका धारण करो तथा इस जगत् पर दया करो ॥५२, ५३॥ हे विप्र ! मैं आपकी इस सन्तति का समुचित स्थान स्थिर कर दूँगा । हे पुत्र ! बोलने वालों में परम श्रेष्ठ आप मेरे अतीव तथ्य वचन का श्रवण करो ॥५४॥ ऊर्ब ने कहा—मैं परम घन्य और प्रतीव अनुगृहीत हूँ कि आज भगवान् आपने इस समय में इस शिशु को ऐसी वृद्धि मुझपर परम अनुग्रह करने के लिये प्रदान की है । प्रभात काल के संप्राप्त होने पर आपका समागम आकाङ्क्षणीय है । हे भगवन् ! यह बतलाइये कि किन दृष्टो से तपित हुआ मेरा पुत्र सुख प्राप्त करेगा ? इसका निवास स्थल कहीं पर होगा और इसके भोजन

का स्वरूप होगा ? भगवान् पाप इस महान् ओज वाले के धीर्य के तुल्य ही इन बातों की व्यवस्था कर देंगे ॥ ५४-५७ ॥

वडवामुरोऽस्य वसति. समुद्रेव भविष्यति ।

मन योनिर्जलविप्र ! तस्य पीतवतः सुखम् ॥ ५८

यत्राहमास नियतं पिवन् वारिमय हृदिः ।

तद्धविस्तव पुत्रस्य विसृजाम्यलयञ्च तत् ॥ ५९

ततो युगान्ते भूतनामेष चाहञ्च पुत्रक ! ।

सहितौ विचरिष्यावा निष्पुत्राणामृणापह ॥ ६०

एषोऽग्निरन्तकाले तु सलिलाशी मया कृतः ।

इह नः सवभूतानां सदेवामुररक्षसाम् ॥ ६१

एवमस्तिवतित सोऽग्निं सवृतज्वालमण्डल ।

प्रविवेशाणवमुखं प्रक्षिप्य पितरिप्रमाम् ॥ ६२

प्रतियातन्ततो ब्रह्मा ये च सर्वं महपयः ।

ऊवम्याग्ने प्रभा ज्ञात्वा स्वा स्वाङ्गतिमुपाश्रिताः ॥ ६३

श्री ब्रह्माजी ने कहा—समुद्र में वडवा के मुग्ध'में इसका निवास स्थान होगा । हे विप्र ! मेरी उत्पत्ति की योनि जल पीने वाले इसकी मुग्धकर हागा और जहाँ पर है वही पर नियत रूप से वारिमय हृदि का पान करेगा तथा वह हृदि अपने पुत्र के निमित्त मैं सय बाल पर्यन्त विमंत्रित कर देना है ॥ ५८ । ५९ ॥ इसके पश्चात् हे पुत्र ! भूतों के युग के अन्त में यह आपका पुत्र और मैं दोनों एक साथ में मिलकर निष्पुत्री के श्रुत का अदहरण करने वाले विषरण करेंगे । इस अग्नि की अग्निज्ञान में मैंने सतित का अग्नि करने वाला कर दिया है जो गमन्य भूतों का तथा देव-प्रमुर और राक्षसों का दमन करने वाला होगा । ऐसा ही होवे—वह कहकर वह अग्नि सबूत उषानाश्री के मण्डल वाला अपने पिता ऊर्ध्व में प्रभा की प्रक्षिप्त करके अर्धव के मुग्ध में प्रवेश कर गया था । इसके अन्तर ब्रह्माजी तथा सब महपिगण प्रति

यात्र कर लये थे । ऊर्ध्व की अग्नि की प्रभा को जानकर तब अपनी गति का उपाश्रय कर गये थे ॥६०-६३ ॥

हिरण्यकशिपुर्हृष्ट्वा तदा तन्महदद्भुतम् ।
 ऊर्ध्वैः प्रणतसर्वाङ्गो वाक्यमेतदुवाच ह ॥६४
 भगवन्नद्भुतमिदं संवृतं लोकशाक्तिकम् ।
 तपसा ते मुनिश्रेष्ठ ! परितुष्टः पितामहः ॥६५
 अहन्तु तव पृथस्य तव चैव महाव्रत ! ।
 भृत्य इत्यवगन्तव्यः साधयो यदिह कर्मणा ॥६६
 तन्मां पश्य समापन्न तवेवाराधने रतम् ।
 यदि सौदै मुनिश्रेष्ठ ! तदैव स्यात् पराजयः ॥७०
 धन्योऽस्म्यनुग्रहीतोऽस्मि यस्यतेऽहं गुरुः स्थितः ।
 नास्तिमे तपसानेन भद्रमद्येहमुन्नत ! ॥७१
 तामेव सायां गृह्णाञ्च मम पुत्रेण निर्मिताम् ।
 निरिन्धनामग्निमयीन्दुघंषां पावकैरपि ॥७२
 एषा ते स्वस्य वंशस्य वंशगारिर्दनिग्नहे ।
 संरक्षत्यात्मपञ्चञ्च विपञ्चञ्च प्रथपेति ॥७०

उसो समय में उस महान् अद्भुत को हिरण्य कशिपु देखकर उच्च भाव से सब अङ्गों को प्रणत करने वाला होकर यह वाक्य बोला था ॥ ६४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह लोक का शाक्तिक अद्भुत ही गया है । हे भगवन् ! आपकी तपश्चर्या से पितामह श्री परितुष्ट हो गये हैं ॥६५॥ हे महाव्रत ! मैं तो आपके पुत्र का और आपका भृत्य ही हूँ—ऐसा ही स्वपन्न कर लीजिए जो कि यहाँ पर कर्मों के द्वारा साधना के योग्य है । इसलिये उस मुझको आपके ही समाराधन में तन्मग्न हो देखिये । हे मुनि श्रेष्ठ ! यदि मैं आपका अनुगामी सबक होकर भी दुःखित रहता हूँ तो यह आपका ही पराजय होगा । ऊर्ध्व ने ऊर्ध्व—मैं परम शून्य हूँ और परम अनुग्रहीत हूँ कि जिए पुत्रका मैं गुरु भयवस्थित हो गया हूँ ।

हे गृध्र ! आज यहाँ पर मेरे इन तप से कोई भी भय नहीं है । मेरे पुत्र के द्वारा निर्मित उसी माया को ग्रहण करो जो बिना ई धन वाली पावकी द्वारा भी दुर्घण और अग्निमयी है । यह तेरे अपने बंध के वश में गमन करने वाले अग्नि से विशेष निग्रह में अपने पक्ष की रक्षा करेगी और शिशु को प्रप्रविन करेगी ॥ ६६-७० ॥

एवमस्त्विति ता गृह्य प्रणम्य मुनिपृङ्गवम् ।
जगाम त्रिदिव हृष्टः कृतार्थो दानवेश्वरः ॥ ७१

एषा दुर्विपहा माया देवैरपि दुरासदा ।
और्वेण निर्मिता पूर्वं पावकेनोर्वंमनुना ॥ ७२

तस्मिन्नु द्युत्यितेदंत्वेनिर्वीर्येषा न सरायः ।
शापोह्यस्याः पुरा दत्तो नृष्टायेनैव तेजसा ॥ ७३

यद्यप्य प्रतिहन्त्या कर्तुंभ्यो भगवान् सुखी ।
दीपता मे सद्यः शक्र ! तोययोनिनिशाकरः ॥ ७४

तेन हं मह सङ्गम्य यादोभिश्च समावृतः ।
मायामेना हनिष्यामि त्वत्प्रनादाप्तमदाय ॥ ७५

ऐसा ही होगा-ऐसा कहकर उसको ग्रहण किया था और फिर उस श्रेष्ठ मुनि को प्रणाम करके दानवेश्वर प्रणम्य एव कृतार्थ होकर त्रिदिव को पना गया था ॥७१॥ यह माया दुर्विपहा है और देवगणों के द्वारा भी दुरासदा है । इसको जड़ के पुत्र पावक और के द्वारा पूर्व में निर्माण किया गया था ॥७२॥ उस दैत्य के द्युत्यित होने पर यह निर्वीर्य हो जाता करती है इस में कुछ भी मगन नहीं है । जिग जिस तेज के द्वारा इस का गृध्रन किया गया था उसी के द्वारा पतिने इस को मार भी दिया गया है । यदि यह माया प्रतिहन्त के योग्य करती है तो भगवान् को मुग्ध में सम्मन्य पुत्रम् दत्तं चकार मत्स्यः ॥ ६६-७० ॥ अतएव तोय की योनि निशाकर मेरा मया देशे ॥७३॥७४॥ उसने माया में मगन होकर और

यादव गणों से समावृत होकर आपकी कृपा एवं प्रसाद से उस माया का मैं हनन कर दूँगा—इस में लेशमात्र भी संशय नहीं है ॥७५॥

६६—देवासुर संग्राम वर्णन (२)

एवमस्त्विति संहृष्टः शक्रस्त्रिदशवर्धनः ।
 सन्दिदेशाग्रतः सोमं युद्धाय शिशिरायुधम् ॥१
 गच्छ सोम ! सहायत्वंकुरुपाशधरस्य वं ।
 असुराणां विनाशाय जयार्थञ्चदिवीकसाम् ॥२
 त्वं मत्तः प्रतिवीर्यश्च ज्योतिषाञ्चेश्वरेश्वरः ।
 त्वन्मय सर्वलोकेषु रसं रसविदो विदुः ॥ ३
 क्षयवृद्धी तव व्यवृते सागरस्येव मण्डले ।
 परिवर्त्तस्यहोरात्र कालं जगति योजयन् ॥४
 लोकच्छायामयः लक्ष्म तवाङ्कः शशसन्निभः ।
 न विदुः सोमदेवापि ये च नक्षत्रयोनयः ॥ ५
 त्वमादित्यपथादूर्ध्वं ज्योतिषां चोपरि स्थितः ।
 तमः प्रोत्सायं सहसा भासयस्यखिल जगत् ॥६
 अधिकृत्कालयोगात्माइष्टोपज्ञस्यसोऽव्ययः ।
 औपधीशः क्रियायोनिरब्जयोनिरनुष्णभाः ॥

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—ऐसा ही होवेगा—यह कहकर परम प्रहृषित और देवों की वृद्धि करने वाले इन्द्र ने सोम के समक्ष में युद्ध करने के लिए शिशिर आयुध के प्रगुप्त करने का सन्देश दे दिया था और सोम से उसने कहा था कि हे सोम ! तुम तुरन्त ही चले आओ और पाशधारी वरुण देव की युद्ध में महायता करो यह इस प्रकार से तुम्हारा इस समय में वरुण का महायक होना अमुरों के विनाश के लिये

तथा देवगणों की विजय प्राप्त करने के लिये ही होगा ॥१॥२॥ हे सोम ! आप मत्त हैं और मुझसे के प्रतिवीर्य—विजय वाले हैं तथा आप समस्त ज्योतिषों के ईश्वरों के भी ईश्वर हैं । रशो के वेत्ता लोग सब लोगों में आप से परिपूर्ण रस को भली भाँति कहा करते एवं जानते हैं ॥३॥ मण्डल में सागर की ही भाँति आपकी क्षीणता तथा वृद्धि स्पष्ट है और जगत् में घहोरात्र के काप को योजित करते हुए आप परिवर्तित हुआ करते हैं । आपका यह शश के सदृश जो अरुण में चिन्ह है यह लोगों की इच्छा से ही परिपूर्ण है और इस को नक्षत्रों की घोनि वाले जा देवगण भी है वे भी हे सोम ! नहीं जानते हैं ॥४॥५॥ आप आश्विन के पय से भी ऊपर सब ज्योतिषों के उर्ध्वभाग में समवस्थित हैं । आप सप्तमा दम तम को प्रोत्सर्जित करके सम्पूर्ण जगत् को अपने सुन्दर प्रकाश से भागित कर दिया करते हैं ॥६॥ आप अधिवृत्त बालयान के स्वरूप वाले—यज्ञ के अभीष्ट और भविनाशी हैं । आप ओषधियों के स्वामी—सब त्रिपाओं की घोनि—स्रष्टृ घोनि और शतित्त दीप्ति से समन्वित है ॥७॥

धीतानुरमृताधारदक्षपलः श्वेतवाहनः ।

त्य कान्ति कान्तिवपुषात्व सोम.सोमपापिनाम् ॥८॥

सौम्यस्त्व सर्वभूताना तिमिरघ्नस्त्वमृत्तराट् ।

तद्गच्छ त्व महासेन ! वरुणेन वरुषिना ॥

शमयत्वामुगे माया यया दह्याम मयुगे ॥९॥

यन्मा वदमि युगाय देवराज ! वरुप्रद ! ।

एव ययामि निषिारन्दैत्यमायावपणम् ॥१०॥

एतान् मच्छीतनिदग्धान् पश्य स्वहिमवेष्टितान् ।

यिमायान् विमदाःनेव दत्तमिहाःमहाहवे ॥११॥

मेवा हिमहाराजमृष्टा मयाशा हिमवृष्टयः ।

येष्टयन्निधम तान् घोरान्दैत्यान्मेषगणाश्च ॥१२॥

ती पाशशीतांशुधरी वरुणेन्द्र महावती ।

जघ्नतुहिमपातंश्च पाशपातंश्च दानवान् ॥१३

द्वावम्बुनाथी समरे ती पाशहिमयोधिनी ।

मृधे चेरतुरम्भोभिः क्षुब्धाविव महार्णवी ॥१४

हे सोम ! आप शीतल किरणों वाले—अमृत के आधार—चपल श्वेत वाहन हैं। आप इस अपने कान्तिपूर्ण शरीर के द्वारा स्वयं ही कान्ति हैं और सोम के पान करने वालों के लिए साक्षात् सोम स्वरूप वाले हैं। आप समस्त भूतो के लिये परम सौम्य हैं तथा सब ऋक्षों के राजा और तिमिर के नाश करने वाले हैं। इसीलिये हे महासेन ! वरुणी वरुण के साथ महायता करने के लिए आप शीघ्र ही चले जाइये तथा जिससे हम सब युद्ध में दग्ध हुए जा रहे हैं उस इस आसुरी माया का शमन कीजिए ॥ ८ ॥ ६ ॥ इन्द्रदेव के इस प्रकार से प्रार्थना करने पर सोम ने कहा—हे देवराज ! हे वर प्रदान करने वाले देव ! जो आप युद्ध करने के लिये मुझे कह रहे हैं। मैं प्रभी दंत्यों की माया के अपवर्षण करने वाले शिशिर की वर्षा करता हूँ। आप इन सबको मेरे हिम से सर्वगुणित और मेरे शीत से निर्दग्ध देखिये। इस महायुद्ध में इन सब दैत्य मित्रों को मद और माया से रहित हुए ही आप देखेंगे ॥१०॥ ११॥ उनको हिमकिरणों से समुत्सृष्ट पाशों के सहित हिम की वृष्टियों में घोर दंत्यों की मेष गणों की ही भाँति वेष्टित कर दिया था ॥ १२ ॥ महान् बलवान् पाश और शीतल किरणों की धारण करने वाले वरुण और चन्द्र दोनों ने उन दानवों का हिम के पातों तथा पाशों के पातों से हनन कर दिया था ॥ १३ ॥ वे दोनों अम्बुके स्वामी—पाश और हिम से युद्ध करने वाले उन महान् घोर रण में जगत् से क्षुब्ध दो महार्णवी की भाँति ही विचरण कर रहे थे ॥ १४ ॥

ताभ्यामाप्लावितं सैन्यं तद्ददानमदृश्यत ।

जगत् सवर्तकाम्बोदः प्रधिष्टरिवसवृतम् ॥१५

तानुद्यताम्बुनाथो तु शशाङ्कवरुणाबुधो ।
 समधामानतुर्माया देवो दैत्येन्द्रनिर्मिताम् ॥१६
 शीतानुजान निदग्धा पानंश्च स्पन्दिता रणे ।
 न मे मुषचलितु दैत्या विशिरस्वाश्वाद्रयः ॥१७
 शीतानुनिहतास्ते तु दत्यास्तोयहिमाद्विताः ।
 हिमाभ्नावितसर्वाङ्गा निदम्पाण इवाग्नयः ॥१८
 तेषान्तु दिवि दैत्याना विपरीतप्रभाणि वै ।
 विमानानि विन्निघाणि प्रपतन्त्युत्तरतन्त्रिण ॥१९
 तान् पाशहस्तग्रथितादृष्टादृष्टादृष्टीतरस्मिभिः ।
 मयोददशंमायावी दानवान्दिविदातवः ॥२०

उन दोनों में आप्तविर दानवों की सेना उस समय में दिव्यनाई
 नहीं दे रही थी और यह सम्पूर्ण जगत् प्रविष्ट हुए सम्बतंक अम्बोशो
 के द्वारा मयन की तरह ही हो गया था ॥ १५ ॥ उन समुपन हुए
 मयन और वरुण दोनों अम्बुनाथो ने देवों ने दैत्यो के द्वारा निर्माण की
 हुई उन माया का एकदम समन कर दिया था । शीतानुश्री के जान से
 निर्गम्य हुए तथा पाशो में रत्नमय में स्पन्दित हुए सब दैत्यमय विना
 गिर जाने परतों के समान ही चलने में असमर्थ हो गये थे ॥ १६, १७ ॥
 शीत शिरणो में निरत हुए तथा जल और तिम में अद्वित तथा तिम से
 पारित मयन अङ्गा वाले सब दैत्यमय विना ऊष्मा (ताप) वाली
 अग्निदा व ही नृम्य हो गये थे ॥ १८ ॥ दिव्यनोर में उन दैत्यो के विपरीत
 प्रभा वाले विन्निघ विमान ऊपर उडा थे और नीचे भूमि पर गिर जाया
 करत थे । उस समय में दिव्यनाथ म मयावी दानव मने उन सब
 दानवों को पाश हस्त ग्रथित और शीत रस्मिया में समादृष्टादिन देया
 था ॥ १९, २० ॥

म गिराजावधिनता मन्त्रचमदृष्टामिनीम् ।

पादशा दृष्टादृष्टा १०२२, शीताननाम् ॥२१

सिंहव्याघ्रगणाकीर्णां नदीभिर्गजयूयपैः ।
 ईहामृगगणाकीर्णां पवनाघूर्णितद्रुमाम् ॥२२
 निमितां स्वेन यत्नेन क्लृप्तितां दिवि कामगाम् ।
 प्रथितां पावन्ती मायाममृतससमन्ततः ॥ ३
 सासिशब्दः शिलावर्षः सम्पतद्भिश्च पादपैः ।
 जघान देवसङ्घांश्च दानवांश्चप्यजीवयत् ॥२४
 नेशावरी वारुणी च मायेऽनर्द्धनुस्ततः ।
 अग्निभिश्चायसगणैः किरन् देवगणान् रणे ॥२५
 साश्मयन्नायुधघना द्रुमपवतसङ्कटा ।
 शभवत् धोरमञ्चार्वा पृथिवी पवति व । २
 अश्मना प्रहताः केचिन् शिलाभिः शकलीकृताः ।
 नानिरुद्धो द्रुमगणदैवोऽऽश्नयत् कश्चन ॥२७
 तदपध्वस्तधनुष भग्नप्रहरणाविलम् ।
 निष्प्रयत्नं मुरानाक वर्जयित्वा गदाधरम् । २८

उस समय मे उस मय दानव ने शिला के जालो मे वितत—एङ्ग
 चर्मो के अट्टहाम वाली—पादपो के उक्कट कूटो के अग्र भाग वाली—
 कन्दराओ मे समाकीर्ण, काननो से युक्त—विह एवं व्याघ्रो के गणो मे
 सकुल—चिघाडते हुए गजो के यूथो से समन्वित—ईहामृग गणो से
 आकीर्ण—पवन से आघूर्णित द्रुमो वाली—दिवलोक मे स्वेच्छया गमन
 करने वाली—क्लृप्त और अपने ही छल से निर्माण की हुई परम प्रथित
 पार्श्वी माया को चारो ओर सृजित कर दिया था । उसने अग्नि के शब्दों
 से—शिलाओ को वर्षा से—अंर सम्पान करने वाले पादपो मे देवो के
 सङ्घों का हनन कर दिया था तथा दानवो को जीवित कर दिया था ।
 उस पार्श्वी माया मे नेशावरी और वारुणी दोनो मायाएँ अन्तर्हित हो
 गई थी और देवगणो को अग्नि तथा आयाम गणो से रण मे तितर-
 विनर कर दिया था ॥ २१, २२, २३, २४, २५ ॥ अश्म यन्त्र और

घायुषो मे घन—द्रुम और पर्वतों से सँकट वह माया पर्वतो से पृथिवी
 व समान अति घोर संवरण के योग्य हो गई थी ॥ २६ ॥ कुछ पाषाणों
 से प्रहृत दृष्ट थे और कुछ शिलाओं से घण्ट २ कर दिये गये थे और
 द्रुमगण्य न अनिरुद्ध कोई भी देवता दिखलाई नहीं दे रहा था । भगवान्
 गदाधर को वज्रिन करके सम्पूर्ण सुरों की सेना अपध्वस्त धनुषी घाली—
 मम प्रहरणो मे धारित (मलिन) श्रीर प्रयत्न सहित वन मई थी
 म २७, २८ ॥

स हि युद्धगत श्रीमानीशानोऽश्मव्यकम्पत ।
 महिष्णु वाज्जगत्स्वामी नचुक्रोधगदाधरः ॥२६॥
 कालज्ञ. कालमेधामः समीक्षन् कालमाह्वये ।
 देवा ुरविमदं तु द्रष्टुकामस्तदा हरिः ॥२७॥
 तता भगवता दृष्टो रणे पावकामासीत् ।
 आदितो विष्णुवाक्येन हो मायामरुपनाम् ॥२८॥
 ताभ्यामुद्भ्रान्तवेगाभ्या प्रवृत्ताभ्या महाह्वये ।
 दग्धा न्ना पावता माया भस्मीभूता नतान्ना ह ॥२९॥
 सोऽनिलोऽनलसयुक्तः सोऽनलश्चानिलाकुलः ।
 दस्यमनान्ददहतुर्गुमान्तेष्विवमूर्ति एतो ॥३०॥
 यायु प्रधात्रिनस्तत्र पश्चादग्निन्तु मारुतम् ।
 चैरतुर्दानयाभीके प्रीटन्तात्रनिलानलो ॥३१॥

उप मलय मे गुड मे ममन करने वाले श्रीमान् ईशान पाषाणों
 से कम्पित हो गये थे किन्तु जगत् क स्वामी भगवान् गदाधर ने सति-
 षणुता के गुण होने के कारण मे घात नहीं किया था । काल के ज्ञान—
 कालमेध व गुण आत्मा वाले हरि ने उप मलय मे उप गुड मे काल को
 देखा हूँ व देव गुण के विमर्द को देखा को पावना वाले हो गये थे ।
 इस उपाय मे भगवान् ने उप गुड के पाषाण श्रीर माया का दगा था
 और देवता विष्णु व मारुत मे प्रयत्न हाकर उप दगा था प्रहरण

करने वाले हुए थे । उस महायुद्ध में उद्गान्त वेगों वाले और प्रवृद्ध उन दोनों के द्वारा वह पार्वती माया दग्ध तथा भस्मीभूत होकर नष्ट हो गई थी ॥ २६, २७, २८, २९ ॥ वह अनिल (वायु) अनल (पावक) से संयुक्त और वह अग्नि वायु से समाकुल होकर इन दोनों ने युग के अन्त में मूर्छित होने के समान दैत्यो की सेना का दहन कर दिया था ॥ ३३ ॥ चर्हा पर वायु प्रभावित हुआ था और पीछे से अग्नि वायु के अनुसार ही घावमान हुआ था । इस तरह से अनिल और अनल दोनों दानवों की सेना में क्रीड़ा करते हुए चरण करते थे ॥ ३४ ॥

भस्मावधवभूतेषु प्रपतत्सूतपतत्सु च ।
 दानवाना विमानेषु निपतत्सु समन्ततः ॥३५
 वातस्कन्धापविद्धेषु कृतकर्मणि पावके ।
 मया बधे निवृत्ते तु स्तूयमाने गदाधरे ॥३६
 निष्प्रयत्नेषु दैत्येषु त्रीलोक्ये मुक्तबन्धने ।
 सप्रहृष्टेषु देवेषु साधु साध्विति संशयः ॥३७
 जये दशशताक्षस्य दैत्यानाञ्च - राजये ।
 दिक्षु सर्वासु शुद्धामु प्रवृत्ते घर्मविस्तरे ॥३८
 अपावृते चन्द्रमसि स्वस्थानस्ये दिवाकरे ।
 प्रकृतिस्थेषु लोकेषु त्रिषु चा रथबन्धुषु ॥३९
 यजमानेषु भूतेषु प्रशान्तेषु च पाप्मसु ।
 अभिन्नबन्धने मृत्यो हूयमाने हुताशने ॥४०
 यज्ञशोभिषु देवेषु स्वर्गार्थं दशयत्सु च ।
 लोकपालेषु सर्वेषु दिक्षु सयानवलिषु ॥४१
 भावे तपसि सिद्धानामभावे पापकर्मणाम् ।
 देवपक्षे प्रमुदिते दैत्यपक्षे विपीदति ॥४२

चारों ओर से दानवों के विमानों के नीचे गिर जाने पर उनके ऊपर उड़कर भूमि गिरने पर तथा भस्मीभूत अवधियों के हीने

पर एवं ज्ञान स्वयं मे अविद्यं ही जाने पर पावक के द्वारा किए हुए कर्मों में मय का बंध हो गया था और भगवान् महाभारत का स्तवन किया गया था ॥ ३५, ३६ ॥ जिस समय में अथ दानव का बंध हो गया था तो सभी देव्य निद्राएतन ही गये थे तथा हीनीश बन्धन से मुक्त हो गया था । सब देखगण अत्यन्त प्रसन्न हुए थे और, सभी ओर "साधु-साधु" अर्थात् अच्छा हुआ की ध्वनिवाँ होने लगी थी ॥ ३६ ॥ इन्द्रदेव की जय होने पर और देवों का पराजय हो जान पर सब दिशाएँ विमुक्त हो गई थी तब धर्म का विस्तार प्रवृत्त हो गया था ॥ ३६ ॥ चन्द्रदेव अत्रान्त हो गये थे तथा दिवाकर अपने स्थान पर स्थित हो गये थे एवं चरित्र के बंधु तीनों तीव्र अपनी स्वाभाविक अवस्था में स्थित हो गए थे ॥ ३६ ॥ पर्वतानों में और नृगों में पाव प्रशान्त हो गये थे तथा अर्षिन्त बन्धन बान्ता मृदु अग्नि में दृश्यमान हो गया था ॥ ४० ॥ सब देखगण यथा म सोमा प्राप्त करने लगे तथा स्वर्गों के धर्म का प्रदर्शन करते थे । सभी लोकान्त जयनी २ दिशाओं में यानों में यत्नमान हो गये थे ॥ ४१ ॥ उस समय में गिद्धों का तपस्वर्षी में भाव स्थित हो गया था और सा पशुपुत्र कर्म करने लगे थे उनही अभाव में स्थिति थी । देवों का वन धर्म प्रमुदित हो गया और देवों का वन धर्म विचार में प्र-न था ॥ ४२ ॥

विवाश्विप्रदे धर्म अर्धम पाद्विप्रदे
 अत्रान्त महाभारे वर्धमाने न मत्तगे ॥४३
 मोरे प्रवृत्ते धर्मो मुधमोराधमेतु न ।
 प्रजासुखमुरनेषु आजमानेषु राजसु ॥४४
 प्रजासुखमुरने मोरे जाने समधि दाने ।
 धर्मिमास्तयोःसु वत्तो महाभारमैधि ॥४५
 दानस्य विपुला लीलास्तथा लज्जवदृष्टिया ।
 पूरंदरभग अत्रा मां तामिदृशमदृशु ॥४६

कालनेमीति विष्णोस्तो दानवः प्रत्यहृन्मृत ।
 भास्कराकारमुकुटः क्षिञ्जिताभरणाङ्गदः ॥४७॥
 वाह्निमन्नुलमन् व्योम क्षिपन् पद्भ्या महीधरान् ।
 ईरयन्मुखनिश्वात्तृष्टिपवतान् दानाहकान् ॥४८॥

उम ममय ये तीन पादो बाला धर्म का विग्रह था और 'अमर्' केवल एक त्री पाद से युक्त था । महाद्वार क अपातल होने पर सब लोग मत्स्य में वर्तमान हो गये थे ॥४७॥ लोक अपने २ धर्मों और आत्मीय में प्रवृत्त थे तथा सब नृपति गण अपनी प्रजा की रक्षा काय में युक्त एवं भ्राजमान होये थे ॥ ४४ ॥ सम्पूर्ण लोक प्रणत कर्मणो वाले थे एवं दानवीथ तम भी एक दम शांति होगया था । वहाँ पर अग्नि और भारत का सश्राम जब हुआ था तभी यह सब होयया था बहुत से लोक मन्मथ होयये थे और उन क्षीनों में उनके विग्रह की करने वाली क्रिया भी हुई थी । साक्षर और जगिन ने द्वारा त्रिप हूए मशान पूर्व देवों का मय भक्षण करके परम विष्णोत कालनेमि साथ बला दानव उहाँ पर दिखलाई दिया था जिसका भास्कर के आकार के मृहण मुकुट था और वह क्षिञ्जित आभरणी एष अङ्गदा वाला था । ४४ काल नेमि अपनी त हृषी में व्योम तोलत करते तथा और पैरो में बड़े २ मशानों की मौ टिड्ड करता था । वह वृष्टि में युक्त बलाहकरो को मुख क निश्चामो न द्वारा प्रेरित करता था ॥४४-४८॥

तिर्यगायतरक्तक्ष मन्दरीदपवर्चसम् ।
 दिधक्षन्तमिवायान्त सर्वासु देवगणान् मृधे ॥४९॥
 तर्जयन्तं मुग्गणाश्छादयन्तं दिशोदण ।
 सवर्तकाले तृपितं दृष्ट मृत्युमिर्वास्थितम् ॥५०॥
 सृजननोऽध्यवता विपुनाङ्गुलिपवणा ।
 लम्बाभरणपूर्णं किञ्चिच्चलितकर्मणा ॥५१॥
 उच्छिन्तेनाग्रहस्तेन दास्येन वपुष्मता ।

शानवान् देवानिहानुत्तिष्ठन्विति ब्रुवन् ॥५२
 त वाचनेमि सगरे द्विपता वाचनेष्टितम् ।
 वीक्षणैस्म सुराः सर्वे भयविशस्तलोचनाः ॥५३
 त वीक्षन्तिस्म भूता न क्रमन्त वाचनेनिनम् ।
 विविक्त्वा विव्रमन् नागरणमिवापरम् ॥५४
 सोऽप्युच्यतेपुरे पादमास्ता दूषिताम्बरः ।
 प्रक्रान्त ननुगो युद्धे ब्रामयाभास देवताः ॥५५
 ममदेनामरे द्वेषेण पण्डितवत्सस्तनो रणे ।
 वाचनार्थमर्थो दैव्ये न विव्रणिव मन्दरः ॥५६
 त्रय विव्रणिवै देवा सर्वे शक्रपुरोगमाः ।
 वाचनेनि नम यान्त दृष्ट्वा बालमिवापरम् ॥५७

शिव स्वयं न बल वाचनेनि वही रणमय मे समाप्त हुआ
 एा उन समय वह विव्रण — आदर और रक्त नेत्री काया था—उसका
 स्वरूप म दूर ॥५२॥ शून्य उदर वनेम मे सुरा था—युद्ध मे सब देवों
 का मन्ता रण हुआ मरदान हुआ था ॥५३॥ समस्त युगों की शक्ति
 पटागत हुआ रणो दिग्गधा म मन्ताउ टन करण हुआ और मन्वत
 वाच म नृपत मनुषिय मृग की मीत शिष्टनाई दिग्ग था । उच्यते मे
 दृष्टा—दृष्टा तन वाप—विपुत्र म गुणवो के पथो मे युग—सर्वे
 क्रमगता म मन्त—कुछ बनिन बसो बाने—उच्यते—वपुमान् दाहित
 शय म दवो मे द्वारा मारे हुए वाचने मे उच्यते खटे हो जाओ—दिग्ग
 दृष्ट रण था ॥५४॥—५५॥ उग मन्त क्षेत्र मे द्वेष करने वाले मन्त
 वा वाचनेष्टित वाचनेमि की मय मे विव्रण भीउ याचने जाने
 मन्त मुरदत्त देश रते मे ॥ ५६ ॥ वाचने और मन्त करण हुए उग
 वाचनेमि की विव्रण (वाचने) मे भी प्रच्यते माने हुए मन्त
 वाचने के भी समस्त मन्तवा (प्राणी) देश मे ॥५६॥ अन्त
 उच्यते वाचने—वेगो की मात दृष्टि मन्त के मन्त उच्यते मन्त

प्रक्रमण करते हुए युद्ध स्थल में देवगणों को डरा दिया था ॥५५॥ इसके अनन्तर रण में समय वाले असुरेन्द्र से परिष्वक्त होकर वह कालनेमि विष्णु मन्दर के समान शोभित हुआ था ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर समस्त देवाण जिनमें इन्द्र देव सबके अग्रगामी थे दूसरे काल के ही समान आते हुए उस कालनेमि को देखकर विशेष रूप से व्यथित हुए थे ॥ ५७ ॥

७० — कालनेमि वृत्तान्त वर्णन

दानवानामनीकेषु कालनेमिमहासुरः ।
 विवद्वितमहातेजास्तपान्ते जलदो यथा ॥१॥
 तं त्रैलोक्यान्तरगतं दृष्ट्वा ते दानवेश्वराः ।
 उत्तस्थुरपरिध्रान्ताः पीत्वामृतमनुत्तमम् ॥२॥
 ते वातभयसन्त्रासा मयतारपुरोगमाः ।
 तारकामयसग्रामे सततं जतकाशिनः ॥३॥
 रेजुगयाधनगता दानवाः युद्धकाङ्क्षिणः ।
 मन्त्रमभ्यसतान्तेषां व्यूहञ्च परिधावताम् ॥४॥
 प्रेक्षताञ्चाभवत् प्रीतिर्दानवं कालनेमिनम् ।
 ये तु तत्र मयस्यासन् मुख्या युद्धपुरःसराः ॥५॥
 ते तु सर्वे भयन्त्यङ्गत्वा हृष्टा योद्धुमुपस्थिताः ।
 मयन्तारो वराहश्च हयग्रीवश्च वीयवान् ॥६॥
 विप्रचित्सुतः श्वेतः खरलम्बावुभावपि ।
 क्षरिष्टोवलिपुत्रश्च किशोराख्यस्तथैव च ॥७॥
 स्वभानुश्चामरप्रहयो वक्त्रयोधी महासुरः ।
 एतेऽस्त्रवेदिनः सर्वे सर्वतपसिसुस्थिताः ॥८॥

धी मन्थ्य भगवात् ने कहा — दानवी की सेनाओं में महाभुज बाल-
नेमि विशेष दक्षिण हुए मरुतु तेज वाता तप के जग में जनक के पुत्र
हो या ॥ १ ॥ प्रलोचन के अन्तर्गत उसकी देखकर ही दानवीवर
अत्यन्त अमृत का पान करके उपरिस्थान होते हुए उठकर खड़े होकर
थे ॥२॥ तास्काभय मघाभ से निरन्तर जित काशी के मठ दानव जिनमें
मय और तार पुगागाभी से भय और सत्रास की कर्तान कर देने वाले
थे ॥ ३ ॥ मन्थो का अश्वास करने वाले और युद्ध का परिघायत करने
वाले उनमें युद्ध की इच्छा रखने वाले गनव युद्ध स्थल में पहुँच कर
अधिक शोभा एवं दीप्ति को प्राप्त हुए थे ॥ ४ ॥ जो लोग वहाँ पर
मर दानव व परम मुख्य युद्ध पुर दर के काननेमि दानव का देखने
वाले उनकी अन्वयक प्रीति ना ली थी ॥५॥ वे सभी भय का स्वाग
करके परम दक्षिण लोके हुए युद्ध करने के लिये वहा पर उभियर हुए थे ।
उन्में पर—शर—वराह—दीर्घवान्—दशरथ—विप्रचितिहा पुत्रकेव
दीना पर और सम्ब—बलिका पुत्र धर्मर और विभोर नामधारा—
स्वर्णानु—अमर प्रहर—महाभुज वषट् लोभी थे मनी अन्धो के लोका पर
सभी अवस्थाओं में भी स्थित रहने वाले थे ॥६॥

दानवा वृत्तिनो ऊरु कालनेमि तमुद्धवम् ।
ते गदाभिर्भुङ्गुण्डीभिश्चक्रैश्च परश्वधै ॥६॥
कालरत्नपेश्व मुसल धरणापेश्व भृद्गरी ।
अशमपिदवादिगहभागण्डसंतीक्ष बाकणः ॥७॥
पट्टिशभिन्दिवाहीश्च पण्डितोऽनभ्यासी ।
घाततीभि मृगुर्वीभि घातघ्नीभिश्चवीर च ॥८॥
शुभ्रशौच्य तिसुन्तमिगंमोऽयनाजिनी ।
दामिश्चामनदीपान्व प्राणी पाशेश्च मूच्छनी ॥९॥
भुज ह्मरी लोचिहानीयवपीडुश्च मायकी ।
वज्र प्रहृशीपेश्व दीप्यमानेश्व लोमरी ॥१०॥

त्रिकोरीरसिभिस्तीक्ष्णैः शूलैश्च शितनिर्मलैः ।

दैत्याः संदीप्तमनसः प्रगृहीतशरासनाः ॥१४

ये समस्त परम कृती दानव उस अतीव उद्धत कालनेमि के समीप में पहुँचे थे । ये सभी दैत्यगण बहुत से हथियारों से समन्वित थे त्रिनयें गदा-भुशुण्डो-वक्र-परश्वद्य-काल कल्प मुसल-क्षेपणीय-मुद्गर-धद्रि सदस्य अशम (पाषाण)-दारुण भण्ड शूल-पट्टिण-भिन्दि पाल-सत्तपायस परिष-धातिनी और अग्र्यन्त गुरु (भारी एवं बहुत विशाल) धतधनी (तोप)-युग यन्त्र - उग्र ताडित त्रिधुंक्त मार्गण (धार) - धायत और क्षीप्त भुजाएँ - प्रास - मूच्छंन पाश - भुजङ्गों के तुल्यमुखों वाले तेलिहान (फुस्कारे मरने वाले) और विदोष रूप में सर्वग करने वाले सागक-वज्र-प्रहरणीय-दीव्य मान तोमर-विना कोण (म्यान) वाले सङ्ग-शीत तिमल तोमर आदि अनेक आयुध थे । इन सभी प्रकार के अनेक अस्त्र-शस्त्रों से सुमज्जित होकर सभी दानव सदीप्त मत वाले थे और शरासनों को ग्रहण किए हुए वहाँ पर युद्ध स्थल में समुप-स्थित होकर थे ॥६-१४॥

ततः पुरस्कृत्य तदा कालनेमि महाह्वये ।

सा दक्षशस्त्रप्रवरा दंत्नाना रुक्चे चमू ॥१५

द्योनिर्मोलितसर्वाङ्गा घना नीलाम्बुदागमे ।

देवतानामपि चमृभुं मुद्गं शक्रपालिता ॥१६

उपेता सितकृष्णाम्या ताराभ्यां चन्द्रसूयंयोः ।

धाम्युनेगवती सौम्या तारागणपताकिनी ॥१७

तोषदाविद्धवसना ग्रहनक्षत्रहासिनी ।

यमन्द्रवर्णगुप्ता घनदेन च धीमता ॥१८

सम्प्रदीप्ताग्निवसना नारायणपरायणा ।

सा समुद्रोद्यसदृशो दिव्या देवमहाचमूः ॥१९

रराजास्त्रवती भीमः यक्षगन्धर्वशालिनी ।

तयोश्चम्बोस्तदानीन्तु बभूव स समागमः॥२०॥

छावापृथिव्यो मयोगी यथा म्याद्युपयये ।

तद्युद्धमभवद् घोरं देवदानवस कुलम् ॥२१॥

उस समय में उस महान् रण स्थल में ये सब कालनेपि की श्रवणा पुरोगामी बनाकर उपस्थित हो गये थे और वह दैत्यो की विशाल सेना परम दीप्त—वज्रस्त एवं अतीत श्रेष्ठ होकर दीप्तिमती हो गई थी । ॥१५॥ इसी भाँति महेंद्र के द्वारा सुरासुरों के बीच की भी सेना दिवलीक में निमीलित समस्त अङ्गो वाली नीलाम्बुदास में घनी परम प्रह्लाट हो रही थी ॥१६॥ अन्ध और सूर्य के श्वेत एवं कृष्ण ताराओं से समुपेत यह देवो की सेना थी जो ब्रह्म के सृष्टि कर्म से युक्त परम तीक्ष्ण और तारुण्य की पताकाओं वाली थी ॥ १७ ॥ तोपटो से आविष्ट वस्त्रों वाली—छद्म तथा नक्षत्रों के हास से समुन्न थी । वह देवो की विशाल सेना यम—इन्द्र—वह्न और परम धामान् अन्ध कृष्ण के द्वारा सुरासुरों में ॥ १८ ॥ अस्थित सम्प्रदीप्त अग्नि के समान वाली—तारुण्य प्रथ में पराशय एव समुद्र के शेष के समान यह देवो की अतीव महान् एवं विशाल सेना दिव्य हो रही थी ॥ १९ ॥ यशो और पद्मवर्षो की शोभा से सुमन्वत—आम स्वरूप वाली तथा नाना भाँति के अम्बु—वासो से युक्त होनी हुई दीप्तिमती हो गई थी । उसी समय में उस दोनों देवो तथा देवो की सेनाओं का वहीं पर समागम हो गया था ॥२०॥ जिस प्रकार वे युद्ध के विषय उपस्थित होने पर छावा पृथ्वी का मयोप हो गया करता है उसी भाँति वह देवो और दानवो का परम महान् घोर युद्ध हो गया था ॥२१॥

समापराक्रमपर दारुणं विलम्बं च ।

निद्वकमुवलाभ्यान्तु भीमस्तप सुरासुरा ॥२२॥

पूरुषपराभ्यः। मरुधा मायराभ्यामिवाम्बुदा ।

ताभ्या वनाभ्या महृष्टाश्वेरुम्ते देवदातवाः ॥२३॥

वनाभ्यां पार्वतीयाभ्यां पुष्पिताभ्यां यथागजाः ।
 समाजघ्नुस्ततोभेरी शङ्खान्दध्मुरनेकशः ॥२४
 स शब्दोद्यो भुव खञ्च दिशश्च समपूरयत् ।
 ज्याघाततलनिर्घोषो धनुषा कूर्जितानि च ॥२५
 दुन्दुमीनाञ्च निनदो दैत्यमन्तदधुः स्वतम् ।
 तेज्योन्यमभिसम्पेतु पातयन्त परस्परम् ॥२६
 वभञ्जु वाहुभिर्वाहून् हन्तमन्ये युयुत्सवः ।
 देवास्तु चाशनि घोरपरिघाश्चोत्तमायसान् ॥२७
 निस्त्रिशान् ससृजुःसंख्ये गदागुर्वीश्च दानवाः ।
 गदानिपातेभ्रम्नाङ्गावाणश्च शकलीकृताः ॥२८

वह युद्ध दपे तथा दिनय का क्षमा एव पराक्रम से परायण था ।
 वहाँ पर उन दोनों ही सेनाओं से अतीव भीम (भयावह) स्वरूपों वाले
 सुर और असुर निकल पड़े थे अर्थात् युद्ध करने के लिये मैदान में आ गये
 थे । पूर्व और अपर सागरों से सरस्व अम्बुदे के समान उन दोनों ही
 दलों से बाहिर निकल कर देखे गये वे देव तथा दानव वहाँ रणस्थल
 में विचरण कर रहे थे । २२ । २२ । पुष्पो से समन्वित पर्वतीय वनों
 से जिस तरह पज निकल आया करते हैं वसी तरह से उन देव-दानवों
 ने सेनाओं के समुदाय से बाहिर निकल कर अनेक भेरी और शखों की
 ध्वनि भूमण्डल-दिवलोक और सब दिशाओं में प्रसृत हो गयी थी ।
 धनुषों की प्रत्यञ्चाओं के घात से समुत्थित निर्घोष-धनुषों के कूर्जित
 दुन्दुभियों की ध्वनि यह सब दैत्य ध्वनि में अन्तर्हित हो गयी थी । वे
 परस्पर में घरघों का सम्पादन करते हुए एक दूसरे का नीचे गिराने
 लगे थे । बाहुओं से बाहुओं का भञ्जन करन लगे थे और दूसरे योद्धा
 हन्तयुद्ध करने की इच्छा वाले भी थे देवगण परम घोर अशनि और
 उत्तमायस परिघों को प्रयोग लय युद्ध में कर रहे थे । दानव गण वृद्ध से
 निस्त्रिशों का तथा अत्यन्त भारी एवं विशाल गदाओं को शत्रुओं पर छाड़

रहे थे । पशुओं के प्रहारों से सैनिक भग्न अङ्गों वाले तथा बाणों के द्वारा खण्ड-खण्ड अंगों वाले होगये थे ॥ २४-२८ ॥

परिपेतुर्भुंश केचित् पुनः केचित्तु जघ्नरे ।
 ततो रथैः सत्पुरगंविमानंश्चागुगामिभिः ॥२९॥
 समीयुस्तेषु सरब्धा रोपादन्योन्यमाहवे ।
 मवर्तमाना समरे सन्श्लोष्टपुटानना ॥३०॥
 रथारथैर्निरुध्यन्ते पादाताश्च पदातिभिः ।
 तेषा रथानान्नुमूल स शब्दः शब्दवाहिनाम् ॥ १
 नभोनभश्चहि यथानभस्यंजलदस्वनैः ।
 वमञ्जुस्तु रथान् केचित्केचित् सम्पाटितारथैः ।
 सम्वाधमन्ये सम्प्राप्य न शोकुश्चलितुं रथान् ।
 अन्योन्यमन्ये समरे दोर्भ्यामृतक्षिप्य दशिताः । ३३
 सह्यादमानाभरणा जघ्नुस्तथापि चमिणः ।
 अस्त्रैरन्ये त्रिनिमिष्ठा वेमू रक्त हतायुधि ॥ ४
 क्षारज्जलाना सहसा जलदाना समागमे ।
 तैरस्त्रशस्त्रप्रथित क्षिप्तोत्क्षिप्तमदाविलम् ॥३५॥

परस्पर में इस तरह से साम्राज्यों के प्रहारों से कुछ तो नीचे गिर गये थे और कुछ उठकर पुनः हतन किया करते थे । इसके उपरान्त रथों, गुरगुओं और शीघ्रगामी विमानों के द्वारा वे सन्ध में समागत हुए थे ॥ २९ ॥ उस महायुद्ध में वे रोपादेश में परस्पर में आत्यन्त सारथ्य हीनर समागत हुए थे । समराङ्गण में वर्तमान होकर अपने मुष्टों के ओंष्टी की क्रोध से जाट रहे थे ॥ ३० ॥ रथों पर सवार रथ वालों से और पैदल सैनिकों की पदातियों के साथ युद्ध कर रहे थे । शब्दवाही उनके रथों का शब्द सन्ध में लुप्त हो रहा था ॥ ३१ ॥ इस प्रकार स नभस्य जलना की ध्वनि शान्ति ही बँक, ती नभ नभ से टकरा रहा था । कुछ लोगों ने रथों का मन्थन किया था और कुछ लोग सम्पाटित रथों

के द्वारा सम्पाद्य कर रहे थे । अन्य लोग ऐसी सम्बाधा प्राप्त करके रथों के आगे चलाने में भी असमर्थ हो गये थे । दूसरे लोग उस समर में परस्पर में हाथों से ऊपर की क्षिप्त करके दक्षिण हुए थे ॥३२॥३३॥ वहाँ पर भी चर्मेशारी गण संहारमान क्षामरण वाले होकर हतन कर रहे थे । अन्य लोग अस्त्रों से निर्मित होकर युद्ध में बाह्य हुए रथ का बमन करते थे । जलदों के समायम काल में धरण करते हुए जलों के सदृश हो गये थे । उन सबके द्वारा वहाँ युद्ध शस्त्रों और अस्त्रों से दक्षित तथा क्षिप्त एक उत्थिप्त सदाओ से अर्वाणि या ॥३४॥३५॥

देवदानवसंधुक्व स कुल युद्धमावभौ ।

तद्दानवमहामेषं देवायुधविराजतम् ॥३६

अग्न्योन्यवाणवर्षेण युद्धदुर्दिनमावभौ ।

एतस्मिन्वतने ऋद्ध. कालनेमिः स दानवः ॥३७

व्यवर्धत नमुद्रीष. पूर्णमाण इवाम्बुद. ।

तस्य विद्ये च्वलायोऽहं प्रदीप्ताशातिवर्षेण. ॥३८

गात्रीनीर्णानरिप्ररया विनिपेतुब्रंलाहकाः ।

क्राधान्निश्चसतस्तस्य भ्रूभेदस्वेदवपिणः ॥३९

साग्निस्फुलिङ्गप्रसता मृखान्निष्पेतुरचिपः ।

तियगूद्धर्ध्वञ्च गगने ववृधुस्तस्य वाहवः ॥४०

पवतादिदव निष्क्रान्ता पञ्चास्था इव पन्नगाः ।

साऽम्ब्रजालं बहुविधर्धनुमि. परिधैरपि ॥४१

दिव्यगाकाशमावले पवतंरुच्छिर्नैरिध

सोऽर्जसोऽहं तदसन्तस्तस्यो मगामलालसः ॥४२

वह देवों और दानवों से पञ्च संक्षोभ दाता एव स कुल युद्ध हुआ था । वहा युद्ध दानव रथी महान् मेधो वाचा और देवों व अनेक क्षाम्रथों में लोमि । तथा परम्पर में एक दूसरों पर कणों की वर्षा में । क दुर्दिन के समान ही शमा दे हाग था । इती वीच में परम क्रुद्ध होकर वह

कारितेसि दानव समुद्रों के ओषो से युधेयान एक अश्वत्थ के लुप्त बड़ रहा था । विश्वतु के पलायमान बापीडों के द्वारा प्रदीप्त अग्नि की वर्षा करने उमरे अङ्गों से नागगिरि नाम वाले दवाहक निवातत हुए थे । भीष्टों के भेद से समुत्पन्न श्वेत की वर्षा करने वाले—जोध से जल्य और लम्बी प्रवासा लेने वाले उमके सुपु से अग्नि के नगी से प्रसक्त अचिपी निवशने नाम गई थी । शतन से ऊपर और तिरछी उस री बाहुएँ बड़ गई थी जा कि पर्वत से माली निकले हुए पापुसुयो वाले पन्नको के ही समान थी । वह कारितेसि दानव अनेक प्रकार से अश्वो के लाली से—धनयो से और परिषा के भी द्वारा उपन्न ऊँच पर्वतों की शक्ति दिव्य आवास में वाले कर रहा था । वह मन्त्रों के ले ही ज्ञानग्य वाला जिसके अन्न पापु से उद्धत हो रहे थे वही शण्डिल में स्थित हो गया था ।

॥ २६ - ४२ ॥

सन्महाभारतसिद्धि साक्षान्तेषु विद्वान् ।
 ऊर्ध्वमप्रसिद्धिं शैलशृङ्गाग्रपारपं ॥४३
 अथातवद दमयणान् वज्रणेव महासिरोन् ।
 बहुभिः शस्त्रनिर्मितैश्चिन्तितैस्तदितोः ॥४४
 न शैलुश्चानसु देवाः कारितेसिहता युधि ।
 मुष्टिभिर्निर्मिता येनित्त्वेनित्तु विद्वान्शृता ॥४५
 अक्षयमवपतम पैतु मह महोऽम् ।
 तेन विप्रामिता देवाः समरे कालतमिता ॥४६
 त शैलुश्चानवतोऽपि यन्त कर्तुं विव्रतम् ।
 नेन दानुः मह्ययादा स्पन्दित शरचन्दो ॥४७
 तदाशतवत्त गत्त चयित्तु न शशाक ह ।
 निजतोरमादगतता निजवशेषसुप्रग ॥४८
 नि यामः शृता न विपाना यरणाशुध ।
 यथाशैवयपार न परिपी कामरुपिणा ॥४९

सन्ध्यावलीन आतप से जिसकी शिलाओं को प्रसिद्ध कर लिया है ऐसा साक्षात् मेरु पर्वत के तुल्य वह ऊँचों के वेग से प्रस्रवित हुए पर्वत की चोटियों के अग्रभाग में स्थित पादपों से लज्ज के द्वारा महान् पर्वतों के ही तुल्य देवगणों का पालन कर रहा था। बहुत से शस्त्र और निस्त्रिणों से छिन्न-भिन्न निरोद्धों वाले युद्ध में कालनेमि के द्वारा निहत हुए देवगण चलने में भी असमर्थ हो गये थे। कुछ तो मुष्टियों के प्रहारों से निहत किये गये थे और कुछ देवगण बिपत्ती कुत कर दिये गये थे। ॥ ४३, ४४ ४५ ॥ गदा और गन्धर्व यतिगण महारणों के साथ ही नीचे निर्पतित हो गये थे। उस कालनेमि के द्वारा समस्त भूमि में समस्त देवगण विशेष रूप में लसित कर दिये गये थे। ४६ ॥ वे सब देवता ऐसे विगत चेतना वाले हो गये थे कि वे गत्य कृत हुए भी अथात् यत्न करने की पूर्ण चेष्टा करने पर भी कष्ट भी यत्न नहीं कर सके थे। उधरे महत्त्व नेत्रों वाले इन्द्र को भी शरीर के बन्धनों में स्पन्दित कर दिया था ॥ ४७ ॥ वह यद्यपि अपने ऐरावत हाथी पर स्थित था ता भी वहाँ से हिन नहीं सकना था। वह बिना जन वाल अम्नाद (मय) के महत्त्व तथा निर्लेप अर्णव के तुल्य प्रभा वाला हो गया था ॥ ४८ ॥ युद्ध में बिना पाश बदले वरुण को उसने बिना व्यापार वाला बना दिया था। काम रूपी उसने परिशो के द्वारा वैश्रवण का भी विगत कर दिया था ॥ ४९ ॥

वित्तदोऽपि कृत. सख्ये निजित कालनेमिना ।

यम. सर्वहरस्तेन मृत्वप्रहणे रणे ॥५०

याम्नामवस्था सन्त्यज्य भीत म्बन्दिक्षमाविदन् ।

स लोकपालानुन्माय कृत्वा तेषा-च ३३म तत् ॥५१

दिक्षु सर्वामुद्देह स्व चनुर्धा विदधे तदा ।

स नक्षत्रपथङ्गत्वा दिव्य स्वर्भानुदशनम् ॥५२

जहार लक्ष्मीं मामस्य त चारय विषय महत् ।

चालयामास दीप्तांशं स्वर्गद्वारात् स भास्करम् ॥५३॥
सायनञ्चास्य विषय जहार दिनकर्म च ।

सोऽग्निं देवमुत्त दृष्ट्वा चकारात्ममुखाश्रयम् ॥५४॥
चामृञ्च तस्मा जित्वा चकारात्मवशानुगम् ।

स समुद्रान् समानीय सर्वाश्च सरितो बलान् ॥५५॥
चकारात्ममुसे वीर्याद्दृहभूताश्च मिन्धवः ।

अपः स्ववशगाः कृत्वा दिविजा याश्च भूमिजाः ॥५६॥

उस महा दानव कालनेमि ने युद्ध में विजय (कुबेर) को भी
निजित कर दिया था । मृत्यु के प्रहरणों वाले उग्र रण में उसने सबदा
यम को भी विजित कर दिया था और अपनी साम्य अवस्था का परि-
त्याग करके वह मयभीम होकर अपनी दिशा में प्रवृत्त कर गया था ।
उसने सब लोहपातो को हटाकर और उनका जो धर्म था उसे हथ ही
करने लगा था । उस समय में सब दिशाओं में अपने ही देह को उसने
पार कर्णों में बनाकर गिथन कर दिया था । नक्षत्रों के मार्ग में पहुँच
कर वह दिश्य स्वर्गानु का दर्शन करता था ॥ ५०, ५१, ५२ ॥ उसने
सोम की लक्ष्मी और इन्के मन्त्रानु विषय का हरण कर लिया था । उसने
दीप्त अनु वाते भास्कर को स्वर्ग के द्वार में पालित कर दिया था ।
इसने सायन विषय को तथा दिन के कर्मों का भी समाप्त कर दिया
था । उस कालनेमि ने देवमुत्त अग्नि का देवकर उसे अपने मुख के
आश्रय पाला बना लिया था ॥ ५३ ५४ ॥ उसने वायुदेव को भी बड़े
बेताम अनीनकर अपने वज्र में रहने वाला अनुग बना लिया था । उस
कालनेमि दानव ने स्वपूर्वक समस्त समुद्रों और गरिताओं को भी
सागर अपने ही मुख में कर लिया था । उसने वीर्य से सब मिन्धु
उसके देहभूत बन गए थे । जो वन दिवसात में समुत्पन्न थे और जो
भूमिज थे । उन सबका अपन ही वज्र में रहने वाला कर लिया था
था ॥ ५१, ५६ ॥

स स्वयम्भुवि वा भाति महाभूतपतियया ।
 सर्वलोकमयो दैत्य-सवभूतभयावहः ॥१७
 स लोकपालकवपुश्चन्द्रादित्यग्रहात्मवान् ।
 स्थापयामास जगती मुगुप्तां धरणीधरं ॥१८
 पावकानिलसम्पातो रराज युधि दानवः ।
 पारमंष्ठ्ये स्थितः स्थानेलोकानां प्रभवोपमे ॥
 त तुष्टुवुर्दैत्यगणा देवा इव पितामहम् ॥१९॥

वह स्वय ही भूमण्डल में भूतो के पति के समान शोभित हो रहा था । वह दैत्य सब लोको में परिपूर्ण और समस्त प्राणियों की भय देने वाला था । वह लोकपालों के एक ही वपु वाला स्वय था और चन्द्र तथा आदित्य ग्रहों के भी स्वरूप वाला था । उसने धरणी धरो के द्वारा सम्पूर्ण जगती को मुगुप्त करके स्थापित किया था । युधि में वह दानव पावक और अनिल के सम्पात वाला दीप्तिमान हो रहा था । वह लोको के प्रभवोपम स्थान पारमंष्ठ्य में स्वयं ही स्थित हो गया था । पितामह को देवों की भाँति ही सब दैत्यगण उसका सस्तवन किया करते थे ॥ १७ । १८ । १९ ॥

७१ --कालनेमि और विष्णु का युद्ध

पञ्च तन्नाभ्यवतन्त विपरीतेन कर्मणा ।
 वेदो धम्मं क्षमा सत्य श्रीश्च नारायणाश्रया ॥१
 स तेषामनुपस्थानात् सन्नोद्योदानवेदवरः ।
 वैष्णवपदमन्त्रि छयवीनारायणान्तिकम् ॥२
 स ददश मृपणश्च शङ्खचक्रगदाधरम् ।
 दानवाना विनाशाय द्रामयन्तं गदा शुभाम् ॥३
 सजलाम्भोदसदृश विच्युत्सदृशवाससम् ।

स्वाहं स्वर्णपद्माद्यं शिखिनंकाश्यपं खगम् ॥४

दृष्ट्वा दैत्यविनाशाय रणे स्वस्थमवस्थिम् ।

दानवी विष्णुमक्षोभ्य बभाषे तुब्धमानसः ॥५

अथ स रिपुरस्माकं पूर्वपा प्राणनाशनः ।

जर्णवावासिनश्चैव मधोर्वे कंटभस्य च ॥६

अथ स विग्रहोऽस्माकमशाभ्यः तिल कथ्यते ।

अनेन समुपेक्ष्य दानवावहवो हताः ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—उस समय मे विपरीत कर्मों के होने के कारण मे वेद-धर्म-शान्ता-साय और नारायण प्रभु के समाध्य करने वाली थी—ये पाँच नहीं रहे थे । इन पाँचों के उपस्थित न रहने से वह दानवेश्वर बड़े क्रोध से पुनः हो गया था और फिर भगवान् विष्णु को प्राप्त करने की इच्छा करता नारायण प्रभु के समीप मे प्राप्त हो गया था । उमने वहाँ पर सुषणं पर समवस्थित—दानवी के विनाश करने के लिये अपनी परम गुप्त गदा की घुमात हुए शय-शक्र और गदा के धारण करने वाले प्रभु की देखा था ॥१, २, ३॥ वहाँ पर नारायण का स्वरूप जल सहित मेघ के समान था—विष्णु तुल्य यसन धारण करने वाला उनका रूप था तथा वे कश्यप के पुत्र-रक्षण पक्षी से समान्वित शिखी गण पर समाहूड थे ॥ ४ ॥ इस तरह के स्वरूप की शोभा से समवस्थित एवं परम स्वरूप और रणे मे दैत्यों के विनाश करने के लिए उद्यत विष्णु भगवान् को देखकर तुब्ध मन प.सा वह दानव शोभ न करने के योग्य विष्णु भगवान् से बोला ॥ ५ ॥ यह ही हम लोगों का गद्गा शत्रु है जो हमारे पूर्वजों के प्राणों का नाश करने वाला है तथा अनेक से आश्रय करने वाले मधु तथा कंटभ का शरण लेने वाला है । यही हमारा वह विघ्न है जो शमन न करने के योग्य कहा जाता करता है । आज हमने ता रणक्षेत्र मे बहुत-से दानवी का हनन किया है । ॥ ६, ७ ॥

अयं स निर्घृणोलोके स्त्रीबालनिरपन्नपः ।
 येन दानवनारीणां सीमन्तोद्धरणं कृतम् ॥८
 अयं सविष्णुर्देवानां वैकुण्ठश्चदिवीकसाम् ।
 अनन्तोभोगिनामप्सुस्वपन्नाद्यः स्वयम्भुवः ॥९
 अयं स नाथो देवानामस्माकं व्यथितात्मनाम् ।
 अस्य क्रोधं समासाद्य हिरण्यकशिपुर्हृतः ॥१०
 अस्य पञ्चापापार्थित्यं देवा मखमुत्थिताः ।
 आज्यं सर्हर्षिनिदंतमश्नुवन्ति शिघ्रा हृतम् ॥११
 अयं स निघने हेतुः सर्वेषाममरद्विषाम् ।
 अस्य चक्रं प्रविष्टानि कुलान्यस्माकमाहवे ॥१२
 अयं स किल युद्धेषु सुरार्थं त्यक्तजीवितः ।
 सवितुस्तेजसा तुल्यं चक्रं क्षिपन्निशत्रुषु ॥१३
 अयं सकालोर्दयानाकालभूतः समास्थितः ।
 अतिक्रान्तस्प्रकालस्यफलप्राप्स्यति केशवः ॥१४

यह वह है जो अत्यन्त ही निर्घृण और स्त्री तथा बालकों में भी निर्लज्ज है जिसने दानवों की नारियों का श्रीमन्तो का उद्धरण किया था ॥ ८ ॥ यह ही वह विष्णु है जो दिव्यलोक में रहने वाले देवों का वैकुण्ठ है—योगिदो का अनन्त और जल में शयन करने वाला वाद्य स्वयम्भुव है । यह ही व्यथित आत्मा वाले हमारे देवों का नाथ है । इसी के क्रोध की प्राप्ति कर हिरण्य कशिपु मारा गया था ॥ ९, १० ॥ इसी की छत्र छाया का उपाथय प्राप्त करके देवगण मखों के मुख में पित हुआ करते हैं—और तीन प्रकार से द्वात्रिंशत् महर्षियों के द्वारा समर्पित आज्य का प्रशन किया करते हैं ॥ ११ ॥ समस्त देवों के दुःखनों के निघने होने में यह ही एक हेतु है । जिसके चक्र में युद्ध क्षेत्र में हमारे कुल सब प्रविष्ट हो गये हैं अर्थात् मुदमंन चक्र के द्वारा कुलों के कुल मारे गये होकर समूल नष्ट हो गये हैं । यही वह है जो सुरों के लिये

युद्धो मे अपना जीवित भी त्याग देने वाला हो जाया करता है और जो सूर्य के तेज के तुल्य अपने सुदर्शन चक्र को शत्रुओं पर प्रक्षिप्त किया करता है। यह दैत्यो का वह साक्षात् काल है जो कि कात्तभूत हो र समास्थित रहा करता है। यह केशव अतिक्रान्त काल का फल प्राप्त करेगा ॥१२-१४॥

दिष्ट्ये दानी समक्षं मे विष्णुरेव समागतः ।

अद्य मद्वाहुनिष्पिष्टो मामेव प्रणमिष्यति ॥१५

यास्यम्यपचिति दिष्ट्या पूर्वेषामद्य सयुगे ।

इम नारायणं हत्वा दानवानां भयावहम् ॥१६

क्षिप्रमेव हुनिष्याभि रणेऽमरगणास्ततः ।

जात्यन्तरगतो ह्येष बाधते दानवान् मृधे ॥१७

एषोऽनन्त पुरा भूत्वा पद्मनाम इति श्रुतः ।

जघानं ऽणवे घोरं तावुभौ मधुकोटभौ ॥१८

द्विधाभूत वपु कृत्वा सिंहस्याद्धं नरस्य च ।

पितर म जघानवा हिरण्यकापपु पुरा ॥१९

गुभ गभमधस्तीनमाऽनर्देवतारणिः ।

श्रीन् मोराः उजहारंवा क्रममाणस्त्रिभिः क्रमं ॥२०

भूयस्त्विदानी सद्गामे सवासे तारकामये ।

मया सह ममागम्य स देवा विनशिष्यति ॥२१

बड़े ही हृषं की बात है कि इस समय मे यह विष्णु मेरे समक्ष मे समागत हो गया है। आज यह मेरी बाहुओं से निष्पिष्ट हाकर मुझको प्रणाम करेगा। बड़ी ही प्रशंसा की बात है कि आज युद्ध क्षेत्र में मे अपने पूर्व पुरवों की अर्चिता को प्राप्त करेगा अर्थात् उनके साथ निय व्यवहार का बदला ले सँगा। आज दानवों का भय देने वाले नारायण का मैं हनन कर ही सदसा ले सँगा ॥ १५। १६ ॥ यह जाति मे घन्तर्गत अर्थात् अन्व जाति वाला विष्णु युद्ध मे दानवों को

बाघरुहे दिया करता है। आज मैं बहुत ही ग्रीध्र रण में इसके पश्चात्
सब देवगणों का भी वध कर डालूंगा। यह पहिले अनन्त होकर पद्म-
नाभ—इम नाम से मुना गया है। इसने ही परम घोर एकाण्व मे
उन दोनो मधु कंटभ का हनन किया था। पहिले इसने दो प्रकार का
शरीर धारण किया था जो आधा तो सिंह का था और आधा नर का
था। इसी एक ने मेरे पिता त्रिरण्य कणिपू का हनन किया था ॥ १७ ॥
१८ ॥ १९ ॥ अर्चिने ने परम शुभ गभं धारण किया था और देवतारणि
इसी एक ने तीन पैडों के क्रम से क्रममाण होते हुए तीना लोको का
उद्धरण कर डाला था। पुनः इस समय मे इस तारकामय सश्राम के
सम्प्राप्त होने पर मेरे साथ समागम करके वह देव विनष्ट हो जायगा
॥ २० ॥ २१ ॥

एवमुक्त्वा बह्विधं क्षियन्धारण रणे ।
वाग्भिरप्रतिरूपाभियुद्धमेवाम्भ्यरोचयत् ॥२२
क्षिप्यमाणो सुरेन्द्रेण न चूकोप गदाघटः ।
क्षमाबलेन महता सस्मित चेदमब्रवीत् ॥२३
अल्प दपबल दैत्य ! स्थिरमक्राधज बलम् ।
हृत्स्त्व दपजं शीर्वाहत्वा गद्गापमे क्षमम् ॥२४
अवीरस्त्व मम मतो धिगेतस्त वाग्बलम् ।
न यत्र पृथ्याः सन्ति तत्र गजन्ति योषितः ॥२५
अह त्वा दैत्य ! परयामि पूर्वेषा मार्गगामिनम् ।
प्रजापतिकृत सत्तु नित्वा कः स्वस्तिमान् व्रजेत् ॥२६
अद्य त्वानाशयिष्यामिदेवव्यापागघातकम् ।
स्वेपुस्वेपुचस्थानेषुस्थापयिष्यामि देवता ॥२७
एष ब्रुवति वायव्य तु मृष्टे शीवत्सधारिणि ।
जहासदानवः क्रोधाद्धस्तावकसहायुधान् ॥२८
इस प्रकार मे अनेक रीतियो से कहकर तथा नारायण पर रण

में जड़ों को बौद्ध करके अग्निस्वयं वायुको के द्वारा अपने पुत्र
 करने को ही पन्द्र किता या ॥ २० ॥ इन तरह उन अमुरेन्द्र के द्वारा
 आश्रित होने हुए भी नशधारी प्रभु ने कोई श्रेष्ठ नहीं किया या और
 महात् क्षमा के बल का महात् नैते हुए मुस्करा कर यह वचन कहा
 या ॥ २१ ॥ ईश का बल अन्य होना है, हे वैश्व ! जो बिना किसी
 श्रेष्ठ ने उत्पन्न होने वाला दण होता है वह स्थिर बल हुआ करता है ।
 व क्षमा का त्याग करके जो कुछ भी इन ममत्त ने बोल रहा है इन शर्तों
 (धनम्) से उत्पन्न हुए दोषों ने ही इन हो गया है ॥ २४ ॥ मेरी
 मति में तो व बहुत ही अश्रीर है । तेरे इस वचनो के बल को प्रिकार
 है अही पर कोई बनगालो पुरुष नहीं रहा करने है वही पर स्थिरी भी
 इनी प्रकार ने गर्जित किया करनी है ॥ २२ ॥ हे वैश्वराज ! मैं तो
 तुझको अपने पूर्वज पुरखाओ के ही मर्यो का अनुभवत करने वाला देख
 रहा हूँ । प्रजापति के द्वारा किये हुए नेतृ का भेदन करके कौन पुरुष
 कल्याण वाला हो सकता है ? अर्थात् वह कभी भी कल्याणकारी हो ही
 नहीं सकता है । २६ । मैं आज ही देवों के व्यापारों के धान करने
 वाले तुझको नाष्ट कर डलूँगा और उन देवताओं को उनके अपने अपने
 स्थानों पर स्थापित कर दूँगा ॥ २७ ॥ उन महात् पुत्र क्षेप में शोचत
 के विहन को प्राण्य करन वाले प्रभु के द्वारा इन प्रकार से बीमने पर
 वह दानव जाननेनि बहुत हेना या और उलने बहुत ही श्रेष्ठ से अपने
 हाथों को शत्रुओं से मुक्त कर लिया या ॥ २८ ॥

न वाशुशतमुद्यम्य सर्वस्त्रग्रहण रणे ।

ब्रौधद्द्विगुणरत्नाक्षो विष्णुवक्षस्यताडयत् ॥२९॥

दानवाश्चापि सन्तरे मयनारपुरोगमाः ।

रचनापुधनिस्त्रिशा विष्णुगभ्यद्रवन् रणे ॥३०॥

स नाडयमानाऽनिवलैर्दैत्यैः सर्वोद्यतावूधः ।

न चकाल ततो बुद्धे कम्पमान इवाचलः ॥३१॥

संसक्तश्च सुपर्णेन कालनेमी महासुरः ।
 सर्वप्राणेन महती गदामुद्यम्य बार्हृषिः ॥३२
 धीरां ज्वलन्तीं मुमुचे सरब्धां गृहडोपरि ।
 कर्मणातेनदैत्यस्य विष्णुविस्मयमाविशत् ॥३३
 यदा तेन सुपर्णस्य पातिता मूर्द्धनि सा गदा ।
 सुपर्णं श्यथित दृष्ट्वा कृतञ्च वपुरात्पतः । ३४
 क्रोधसरक्तनयनो वंकुण्ठश्चक्रमाददे ।
 व्यवद्वंत्त स वेगेन सुपर्णेन समं विभ्रुः ॥३५

उस दानव ने उस रण स्थल में सभी प्रकार के अस्त्रों को ग्रहण करने वाले सैकड़ों बाहुओं को उठाकर क्रोध में द्विगुणित लाल नेत्रों वाले ने भगवान् विष्णु पर उनके वक्षःस्थल पर प्रताड़ित किया था ॥३२॥ अन्य दानव भी जिनमें मय और तार पुरोगामी थे सबने निश्चिन्त और अन्य आयुधों को समुद्यत करके भगवान् विष्णु पर रण में आक्रमण कर दिया था ॥ ३० ॥ सब प्रकार के समुद्यत आयुधों वाले—अत्यन्त बलशाली देवों के द्वारा श्म भक्ति ताड्यमान होते हुए भी भगवान् विष्णु उस युद्ध में जिना कम्प दल एक पर्वत की तरह स्थिर रहते हुए वहाँ पर विलकुल भी चलित नहीं हुए थे ॥ ३१ ॥ विष्णु प्रभु सुपर्ण पर ही संभक्त थे कि महासुर उस कालनेमि ने अपना पूण जोर लगाकर प्राण-पण से महान् विशाल गदा को बाहुओं से उठाकर जो कि अत्यन्त घोर और आज्वल्यमान थी बहुत ही सरब्ध होती हुए गृहड के ऊपर उसे छोड़ दिया था । दैत्य के उस कर्म से भगवान् विष्णु को भी बड़ा विस्मय हो गया था ॥ ३२, ३३ ॥ जिस समय में उस दानव ने सुपर्ण के मस्तक पर उस महती गदा को पातित किया था सुपर्ण को देखकर उन्होंने अपना वनु व्यथित कर दिया था फिर महान् क्रोध से संरक्त नयनों वाला होकर भगवान् वंकुण्ठनाथ ने अपना चक्र ग्रहण किया था और सुपर्ण के साम ही वह विभ्रु आगे की बट मये थे ॥३४, ३५॥

भुजाश्चास्य व्यवद्धंस्त व्याप्नुवन्तो दिशो दश ।
 प्रदिशाश्चैव स्व गां वं पूरयामास केशवः ॥३२
 ववृधे च पुनर्लोकान् क्रान्तुकाम इवीजसा ।
 तजनायासुरेन्द्राणा बद्धंभान नभस्तले ॥३७
 ऋषयश्चैव गन्धर्वास्तृष्टचुर्मधुसूदनम् ।
 सर्वान् किरीटेन लिहन् साभ्रमम्बरमम्बरैः ॥३८
 पद्भ्याक्रम्य वसुधा दिशः प्रच्छाद्य बाहुभिः ।
 स सूयकरतुल्याभ सहस्रारमरिक्षयम् ॥३९
 दीप्ताभिसदृश घोर दशनेन सुदर्शनम् ।
 सुवर्णरेणुपयन्त वज्रनाभ भयापहम् ॥४०
 मेदोऽस्थिमज्जारुधिरं, सित्तन्दानवसम्भवं ।
 अद्वितीयप्रहरण क्षुरपर्यन्तमण्डलम् ॥४१
 स्रग्दाममालावितर्तं कामग कामरूपिणम् ।
 स्वयस्वयम्भुवा मृष्ट भयद सर्वविद्विषाम् ॥४२

इनकी भुजाएँ दशो दिशाओं में व्यापक हानी हुईं वह गयी थी
 और भगवान् केशव ने उनकी सब प्रदिशाओं में—भूमि तथा आकाश में
 पूरित कर दिशा था ॥ ३६ ॥ फिर महान् ब्राह्मणों से समस्त लोकों का
 प्रमण करने की इच्छा वाले प्रभु और भी वधित हो गये थे तथा नभस्तल
 में भी उन असुरेन्द्रों के तर्जन के लिये वे बद्धमान हो गये थे । अम्बरों
 के द्वारा अश्रु सहित अम्बर की भाँति किरीट के द्वारा सबका स्पर्श करते
 हुए वे उस समय में ही गये थे तथा वहाँ पर मधुसूदन प्रभु का सस्तवन
 ऋषिगण और गन्धर्व लोग करने लगे थे ॥ ३७, ३८ ॥ प्रभु ने अपने
 चरणों से सम्पूर्ण वसुधा को समाक्रान्त करने बाहुओं में सभी दिशाओं
 को प्रच्छादित कर दिया था तथा उनमें फिर सूर्य की किरणों के तुल्य
 आभा वाले—मह्य अरों से समन्वित और अरियों के शय को करन
 वाले उस चक्र को प्रयुक्त किया था ॥ ३९ ॥ वह चक्र दीप्त घग्नि के

समान महान् घोर था तथा देखने से वह सुन्दर दर्शन वाला अर्थात् सुदर्शन नामधारी था । मूर्ध्नि रेणुर्धन्त—दक्षनाभ—भयों का अपहरण करने वाला—दानवों के शरीरों से समुत्पन्न मैदा, अस्थि, मज्जा तथा रंधिर से मिकत—क्षुर पर्यन्त मण्डल वाना—एक परम अद्वितीय प्रहरण (अस्त्र)—सगदाम (मालाएँ) से विनत—स्वेच्छया गमन करने वाला—कामरूपी—समस्त दानवों को भय देने वाला और स्वयं ही स्वयम्भू प्रभु के द्वारा वह सृजित किये जाने वाला था ॥४०-४२॥

महृषिरापरविष्ट नित्यमाहवर्दपितम् ।

क्षेपणाद्यस्य मुह्यन्ति लोकाः सस्याणुजङ्गमाः ॥४३

कथ्यादानि च भूतानि तृप्ति यान्ति महामृधे ।

तदप्रतिमकर्मोग्रं समानं सूयवर्चसा ॥४४

चक्रमुद्यम्य समरे क्रोधदीप्तो गदाधरः ।

समुष्णन् दानव तेजः समरे स्वेन तेजसा । ४५

चिच्छेद वाहूश्चक्रेशु श्रीधरः कालनेमिनः ।

तच्च ववत्रक्षत घोर साम्निपूर्णादृहासि वै ॥४६

तस्य दत्तस्य चक्रेण प्रममाथ वलाद्धरिः ।

स च्छिन्नवाहुर्विशिरा न प्राकम्पतदानवः ॥४७

कवन्धोऽन्नस्थित संख्ये विशाख इव पादप ।

सन्वितस्ममहापत्नीवायो कृत्वासमञ्जवम् ॥४८

उरसा पातयामास गरुडःकालनेमिनम् ।

स तस्य देहो विमुखो विवाहुरच परिभ्रमन् ॥४९

वह ऊपर से वनलाये गुपगणों वाला भुदर्शन चक्र महृषियों के शरीरों से समाविष्ट था और नित्य ही युद्ध में वर्षों से ममायुवत रहने वाला था । जिसके क्षेपण करने से सभी स्थावर एवं जङ्गम लोक सूच्छित्त हो जाया करते हैं । महान् युद्ध में कथ्यादान आदि जो भूत हैं वे उस चक्र द्वारा प्रवाहित हुए दानवों के रक्त के पान से परम तृप्ति को प्रा

हुआ करते हैं ऐसे उस अनुपम कर्म के करने से उग्र और सूर्य के वर्चम के तुल्य उस अपने सुदर्शन चक्र को उठाकर समर में क्रोध से दीप्त गदाधर ने छोड़कर अपने तेज के द्वारा युद्धस्थल में दानवों के तेज का छेदन कर दिया था और श्रोत्रर प्रभु ने उस अपने चक्र से कालनेमि की बाहुओं को भी काट डाला था। उस दानव के अग्नि से परिपूर्ण अट्टहास वाले सौ परम घोर मुखों का धी हरि ने उसी चक्र के द्वारा बलपूर्वक प्रमथन कर दिया था। किन्तु वह दानव बाहुओं शिर के कट जाने पर भी वहाँ पर प्रकम्पित नहीं हुआ था। उसका वह कवच (धड) युद्ध स्थल में बिना शाखा वाले पादप के समान अवस्थित था। गरुड ने अपने पंखों को फैलाकर तथा वायु के समान वेग को करके अपने उरस्थल के द्वारा उस कालनेमि के धड को नीचे गिरा दिया था और उसका वह बिना मुख तथा बाहुओं वाला देह इधर-उधर परिभ्रमण कर रहा था ॥ ४३-४६।

निपपात दिवन्त्यक्त्वा क्षोभयन् धरणीतलम् ।
 तस्मिन्निपतितेदंत्येदेवाः सपिगणास्तदा ॥५०
 साधु साध्वात् वंकुण्ठ समेताः प्रत्यपूजयन् ।
 अपसपन्तु दंत्याश्च युद्धे दृष्टपराक्रमाः ॥ ५१
 ते सर्वे बाहुभिर्व्याप्ता न शोक्रुश्चक्षितु रणे ।
 काश्चित् केशेषु जग्राह काश्चित् कण्ठेष्वपीडयन् ॥५२
 चक्रपं कस्यचिद्वषत्र मध्येगृह्णादथापरम् ।
 ते गदाचक्रनिदग्धा गतसत्त्वा गतासवः ॥५३
 गगनाद्भ्रष्टसर्वाङ्गा निपेतुर्धरणीतले ।
 तेषु दस्येषु सर्वेषु हतेषु पुरुषोत्तमः ॥५४
 तस्थौशकप्रियं कृत्वा कृतकर्मा गदाधरः ।
 तस्मिन् विमर्दे निवृत्ते संग्रामे तारकामये ॥५५
 तं देशमाजगामानु ब्रह्मा लोकपितामहः

सर्वैर्त्रहापिभिः साष्टं गन्धर्वान्सरसाङ्गणैः ॥५६

वह धरणी तल की क्षोभित करता हुआ दिवलोक को त्याग कर के भूमि पर गिर गया था । उस समय में उस महा दानवेश्वर के निप-
तित हो जाने पर समस्त देवगण और ऋषि वृन्द "साधु-साधु" अर्थात्
बहुत ही अच्छा हुआ यह कहते हुए सब एकत्रित होकर भगवान् दीकुण्ड-
नाथ की पूजा करने लगे थे । युद्ध में दैत्यगण पराक्रम देख लेने वाले
अपमर्षण कर जाते । किन्तु बाहुओं से व्याप्त वे सब रणस्थल में चल
नहीं सकते थे । उनमें से कुछ को तो केस पकड़ कर ग्रहण किया था
पीर कुछ को कण्डों से ताड़ित किया था ॥ ५०, ५१, ५२ ॥ किसी के
मुख को पकड़ कर कर्षित किया था और दूसरे को मध्य भाग में ग्रहण
किया था । वे सब गदा और चक्र के प्रहारों से निर्दम्य—गत प्राण और
हीन तत्त्वों बलि हो गये थे ॥ ५३ ॥ गगन से उद्घ्रष्ट समस्त अङ्गों वाले
धरणी तल में सब निपतित हो गये थे । उन सब दैत्यों के निहत हो
जाने पर पुरुषोत्तम प्रथम गदाधारी महेश्वर का कर्म सम्पादन करके तथा
इन्द्र का प्रियकर्म करके उस विमर्द तारकाभय सग्राम के निवृत्त होने
पर वहाँ पर ही समवस्थित हो गये थे । उनी स्थल पर लोको के पिता
यह ब्रह्माजी समस्त ब्रह्मापिगण और गन्धर्व एवं असुरगणों के साथ शीघ्र
ही आकर उपस्थित हो गये थे ॥५४-५६॥

देवदेवो हरि देवं पूजयन् वाक्यमब्रवीत् ।

कृत्स्न देव महत्कर्म मुराणा शल्यमुद्घृतम् ॥ ५७

वधैर्नातेन दैत्याना वयं च परितोषिताः ।

योऽथ त्वया हतो विष्णो ! कालनेमी महामुरः ॥५८

त्वमेकोऽस्य मृधेहन्ता नान्यः कश्चन विद्यते ।

एपदेवान्परिभवत्तुकाश्चसमुरामुरान् ॥५९

ऋषीणा वदनं कृत्वा मामपि प्रतिगजति ।

तदनन तवाग्नेण परिनुष्टार्जस्मि कर्मणा ॥६०

यदयं कालकल्पस्तु कालनेमी निपातितः ।
 तदा गच्छस्व भद्रन्ते गच्छाम दिवमुत्तमम् ॥६१
 ब्रह्मर्षयस्त्वा तत्रस्थाः प्रतीक्षन्ते सदोगताः ।
 कञ्च.ह तव दास्यामि वर वरनताम्बर ! ॥६२-
 सुरेण्यथ च दंत्येषु वराणा वरदो भवान् ।
 निर्यातयंतस्त्रीलोक्य स्पीत निहतकण्ठयम् ॥६३

देवो क देव ने श्री हरिदेव का मध्यर्चन करते हुए यह वाक्य कहा था कि हे देव ! आपने बहुत बड़ा कर्म सम्पादित किया है और सु गणों के राज्य को आपने उद्धृत कर डाला है । दंत्यों के इस बध से आपने हम सबको परितोषित कर दिया है जो कि हे विष्णो ! आपने इस महासुर कालनेमि को निहत वर डाला है ॥ ५७, ५८ ॥ इस युद्ध में आप ही एक इसके हनन करने वाले थे अन्य कोई भी आपके अतिरिक्त नहीं है । इससे सब देवों को परिभूत कर दिया है और सुरों एवं असुरों के सहित लोको का भी परिभव किया है । यह ऐसा दुष्ट था कि यह ऋषियों का कदन करके मुक्तों को भी अपनी गर्जना दिखाता था । आपके अत्युत्तम इस कर्म से मैं बहुत ही परितुष्ट हुआ हूँ ॥ ५६, ६० ॥ जो यह काल के सदृश कालनेमि आपके द्वारा निपातित हुआ है यह बहुत ही अच्छा हो गया । अब आप पधारिये आप का परम मङ्गल होवे—अब हम भी उत्तम दिवलोक को चलते हैं । वहाँ पर सदोगत समुपस्थित ब्रह्मर्षि गण आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं । हे वरदान देने वाले मे परमश्रेष्ठ ! मैं आपको कौन-सा वरदान दूँगा । आप सुरों से और दंत्यों से वरदानों को प्रदान करने वाल वरद है । इस परम विरक्त त्रैलोक्य को निहत कण्ठक वाला निर्यात कर डालिये ॥ ६१ । ६२ । ६३ ॥

अस्मिन्नेव मृधे विष्णो ! शत्राय नुसह ह्मने ।
 एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणा हरिर.यय. ॥६४

देवांश्छक्रमुखान् सर्वानुवाच शुभया गिरा ।
 शृण्वन्तु त्रिदशाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः ॥६५
 श्रवणावहितैः श्रोत्रैः पुरस्कृत्य पुरन्दरम् ।
 अस्माभिः समरे सर्वे कालनेमिमुखा हताः ॥६६
 दानवा विक्रमोपेताः शक्रादपि महत्तराः ।
 अस्मिन्महतिःसग्रामे दैतेयो द्वौ विनिःसृती ॥६७
 विगोचनश्च दैत्येन्द्रः स्वमनुश्च महाग्रहः ।
 स्वा दिश भजता शक्रो दिश वरुण एव च ॥६८
 याम्यायम पालयितामुराञ्च घनघिपः ।
 ऋक्षैः सह ययायोग गच्छता चैवचन्द्रमाः ॥६९
 अब्दं ऋतुमुखे सूर्यो भजतामयनैः सह ।
 आज्यभागा प्रवतन्ता सदरयैरभिपूजिताः ॥७०

हे विष्णो ! इसी युद्ध में आपने महान् आत्मा वाले इन्द्र के लिये यह सब कर दिया है । इस प्रकार स भगवान् सह्याजी के द्वारा अविनाशी श्री हरि से कहा गया था । तब श्री हरि न इन्द्र जिनमें प्रधान थे उन समस्त देवों से परम शुभ वाणी से कहा था—विष्णु भगवान् ने कहा था—अब सब देवगण श्रवण कर लो जितने यहाँ पर इस समय में समागन हुए हैं ॥ ६४, ६५ ॥ श्रवण में परम समाहित श्रोतों से पुरन्दर द्वाग्रे का करक हमन समर में कालनेमि प्रमुख सब दानव निहत कर दिये थे । य समस्त दानव विक्रम से उषेन ये तथा इन्द्र से भी महत्तर थे । इस महान् सग्राम में दो दैतव विनि सृत हुए थे ॥ ६६, ६७ ॥ एक तो दैत्येन्द्र विरोचन था दूसरा महान् ग्रह स्वमनु था । अब इन्द्र अपनी दिशा का संकेत करे श्री वरुण अपनी दिशा में चले जावे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ याम्य दिशा में यम चल जावे । घनघिप उत्तर दिशा में पहुँच जावे । ऋक्षों के सहित यया याग चन्द्रमा भी चल जावे । ऋतुमुख में सूर्यो के साहस

सूर्य्यं अब्द का सेवन करे । सदस्यो के द्वारा अभिभूजित आज्यभाग प्रवृत्त हो जावे । ६९, ७० ॥

हृयन्तामग्नेयो विप्रर्वेदेदृष्टेन कर्मणा ।

देवाश्चाप्यग्निहोमेन स्वाध्यायेन महर्षयः ॥७१

थाद्धंन पितरश्चैव तृप्तिं यान्तु यथासुखम् ।

वायुश्चरतु मार्गस्थे स्त्रिधा दीप्यतु पावकः ॥७२

त्रोऽस्तु वर्णा इव लोकास्त्री स्तर्पयश्चात्मजगुणैः ।

क्रतवः सम्प्रवर्तन्ता दीक्षणीर्येद्विजातिभिः ।

दक्षिणाश्चोपपाद्यन्ता याज्ञिकेभ्यः पृथक् पृथक् ।

गान्तु सूर्यो रसान् सोमो वायु प्राणाश्च प्राणिषु ॥७४

तर्पयन्तः प्रवर्तन्ता सर्वेऽव स्वकर्मभिः ।

यथावदानुपूर्व्येण महेंद्रमलयोद्भवाः ॥७५

लौलोक्यमातरःसर्वा समुद्रयान्तु सिन्धवः ।

दंष्ट्रेभ्यस्त्यज्यता भीश्च शान्तिव्रजतदेपताः ॥७६

स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि ब्रह्मलोक सनातनम् ।

स्वगृहे स्वमंलोके वा सग्रामे वा विशेपतः ॥७७

वेदी के द्वारा दृष्ट कर्म ने विप्रों के द्वारा अग्निघो में हवन किया जावे । अग्नि के होम से देवगण—स्वाध्याय से महर्षि गण और थाद्ध ने पितृगण सुप्रपूर्वक तृप्ति को प्राप्त करे । वायु अपने मार्ग में स्थित होकर सञ्चरण करे और पावक तीन प्रकार दीप्त होवे । दीक्षणीय द्विजातियों के द्वारा अनुगण तीन वर्णों को और तीन लोकों को अपने गुणों से तृप्ति करते हुए सम्प्रवृत्त होवे ॥ ७१, ७२, ७३ ॥ याज्ञिकों के लिये पृथक् २ दक्षिणाएँ उपपन्न होवे । सूर्यं गी को—सोम रसों को और वायु प्राणियों में प्राणों को प्रदान करे । सभी अपने २ कर्मों के द्वारा तृप्त करने हुए प्रवृत्त होंगे । यथावत् आनुपूर्वी से महेंद्र और मलय में उद्भव पान जाने स्वकर्मों में तृप्ति देते हुए प्रवृत्त हो जावे । लौलोक्य

की माताएँ समस्त सिन्धु समुद्र में गमन करें । सब देवता लोग अब
 दैत्यों के द्वारा होने वाले भय का त्याग कर दें । और सबका कल्याण
 होवे । अब मैं सनातन ब्रह्मलोक को गमन कहूँगा । जयवा घर में—
 स्वर्ग लोक में तथा विशेष रूप से संप्राम में गमन कहूँगा ॥ ७४। ७५
 ७६। ७७ ॥

विश्रम्भो वो न मन्तव्यो नित्यं क्षुद्रा हि दानवाः ।
 छिद्रेषु प्रहरन्त्येते न तेषां सस्यति ध्रुवा ॥७८
 सीम्यानामृजुभानां भवतामार्जवन्धनम् ।
 एवमुक्त्वा सुरगणान् विष्णुःसत्यपराक्रम ॥७९
 जगाम ब्रह्मणा साद्वं स्वलोकन्तु महायशाः ।
 एतदाश्चयमभवन् सग्रामे तारकामये ॥
 दानवानाञ्च विष्णोश्च यन्मात्त्व परिपृष्टवान् ॥८०

आपको वि श्रम्भ नहीं मानना चाहिए । ये दानव नित्य ही क्षुद्र
 हैं । छिद्रों में ही प्रहार किया करते हैं और उनकी सस्यति निश्चित
 नहीं है ॥ ७८ ॥ आप लोग परम सीम्य तथा सरल भावों वाले हैं ।
 आपका धार्जंन (सरलता) ही धन है । इस प्रकार से सत्य पराक्रम
 वाले भगवान् विष्णु ने सुरगणों से कह कर फिर महान् यज्ञ वाले
 वे ब्रह्मा जी के साथ ही स्वर्गलोक को चले गये थे । उस तारका-
 मय संप्राम में यह एक आश्चर्य ही गया था जिसको दानवों का और
 भगवान् विष्णु का ही कहना चाहिए और यही आपने मुझसे पूछा था
 ॥७९। ८०॥

७२—भव माहात्म्य वर्णन

अतः पद्मोद्भस्तात विस्तेण त्वयेरितः ।
 समासाद्भवमाहात्म्य भैरवस्य विधीयताम् ॥१
 तस्यापि देवदेवस्य शृणु ध्व कर्म चात्तमम् ।
 आसीद्वैत्योऽन्धको नाम भिन्नाञ्जनचयोपमः ॥२
 तपसा महतायुक्तो ह्यवध्य स्त्रिदिवीकसाम् ।
 स कदाचिन् महादेवपार्वत्या सहितप्रभुम् ॥३
 क्रीडमान तदा दृष्ट्वा हतुं देवीं प्रचक्रमे ।
 तस्य युद्ध तदा घोरमभवत् सह शम्भुना । ४
 आवन्त्ये विषये घोरे महाकालवन प्रति ।
 तस्मिन् युद्धे तदा रुद्रश्चान्धकेनातिपीडितः ॥५
 सुपुत्रे वाणमत्युग्रनाम्ना पाशुपत हि तत् ।
 रुद्रावाणविनिर्भेदाद्गुधिरादन्धकस्य तु ॥६
 अन्धकाश्च समुत्पन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
 तेषां विदार्यमाणानां रुधिराक्षरे पुनः ॥७

ऋषिगण ने कहा—हे भगवन् ! आपके द्वारा वर्णित विस्तार-पूर्वक पद्मोद्भव का श्रवण कर लिया है । अब आप सक्षेप से भैरव का भव माहात्म्य वर्णित कीजिए ॥ १ ॥ महा महर्षि सूतजी ने कहा—देवी के देव उसका भी उत्तम कर्म का आप श्रवण करो । एक अन्धक नाम वाला भिन्नाञ्जन चय वाला वैश्य था ॥ २ ॥ वह वैश्येन्द्र महान् तप से युक्त था और देवी का वध न करने के योग्य था । उसने किसी समय में पार्वती के सहित प्रभु महादेव को क्रीडा करते हुए देखा लिया था और उसी समय में उस वैश्य ने देवी पार्वती के हरण करने का उपक्रम किया था । उसी समय में उस वैश्य का शम्भु के साथ परम घोर युद्ध था ॥ ३, ४ ॥ आनन्द्य घोर विषय में महाकाल वन के प्रति

उस समय मे उस महागुह मे अन्धक के द्वारा रुद्रदेव को अत्यन्त उत्पीडित किया था । १५॥ पाशुपत्र नाम वाले अत्यन्त उग्र बाण को प्रसूत किया था । रुद्रदेव के बाण के द्वारा विषेप निर्भेद को प्राप्त होने वाले अन्धक के शरिरे से संकडो और सहस्रो अन्धक समुत्पन्न हो गये थे । जब उनका विदारण किया गया तो फिर विदीयमाण उनके शरिरे से दूसरे और फिर अन्धक पैदा होगये थे ।। ६, ७ ॥

बसूचुरन्धका घोरा यैर्व्याप्तमखिल जगत् ।
 एव मायाकिनं दृष्ट्वा तच्च देवस्तदान्धकम् ॥८
 पानाथंमन्धकास्तस्य सोऽमृजन्मातरस्तदा ।
 माहेश्वरी तथाब्राह्मी कौमारी मालिनीतथा ॥९
 सौपर्णी ह्यथ वायव्या शाक्ती वै नऋती तथा ।
 सौरी सोम्या शिवा दूती चामुण्डा चाथ वारुणी ॥१०
 वाराहीनारसिहीच दैत्यवीच चलच्छिवा ।
 शतानन्दाभमानन्दा पिच्छलाभगमालिनी ॥११
 वला चातिबला रक्ता मुरभीमुखमण्डिका ।
 मातृनन्दा भुनन्दाच विशाली शकुनी तथा ॥१२
 रेवतीच महारक्ता तथैव पिलान्छिका ।
 जयाच विजया चैव जयन्ती चापराजिता ॥१३
 याली चैव महाकाली दूती चैव तथैव च ।
 सुमगा दुर्भगा चैव कराली नन्दिनी तथा ॥१४

उस समय मे परम घोर अन्धक उत्पन्न हो गये थे तिनको यह समस्त जगत् एकदम व्याप्त हो गया था । उस समय मे इस प्रकार से मायावी उस अन्धक को दृष्ट ने देखकर उस अन्धकामय के पान के लिए उस समय मे उन्होंने माताओं का गृहन किया था । अब उन माताओं के नाम बतलाये जाते है—माहेश्वरी—ब्राह्मी—कौमारी—मालिनी—सौपर्णि—वायव्या—शाक्ती—नैऋती—मौरी—सोम्या—शिवा—दूती—

चामुण्डा—दारुणी ॥ ८ । ६ । १० ॥ वाराही—नारसिंही—वैष्णवी—
 चतच्छिवा—शतानन्दा—भगानन्दा—विच्छता—भगमालिनी—बला—
 बलिदत्ता—रक्त—नुरभी—मुखमण्डिका—मानूनन्दा—सुनन्दा—विद्यालो—
 सकुनी—रेवती—महारक्ता—पिलपिच्छिका—जया—दिजया—जगती—
 अपराजिता—काली—महाकाली दूती—सुभमा—दुर्भगा—कराली—नन्दिनी
 ॥११-१४॥

अदितिश्च दितिश्चव मारीवं मृत्युरेव च ।
 कर्णमोटी तथा ग्राम्या उलूकीच घटोदरी ॥१५
 कपाली वज्रहस्ता च पिशाची राक्षसी तथा ।
 भृगुण्डो शाङ्करी चण्डा लाङ्गली कुटभी तथा ॥१६
 खेटा सुलोचना घूम्रा एकवीरा करालिनी ।
 विशालदण्डिणी श्यामा त्रिजटीकुक्कुटीतथा ॥१७
 वैनायकी च वैताली उन्मत्तोदुम्बरी तथा ।
 सिद्धिश्च लेलिहाना च केकरी गर्दभीतथा ॥१८
 भृकुटी बहूपुत्रीच प्रेतयाना विडम्बिनी ।
 क्रौञ्चा शैलमुखी चैव विनता सुरमा दनु ॥१९
 उषा रम्भा मेनकाच सलिलाचित्ररूपिणी ।
 स्वाहास्वघा वषट्कारा घृतिर्ज्येष्ठाकर्षदिनी ॥२०
 माया विचित्ररूपा च कामरूपा च सङ्गमा ।
 मुखेविना मङ्गला च महानासा महामुखी ॥२१

अदिति—दिति—मारी—मृत्यु—कर्णमोटी—ग्राम्या—उलूकी—
 घटोदरी—कपाली—वज्रहस्ता—पिशाची—राक्षसी—भृगुण्डो—शाङ्करी—
 चण्डा—लाङ्गली—कुटभी—खेटा—सुलोचना—घूम्रा—एक वीरा—करालिनी—
 विशाली—दण्डिणी—श्यामा—त्रिजटी—कुक्कुटी—वैनायकी—वैताली—उन्मत्ता—
 उदुम्बरी—सिद्धि—लेलिहाना—केकरी—गर्दभी—भृकुटी—बहूपुत्री—प्रेतयाना—
 विडम्बिनी—क्रौञ्चा—शैलमुखी—विनता—सुरमा—दनु—उषा—रम्भा—

भेनका-मलिता-चित्ररूपिणी-स्वाहा-स्वधा-वपट्कारा-घृति-ज्येष्ठा-
कर्मिणी-भाया-विचित्र रथा-कामरूपा-सङ्घना-सुषेधिला-सङ्घला-
महानाशा-महामुखी ॥१५-२१॥

कुमारो रोचनाभोमा सदाहा सा मदोद्धता ।
अलम्बाधी कालपर्णी कुम्भकर्णीमहासुरी ॥२२
केशिनी शङ्खिनीलम्बा पिङ्गलालोहितामुखी ।
घण्टारवायदष्टाला रोचना काकजङ्घिका ॥२३
शोर्णिकाच मुखिकामहाग्रीवा महामुखी ।
उल्कामुखीधूमशिखा कम्पिनी परिकम्पिनी ॥२४
मोहना कम्पनाश्वेला निर्भया बाहुशाहिनी ।
संपर्णी तथैकाक्षी विसोकानन्दिनीतया ॥२५
ज्योत्स्नामुखीच रमसा निकुम्भा रक्तकम्पना ।
अधिकारा महाचित्रा चन्द्रसेना मनोरमा ॥२६
अदर्शना हरत्पाया मातङ्गी लम्बमेखला ।
अवाला वञ्चना काली प्रमोदा लाङ्गलावती ॥२७
चिन्ता चित्तजला कोणा सान्तिकाघविनाशिनी ।
लम्बस्तनी लम्बसटा विसटा वासञ्जिनी ॥२८

कुमारो-रोचना-भोमा-सदाहा-मदोद्धता-अलम्बाधी-
कालपर्णी-कुम्भपर्णी-महासुरी-केशिनी-शङ्खिनी-लम्बा-पिङ्गला-
लोहितामुखी-घण्टारवा-दष्टाला-रोचना-काक जङ्घिका-शोर्णिका-
मुखिका-महाग्रीवा-महामुखी-उल्कामुखी-धूमशिखा-कम्पिनी-परिक-
म्पिनी-मोहना-कम्पना श्वेला-निर्भया-बाहुशाहिनी-संपर्णी-
एकाक्षी-विसोका-ज्योत्स्नामुखी-रमसा-निकुम्भा-रक्त कम्पना-
अधिकारा-महाचित्रा-चन्द्रसेना-मनोरमा-अदर्शना-हरत्पाया-मातङ्गी-
लम्ब मेखला-अवाला-वञ्चना-काली-प्रमोदा-लाङ्गलावती-चिन्ता-

चित्त-ब्रजा-कोण-शान्तिका-अघ विनाशनी-लम्बस्तनी-सम्बसटा-
बिसटा-वास चूर्णिनी ॥२२-२५॥

खलन्ती दीघकेशी च सुचिरा सुन्दरी शुभा ।
अयोमुखी कटुमुखी क्रोधनी च तथाशनी ॥२६
कुटुम्बिका मुक्तिका च चन्द्रिका बलमोहिनी ।
सामान्या हासिनी लम्बा कोविदारी समासवी ॥३०
ककुकर्णी महानादा महादेवी महोदरी ।
हुङ्कारी रुद्रमुसटा रुद्रेशी भूतडामरी ॥३१
पिण्डजिह्वा चतुर्ज्वाला शिवा ज्वालामुखी तथा ।
एताश्चान्याश्च देवेश सोऽसृजन्मातस्तदा ॥३२
अन्धकाना महाघोराः पपुस्तदुधिरं तदा ।
ततोऽन्धकामृजः सर्वाः परां तृप्तिमुपागताः ॥३३
ताम् तृप्तासु सभूता भूय एवान्धकप्रजाः ।
अदितमृतमहादेव शूनमुद्गरपाणिभिः ॥३४
तत स शङ्करो देवस्त्वन्धकैर्व्याकुलीकृतः ।
जगाम शरण देव त्रामुदेवमज विभुम् ॥३५

खलन्ती, दीर्घकेशी, सुचिरा, सुन्दरी, शुभा, अयोमुखी, कटुमुखी,
क्रोधनी, अशनी, कुटुम्बिका, मुक्तिका, चन्द्रिका, बलमोहिनी, सामान्या,
हासिनी, लम्बा, कोविदारी, समासवी, ककुकर्णी, महानादा, महादेवी,
महोदरी, हुङ्कारी, रुद्र मुसटा, रुद्रेशी, भूतडामारी, पिण्डजिह्वा, चतु-
र्ज्वाला, शिवा, ज्वालामुखी, इन इतनी तथा अन्य माताओं का देवेश्वर
ने उस समय में सृजन किया था ॥ २६, ३०, ३१, ३२ ॥ उस समय में
इन महा घोराओं ने अन्धकों के रुधिर का पान किया था । इसके अनन्तर
अन्धकों के रुधिर से सभी माताएँ परम तृप्ति को प्राप्त हुई थी । उनके
तृप्त होने पर भी 'पुनः अन्धकों की प्रजा उत्पन्न हुई थी । तब और
मुद्गर हाथों में धारण करने वाले उनके द्वारा महादेव बहुत ही अदित

हृदये । इसके उपरान्त वह देव प्रांकर अन्धकों के द्वारा व्याकुल कर दिये गये थे और फिर वे अज—प्रभु वामुदेव भगवान् की शरणागति में प्राप्त हुए थे ॥२३-२५॥

ततस्तु भगवान् विष्णुः सृष्टवान् शुष्करेवतीम् ।
या पपी सकलन्तेषामन्धकानाममृक् क्षणात् ॥
यथा यथा च रुधिर पित्तन्त्यन्धकसम्भवम् ॥२६॥
तथा तथाऽधिकं देवी सृष्टुष्यति जनाधिप ! ।
पीयमाने तथातेषामन्धकानां तथासृजि ॥
अन्धकोस्तु क्षयन्तीतां सर्वं ते त्रिपुरारिणा ॥२७॥
मूलान्धकन्तु विक्रम्य तदा शर्चस्त्रिलोकधृक् ।
चकार वेगाच्छूलाग्रे सक्तुष्टावशङ्करम् ॥२८॥
अन्धकस्तु महावीर्यस्तस्य तृष्टोऽभवद्भ्रुवः ।
सामीप्ये प्रददौ नित्यं गणेशत्वं तथैव च ॥२९॥
ततो मातृगणा सव शङ्कं वाक्यमब्रुवन् ।
भगवन् ! भक्षुषिष्यामः स देवासुरमानुषाव् ॥३०॥
त्वत्प्रसादाज्जगन् सर्वं तदनुज्ञातुमर्हसि ।
भवतीभिः प्रजा सर्वा रक्षणाया न शक्यं ॥३१॥
तस्माद्घोराभिप्रायान्मम नोघ्न निवर्त्यताम् ।
इत्येव शङ्करेणोक्तमनादृत्य ब्रुवत्तदा ॥३२॥

इसके अनन्तर भगवान् विष्णु ने शुष्क रेवती की सृष्टि की थी जिसने सग भर में ही इन अन्धकों के रक्त को पी लिया था । हे जनाधिप ! जैसे २ वे उस अन्धक के रुधिर का पान करती थी वैसे २ ही देवी अधिष्ठा शुष्क हो जाया करती थी । उस प्रकार से अन्धकों के रक्त का पान कर लेने पर वे सब अन्धक त्रिपुरारि के द्वारा क्षय को प्राप्त कर दिये गये थे ॥ २६, २७ ॥ उस समय में जो मूल अंधक या उस पर त्रिलोकी के धारण करने वाले भगवान् शिव ने विक्रम करके वेग ने साम

उसको अपने त्रिशूल के प्रग्रभाग पर कर दिया था। उस अन्धक ने फिर भगवान् शंकर का स्तवन किया था। वह अन्धक महान् धीर्य वाला था और उससे भगवान् भव परम तृप्त हो गये थे। फिर तो शंकर ने उसको अपनी समीपता को रहने का पद तथा गणेशस्व पद का प्रदान किया था ॥ ३८, ३९ ॥ इसके अनन्तर सब मातृगणो ने भगवान् शंकर से यह वाक्य कहा था—हे भगवन् ! हम अब सब देव-प्रसुर और मानवों का भक्षण करेगी क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् आपके ही प्रसाद से समुत्पन्न हुआ है और स्थित है सो अब आप हमको आज्ञा प्रदान करने के योग्य होते हैं। भगवान् शंकर ने उनसे कहा था। शंकर बोले—आप सबको इन प्रजाओं की रक्षा करनी चाहिए। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इसलिये इन घोर जो प्रजाओं के भक्षण कर आने के अभिप्राय है उनसे शीघ्र ही अपने मन को हटाओ। इस प्रकार से कहे हुए इन भगवान् शंकर के वदनों का उन मातृगणो ने उस समय में अनादर कर दिया था ॥ ४०, ४१ ४२ ॥

शंखयामगुरत्युग्रास्त्रीर्लाभय सचरानरम् ।
 तौतोत्रय भक्ष्यमाणे तु तदा मातृगणेन वै ॥४३
 नृसिंहमूर्ति देवेश प्रदध्या भगवाञ्छिवः ।
 अनादिनिघ्न देव सबलोकभवोद्भवम् ॥४४
 दैत्येन्द्रवक्षीरुधिरर्चविताग्रमहानखम् ।
 विद्युज्जिह्व महादष्टृ स्फुररकेसरवण्टकम् ॥
 कल्पान्तामृतक्षुब्ध सप्तपणसमस्वनम् ॥४५
 वज्रतीक्ष्णनख घोरमाकर्णव्यादिताननम् ।
 मेरुशैलप्रतीकाशमुदयार्कसमेक्षणम् ॥४६
 हिमाद्रिशिखराकार चारुदष्ट्रोज्वलाननम् ।
 नर्मनि.गृहोपाग्नि ज्वालाकेसरमालिनम् ॥४७
 वज्रहृदं पुमुकुट हारकेयूरभूषणम् ।

श्रोणीसूत्रेण महता काञ्चनेन विरोजितम् ॥४८
 नीलोत्पलदलश्यामं वासोयुगविभूषणम् ।
 तेजसाक्रान्तसकलब्रह्माण्डागारसंकुलम् ॥ ४९

अत्युग्र स्वरूप वाली उन माताओं ने इस चराचर सम्पूर्ण जगत् तथा त्रैलोक्य का भ्रमण करना आरम्भ कर दिया था । उस समय में मातृगण के द्वारा इस त्रिलोकी के भ्रमणनाश होने पर भगवान् शिव ने देवेश श्री नृसिंह मूर्ति का ध्यान किया था जिनका स्वरूप आदि और अन्त से रक्षित है और जो इस सम्पूर्ण लोक के उत्पत्ति को करने वाले हैं । दैत्येन्द्र हिरण्य कशिपु के वधः स्थल के रुधिर से चर्चित महान् नखों वाले—विद्युत् के तुल्य जीभ से युक्त—महान् दाढ़ों वाले—स्फुरित हुए केसरो के कण्ठकों से सम्युक्त—रूप के अन्त में क्षाम से पूर्ण मांस से समन्वित तथा सपृषण वृक्षों के तुल्य ध्वनि वाले थे । बज्र के समान ताक्ष्ण नखों वाले—घोर—हानों तक व्याहित मुख वाले—मंद पर्वत के सदृश—उदय कालीन सूर्य के समान नेत्रों वाले—शिवालय की शिखर के समान आकार में समुद्र—मुन्दर दाढ़ों समुज्ज्वल मुख वाले—नखों से ढकली हुई रोषाग्नि की ज्वालाओं की माला वाले—वज्र के अङ्गों के धारण कर्त्ता—मुकुट से युक्त—हार और केयूरों के आभरण से भूषित—तेज से समाक्रान्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के आगार से संकुल उनका स्वरूप था ।
 ॥ ४३-४९ ॥

पवनं आम्यमाणानां हृतहृत्प्रवहाचिषाम् ।
 आवर्तसदृशाकारं संयुक्तं देहलाम्जः ॥५०
 सर्वपुष्पविचित्राञ्च धारयन्त महास्रजम् ।
 स द्युतमात्रो भगवान् प्रददौ तस्य दर्शनम् ॥५१
 याहोर्नवरूपेण ध्याते रुद्रेण धीमता ।
 ताहोर्नव रूपेण दुनिरोक्ष्येण देवतः ॥५२

प्रणिपत्य तु देवेशं तदा तुष्टाव शङ्करः ।
 नमस्तेऽनु जगन्नाथ ! नरसिंहवपुर्धम् ॥५३
 दैत्यनाथासृजापूर्णं ! नक्षत्राक्तविराजित । ।
 ततः सकलसंलग्नहेमपिङ्गलविग्रह ! ॥५४
 नतोऽस्मिपद्मनाभ ! त्वामुशक ! जगद्गुरो ।
 कल्पान्ताम्भोदनिर्घोष ! सूर्यकाटिसमप्रभ ॥५५
 सहस्रयमसंक्रोध ! सहस्रेन्द्रपराक्रम । ।
 सहस्रधनदस्फीत ! सहस्रवरुणात्मक ! ॥५६

हुत की हुई हृष्य को बहन करने वाले अग्नि की भ्रम्यमाण
 ध्वजियों के पवन, आवल के सदृश आकारों वाले देह के लोमजों से
 संयुक्त, सभी तरह के पुष्पों से अद्भुत महामाला को धारण करने वाले
 श्री नृसिंह का स्वरूप था । जैसे ही शिव ने उनका उपसृष्ट स्वरूप से
 समन्वित वपु का ध्यान किया था वैसे ही तुरन्त उठते शिव की अपना
 दर्शन दिया था । जिस प्रकार ते स्वरूप का धीमान् रुद्रदेव के द्वारा
 ध्यान किया गया था उसी प्रकार के देवों के द्वारा भी दुर्निरीक्षणिय
 स्वरूप में वह वहाँ उपस्थित हुए थे । भगवान् शंकर ने उनको प्रणिपत्त
 करके फिर स्तुति की थी । भगवान् शंकर ने कहा—हे जगत् के स्वामिन् !
 आप तो नर और सिंह दोनों के स्वरूप को धारण करने वाले हैं । ऐसे
 आपको नमस्कार है । हे दैत्यनाथों के रक्त से आपूर्ण—हे तपों की शक्ति
 से विराजमान ! हे सम्पूर्ण संलग्न हेम के सदृश पिङ्गल विग्रह वाले ! हे
 पद्मनाभ ! मैं आपका प्रणत होता हूँ । हे गुरों के शक ! हे जगत् के
 गुरो ! हे कल्पान्त में अम्भोद के समान निर्घोष वाले ! आप तो करोड़ों
 सूर्यों के समान प्रभा वाले हैं । आपका क्रोध सहस्रों यमों के समान है ।
 आप सहस्रों इन्द्रों के समान पराक्रम वाले हैं । आप सहस्रों धनदों
 के सुन्दर सजीत हैं और आप सहस्रों दसगों के स्वरूप वाले हैं ।

सहस्रकालरचित ! सहस्रनियतेन्द्रिय ।
 सहस्रभूमिसद्वैर्य ! सहस्रानन्त ! मूर्तिमन् ! ॥५७
 सहस्रचन्द्रप्रतिमा ! सहस्रप्रहविक्रम ! ।
 सहस्ररुद्रतेजस्क ! सहस्रब्रह्मासस्तुत ! ॥५८
 सहस्रबाहुवर्गीप्र ! सहस्रास्य निरीक्षण ! ।
 सहस्रयन्त्रमथन ! सहस्रवधमोचन ! ॥५९
 अन्धकस्य विनाशययाःसृष्टाःमातरो मया ।
 अनादृत्य तु मद्वाचयन्मक्षयन्त्यद्यताःप्रजाः ॥६०
 कृत्वा ताश्च न शक्तोऽह सहस्रमपगजित ।
 स्वयङ्कृत्वा कथन्तासाविनाशमभिकारये ॥६१
 एवमुक्तः स रुद्रेण नरसिंहवपुर्धरः ।
 ससर्ज देवोजिह्वायास्तदावाणीश्वरी हरिः ॥६२
 हृदयाच्च तथा माया गुह्याच्च भद्रमालिनी ।
 अस्थिम्यश्च तथाकालो मृष्टापूर्वं महात्मना ॥६३

हे सहस्र कालो मे रचित ! हे सहस्र नियत इन्द्रियो बाने !
 हे सहस्र भूमि सद्वैर्य ! हे सहस्रानन्त ! हे मूर्तिमन् ! हे
 सहस्र चन्द्रो को प्रतिमा बाने ! आप तो सहस्रो ग्रहों के विक्रम
 बाने हैं और सहस्र चन्द्रों के तेज से समुत्त हैं ! आप सहस्रो ब्रह्माओं
 के द्वारा संस्तुत हैं । हे सहस्र बाहु वर्गीप्र ! हे सहस्राक्ष के समान
 नेत्रों बाने ! हे सहस्र यन्त्रय मन ! हे सहस्र वध मोचन ! मैंने अन्धक
 दैत्य के विनाश के लिये जिन मातृगण का सृजन किया था वे ही आज
 मेरे वचन का अन्याय करके उन प्रजाओं का मक्षण कर रहे हैं । हे अप-
 रजित ! उस मातृगण को सृजन करके अब उनके सहार करने में मैं अशक्त
 हो रहा हूँ क्योंकि स्वय ही मैंने जिसका बसाया था उसका विनाश में
 ही स्वयं कीते करूँ । इस प्रकार से रुद्रदेव के द्वारा उन नरसिंह वपु के
 प्राची प्रभु ने जब कहा गया था उन सखिदेव ने जिह्वा भी वाणीश्वरी की

रचना की थी। हृदय से माया—गुह्य से भवमालिनी और अस्थियो से कोली का पहिले उस महारमा ने सृजन किया था ॥ ५७-६३ ॥

यया तद्रुधिरम्पीतमन्धकाना महात्मनाम् ।
याचास्मिन्कथिता लोकेनामतःसुष्करेवती ॥६४
द्वात्रिंशन्मातरः सृष्टा गाहोभ्यश्चक्रिणा ततः ।
सासां नामानि वक्ष्यामि तानि मे गदतः शृणु ॥६५
सर्वास्तासु महाभागा घण्टाकर्णीं तथैव च ।
दौलोक्यमोहिनी पुण्या सर्वसत्ववशङ्करी ॥६६
तथा च चक्रहृदया पञ्चमी व्योमचारिणी ।
शङ्खिनी लेखिनी चैव कालसङ्ख्यंणी तथा ॥६७
इत्येताः पृष्ठगाराजन् ! वागीशानुचराः स्मृताः ।
सङ्ख्यंणी तथाश्वत्थाबीजभावापराजिताः ॥६८
कल्याणी मधुदंष्ट्री च कमलोत्पलहस्तिका ।
इति देव्यष्टक राजन् ! मायानुत्तरमुच्यते ॥६९

जिसने महारमा मन्धकों का रुधिर पान किया था और जो नाम से लोक में सुष्करेवती कही गयी थी। इसके पश्चात् चक्रधारी प्रभु ने अपने ही गात्रों से बत्तीस माताओं का सृजन किया था। उन सबके नामों को बतलाने वाले मुसले अब तुम सुनसो ॥ ६४, ६५ ॥ उनमें सभी महान् भागों वाली थीं। घण्टा कर्णी—दौलोक्य मोहिनी—पुण्या सर्वसत्व शङ्करी—चक्र हृदया—पञ्चमी व्योमचारिणी—शङ्खिनी—लेखिनी काल सखिणी ये सब हे राजन् ! उस वागीशा के पीछे गमन करने वाली अनुचारिणी थी—ऐसा कहा गया है। सङ्ख्यंणी—अश्वत्था—बीजभावा—अपराजिता—कल्याणी—मधुदंष्ट्री और कमला तथा उत्पल हस्तिका हे राजन् ! देवियों का जो अष्टक था वह मायानुत्तर कहा जाता है। ॥ ६६-६९ ॥

अजिता सूक्ष्महृदया वृद्धा वेशाश्मदंशना ।
 नृसिंहभैरवा वित्वा गरुत्महृदया जया ॥७०
 भवमालिन्यनुचरा इत्यष्टौ नृपमातरः ।
 आकर्णनी सम्भटा च तथैवोत्तरमालिका ॥७१
 ज्वालामुखी भीषणिकाकामधेनुश्चवालिका ।
 तथापद्मकराराजन् ! रेवत्यनुचराःस्मृता ॥७२
 अष्टौ महाबलाः सर्वा देवगात्रसमुद्भवाः ।
 त्रैलोक्यसृष्टिसंहारसमर्थाः सर्वदेवताः ॥७३
 ताः सृष्टमात्रादेवेन क्रुद्धामातृगणस्य तु ।
 प्रघाविता महाराज ! क्राधविस्फारितेक्षणाः ॥७४
 अविपहृतमन्तासां दृष्टितेजः सुदारुणम् ।
 तमेव शरणं प्राप्ता नृसिंहो वाक्यमब्रवीत् ॥७५
 यथा मनुष्याः पशवः पालयन्तिचिरात् सुतान् ।
 जयन्ति ते तथैवाशु यथावंदेवतात् सुतात् ॥७६
 भवत्तु तथालोकान्पालयन्तु भयोरिताः ।
 मनुजंश्च तथा देव्यजध्वं त्रिपुरान्तकम् ॥७७

अजिता, सूक्ष्महृदया, वृद्धा, वेशाश्म दंशना, नृसिंह भैरवा, वित्वा
 गरुत्महृदया, जया और भवमालिनी ये आठ अनुचर नृप माताएँ थीं ।
 आकर्णनी, सम्भरा, उत्तर मालिका, ज्वालामुखी, भीषणिका, कामधेनु,
 बालिका, देवजन् ! पद्मकरा ये देवता की अनुचारिणी थीं—ऐसा कहा
 गया है । ये आठ महाबल वाली और सभी देव के गात्रों से समुत्पन्न होने
 वाली थीं । ये सब देवता त्रैलोक्य की सृष्टि एवं संहार करने में समर्थ
 थीं । ये देव के द्वारा सृष्ट मात्र होते ही हे महाराज ! अति क्रुद्ध होकर
 क्रोध में विस्फारित नेत्रों वाली मातृगण के पीछे प्रघावित हुईं थीं । उनकी
 दृष्टि का तेज अविपहृतम और परम सुदारुण था । उन सबने उन्हीं की
 शरणार्थी प्राप्त की थी तब थी नृसिंह प्रभु ने यह वाक्य कहा था—जिस

प्रकार से मनुष्य और पशु चिरकाल तक सुतो का पालन किया करते हैं उसी भाँति देवगण के समान शीघ्र ही जय को प्राप्त होने है। आप लोग मेरे द्वारा प्रेरित होकर लोको का पालन करें तथा मनुष्य और देवगण सब त्रिपुरान्तक का अभ्यर्चन किया करें ॥७०, ७१, ७२, ७३, ७४॥
॥७५, ७६, ७७॥

नच बाधा प्रकर्तव्या ये भक्तास्त्रिपुरान्तके ।
येच मा स्मरन्तीह तेच रक्षयाः सदानराः ॥७८
बालिकम करिष्यन्ति युष्माक ये सदा नराः ।
सर्वकामप्रदारतेषा भविष्यध्वन्तर्थच ॥७९
उच्छासनादिक ये च कथयन्ति मयेरितम् ।
तेच रक्षयाः सदा लोकारक्षितव्य मदासनम् ॥८०
रौद्री चैव परा मूर्ति महादेवः प्रदास्यति ।
युष्मन्मुख्या महादेव्यस्तदुक्तं परिरक्षय ॥८१
मया मातृगण सृष्टो योऽयं विगतसाध्वसः ।
एष नित्य विशालाक्ष्यो मयैव सह ररयते ॥८२
मया साद्धं तथा पूजा नरेभ्यश्चैव लप्स्यथ ।
पृथक् सुपूजिता लोकैः सर्वान् कामान् प्रदास्यथ ॥८३
शुष्का सपूजयिष्यन्ति ये च पुत्रार्थिनो जनाः ।
तेषा पुत्रप्रदा देवी भविष्यन्ति न सशयः ॥८४

भगवान् त्रिपुरान्तक के जो भी भक्तगण हो उनको कोई भी बाधा नहीं करनी चाहिए। जो मनुष्य यहाँ पर मेरा स्मरण किया करते हैं उनकी भी सदा रक्षा करनी चाहिए। जो नर आपका सर्वदा बलिर्कर्म किया करते हैं अर्थात् आपको बलि समर्पित करते हैं उनकी समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाले आप लोग उसी भाँति बन जाइये। मेरे द्वारा प्रेरित जो उच्छासनादिक का कथन करते हैं उन लोको की सदा रक्षा करनी चाहिये और मेरे आसन की भी सुरक्षा करने की कृपा करें। महादेव परा

सौख्यी मूर्ति का प्रदान करेंगे। आपमें जो मुख्य महादेविणी हैं वे सब स्वयंभूक्त सबकी रक्षा करें। मेरे द्वारा हम मातृगण का मूजन किया गया है जो यह हम समय में निगत अब जाल है यह निरव हो विनाल नेत्रो वाली मेरे ही साथ रक्षण में रक्षण करेंगे। मेरे ही के तरो में पूजा प्राप्त करेंगी। यदि इन्हें पृथक् भी समचन किया जाविगा और लोग ऐसा करने को ये सभी मनोकामनाओं की प्राप्ति करा देंगी। जो पुत्रों के प्राप्ति करने की इच्छा वाले हैं उन बच्चों को यह बेवी पुत्र प्रदा अवश्य ही हो जायेंगी— इसमें तनिक भी सशय का कोई अवसर ही नहीं रहता है ॥ ७८, ७९ ॥ १८०, ८१, ८२, ८३, ८४॥

एवमुक्त्वा तु भगवान् सह मातृगणेन तु ।

ज्वालामालाकुलवपुस्तर्ज्वान्मन्थरोयत ॥८५

तत्र तीर्थं समुत्पन्नं कृत्वातीति यज्जगुः ।

तमापि पूर्वजो देवो जगदातिहरा हरः ॥८६

रीडस्य मातृवमस्य दत्त्वा रडस्तु पार्थिव ।

रीडां दिव्या तनुं तत्रमातृमध्यवस्थित ॥८७

सप्त ता मातरौ देव्यः सार्द्धंतीतीनरः शिवः ।

निवेस्य शीघ्रं तन् स्थानं ततोऽन्तरघोषत ॥८८

त मातृवमस्य हरस्य मूर्तिर्यदा यदा याति च तत्समीपे ।

देवेश्वरस्यापि तृप्तिर्हमूर्तेः पूजा विद्यते त्रिपुरान्धकारिः ॥८९

इस प्रकार से कहकर वह भगवान् मातृगण के साथ ही ज्वालामाली की माताओं से समाकुल वपु वाले बला पर उन्नत हो गये थे ॥८५॥ वहा पर एक तीर्थ की उत्पत्ति हो गई थी जिसको कृतशोभा—इस नाम में मान किया जाता था। वहाँ पर भी पूर्वज देव इस जगत् की प्राप्ति का (प्रीति का) दर्शन करने वाले हर ही थे ॥८६॥ हे पार्थिव ! भगवान् रडदेव शीघ्र गतवर्ग को शीघ्र एक दिव्य तप प्रदान करके वहा पर मातृ गण के निवेशित हो गये थे। वे सप्त ती माताएँ देविदा हैं और साठ

नारी नर सिद्ध है। उन रौद्र स्थान को निर्देशित करके वही पर जन्तुप्रतिन हो गये थे। वह जब जब भी वह मातृ वर्ग की हर को मूर्ति उसके समीप में जाती है तब त्रिपुराण्यकारि सिद्ध देवेश्वर नृसिंह मूर्ति की भी पूजा किया करते हैं ॥८७, ८८, ८९॥

७३—वाराणसी माहात्म्य

श्रुताऽन्धश्रवणः सूत ! यथावत्त्वद्दुदीरितः ।
 वाराणस्यारतु माहात्म्य श्रोतुच्छाम साम्प्रतम् ॥१
 भगवान् पिङ्गलः केन गणत्व समुपागतः ।
 अन्नदत्त्वञ्च सम्प्राप्तो वाराणस्या महाद्युतिः ॥२
 क्षेत्रपाल कथं जातः प्रियत्वञ्च कथं ज्ञतः ।
 एतदिच्छाम कथितं श्रोतुं ब्रह्मसुत ! त्वया ॥३
 शृणुष्व वं यथा लेभे गणेशत्व स पिङ्गलः ।
 अन्नदत्त्व च लोकाना स्थान वाराणसी त्विह ॥४
 पूर्णभद्रमुनः श्रीमानासीद्यज्ञः प्रतापवान् ।
 हारिकेश इतिर्यातो ब्रह्मण्यो धामिकश्च ह ॥५
 तस्य जन्मप्रभृत्यं व शर्वे भक्तिरनुत्तमा ।
 तदासौत्तन्नभस्कारस्तन्निष्ठस्तत्परायणः ॥६
 आमीनश्च शयानश्च गच्छस्तिष्ठन्ननुव्रजन् ।
 भृञ्जानोऽथ पिवन्वापि रुद्रमेवान्गचिन्तयत् ॥७

ऋषि वृन्द ने कहा—हे सूतजी ! आपके द्वारा वर्णित ठीक २ रीति ने हमने अन्धश्रवण का वध श्रवण कर लिया अब इस समय में वाराणसी पुरी का माहात्म्य हम श्रवण करने को सब अनिताया रखने हैं। ॥१॥ भगवान् पिङ्गल किस के द्वारा अथवा किस कारण से गणत्व को प्राप्त हुए थे ? यह महा कृति से गुप्तमन्त्र काराणमी में अन्न दत्त्व को

भी सम्प्राप्त हो गये हैं ? ॥२॥ यह क्षेत्रपाल कैसे हुए श्रीर प्रियत्व की प्राप्ति भी किस तरह से हुई थी ? हे ब्रह्माजी के पुत्र ! यह सब आपके द्वारा वर्णित हम सब श्रवण करना चाहते हैं । महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—उक्त पिङ्गल ने जिस रीति से गणेशत्व की प्राप्ति की थी उसे आप लोग सुनिये । लोकों को मग्न देने वाले और यहाँ पर यह वाराणसी का स्थान जैसे प्राप्त हुआ वह भी सुनिये ॥३, ४॥ पूर्णभद्र का पुत्र प्रताप बाला श्रीमान् यज्ञ था । वह हरिकेश—इम नाम से विख्यात था और परम धार्मिक तथा ब्रह्मण्य था ॥५॥ उसकी जन्म के आरम्भ से ही लेकर भगवान् शिव में अतीव उत्तम भक्ति थी । उक्त समय में शिव की ही तपस्कार करने वाला—उन्हीं में पूण निटा गयते हुए यह सर्वदा उन्हीं में परायण रहा कर्ता था ॥६॥ यह ब्रह्मा हुत्र—जयन् करता हुत्र—गमन करते हुए—स्थित रहते हुए—अनुव्रजन करते हुए—भोजन वरने की दशा में तथा पान करते हुए भी रुद्र का ही सदा अनुचिन्तन किया करता था ॥७॥

तमेव युक्तमनसम्पुण्यभद्रः पिताब्रवीत् ।
 न त्वां पुत्रमहं मन्येदुर्जातो यस्त्वमन्यथा । ८
 न हि यथा कुलीनानामेतद्वृत्ता भवत्युत ।
 गृह्यका वत यूयं वै न्वभावात् क्रूरेतसः ॥९॥
 कृपयाशस्त्रं किं भक्षा हिमाशीलाश्च पुत्रक ।
 मैवं कापीनते वृत्तिरेव दृष्टा महात्मना । १०
 स्वयम्मुवा यथादिष्टा त्वक्तव्या यदि नो भवेत् ।
 नाश्रमान्तरजं कर्म न कुर्मुर्गृहिणरतु तत् ॥११॥
 हित्वा मनुष्यभावं च तर्मान् विविधरश्चर ।
 यत्त्वमेवं विमार्गस्थो मनुष्याज्जात एवच ॥१२॥
 यथावद्विविधन्तेषां कर्म तज्जातिसश्रयम् ।
 मयापि विहितं पश्य कर्मतन्नात्र समयः ॥१३॥

इस प्रकार से युक्त मन वाले उससे उसके पिता पूर्ण ने कहा था—
 मैं पुत्र तुझको दुर्जित नहीं मानना हूँ जो कि तू अन्यथा रहा करता है ।
 ॥८॥ यक्ष कुलों में समुत्पन्नो का यह चरित नहीं हुआ करता है । वेद
 है आप लोग गुह्यक हैं स्वभाव से क्रूर चित्त वाले हुआ करते हैं ॥९॥
 हे पुत्रक ! अथवाद लोग मया भक्षण करने वाले हैं और हिंसा करने के
 स्वभाव वाले होते हैं । ऐसा मत करो । महान् आत्मा वाले के द्वारा
 तुम्हारी इस प्रकार की वृत्ति नहीं देखी गयी है ॥१०॥ स्वयम्भू ने जो
 समादिष्ट की है यदि आपमें हो तो उसे त्याग देना चाहिये । जो गृही
 होते हैं वे दूसरे आश्रम में उत्पन्न होने वाले कर्म को नहीं किया करते हैं
 और न उन्हें करना ही चाहिये ॥११॥ मनुष्यों के भाव को छोड़ कर
 विविध भाति के कर्मों के द्वारा चरण बगो । जो तू इस प्रकार से विभाग
 में स्थित है तो तू मनुष्य से ही समुत्पन्न हुआ है । यथावत् उनके अनक
 कर्म है जो उनकी जाति का सश्रय रखने वाला है । मैंने भी कर्म किया
 है उसे देखो । इससे हममें कुछ भी संशय नहीं होगा ॥१२, १३॥

एवमुक्त्वा स तं पुत्रं पूणभद्रः प्रतापवान् ।
 उवाचनिष्क्रमन्क्षिप्रंगच्छपुत्र ! यथेच्छसि । १४
 ततः स निर्गतस्त्यक्त्वा गृहं मन्धिनस्तथा ।
 वाराणसी ममासाद्यतपस्तेषु मुदुश्चरम् ॥१५
 स्थाणुभूतो ह्यनिमिषः शुष्ककाष्ठोपलोपमः ।
 सनिनयम्येन्द्रियग्राममयातिष्ठत निश्चलः ॥१६
 अथ तस्यैवमनिशतत्परस्य तदा शिषः ।
 सहस्रमेकवर्षिणा दिव्यमप्यध्ययतत ॥१७
 यत्मीवेन समाक्रान्तो भक्ष्यमाणः विषोत्सवः ।
 यत्रगूनीगुणंतीक्ष्णं विभ्यमानमनधेयं च ॥१८
 निभासन्निर्ध्वक् च कुन्दशट्पदुमप्रभः ।
 तस्थिदोषोऽमचच्छर्वं देवैर्चिन्तयन्तपि ॥१९

एतस्मिन्नन्तरे देवी विज्ञापयत् शङ्करम् ।
 उद्यानं पुनरेवेह द्रष्टुमिच्छामि सर्वदा ॥२०॥
 क्षेत्रस्य देव माहात्म्य श्रोतुं कौतूहल हि मे ।
 यतश्च प्रियमेतत्तो तयास्य फलमुत्तमम् ॥२१॥

श्री सून महर्षि ने कहा—वह प्रताप वाले पूर्णभद्र ने उस अपने पुत्र से इस प्रकार से कहकर फिर हे पुत्र ! तू यहाँ से निष्क्रमण करते हुए बहुत शीघ्र जहाँ भी चाहता है चला जा ॥१४॥ इसके उपरान्त वह वहाँ से निर्गत होकर अपने गृह और समस्त सम्बन्धियों का परित्याग कर चला गया था । फिर वाराणसी पुरी में प्राप्त होकर उमने परम दुश्चर तप किया था ॥१५॥ वहाँ पर पलके पूजनया खोले हुए—एक म्थाणु (वृक्ष का दूठ) के रूप वाला—मूला हुआ काष्ठ, तथा पाषाण के पट्टण होकर अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों के समुदाय को अपनी भाँति नियन्त्रित करके एक दम निश्चल हाकर अवस्थित हागया था ॥१६॥ इसके अनन्तर उमको निरन्तर इस प्रकार से तप में तत्पर हुए को उस समय में एक सद्गुरु दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये थे ॥१७॥ उसका शरीर सर्पों की बाँवियों से समाप्त हो गया था—पिपीलिकाएँ (चींटियाँ) उस शरीर को खा रही थी तथा तीक्ष्ण शर्यामूची मुख कीटों ने वह उसका वपुपूर्ण या विद्या हुआ सा हो गया था ॥१८॥ यद्यपि उसका शरीर बिना माँस—हृदि और त्वचा वाला हो या किन्तु फिर भी कुन्द—इन्दु और शङ्ख के समान प्रभा से पूर्ण था । देवदेव का ही चिन्तन करते हुए वह पूरा शरीर केवल अग्निषो का ही एक ढाँचा शेष रह गया था । इसी बीच में देवी ने श्री शङ्कर भगवान् को विज्ञापित किया था ॥१९॥ देवी ने कहा—मैं सर्वदा उस उद्यान को यहाँ पर देखने की अभिलाषा करती हूँ ॥२०॥ हे देव ! इस उत्तम क्षेत्र के माहात्म्य को श्रवण कर्णों के लिये मेरे हृदय में अत्यधिक कौतूहल हो रहा है । क्योंकि यह भाग्य का त्रिय है तथा इसका उत्तम फल है ॥२१॥

इति विज्ञापितो देवः शर्वाण्या परमेश्वरः ।

शर्वः पृष्ठापथात्थ्यमास्यातुमुपचक्रमे ॥२२

निजंगाम च देवेश पावत्या सह शङ्करः ।

उद्यान दर्शयामास देव्या देवः पिनाकधृक् ॥२३

प्रोत्फुल्लनानावाधगुल्मशोभितं लताप्रतानावनत मनोहरम् ।

विस्तृष्टपुष्पै परितः प्रियगुभिः सुपुष्पितैः कण्टकितैश्च केतकैः ॥२४

तमालगुल्मनिचित सुगन्धिभिः सर्णिकारैकुलैश्च सवशः ।

अशोकपुन्नागवरं सुपुष्पितैर्द्विरेफमालाकुलपुष्पसञ्चयैः ॥२५

वचचित्प्रफुल्लाम्बुजरेणुरूपितैर्विहङ्गमैश्चारुकलप्रणादिभिः ।

विनादित सारसमण्डनादिभिः प्रमत्तदास्यूहृतैश्च वल्गुभिः ॥२६

वचचिच्च चक्राह्वरवोपनादित वचचिच्च कादम्बकदम्बकैर्युतम् ।

वचचिच्च कारण्डवनादनादित-

वचचिच्च मत्तान्किकुलाकुलीकृतम् ॥२७॥

मदाकुलाभिस्त्वमराङ्गनाभिः निर्वेवितञ्चारु सुगन्धिपुष्पम् ।

वचचित् सुपुष्पै सहकारवृक्षैलतोपगूढैस्तलकद्रुमैश्च ॥२८

शर्वाणी के द्वारा परमेश्वर देव को यह विज्ञापित किया गया था और पाथात्थ्य को जब शिव प्रभु से पूछा गया तो वह पूछे हुए होकर इसे कहने के लिये उपश्रम करने लगे थे ॥२२॥ देवेश्वर भगवान् शङ्कर पाबंती देवी के साथ ही निकलकर चले गये थे । फिर पिनाकधारी देव ने वह उद्यान देवी को दिखाया था ॥२३॥ देवों के देव ब्रह्मे—यह उद्यान विकसित नाना भाँति के गुल्मों से शोभा वाला था । लताप्रो के प्रतानों से सवनत एव मनोहर था । दोनों ओर विस्तृत पुष्पों वाले प्रियंगुओं से—गुन्दर पुष्पों से समागन्धत कण्टकित केतूकों से—सुगन्ध युक्त तमाल के गुल्मों से निर्मित और सब ओर सर्णिकारों के सहित वकुलों में वह समन्वित था ॥२४, २५॥ द्विरेफों (भोरी) की मानाओं में समाकृत पुष्पों के सञ्चय था, नि गृपुष्पिन अशोक पुन्नाग वरी से समुत्त है ॥२५॥ इस उद्यान में बहो

चर प्रकुल कमलों के रेत्यु से रूषित तथा चार एवं कल (मधुर) प्रणाद करके वाले विहगमों से बहु निनादित हो रहा था तथा किसी जगह पर सारस मण्डन आदि से एवं परम बल्यु प्रमत्त दास्युहो के शब्दों से शब्दाभ्यमान था ॥२६॥ किसी स्थल पर चक्रवाको की ध्वनियों से निनादित और वही पर कदम्बों के समूहों से यह उद्यान संयुत था । किसी स्थान से कारण्डको की कल ध्वनियों से निनादित था और वहीं पर प्रमत्त अतिर्यों के कुलों से आकुलीकृत हो रहा था ॥ २७ ॥ महान् कुलों वाली शमरो की अङ्गनाओं के द्वारा मेवित तथा सुन्दर एवं सुगन्धित पुष्पों से परिपूर्ण यह उद्यान था । वही पर सुन्दर पुष्पो वाले सहकार के वृक्षों से तथा लताओं से उपगूढ निकक के द्रुमों से समन्वित था ॥२८॥

प्रगीतविद्याधरसिद्धचारण प्रवत्तनृत्याप्सरसाङ्गणाकुलम् ।
 प्रहृष्टनानाविधपक्षिनेवित प्रमत्तहारीतकुलोम्नादितम् ॥२६
 मृगेन्द्रनादाकुलमत्वमानतः क्वचिन् क्वचिन्द्दन्दकदम्बकेर्मृगैः ।
 प्रकुलानानाविधचारुपङ्कजै मरस्तटाकरूपशोभित क्वचित् ॥३०
 निविडनिचलनील नीलकण्ठाभिराम-

मदमुदितविहङ्गव्रातनादाभिरामम् ।

कुमुमिततरुगाखानीनमत्ताद्वरेफ-

नवकिशलयशोभाशोभितप्रान्तशाखम् ॥३१॥

क्वचिच्च दन्निक्षतचारुयोरुध क्वचिल्लतालिङ्गितचारुवृक्षकम् ।
 क्वचिद्विलासालसगामिर्वाहण निषेवित कि पुरुषव्रजे क्वचित् ॥३२
 पारावतध्वनिविकूजितचारुशृङ्गं रभ्रङ्कपैः सितमनोहरचारुरूपैः ।
 आकीर्णपुष्पानिकुरम्बविमुक्तहासैर्विश्रान्त-

यिदमदेवकुलैरनेकैः ॥३३॥

फुल्लोत्पलागृहसहस्रवितानयुक्ते ।

स्तोयावर्यस्त्रमनुशोभितदेवनागम् ॥

मार्गान्तरागलितपुण्यविचित्रभक्ति-

सम्प्रदग्दुग्मघटपैविहगौरपेतम् ॥३४

तुङ्गाद्यैर्नीलपुष्पस्तवकमरुतप्रान्तशास्त्रशोक-

मंसानित्रातगीतश्रुतिमुद्यजननैर्भीमितास्तर्मनोर्जाः ।

रात्रौ चन्द्रस्य भ्रामा कुमुदितनिलकैरेरला सम्प्रयात

च्छायासुप्रमुदमियतहरिणकुन्तानुमदभार्ङ्गुरापम् ॥३५

यह उद्यान विद्याधर—मिद्ध और चारणों के गीतों से परिपूर्ण—
 नृत्य करने में प्रवृत्त हुई अमराओ के गणों में समाकुल था । परम प्रहय
 वाले अनेक भक्ति के पक्षियों के द्वारा यह उद्यान सेवित था । यह उद्यान
 प्रमत्त हारीत नाम रात पक्षियों के समूह से उपनादित था ॥३५॥ किसी
 स्थल पर मृगेन्द्र की गर्जनों में सबों के मानसों की समाकुलित करने
 वाला था । कई भाष उतका मृगों के जोड़ों के समुदायों से युक्त था ।
 वही पर खिन्ने हुए जनक तरह के चारणमलों से युक्त सरोवर और
 सजावटी के द्वारा यह उद्यान शोभा वाला था ॥३६॥ यह उद्यान घने
 निधुलों में नील बना वाला—नील कण्ठी में अभिराम—मद से परम
 प्रमत्त पक्षियों के समूह के बाद स परम मनोहर था । पुष्पों वाले वृक्षों
 की शाखाओं में जस उद्यान में भी प्रमत्त होत हुए लीन हो रहे थे और
 नृत्य करने की शोभा में शोभित पान्त शाखाओं वाला यह उद्यान था ।
 वही पर गजों के द्वारा क्रिय गये धर्मों से सुन्दर वीरुधों वाला था और
 वही पर लताओं के द्वारा सुन्दर वृक्षों का भास्विन्नन किया जा रहा था ।
 कियो स्थल पर विनास में अङ्ग गमन करने वाले वहि वाला तथा वही
 सिम्पूरणण उस उद्यान का सेवन कर रहे थे ॥३७, ३८॥ पारावती की
 ध्वनि से विशेष रूप से वृजित सुन्दर शिखरों से जो कि आकाश को सूने
 धान बहुत ही ऊँच थे और स्थल एक मनोहर चारण से युक्त थे यह
 उद्यान भिन्नात्रिण हो रहा था और सगाकीर्ण पुष्पों के तिकुम्भ से विस्तृत
 क्षम्य वाले जनक देवों के कुलों के द्वारा यह सेवित था ॥३९॥ खिले हुए

बड़े २ सहस्री उत्पत्तियों के बितानों से मुक्त लोभावयों से श्रीभा जाने देवमार्ग
 वाला वह उद्यान बहुत ही सुन्दर ही रहा था । मार्ग के बीच में गलित
 हुए पुष्पों से विचित्र भक्ति से सम्बद्ध झाड़ियों तथा चिटपों से मशायुक्त
 था बहुतही ऊँचे जिनके अग्रभाग हैं ऐसे नीले पुष्पों के स्तवकों के भार से
 अवनत गाय्याओ वाले भशोक के वृक्षों से समायुक्त था तथा अत्यन्त
 प्रसन्न मयरां के समुदायों के गुञ्जित गीतों से कानों को मूख समुत्पन्न
 करने वाले और अन्दर मतीजता को माहित करने वाले तिलकों के कुसुमों
 के द्वारा तथा रात्रि में चन्द्र की दीप्ति में एकता को प्राप्त हुआ और
 छाया में प्रसूत होकर फिर बगे हुए सस्थित हिरनों के कुलों से आरुण्य
 रमों के अक्षरों वाला वह उद्यान था अर्थात् वहा पर लेटे हुए हरिणों के
 मधुह में डाभों के अक्षर दषे हुए ही मये थे ॥३५, ३५॥

हृषाना पञ्जातमन्वितकमलस्वच्छत्रिस्तोर्णतोयम्

तोयानां तीरजातप्रविकचकदलीवाटनृत्यन्मयूरम् ।

सायूरः पक्षचन्द्रः वचचिदपि पतितं त्रिञ्जतक्षमाप्रदेशम्

देशे देशे विकीर्णप्रमुदितविलसन्मत्ताहारीतवृक्षम् ॥३६

सारङ्ग वचचिदपि सोवतप्रदेश सच्छन्न कुसुमचय वचचिद्विहैः ।

दृष्टानि वचचिदपि किन्नराङ्गनाभः

दीवामि समधुरगीतवृक्षखण्डम् ॥३७

सगृष्टे वचचिदुपलितकीर्णपुष्पैरावासः पारवृतपादप मुनीनाम् ।

आम्लान् फलनिचितैः वचचिद्विशान्नैरुत्तुङ्गैः

पनसमहीरहैरुपेतम् ॥३८

फुल्लानिमुक्तकलतागृहमिदलील ,

मङ्गाङ्गनाकनकनूरमादम्बम् ।

रम्भप्रियम् तत्तमञ्जरिसवनभृङ्ग भृङ्गावलीपु ॥

स्वतिताम्बुकदम्बपुष्पम् ॥३९॥

पुणोत्तरानिलविधूणितपादपाप्रमप्रेमरो भुवि निपातितवंगुल्मम् ।

गुन्मान्तरप्रभृतिनीनमृगासगृह संमुह्यतास्तनुभृतामवर्षावृत् ॥४०

चान्द्रांगुजानधवलैस्ति लकर्मगोजः ।

सिन्दूरकुण्डः मकुसुम्भनिर्भरश्लोकैः ।

शामीकराभनिचयेरथ कणिकाः ।

फुल्लारिखिन्दरचित मुविशालशास्त्रैः ॥४१॥

यवचिद्वलनपर्णीभं. ववचिद्विद्रुमसन्निभं. ।

ववचात्काञ्चानसङ्काशी पुष्पैरान्वितभूतलम् ॥ ४२ ॥

अभी तक निरन्तर उभी उद्यान की शोभा का ही वर्णन किया जा रहा है वह उद्यान जो क पृथ्वी के प्रयात में विनन्दित होने वाले कमलों के द्वारा परम स्वच्छ एवं विस्तीर्ण जल वाला था । जलाशयों के तट पर समुपगत एवं प्रविचित्र वृक्षादयो के वाट में नृत्य करने वाले मयूरो से युक्त वह उद्यान था । त्रिगी स्थल पर फिर हुए मयूरो के पक्ष बन्दों के द्वारा रञ्जित क्षमा प्रदत्त वाला था तथा देश-देश में विकीर्ण—प्रमुदित—वित-मत् महत् हागीतो से समुत्पन्न रक्षो वाला उद्यान था ॥३६॥ वहीं पर मारुद्गो सेवित प्रदत्त वाला और त्रिगी स्थल पर विचित्र कुमुभो से चयो से सञ्छन्न किमो स्थान पर परम शोच एवं प्रहृषित विन्धरो की अङ्गनाश्री के द्वारा समुपधर गीतो वाल वृक्षों के खण्डों से समन्वित वह उद्यान था ॥३७॥ कहीं पर समुत्पन्न तथा उपसिद्ध प्रतीर्ण पुष्पों में युक्त मुनियो के निवास स्थानों में पाण्डुत् पादयो से समन्वित वह उद्यान था । कहीं पर अत्यन्त विशाल एवं उत्तुङ्ग और मूल से ही लेकर फलों से निचित फलम कटकट) के वृक्षों से उपेत वह उद्यान था ॥३८॥ विहासित और प्रतिमुक्त तताश्री के गृहों से सिद्धो की लीला वाला था तथा सिद्धो की अङ्गनाश्री के सुवर्ण रविम तूचुरो के नाद में परम सुन्दर वह उद्यान था । पामराभ्य त्रिमगु के वृक्षों की मञ्जरियो में तसक चमरो से समन्वित तथा मूद्गो की कतारी में स्थित होने वाले त्रल वदयो के पुष्पों से समुत्पन्न वह उद्यान था ॥३९॥ कुमुभो के उकरो में मिश्रित वायु से विपुलित वृक्षों के अप्रमाण वाला तथा भूमण्डल में निपातित वशिषो की

क्षात्रियों से युक्त था । मुन्वियों के बीच में स्त्रीत होने वाले मृगों के समुदाय
 बाना—सम्भोह की प्राप्त देहधारियों को अपवर्ग को देने वाला था ।
 चन्द्रमा की किरणों के समान घबल मनोज्ञदिककों से तथा मिन्दर, वृन्म
 और वृन्म के तुल्य अक्षरों से—चाभीकर (मूर्ध्नि) की आभा के समान
 कर्णिकारों से और परम विद्याल शाखाओं के द्वारा फूलत अरविन्दों से
 रचित वह उद्यान था । कहीं पर तट वनत वर्णों की आभा वाले—
 कहीं पर द्रुमों के सहस्र—कहीं पर सुवर्ण के समान पुष्पों से सम्राचित
 भूजल वाले वह उद्यान था ॥४१, ४२॥

पुनार्गोपु द्विजगणरिक्त स्वनाशाकस्तत्रत्भरतमिनम् ।
 रम्भोपान्तं श्रमहरपवन फुल्लाङ्गेषु अमरविलसितम् ॥४३॥
 मकलभुवनमूर्ता लोकनायस्तदासीन्तु-
 हिमशिखरिपुञ्जराः साह्यं मिष्टेगजेर्षाः ।
 विविद्यतरुविशाल मत्तहृष्टान्मपुष्ट
 मुपवनत नरम्प्य दशांशमाम देव्या ॥४४॥
 उद्यान दर्शित देव । शाश्वता परया मुम् ।
 क्षेत्रस्य तु गुणान् सर्वान्भुजवपुमिहाहनि ॥४५॥
 अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यमात्रमुक्तस्य तन्मथाः ।
 धृत्वापि हि न मे नृत्तिरता भूयावदम्भमे ॥४६॥
 इदं गृह्यत क्षेत्रं सदा वाराणसी मम ।
 सर्वेषामेव भूतानां हेतुर्मोक्षस्य सदा ॥४७॥
 वस्मिन् सिद्धा सदा देवि ! मदीयं व्रतमास्थिताः ।
 नानाविद्भ्रवरा नित्यं मम लोकाभिकाङ्क्षिण ॥४८॥
 अभ्यसन्ति परं योगं सुवचात्मनो जितेन्द्रियाः ।
 नानावृक्षसमाकीर्णं नानाविद्भ्रवकूजिते ॥४९॥

वह दिव्य उद्यान ऐसा मनोरम था जिसमें पुनार्गोप द्विजगणों
 (पक्षियों) का भूजन हो रहा था और जो स्वतः अक्षरों के स्तम्भों के भार

मे तमित था। जिसके उपासन परमरज्य थे—शारीरिक श्रम की हरण करना
 वाला वायु जिसमें वहन कर रहा था तथा विकसित कमलों में जिस
 रचना में भ्रमरों का विलास हो रहा था ॥४३॥ उस समय में समस्त
 भूषणों के भरण करने वाले—लोकों का नाश न अपने इष्ट गणेशों के साथ
 में तुहिना शिखर हिमालय अद्रिराज की पुत्री देवी पार्वती को अनेक प्रकार
 में दुःखों अत्यन्त विस्तार—मत्त एव हृष्ट अन्वो के द्वारा पुत्र और उपासन
 के लक्ष्मों न रज्य उग उद्दान को दिया दिया था ॥४४॥ देवी ने कहा—
 हे देव ! परा शोभा न मुक्त इव उद्दान को तो भावने दिव्या दिया है ।
 अब समस्त इस क्षेत्र के गुणा वी यहाँ पर भाव कहर क योग्य है । अवि-
 मुक्त इस क्षेत्र के साहाय्य को श्रवण करके भी मुझे पूर्ण तृप्ति नहीं हुई
 है । इगणिय इस ही भाव पुत्र मुझे श्रवण कराइये ॥४५, ४६॥ देवी का
 क्षेत्र ने कहा— यह अत्यन्त ही सुहृदय क्षेत्र है जो सदा मेरा धाराणसी
 है । यह सरदा सभी शक्तिवो व मोक्ष का हेतु हाता है ॥४७॥ हे देव !
 इस क्षेत्र में महा सिद्धिगण मेरे ही मन में समाविष्ट रहते हैं । ये लोग
 विभिन्न प्रकार के किन्हीं क प्रारण करने वाले और निरप ही मेरे लोक
 का पालन करने की अर्थात् रक्षा करने के ॥४८॥ मुक्त भद्रमा वाले जिने-
 न्द्रिय लोका अनेक वृत्ति न समाधिग और नाना प्रकार के विद्वानों व कृजिज
 हा श्रवण मे पर योग का सम्पादन किया करत हैं ॥४९॥

कमलानुपलपुष्पाद्वरः शशभिः समन्तकृते ।

अप्यारोग्यगन्धर्वैः सदा सतोवित्तुभे ॥५०॥

राजते मे सदा वासायेत कार्येण तच्छृणु ।

सन्मना गम भवतदच मयि सर्वापितक्रियः ॥५१॥

यथा मोक्षमिहाप्नोति अन्यत्र न तथा क्वचिन् ।

एतन्मम पर दिश्य गृह्णाद्गृह्यतर महत् ॥५२॥

ब्रह्माद्यस्तु जागन्ति येषां सिद्धा मुमुक्षवः ।

भक्त प्रियतम क्षेत्र सरसा-चेह रतिमम ॥ ५३॥

विमुक्तं न मया यस्मान्मोक्षयते वा कदाचन ।
 महत् क्षेत्रमिदं तस्यादविमुक्तमिदं स्मृतम् ॥५४
 नैमिषेऽथ कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे ।
 स्नानात्संसेविताद्वापि न मोक्षः प्राप्यते यतः ॥५५
 इह संप्राप्यते येन तत एतद्विशिष्यते ।
 प्रयागे च भवेन्मोक्ष इह वा मत्परिग्रहात् ॥५६

कमल-उत्पल पुष्पो से आढ्य सरोवरो से ममलकृत-अम्बराओ के गण और गन्धर्वों के द्वारा सदा से सेवित शुभ स्थल यह है । जिस काट्य के कारण मुझे सदा इसका निवास पसन्द है उसे भी तुनलो । मेरे में ही मनको निवेशित करने वाला मुझ में ही सर्वस्व सन्निहित कर देने वाला तथा सब किये हुए कर्मों को भी मेरी ही सेवा में अर्पित करने वाला मेरा भक्त जिस प्रकार से यहा मोक्ष को प्राप्ति कर लेता है वैसा अन्य किसी भी स्थान में नहीं कर सकता है । यह ही मेरा परम दिव्य-महत् और गुह्य में गुह्यतम क्षेत्र है ॥५०, ५१, ५२॥ ब्रह्म दिक् देवगण और जो भी मुमुक्षु सिद्ध लोग हैं वे इसे मनी मानी जानते हैं । इसीलिये मेरा यह सबसे अधिक प्रिय क्षेत्र है और इसी कारण से मेरी यहा पर अत्यधिक रति है। इसी से मैंने इसको कभी नहीं छोडा है और न भविष्य में भी मेरे द्वारा इसका त्याग किया जायगा इसी से उसका यह महत् क्षेत्र है और यह उसका अविमुक्त कहा गया है ॥५३, ५४॥ नैमिष-कुरुक्षेत्र गङ्गाद्वार और पुष्कर में स्नान करने से तथा सेवित करने से भी मोक्ष प्राप्त नहीं किया जाता है । नही परम दुर्लभ मोक्ष यहाँ पर सम्प्राप्त कर लिया जाता करता है इसी से यह सब से विशिष्ट होता है । या तो प्रयाग में इस मोक्ष की प्राप्ति जानो है अथवा यहाँ पर मेरे परिग्रह करने से मुक्ति ही जाती है ॥५५, ५६॥

प्रयागादपि तीर्थान्यादिदमेव महत् स्मृतम् ।
 जैगीपन्थः परा सिद्धि योगतः स महात्तपाः ॥५७

देवि ! यहाँ पर ही मेरी समाराधना करके अत्युत्तम सिद्धि को प्राप्त करेगा ॥ ६३ ॥

पराशरसुतो योगी ऋषिव्यासो महातपाः ।
 धर्मकर्ता भविष्यच्च वेदसंस्थाप्रवर्तकः ॥६४
 रंस्यते सोऽपि पद्माक्षि । क्षेत्रेऽस्मिन् मुनिपुङ्गवः ।
 ब्रह्मा देवर्षिभिः साष्टं विष्णुर्वायुर्दिवाकरः ॥६५
 देवराजस्तथा शक्रो येऽपि चान्ये दिवोकसः ।
 उपामन्ते महात्मानः सर्वे सामेवमुव्रत ॥६६
 अन्येऽपि योगिनः सिद्धाश्छन्नरूपा महान्नताः ।
 अनन्यमनसोभूत्वा मामिहोपासतेसदा ॥६७
 धनकंश्च पुरीमेताम् मत्प्रसादादवाप्स्यति ।
 स चैता पूर्ववत्कृत्वा चानुवर्ण्याथमाकुलाम् ॥६८
 स्पाता जनसमाकीर्णं भक्त्या च भुञ्चिरनृपः ।
 मयि सर्वापितप्राणो मामेव प्रतिपत्स्यते ॥६९
 ततः प्रभृति चावङ्गि ! येऽपि क्षेत्रनिवासिनः ।
 गृहिणो लिङ्गिनो वापि मङ्गक्ता मत्परायणाः ॥७०
 मत्प्रसादाद्भजिष्यन्ति मोक्षं परमदुर्लभम् ।
 विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः ॥७१
 इक्ष्क्षेत्सोऽपि संसारं पुनर्विशेत् ।
 ये पुनर्निर्ममा धीरा सत्त्वस्था विजितोन्द्रयाः ॥७२

पराशर मुनि का पुत्र—महान् तपस्वी और योगी ऋषि व्यासदेव धर्मों का करने वाला—आगे भविष्य में होने वाला वेदों की संस्था का प्रवर्तक होगा ॥६४॥ हे पद्माक्षि ! वह मुनियो में परम श्रेष्ठ भी इसी क्षेत्र में रमण करेगा । ब्रह्मा—देवर्षियों के साथ विष्णु—वायु—दिवकर—देवों का राजा इंद्र और अन्य जो देवगण हैं वे सभी महान् अत्माओं

वाले हे सुप्रते ! मेरी ही उपासना किया करते है । इनके प्रतिरिक्त अन्य भी योभोजन—निद्रावण और छिपे हुए महान प्रतो वाले लोग अनन्य मन वाले होकर यज्ञ पर सर्वदा मेरी ही उपासना किया करते है । अलकं इस पुरी का मेरे ही प्रसाद से प्राप्त करेगा और वह इस पुरी को पूर्व की ही भक्ति करने जो चारो वणों से समाकुल—रफीत और जलो से समाकीर्ण है । वह नृप बहून् समय पर्यन्त अपनी भक्ति को उदकट धारणा के द्वारा प्राप्त करेगा और फिर सर्वाधिक प्राण वाला होकर अन्त मे मुझ को ही प्राप्त कर लेगा । हे चार्वङ्ग ! तथा मे लेकर जो भी इस क्षेत्र के निवास करने वाले गृही एवं निद्रो के धारण करने वाले—मुझमे ही परामण रहने वाले मेरे भक्त परम दुर्गम मोक्ष का सेवन करेगे और वह मेरे ही प्रसाद से होगा । विषयो मे समामकत बिल वाचा भी धम मे रति के त्याग करने वाग्य मतुग्य ह्य परम पुण्य मय क्षेत्र मे मृत्युमृत होकर फिर ससार मे प्रवेश प्राप्त नहीं किया करता है और जो निमग्न एवं धीर तथा रास्वरथ इन्द्रियो को नियन्त्रित रखने वाले है उनको तो बात ही क्या है ॥६५॥
(६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२)।

प्रतिनश्य निरारम्भा सर्वे ते मयि भाविता ।
 देहभङ्ग समासाद्य धीमन्तः सङ्गवर्जिताः ॥
 गता एव पर मोक्ष प्रसादान्मम मुच्यते ॥६३
 जन्मान्तरसहस्रेषु युञ्जन् धीममवाप्नुयात् ।
 तमिहैव पर मोक्ष मरणादधिगच्छति ॥६४
 एतस्माद्दशोपतो देवि । क्षीमस्यास्य महत्त्वताम् ।
 अविमुक्तस्य कथितं तथा ते गूह्यमुत्तमम् ॥ ७५
 अत परतर नास्ति सिद्धिगूह्य महेश्वरि । ।
 एतद्गूह्यमिह योगज्ञा मे च योमेश्वरामुचि ॥ ७६
 एतच्छ्रेय पर स्थानमेतदेव पर निवृत्तम् ।
 तमदथ परमप्रज्ञा तमदथ परमपदम् ॥ ७७

व्रतों के धारण करने वाले—आरम्भों से रहित जो जन हैं वे सभी भुजमें भावित होते हैं और सर्व सङ्ग से रहित वे धीमान् देहों के मङ्ग को प्राप्त कनके हे सुबले । मेरे ही प्रसाद से परम मोक्ष को प्राप्त हो ही गये हैं ॥७३॥ सहस्रों जन्मों में योग का अम्मास करके जिसकी प्राप्ति की जाती है उसी परम मोक्ष को यहां पर मरण करने से ही मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥७४॥ हे देवि ! यह अति मक्षेप से अविमुक्त इस क्षेत्र का महान् फल जो परम उत्तम और अत्यन्त गुह्यतम है मैंने आपको बतला दिया है । हे महेश्वरि ! इससे परनर कुछ भी सिद्धि गुह्य नहीं है । इसकी योग के ज्ञाता और भूमण्डल में स्थित योगेश्वर गए ही जो होते हैं वे ही जानते हैं । यह ही सर्वोपरि परम स्थान है—यह ही परम शिव है—यह ही परम ब्रह्म है और यह ही सर्वोत्कृष्ट परम पद है ॥ ७५ ॥

॥७६, ७७॥

वाराणसी तु भुवनत्रयसारभूता रम्या—
 सदा मम पुरी गिरिराजपुत्रि ! ।
 अत्रागता विविधदुष्कृतकारिणोऽपि—
 पापक्षयाद्विरजसः प्रातिभान्ति मर्त्याः ॥७८
 एतस्मृत प्रियतम मम देवि !
 नित्यं क्षेत्रं विचित्रतत्त्वगल्मलतासु पुष्पम् ।
 अस्तिन्मृतास्तनुभूतः पदमाप्नुवन्ति—
 मूर्खामिमेन रहितापि न सशयोऽत्र ॥७९
 एतन्मिन्नन्तरे देवो देवी प्राह गिरीन्द्रजाम् ।
 दातुं प्रसादाद्यक्षाय वर भक्त्याष भ्रामिनि ॥८०
 भवतो मम वरारोहे ! तपसा हृतकिल्बिषः ।
 अहो वरमसौ लब्धमस्मत्तो भुवनेश्वरि ! ॥८१
 एवमुक्त्वा ततो देवः सङ्गं देव्या जगत्पतिः ।
 जगाम यथा यथास्ते कृणोधमनिसन्ततः ॥८२

ततस्तं गुह्यकं देवी द्वष्टिपातंनिरीक्षती ।
 श्वेतवर्णं दिचामाणं स्नायुवद्धास्थिपञ्जरम् ॥ ८३
 देवी प्राह तदा देव दर्शयन्ती च गुह्यकम् ।
 सत्य नाम भवानुग्रो देवैरुवतस्तु शङ्कर ! ॥ ८४

यह वाराणसी पुरी हे गिरिराज पुत्रि ! तीनों भुवनों की सार-
 भूता—सदा अतीव रम्य मेरी पुरी है । यहाँ पर आये हुए अनेक प्रकार
 के दुष्कृतो को करने वाले भी मनुष्य पापो के क्षय हो जाने से परम शुद्ध
 होकर दीप्तिमान् हो जाया करते हैं । हे देवि ! यह मेरा प्रियतम क्षेत्र है
 और नित्य है । यहाँ पर विचित्र तरु और लता तथा गुल्मो मे पुष्प हुआ
 करते है । इस मृत्यु को प्राप्त होने वाले देहधारी लोग अत्यन्त मूर्ख
 एवं आत्मो रहित होते हुए भी परम पद को प्राप्त किया करते है इसमे
 किञ्चिदमात्र भी सशय नहीं है ॥७८, ७९॥ महामहर्षि श्री सूतजी ने
 कहा—इसी अन्तर मे वह देव गिरिन्द्रजा देवी से भक्त यक्ष के लिये प्रस-
 न्नाता से वरदान प्रदान करने के लिये बोले थे—हे भामिनि ! हे वरारोहे !
 यह मेरा भवन है और तपश्चर्या के द्वारा इसने अपने सब पापो को हत
 कर दिया है । हे भुवनेश्वरि ! इसने हमस वर प्राप्त कर लिया है । इस
 प्रकार से कहकर जगत् के पति देव अपनी देवी के साथ वहाँ पर गये थे
 जहाँ पर अत्यन्त वृश केवल धमनियां ही शेष रहने वाला यक्ष तप मे
 निमग्न था । इसके अनन्तर उस देवी ने अपनी दृष्टि के पालो से उस
 गुह्यक का निरीक्षण किया था । वह एकदम श्वेत वर्ण वाला—चर्म से
 रहित और स्नायुओ से बद्ध अस्थियो के पञ्जर वाला था । उस समय मे
 देवी ने उस गुह्यक को दिखलाते हुए ही देव से कहा था ।क ह शङ्कर !
 ज्ञाता कि देवी ने कहा था आप सचमुच ही बहुत उग्र रूप एवं स्वभाव
 वाले हैं ॥ ८०, ८१, ८२, ८३, ८४॥

ईदृशे चास्य तपसि न प्रयच्छसि यद्वरम् ।

अत्र शीतो महादेव । पुण्डसम्यगुपासितं ॥ ८५

कथमेवं परिल्लेशं प्राप्तो यक्षकुमारकः ।
 शीघ्रमस्य वर यच्छ प्रसादात् परमेश्वर ! ॥८६
 एष मन्वादयो देव ! वदन्ति परमपंगवः ।
 हृष्टाद्वाचाय तुष्टाद्वा सिद्धिस्तूभयतोभवेत् ॥८७
 भोगप्राप्तिस्तथा राज्यमन्तेमोक्षः सदाशिवात् ।
 एवमुक्तस्ततो देव सह देव्या जगत्पतिः ॥८८
 जगाम यक्षो यत्रास्ते कुशोधर्मनिसन्ततः ।
 त हृष्ट्वा प्रणतं भक्त्या हरिकेश वृषध्वजः ॥८९
 दिव्यञ्चक्षुरदात्तस्मं येनापश्यत् स षड्भुम् ।
 अथ यक्षस्तदा देशाच्छर्त्तन्मील्य चक्षुषी ॥
 अपश्यत् सगण देवं वृषध्वजमुपस्थितम् ॥९०॥

हे महादेव ! इस क्षेप में पुण्य की उपासना करने वाले इसने इस प्रकार के तप में भी आप की ही अभी तक इस को वरदान नहीं दे रहे हैं— यही तो आपके स्वभाव की उग्रता है । हे परमेश्वर ! यह यक्ष का कुमार क्यों ऐसे महान् तपस्या के बलेश को प्राप्त हो गया है ? आप प्रसन्न होकर अति शीघ्र ही इसको वरदान कीजिए प्रशान्त ॥८५, ८६॥ हे देव ! मनु आदि परमपिंगु तो इसी प्रकार से कहा करते हैं कि रुट से अथवा तूट से दोनों ही प्रकार से सिद्धि हुआ करती है । सदाशिव प्रभु से पहिले भोगों की प्राप्ति और राज्य प्राप्त हुआ करता है और अन्त में मोक्ष के पाने का लाभ होता है । इस प्रकार से जब देवी के द्वारा देव से कहा गया था तो तुरन्त ही जगत् के स्वामी वह देव देवी के ही साथ में कहा पर पहुँच गये थे जिस स्थान पर परम दुर्बल और दोष धमनियों वाला वह यक्ष तप में लीन होकर समुपस्थित था । भक्ति से हरिकेश को प्रणाम करने हुए उसको देखकर भगवान् वृषध्वज ने दिव्य चक्षु प्रदान कर दी थी जिससे उसने शत्रु को देख लिया था । इसके उपरान्त उसी समय में वह यक्ष अपने चक्षुओं को उनमीलित करके स्थान से धीरे से उठा था

और उसने गणों के सहित वहा पर समुपस्थित वृषध्वज देव को देखा था ॥८७, ८८, ८९, ९०॥

वरं ददामि ते पूर्वं लोलोक्थे दर्शनं तथा ॥९१
 सावर्ण्यं च शरीरस्य पश्य मा विगतज्वरः ।
 ततः स लब्ध्वा तु वरं शरीरेणाक्षतेन च ॥९२
 पादयोः प्रणतस्तथीकृत्वा शिरसिसाञ्जलिम् ।
 उवाचाथतदातेन वन्दोऽस्मीतिचोदितः ॥९३
 भगवन् ! भवितमव्यग्रा त्वय्यनन्या विधत्स्व मे ।
 अन्नदत्त्व च ते लोकानां गाणपत्य तथाऽह्यम् ॥९४
 अविभुयत च ते स्वान पश्येय सर्वदा यथा ।
 एतद्दिच्छामि देवेश त्वत्तो वरमनुत्तमम् ॥९५
 जग मरणसन्त्यक्तः सवरोगविवर्जितः ।
 भविष्यसि गणाध्यक्षो धनदः सर्वपूजितः ॥९६
 अजेयश्चापि सर्वेषां योगेश्वर्यं समाश्रितः ।
 अन्नदश्चापि लोकेभ्यः क्षेत्रपालो भविष्यसि ॥९७
 महाश्रुत्वा महासत्वो ब्रह्मर्ष्यो मम च प्रियः ।
 श्यक्षश्च दण्डपाणिश्च महायोगी तथैव च ॥९८
 उद्भ्रम सम्भ्रमश्चैव गणोतु पञ्चारवौ ।
 तथाज्ञाञ्च क्रूरिष्येते लोकस्योद्भ्रमी ॥९९
 एव स भगवास्तत्र यक्षं कृत्वा गणेश्वरम् ।
 जगाम वामदेवेशः सह तेनामरेश्वरः ॥१००

क्षेत्रपालो के भी देव ने कहा — मैं पहिले तुमसे वरदान देता हूँ तथा भूलोकमें मे दर्शन देता हूँ । फिर विगत ज्वर वाला होकर शरीर की सवर्णता और मुक्तकी देयना ॥९१ ॥ श्री गूणजी ने कहा — इसने उपरान्त उसने वरदान को पाकर अशक्त शरीर के शिब के चरणों से प्रणत होने हुए शिव पर दोनों हाथों की अञ्जलि बाँधकर वहा पर

स्थित हो गया था फिर उसने उस समय में कहा था कि हे भगवन् ! मैं वर प्राप्त होने वाला हो गया हूँ । अब तो आप अपने में अव्यग्र और अनन्य भक्ति मेरी का देवों तथा लोको को अन्न का देने वाला एवं उच्छय गणपत्य पद प्रदान कीजिए । ६२, ६३, ६४ ॥ मुझे ऐसा ही बता दीजिये कि मैं सर्वदा आपके अधिमुक्त स्थान का दर्शन करता रहूँ । हे देवेश्वर ! आप से मैं यही उत्तम वरदान चाहता हूँ ॥६५॥ देवों के देव में कहा— चरा (वृद्धता) और मौत इन दोनों से सन्त्यक्त होता हुआ तू सब रोगों से वर्जित रहेगा तथा सबके द्वारा पूजित गणों का अध्यक्ष छन्द हो जायगा । योग के ऐश्वर्य का समाश्रय करके सबका तू भजिये होगा और लोको के लिये अन्न का प्रदान करने वाला क्षेत्रपाल होगा । इसके अतिरिक्त तू महान् बल वाला-महान् सत्व में युक्त-ब्राह्मण ऋषि (तीन नेत्रों वाला)-दण्डपाणि-महायोगी और मेरा प्रिय हो जायगा ॥६६, ६७, ६८॥ उद्भ्रम और सम्भ्रम ये दो गण तुम्हारे परिचारक होंगे । लोक के उद्भ्रम और सम्भ्रम तेरी आज्ञा को करे गे सूत जी न कहा - इस तरह भगवान् ने उम यक्ष को गणेश्वर बनाकर अमरेश्वर वामदेव उसी के साथ चले गये थे ।

॥ ६६. १०० ॥

॥ वाराणसी क्षेत्रमाहात्म्य ॥

इमापुण्योद्भवा स्तिरघाकया पापप्राशिनीम् ।
 शृण्वन्तु ऋषय सर्वेमुविशुद्धास्तपोधनाः ॥१
 गणेश्वरपति दिव्य रुद्रतुल्यपराक्रमम् ।
 सतत्कुमारो भगवानपृच्छ-नन्दिनेश्वरम् ॥२
 ब्रूहि गुह्य यथा तत्त्व यत्र नित्यं भव स्थितः ।
 माहात्म्यं सर्वभूतानां परमात्मानहृष्वरः ॥३
 घोररूप समास्थाय दुष्करं देवदानवैः ।
 आभूत्सत्तव यावत् स्थानभूतो महेश्वरः ॥४

पुरा देवेन यत्प्रोक्तं पुराण पुण्यमुत्तमम् ।
 तत्सर्वं सप्रवक्ष्यामि नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥५॥
 तता देवेनतुष्टेन उमाया प्रियकाम्यया ।
 कथित भुविविरूपात यत्र नित्य स्वयस्थितः ॥६॥
 रुद्रस्यार्धासनगता मैरशृङ्गै यशस्विनी ।
 महादेव ततो देवी प्रणता परिपृच्छति ॥७॥

महापि श्री गूतजी ने कहा — गुविणुद्ध — तब के धन वाले राघव
 ऋषिगण आप लोग इस पुण्य से उत्पन्न हुई — पापों के नाश करने वाली
 अन्वस्त स्निग्ध कथा का श्रवण करिये ॥१॥ भगवान् सतसुमार ने गणे-
 श्वरो के स्वामी-दिग्ध और रुद्र के तुल्य पराक्रम से सम्पन्न महेश्वर से
 पूछा था ॥२॥ हे भगवन् ! परम गुह्य तत्र जहाँ पर भगवन् नित्य ही
 स्थित रहा करते हैं — गमस्त भूतो वा माहात्म्य श्रीर परमात्म्य महेश्वर
 देव — दानवो वा माघ अतिदुष्टर और परम घोर रूप से समास्थित होकर
 स्थाणु भूत महेश्वर मत्र भूतो वा सत्व होना है तब तक रहा करते है ।
 ॥३, ४॥ नन्दिकश्वर ने कहा — पहिले समय में जो परम उत्तम पुराण
 पुण्य में समुत्त देव ने कहा था वही मय में अब भगवान् महेश्वर को नम-
 नमस्कार करके कहूंगा ॥५॥ इससे अन्तर परम म-तुष्ट हुए देव ने उमा
 के प्रिय श्री कामना से भूमण्डल में विद्ययात की कहा था जहाँ कि वह
 स्वयं स्थित थे ॥६॥ रुद्र के अर्धासन पर स्थित — गम शृङ्ग में स्थित
 यशस्विनी देवी महादेव के सामने प्रणत हुई पूछती है ॥७॥

भगवन् ! देव देवेश ! चन्द्राङ्कृतशेखर । ।
 धर्मं प्रवृंहि मत्पाना भुवि चैवोत्परेतमाम् ॥८॥
 जप्त दत्त दृत्त चेष्ट तपस्तप्त कृत्स्नच यन् ।
 ध्याताध्ययनसम्पन्न वथ भवति चाक्षयम् ॥९॥
 जन्मान्तरमहस्येण यत्पाप पूर्वगच्छितम् ।
 वथ तनुक्षयमायाति तन्ममानक्षय शङ्कर ! ॥१०॥

यस्मिन् व्यवस्थितो भक्त्या तुष्यसे परमेश्वर ! ।
 व्रतानि नियमाश्चैव आचारो धर्म एव च ॥११
 सर्वसिद्धिकरं यत्र ह्यक्षय्यगतिदायकम् ।
 वक्तुमर्हसि तत्सर्वं परं कौतूहलं हि मे ॥१२
 शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि गुह्यानां गह्यमुत्तमम् ।
 सर्वक्षेत्रेषु विख्यातमविमुक्तं प्रिये मम ॥१३
 अष्टपट्टिःपुराप्रोक्तास्थानानास्थानमुत्तमम् ।
 यत्र माक्षात्स्वयं रुद्र कृत्तिवासा स्वयंस्थितः ॥१४

हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! हे आपके चन्द्र को शिर में धारण करने वाले ! आप कृपया भूमण्डल में मनुष्यों का और ऊर्ध्व रैताओं का धर्म बतलाओ ॥१॥ जाप-दान-हवन-इष्ट-तप और किया हुआ ध्यान—अध्ययन आदि यह सभी किस प्रकार से अक्षय होता है जो कभी भी क्षीण ही न होवे ? हे सङ्कर देव ! महसो अन्य जन्मों में पूर्व से ही सञ्चित किया हुआ जो पाप है वह किस प्रकार से क्षय को प्राप्त हुआ करना है—यह सभी आप मुझको बतलाइये ॥६, १०॥ जिसमें विशेष रूप से अवस्थित होकर भक्ति से आप सन्तुष्ट हुआ करते हैं हे परमेश्वर ! उन व्रतों को—नियमों को—आचारों को धीरे धर्म को आप बतलाने के योग्य हैं जिसमें अक्षय गति के देने वाला और जो सम्पूर्ण सिद्धियों के करने वाले हो—यह सभी आप मुझे परम अनुग्रह करके बतलाइये । मेरे हृदय में इसके श्रवण करने का बड़ा भारी कौतूहल ही रहा है ॥११, १२॥ भगवान् महेश्वर ने कहा—हे देवि ! आप सुनिये ! मैं गोपनीय से भी अधिक गोपनीय और उत्तम जो भी है उसे अब तुमको बतला दूँगा । हे प्रिये ! ममस्त क्षेत्रों में विख्यात अविमुक्त क्षेत्र में अत्यन्त प्रिय होता है ॥१६॥ पहिले अडसठ म्यानों में अत्युत्तम स्थान बतलाये हैं जहाँ पर कृत्तिका वसन धारण करने वाले माक्षान् स्वयं रुद्र स्थित रहा करते हैं ॥१४॥

यत्र सन्निहितो नित्यमविमुक्ते तिरुत्तरम् ।

तदक्षत्र न मयामुक्तमविमुक्तं ततः स्मृतम् ॥१५
 अविमुक्तेषु सिद्धिरविमुक्तेषु परा गतिः ।
 जप्तं दत्तं हुतं नेष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥१६
 ध्यानमध्ययनं दानं सर्वं भवति चाक्षयम् ।
 जन्मान्तं सहस्रं यत्पापं पूर्वसञ्चितम् ॥१७
 अविमुक्तं प्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम् ।
 अविमुक्ताग्निना दग्धमग्नी तूलमिवाहितम् ॥१८
 ब्राह्मणाक्षयिवावेद्या शूद्रा वै वर्णसङ्कराः ।
 कृमिन्नेच्छेदश्च ये चान्ये सङ्कीर्णापापयोनयः ॥१९
 कीटा पिपीनिकाश्चैव ये चान्ये भृगपक्षिणः ।
 कालेनान्धनं प्राप्ता अविमुक्तेभ्युत्प्रिये ! ॥२०
 चन्द्राद्गमौलिनं सर्वं ललाटाक्षा वृषध्वजाः ।
 जिये ममपुरे देवि । जायन्ते तत्र मानवाः ॥२१

जिन अविमुक्तन में निम्नतर नित्य हो मै मग्निहित रहा करता हूँ
 और मेरे द्वारा वह क्षय कभी भी मुक्त नहीं किया जाता है इसीनिये वह
 अविमुक्त-इस नाम से कहा गया है ॥१५॥ उस अविमुक्त स्थान में सर्वो-
 त्तम परा सिद्धि होती है और उस अविमुक्त में परागति हुआ करती
 है । जाग-दान-हुत-वेष्टा-तप तपस्या और किया हुआ धर्म का कार्य-
 ध्यान-अध्ययन-दानादि यह सभी ब्रह्म पर अक्षय होता है । सहस्रों पाप
 में हुए जन्मों में जो भी कुछ पाप कर्म सञ्चित हो गया है वह भी सब
 अविमुक्त नामक मेरे परम प्रिय स्थान में प्रवेश करने वाले पुण्य के सभी
 कुछ नुरन्त ही क्षय हो प्राप्त हो जाया करते हैं । वह सब अग्नि में
 अहित तूल की ही भाँति अविमुक्त स्थान की अग्नि से दग्ध हो जाया
 करता है ॥१६, १७, १८॥ ब्राह्मण-दात्रिय-वंश्य शूद्र और वर्णसङ्कर-
 कृमि-म्लेच्छ और भी अन्य सङ्कीर्ण पाप योनि धार है तथा कीटा-
 पिपीनिका (कीटिणी) और जो अन्य भृग एव पक्षिण है हे प्रिये ! वे सब

काल में अविमुक्त क्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त होते हैं उनके विषय में श्रवण करलो। हे देवि ! वे सभी चन्द्रार्ध मीलि वाले—वृषध्वज और ललाट में नेत्र वाले होकर मेरे शिवपुर में मानव होकर जन्म ग्रहण किया करते हैं ॥१६, २०, २१॥

अकामो वा सकामोवाह्यपिनियंगतोऽपि वा ।
 अविमुक्तेत्यजन्प्राणान्ममलोकेमहीयते ॥२२
 अविमुक्तं यदागच्छेत्कदाचित्कालपर्ययात् ।
 अस्मत्ताचरणौ वदध्वा तत्रोवनिघन व्रजेत् ॥२३
 अविमुक्तं गतोदेवि ! ननिर्गच्छेत्ततः पुनः ।
 सांऽपिमत्पदमाप्नोति नात्रकार्याविचारणा ॥२४
 वस्त्रप्रद रुद्रकोटि सिद्धेश्वरमहालयम् ।
 गोकर्णं रुद्रकर्णञ्च मुवर्णाक्ष तथैव च ॥२५
 अमरञ्च महाकाल तथा कायावरोहणम् ।
 एतानि हि पवित्राणि सांघ्न्यात् मन्ध्ययोर्द्वयोः ॥२६
 कानिञ्जखनञ्चैव शकु कर्णं स्थलेश्वरम् ।
 एतानि च पवित्राणि सान्निध्याद्धि ममप्रिये ॥
 अविमुक्ते वगरोहे ! त्रिसन्ध्य नात्र संशयः ॥२७॥
 हरिश्चन्द्र पर गुह्यं गुह्यमात्रातकेश्वरम् ।
 जनेश्वर पर गुह्यं गुह्यं श्रीपवंत तथा ॥२८

बिना कामना वाला हो अथवा सकाम हो अथवा तियंग् योनि में रहने वाला हो कोई भी कैसा ही हो अविमुक्त क्षेत्र में प्राणों का त्याग करता हुआ फिर मेरे ही लोक में जाकर प्रतिष्ठित हुआ करता है ; किसी भी समय में काल के पर्यय से अब भी उस अविमुक्त में चला जावे तो पापाप से भरने चरणों को बाँधकर वही पर निघन को प्राप्त हो जाना चाहिए पर्यान् वहाँ पहुँच कर फिर उस क्षेत्र को किसी भी तरह से मृत्यु तक नहीं छोड़ना चाहिये ॥२२, २३॥ जो कोई भी किसी भी तरह से

यदि मेरे परम प्रिय अविभुवत दोन मे एक बार प्राप्त हो जाये तो फिर लगसे कभी भी निकरा कर नहीं जाना चाहिये । यह पुरष भी मेरे पद को प्राप्त हो जाया करता है—इसमे कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥२४॥ अम्बपद—रुद्र कोटि—सिद्धेश्वर महालय—गोकर्ण—रुद्रवर्ण—गुणपति—अमर—महाकाल—वायानरोहण में स्थल भी दोनो सन्ध्याओ के सांनिध्य होने से परम पवित्र स्थल है ॥२५॥ कानिष्ठजरवन—पाकुवर्ण—स्थलेश्वर ये स्थल भी पवित्र है हे प्रिये ! मेरे सांनिध्य होने के कारण मे ही ये पवित्र होते है । हे बगरोहे ! अविभुवत मे प्रिय-स्य है—इसमे कुछ भी संशय नहीं है ॥२६, २७॥ हरिषयन्द्र परम गुह्य है और आम्नातनेस्वर भी गोपनीय है । जनेस्वर गुह्य है तथा श्रीपर्वत भी उती भाति गुह्य स्थल होत है ॥२८॥

महालय तथा गुह्य कृमिचण्डेश्वर शुभम् ।

गुह्यानिगुह्य केदार महाभैरवमय च ॥२६

आटावेत्तानि स्थानानिमांनिष्ठयाद्भि ममप्रिये । ।

अविभुवनेवररोहे ! प्रिय ध्यतात्रसशय ॥३०

सानि स्थानानि श्रूयन्तोत्तपुलोकेषु मुपते ! ।

अविभुवतस्य पादेषु निरयसग्निहितानिर्व ॥३१

अथोत्तराकथादिव्यामविभुवतस्यगोभने ।

स्कन्दोवक्षतिमाहात्म्यमृषीणाभावितात्मनाम् ॥३२

महालय उती भाति गुह्य है और कृमि चण्डेश्वर परम शुभ है । गुह्य से भी अधिक गुह्य केदार तथा महाभैरव है ॥२६॥ हे प्रिये ! वे आठ स्थान है प्रिये ! मेरे ही सांनिध्य से हे बगरोहे ! अविभुवत मे प्रियस्य है—इसमे कुछ भी संशय नहीं है ॥३०॥ हे सुप्रने ! तीनो तीनों मे जो भी स्थान सुने जाते है वे सभी अविभुवत दोन के पास से निरय हो सन्निहित रहा करते हैं । इसके अनन्तर दिव्य उत्तर तथा जो कि अवि-

मुक्त की है उसे हे शोभने ! उसको जिममें भावितात्मा ऋषियों का
माहात्म्य है अब स्कन्द बतलायेगा ॥३१, ३२॥

७५—नर्मदा-माहात्म्य

माहात्म्यमविमुक्तस्य यथावत् कथितन्त्वया ।
द्रदानी नर्मदायास्तु माहात्म्यं वदसत्तम ! ॥१
यत्रोद्धारस्य माहात्म्यं कपिलासङ्गमस्य च ।
अमरे शस्य चैवाहुर्माहात्म्यं पापनाशनम् ॥२
कथं प्रलयकाले तु न नष्टा नर्मदा पुरा ।
मार्कण्डेयश्च भगवान् विनष्टस्तदा किल ॥
त्वयोक्त तदिदं सर्वं पुनर्विस्तरतो वद ॥३
एतदेव पुरा पृष्टः पाण्डवेन महात्मना ।
नर्मदायास्तु माहात्म्यं मार्कण्डेयो महामुनिः ॥४
उग्रं नपसा मुक्तो वनस्था वनवासिना ।
दृष्ट्वा पूर्वा महागाथा धर्मपुत्रेण धीमता ॥५
श्रुता मे विविधा धर्मास्त्वत्प्रसाद्द्विजोत्तम ! ।
भूयश्च श्रान्तुमिच्छामि तन्मे कथयमुन्नत ! ॥६
कथमेषा महापुण्या नदी सर्वत्र विध्रुता ।
नर्मदा नाम विख्याता तन्मे ब्रूहि महामुने ! ॥७

ऋषिगण ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! आपने अविमुक्त क्षेत्र का
माहात्म्य यथा रीति से कह दिया है अब नर्मदा का माहात्म्य वर्णन करने
की इजा कीजिए ॥ १ ॥ जिममें ओद्धार का माहात्म्य—कपिला सङ्गम
का माहात्म्य तथा पापों के नाश करने वाले अमरेश का माहात्म्य कहा
जाता है ॥२॥ पहिले प्रलय काल में जब सभी विनष्ट हो जाया करते
हैं यह नर्मदा कैसे नष्ट नहीं हुई थी और उस समय में भगवान् मार्कण्डेय
भी विनष्ट नहीं हुए थे—यह सभी आपने पूर्वमें वर्णित किया था अब पुनः

इस सबका विस्तार पूर्वक वर्णन करने की आप कृपा कीजिए ॥३॥ श्री सूतजी ने कहा—यह ही प्रश्न इसी तरह से महात्मा पाण्डव ने महामुनि मार्कण्डेय से पूछा था जिसमें नर्मदा का माहात्म्य भी था । मार्कण्डेय महामुनि परम उग्र तप से युक्त थे उनसे वन में ही निवास करने वाले धीमान् धर्म पुत्र ने पहिली इस महा गाथा को पूछा था ॥४, ५॥ युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजों में परम उत्तम ! आपके ही प्रसाद से मैंने अनेक प्रकार के धर्मों का श्रवण किया था । हे मुन्न ! अब मैं पुनः उनको ही सुनना चाहता हूँ सो आप मेरे सामने उन्हें कहिए ॥६॥ यह महान् पुण्यो वाली नदी सर्वत्र कैसे प्रसिद्ध हुई है ? तथा इसका नर्मदा—यह नाम भी किस प्रकार से हे महामुने ! विख्यात हुआ है—इसे ही आप सर्व प्रथम मुझे बतलाइये ॥७

नर्मदा सरिता श्रेष्ठा सर्वपापप्रणासिनी ।
 तारयेत सर्वं भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥८
 नर्मदायास्तु माहात्म्य पुराणे यन्मया श्रुतम् ।
 तदेतद्धि महाराज ! तत्सर्वं कथयामि ते ॥९
 पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती ।
 ग्रामे वा यदि वाऽण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ॥१०
 त्रिभिः सारस्वत तोय सप्ताहेन तु यामुनम्
 सद्यः पुनाति गाङ्गाय दशनादेव नामदम् ॥११
 कलिङ्गदेशे पश्चाद्धो पर्वतेऽमरकण्ठके ।
 पृण्ये च त्रिपु लोकेषु रमणीया मनोरमा ॥१२
 सदेवासुरगन्धर्वा श्रपयश्च तपोधनाः ।
 तपस्तप्त्वा महाराज ! सिद्धिश्च परमाङ्गता ॥१३
 तत्र स्नात्वानरो राजन्नियमस्थो जितेन्द्रियः ।
 उभोप्य रजनीमिका कुलानां तारयच्छताम् ॥१४

मार्कण्डेय जी ने कहा—यह नर्मदा समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ है

और सम्पूर्ण पापों का विनाश कर देने वाली है। यह सभी स्थावर तथा
 पर प्राणियों का तारण कर दिया करती है। नर्मदा नदी का माहात्म्य
 जो कि मैंने पुराणों में श्रवण किया है हे महाराज ! इसका सम्पूर्ण
 माहात्म्य अब मैं आपसे कहता हूँ ॥२॥६॥ गङ्गा कनखल में—सरस्वती
 कुरुक्षेत्र में—पुण्यमयी है किन्तु नर्मदा प्राय तथा अरण्य में सर्वत्र परम
 पुण्यमयी होती है ॥१०॥ सरस्वती का जल तीन दिन में—यमुना का
 जल एक सप्ताह में और गङ्गा भागीरथी का जल तुरन्त पान करते ही
 मनुष्य को पवित्र कर उसके पापों का नाश कर देता है किन्तु नर्मदा के
 जलके तो दर्शन मात्र से ही पापों का विनाश ही आया करता है ॥११॥
 कलिङ्ग देश में पीछे के अर्द्ध भाग में अमर कण्ठक पर्वत में जो कि परम
 पुण्यमय है तथा तीनों लोकों में यह नर्मदा अतीव मनोरम और रमणीय
 है ॥१२॥ हे महाराज ! देव—गन्धर्व—असुर और तप के ही धन वाले
 ऋषिगण यहां पर तपश्चर्या करके परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। उसने
 स्नान करके हे राजन् ! त्रियम्बो से सस्थित तथा इन्द्रियो को जीतने वाला
 एक रात्रि में ही निवास करके अपने सौ कृपों का उद्धार कर दिया
 करता है ॥१३॥१४॥

जलेश्वरे नरः स्नात्वा पिण्डं दत्त्वा यथानिधि ।

पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाभूतसप्लवम् ॥१५

पर्वतस्य समन्तांतु रुद्रिकोटिं प्रतिष्ठिता ।

स्नात्वा यः कुरुते तत्र गन्धमाल्यानुलेपनं ॥१६

प्रीतस्तस्य भवेच्छर्षो रुद्रकोटिनं संशयः ।

पश्चिमे पर्वतस्थान्ते स्वयं देवा महेश्वरः ॥१७

तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।

पितृकार्यंश्च कुर्वति विधिवन्नियतेन्द्रियः ॥१८

तिलोदकेन तत्रैव तर्पयेत् पितृदेवताः ।

आसप्तमं कुलं तस्य स्वर्गं मोदेत पाण्डव ! ॥१९

पष्टिदुर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।

अप्सरोगणसंकीर्णो सिद्धचारण सेविते ॥२०

दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यालङ्कार भूषितः ।

ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जायते विपुले कुले ॥२१

जलेश्वर मे मनुष्य स्नान करके विधि पूर्वक पिण्डदान करके पितृगण भूतो के सम्बल पर्यन्त संतृप्त रहा करते हैं ॥१५॥ पश्चिम के चारो ओर रुद्र कोटि प्रतिष्ठित है वहाँ पर स्नान करके जो कोई गन्ध मात्यो ओर अनुलेपनी मे अभ्यर्चन किया करता है उससे रुद्र कोटि शर्व परम प्रसन्न होते हैं—इसमे कुछ भी संशय नहीं है । पर्वत के अन्त मे पश्चिम मे स्वयं महेश्वर देव समवस्थित रहा करते हैं ॥१६॥१७॥ वहाँ पर स्नान करके ओर परम शुचि होकर ब्रह्मचर्य से रहने वाले जितेन्द्रिय पुष्य की इन्द्रियो को नियत रखते हुए—विधि पूर्वक पितृ कार्य्य करना चाहिए ॥ १८ ॥ वहीँ पर तिलोदक के द्वारा पितृ देवताओ वा तर्पण करना चाहिये । हे पाण्डव ! उसके सात कुल तक स्वर्ग मे आनंद पूर्ण निवास किया करते हैं ॥१९॥ अप्सराओ के गणो से सेविता एव संकीर्ण तथा सिद्धो एव चारणो से विपेविता स्वर्ग लोक मे वह साठ हजार वर्ष पर्यंत प्रतिष्ठित रहा करता है ॥ २० ॥ दिव्य गन्धो से अनुलिप्त एवम् दिव्य आभरणो से विभूषित वह स्वर्गीय सुख भोग करके जब वहाँ से परिभ्रष्ट होता है तो इस भूमण्ड मे किसी बड़े ओ सम्पन्न कुल मे जन्म ग्रहण लिया करता है ॥२१॥

घनवान् दानशीलश्च धार्मिकश्चैव जायते ।

पुनः स्मरति तत्तीर्थं गमनं तत्र रोचते ॥२२

कुलानि तारयेत् सप्त रुद्रलोकं स गच्छति ।

योजनानां शतं सायं श्रूयते सखिदुत्तमा ॥२३

विस्तारेण तु राजेन्द्र । योजनद्वयमायता ।

पष्टितीर्थसहस्राणि पष्टितीर्थवत्तथैव च ॥ २४

सर्वे तस्य समन्तात्सु तिष्ठन्तेऽमरकण्ठके ।
 ब्रह्मचारी शुचिभूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥२५
 सर्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रतः ।
 ब्रह्मचारी शुचिभूत्वा जितक्रोधो परित्यजेत् ॥२६
 तस्य पुण्यफलं राजन् ! शृणुष्वाम्बुहितो मम ।
 दत्तवपसहस्राणास्यगो मोदेत पाण्डव ! ॥२७
 अप्सरोगणसङ्कीर्णं सिद्धचारणसेवितं ।
 दिव्यगन्धानुलिप्तञ्च दिव्यपुष्पांशोभितः ॥२८
 क्रीडन् देवलोकस्थो देवतैः सह मोदते ।
 ततः स्वर्गोपरिश्रुणु राजा भवन्ति वीर्यवान् ॥२९

यद् यद् यद् पृथ्वी तत्र ये समुत्पन्नं होकर बहुत बड़ा धनी—दान
 कान के स्वभाव वाला और धार्मिक दृष्टि करता है । वह फिर उसी तीर्थ
 का स्मरण करता है और वहाँ पर गमन करना उसे अच्छा लगता है ।
 वह अपने मान कुला का तार दिया करता है और वह रङ्ग लोक में चला
 जाता है । यह उत्तम शक्ति देह ही पोजने के विस्तार वाली सुनी जाती
 है ॥२२, २३॥ हे राजेन्द्र ! यह दा याजन विस्तार में आयत है । माठ
 सहस्र तथा नया माठ कराट तीर्थ उसके चारों ओर अमर कण्ठक में
 स्थित है । जो कोई ब्रह्मचर्य वाला रहने वाला—परम शुचि—क्रोध को
 जीतने वाला और इन्द्रियों को दम से रखने वाला होकर सभी प्रकार की
 हिंसा से निवृत्त—समस्त प्राणियों के हित में रति रखने वाला भगवान्
 सब में ही समाचरण करने हुए अपने प्राणों का पन्तिवाग किया करता है
 हे राजन् ! उसके द्वारा बाल पुण्यों के फल को नुम परम सावधान होकर
 श्रवण करो । हे पाण्डव ! वह मूर्ख ही सहस्र वर्ष तक स्वर्ग में आनन्दित
 जीवन शायक बिना करता है ॥२५, २६, २७, २८॥ अप्सराओं के गणों
 में समाकुल सिद्ध और चारणों के द्वारा मजित स्वर्ग में दिव्यगन्ध से
 अनुमानत एवं दिव्य गुणों से उपनीत होगा दृष्ट देव लोक में स्थित

होकर देवगणों के साथ क्रीडा और आनन्द किया करता है फिर उस स्वर्ग से अत्र परिभ्रष्ट होता है तो परम बल—वीर्य वाला राजा होता है ।

॥२८, २९॥

गृह्णन्तु लभते स वै नानारत्नविभूषितम् ।

स्तम्भोर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवेद्युर्ध्वभूषितैः ॥२७

आलेख्यसहित दिव्यं दासीदाससमन्वितम् ।

भक्तमातङ्गमब्दंश्च हयानां हेपितेन च ॥२१

क्षुभ्यते तस्य तद्द्वार इन्द्रस्य भवन यथा ।

राजराजेश्वरः श्रीमान् सर्वस्त्रीजनवत्सलः ॥२२

तस्मिन् गृहे वसित्वा तु क्रीडाभोगसमन्विते ।

जीवेद्वयगत साम्पत्तये सवरोगविवर्जिते ॥२३

एव भागो भवेत्तस्य यो मृतोऽमरकण्ठके ।

अग्नी विपत्रले वापि तथा नैव ह्यनाशके ॥२४

अनिवर्तिकागनिस्तस्य पवनम्याम्बरे यथा ।

पवनं कुरुते यस्तु अमरेणो नराधिप ॥२५

रम को महा पर गृह भी अनेक रत्नों से समनकृत—हीरा और
 बहुम मणियों से परिपूर्ण, दिव्य स्तम्भों से समन्वित—आलेख्यों से चित्रित—
 दास और दासियों से समुत्त था । प्रपन्न हाथियों के बियाड़ों से तथा अश्वों
 की हिनहिनाओं से उसी गृह का द्वार इन्द्र के भवन की भाँति सुश्रुत रहा
 करता था । उस घर में श्री सम्पन्न सब स्त्री जनो का वत्सल वह राज
 राजेश्वर विरासत किया करता है जो पूर्ण क्रीडा और भोगों से युक्त था ।
 वहा पर सभी प्रकार के रोगों से रहित होकर वह उँड़ सी वर्ष तक
 जीवन रहता है । जो कोई पुरुष उस अमर कण्ठक में मृत्यु की प्राप्ति
 होता है उसी प्रकार के भोगों के उपयोग करने का अद्वय प्राप्त
 होता है । जो अग्नि में—विपत्रक में तथा अनाशक में हे नराधिप ।
 अमरेण से पवन किया करता है उसकी अम्बर में पवन की भाँति अनि-
 वर्तित गति हुआ पवनो है ॥२७, २८, २९, ३०, ३१, ३२॥

कन्यानां त्रिसहस्राणि एकैकस्यापि चापरै ।
 तिष्ठन्ति भुवने तस्य प्रेषणं प्राथयन्ति च ॥३६
 दिव्यभोगः सुसम्पन्नः क्रीडते कालमक्षयम् ।
 पर्वतस्य समन्तात्तु रुद्रकोटिः प्रतिष्ठिताः ॥३७
 स्नानं यः कुरुते तत्र गन्धमाल्यानुलेपनैः ।
 प्रीतःसोऽस्य भवेत् सर्वो रुद्रकोटिर्नसशयः ॥३८
 पश्चिमे पर्वतस्यान्ते ह्यय देवो महेश्वरः ।
 तत्र स्नात्वा शुचिभूत्वा ब्रह्मचारीजितेन्द्रियः ॥३९
 पितृकार्यञ्च कुर्वीत विधिवन्नियतेन्द्रियः ।
 तिलोदकेन विधिवत्तर्पयेत् पितृदेवताः ॥४०
 आसप्तम कुलन्तस्य स्वर्गे मोदेत पाण्डव ! ।
 षाष्ट्यपसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥४१
 दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यालङ्कारभूषितः ।
 ततः स्वगतिपरिभ्रष्टो जायते विपुले कुले ॥४२

तीन मह्य कन्याएँ और एक-एक की दूसरे उसके भुवन में स्थित
 रहती हैं एव प्रेषण को प्राथनाएँ किया करती हैं । इस प्रकार से परम
 दिव्य भोगों से सुसम्पन्न होकर वह अशय काल पर्यन्त क्रीडा करता है ।
 उस पर्वत के चारों ओर रुद्र कोटि प्रतिष्ठित हैं । जो पुरुष वहा पर स्नान
 किया करता है और दिव्य गन्धों के अनुलेपनों से सयुक्त होता है उस पर
 वह सम्पूर्ण रुद्र कोटि परम प्रमन्न होता है—इसमें तनिक भी सशय नहीं
 है ॥३६, ३७, ३८॥ इस पर्वत के पश्चिमीय अन्त भाग में यह महेश्वर
 देव स्वयं विराजमान है । वहा पर स्नान करके और शुचि होकर—
 ब्रह्मचारी एव इन्द्रिय जीन रहकर जो नियत इन्द्रियो वाला अपने पितृगण
 के अर्पण—तर्पण आदि का विधि के साथ कार्य किया करता है और
 तिलों के सहित उदक में विधि पूर्वक पितृ देवताओं का तर्पण करता है
 तो पाण्डव ! उक्त स्नान कुर्वो न क क सब लोग स्वर्ग का आनन्द निवाप्त

प्राप्त करते हैं और साठ हजार वर्ष तक वे नल और स्वयं वह स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित पद पर समाकूट रहता है फिर स्वर्गीय सुखोपभोग की अवधि समाप्त होने पर वहा से परिश्रष्ट होकर दिव्यगन्ध से समनुलिप्त तथा परम दिव्य श्राभूपणो से परिष्कृत होकर यहाँ किसी बहुत बड़े कुल में समुत्पन्न हुआ करता है ॥३६, ४०, ४१, ४२॥

धनवान् दानशीलश्च धार्मिकश्चैव जायते ।

पुनः स्मरति तीर्थार्थं गमन तत्र रोचते ॥४३

तार्येत्तु कुलान् सम रुद्रलोक स गच्छति ।

योजनाना शत माय श्रूयते सरिदुत्तमा । ४४

विस्तारेण तु राजेन्द्र । योजनद्वयमायता ।

पष्टितीथसहस्राणि पष्टिकोट्य स्तथैव च ॥४५

पवनस्य समन्तात्सु तिष्ठत्यमरकण्टके ।

ब्रह्मचारी शुचिभूत्वा जितशोधो जितेन्द्रियः ॥४६

सर्वहिमानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रत ।

एव शकसमाचारी यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ॥४७

तस्य पुण्यफलं राजन् । दण्ड्यावहितो मम ।

शत वर्षसहस्राणा स्वर्गमोदेतपाण्डव । ॥४८

पृथि यामासमुद्राभाभीदृशो नैव जायते ।

यादृशोऽयं नृपश्चेष्ट । पर्वतेऽमरकण्टके ॥४९

वह यहा पर उत्पन्न होकर बहुत बड़ा धनी-दाना धार्मिक होता है और फिर भी वह उसी तीर्थ का स्मरण विधा करता है तथा वही पर गमन करने की उसकी रुचि रहती है । वह अपने मात कुलो की तार दिया करता है और अन्त में रुद्र लोक की चला जाता है । यह उत्तम गरिता सी और पचास योजनो व विस्तार वाली गुनी जाती है ॥४३, ४४ ॥ है राजेन्द्र यह वा योजन व विस्तार अत्यन्त बाली है । अमर कण्टक में समके चागे और बहुत नीच है । इनकी सदया साठ हजार तथा साठ करोड

बताई जाती है। वहा पर ब्रह्मवारी—शुचि—जितश्रेष्ठ—जितेन्द्रिय—
सब प्रकार की हिंसा से निवृत्त—सबभूतों के हित में रत और शिव में
समावर्ण करने वाला जो अपने प्राणों का त्याग करता है हे राजन् !
उस का जो परम महान् पुण्य-फल हुआ करता है उसे अवहित होकर गुन
लो । हे पाराश्व ! यह पुरुष एक सौ सहस्र वर्ष पर्यन्त स्वर्ग में आनन्द
प्राप्त किया करता है समुद्र पर्यन्त पृथ्वी में इस प्रकार का कोई भी उत्पन्न
नहीं होता है, हे नृप श्रेष्ठ ! जैसा यह अमरकण्ठक पर्वत में हुआ करता
है ॥१५, ४६, ४७, ४८, ४९॥

सायत्तीर्थं तु विज्ञेय पर्वतस्य तु पश्चिमे ।
ह्रदो जलेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥१०
तत्र पिण्डप्रदानेन सन्ध्योपासनकमणा ।
पितरो दशवर्षाणि तपितास्तु भवन्ति वै । ११
दक्षिणे नर्मदाकले वपिलेति महानदी ।
सकलार्जुनसंघृष्टा ततिदूरे व्यवस्थिता ॥१२
सापि पुण्या महाभागा त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।
तत्र कोटिशतं नाम तीर्थानां तु युधिष्ठिर ॥१३
पुराणेश्वरतेराजन् ! सर्वकाटिगुण भवेत् ।
तस्याम्नोरनुये वृक्षाः पतिता कालपयसात् । १४
नर्मदातोयमस्पृष्टास्तेऽपिषान्तिपराङ्गतिम् ।
द्वितीया तु महाभागाविश्वत्यक्रणीशुभा । १५
तत्र तीर्थं नर्मदान्वा विश्वत्यो भवात् क्षणान् ।
तत्रदेवगणा सर्वे मयिन्तरमहोन्गा ॥१६-
यथाराशसगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः ।
सर्वे समागतान्त एवनेऽमरकण्ठके ॥१७॥

उस पर्वत के पश्चिम भाग में उस तीर्थ को जान लेना चाहिये जिस
का जलेश्वर ह्रद है और यह तीर्थों लोको में बहुत ही विख्यात है ॥१०॥

बहा पर विण्डो का प्रदान करने से तथा सन्ध्योपासना के कर्म से पितृ-
 मया दशवर्षों तक परम तृप्त रहा करते हैं । नर्मदा नदी के दक्षिण तट पर
 कपिता नाम वाली एक महानदी है । यह सम्पूर्ण अर्जुन के वृक्षों से
 सञ्चलित रहने वाली है और वह उससे अधिक दूर में व्यवस्थित नहीं है
 अर्थात् बहुत ही समीप में ही है ॥५१, ५२॥ वह नदी भी अति पुण्यमयी
 और महाभागा है तथा लोको में बहुत प्रसिद्ध भी है । हे युधिष्ठिर ! बहा
 पर डेढ़ गौ कराह तीर्थ है ॥५३॥ हे राजन् ! पुराण में यह ध्वनि किया
 जाता है कि सब कोटि गुण वाला होता है । उस के तट पर जो वृक्ष बाल
 के विपर्यय से पतित हो गये हैं और नर्मदा नदी के जल से जिनका
 सस्पर्श हो गया है वे सब भी परमोत्तम गति को प्राप्त किया करते हैं ।
 दूसरी एक नदी परम शुभ महाभागा व श्रेष्ठ करणी है । उस तीर्थ में
 मनुष्य स्नान करके क्षणमात्र में ही विगत मृत्यु काया हो जाया करता
 है । वहा पर उस अमरकण्ठक पर्वत में समस्त देवगण — विष्णु —
 महोरग — यम — राक्षस — गन्धर्व और तप के ही धन वाले ऋषि वृन्द
 समागत होते हैं ॥५४, ५५, ५६, ५७॥

तैश्च नद्यैः समागम्य मुनिभिश्च तपोधनैः ।

नर्मदामाश्रिता पुण्या विशत्यानाम नामतः ॥५८॥

उत्तरादिता महाभागा सवपाप्रणालिनी ।

तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥५९॥

उषोष्य रजनीमेका तुलानान्तारयेच्छतम् ।

कापिला च विण्णया च श्रूयते राजसत्तम ! ॥६०॥

ईश्वरेण पूरा प्रोक्तं लोकानां हितकाम्यया ।

तत्र स्नात्वा नरो राजन् नश्यमेधपत्नभेत् ॥६१॥

अनायासं तु यः कुर्यात् तस्मिन्मीथं नराधिप ।

मदरापयिषुद्धः पा मूनीरमगुच्छति ॥ ६२ ॥

नर्मदायास्तु राजेन्द्र ! पुराणेयन्मया श्रुतम् ।

यत्र तत्र नरः स्नात्वा चाश्वमेघफललभेत् ॥६३

इन सवने जो तपोधन मुनिगण थे वहा पर एकत्रित होकर नर्मदा नदी का समाश्रय प्राप्त किया था तथा विश्वया नाम वाली पुण्यमयी नदी को समुत्पादित किया था । जो महान् भाग्य वाली और सभी प्रकार के पापों का विनाश करने वाली थी । हे राजन् ! उसमे मनुष्य स्नान करके जितेन्द्रिय तथा ब्रह्मचारी रहकर एक रात्रि मे वहा पर निवास करता है तो वह अपने सौ कुन्नों का उद्धार कर दिया करता है । हे राजाओं में परम श्रेष्ठ ! कपिला प्रीर निशल्या इनके विषय मे सुना जाता है कि प्राचीन काल मे ईश्वर ने लोको क हिन की कामना मे ही इनको कहा था । हे राजन् ! वहा पर स्नान करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञ क पुण्य फल को प्राप्त किया करता है ॥१५५१६॥६०॥६१॥६२॥६३॥

ये वमन्त्युत्तरे क्ले रद्रलोके वनन्नि ते ।

नरस्वत्याञ्च गङ्गाया नमदाया मुधिष्ठितः । ॥६४

सप्त स्नान च दानञ्च यथा मे शङ्करोऽब्रवान् ।

परित्यजति यः प्राणान् पवनेऽम-कण्टके ॥६४

वपसाति शत साय रद्रलोके महीयते ।

नर्मदाया जल पुण्य केनोमिनिखलट्टनम् ॥६६

पवित्र शिखा बन्ध मवरापे प्रमुच्यते ।

नर्मदा पवन पण्या ब्रह्महत्यापहारिणी । ६७

अहोरात्रापमानेन मु-यते ब्रह्महत्याया ।

एव रम्या स पण्या नमदा पाण्डुन-वन । ॥ ६८

त्रयाणामपि लोकाना पुण्या ह्य पा महानदी ।

वटेश्वरे महापुण्ये गङ्गाद्वारे तपोवने । ६९

एतेषु सर्वन्दानेषु द्विजा-स्यु सञ्चितः ॥

शुद्ध दशगुण पुण्य नर्मदेदधिभङ्गमे ॥७०

जो लोग इनके उत्तर दिशा वाले तट पर निवास किया करते हैं वे अन्न में जाकर स्वर्गलोक में जान पाते हैं । हे पृथिवी ! तमस्वती में-मङ्गल में और नर्मदा में स्नान और दान मन होना है जैसा कि भगवान् शङ्कर ने मुझे बताया था । जो अमरकण्ठ पर्वत में अपने पापों का परि त्याग किया जाता है वह डेढ़ ती करोड़ वर्ष परमेश्वर स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है । नर्मदा महानदी का जल परम पुण्यमय है और कौनको उभयो से समझकर है । यह परम पवित्र है तथा गिर से बन्दना करने के योग्य है इनके जल का स्पर्श करके ही मनुष्य सब पापों से छुटकारा पा जाता करता है । नर्मदा पर्वतपुष्पा है और इन्द्राहत्या के महा पातक का हरण करने वाली है । एक अहोरात्र वहाँ पर स्थित रहकर उपवास करने में ब्रह्म हत्या में छुटकारा ही प्राप्ति करता है । हे परम नन्दन ! इस प्रकार में यह नर्मदा स्वयं पौर पुण्य शालिनी महानदी है ॥६४॥६५॥६६॥६७॥ ॥६८॥ यह तीन लोको में परम पुण्य शालिनी महानदी है जो वरेभ्वर में—महापुण्य मय मङ्गल द्वार में और तपोवन में इन स्थानों में द्विवारता सन्निहित बना जाने हात है उनके उभय पुण्य में दान गुण अधिक पुण्य नर्मदा और उशधि के सङ्गम में सुना गया है ॥६३, ७०॥

७६—नर्मदा से सम्बन्धित अन्य तीर्थों का माहात्म्य

ततो गच्छेत् राजेन्द्र । ह्यद्गु गोधरमृतमम् ।
 दशनाभस्य देवस्य मु- यते सर्वपातकी ॥१॥
 ततो गच्छेत् राजेन्द्र । नर्मदेश्वरमृतमम् ।
 नक्षत्रान्या नरो राजन् । स्वगलोकेमहीयते ॥२॥
 अश्वतीर्थं तथा गच्छेत् स्नानं तत्र नमाचरेत् ।
 मुनिगो दर्शनीयदत्तभोगान् जायतेनरः ॥३॥

पितामह ततो गच्छेत् ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।
 तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या पितृपिण्डन्तु दापयेत् ॥४॥
 तिलदध्निविमिश्रन्तु ह्युदकं तत्र दापयेत् ।
 तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम् ॥५॥
 सावित्रीतीर्थमासाद्य यस्तु स्नानं समाचरेत् ।
 विधूय सवपापानि ब्रह्मलोके महीयते ॥६॥
 मनोहर ततो गच्छेत् तीर्थं परमशोभनम् ।
 तत्र स्नात्वा नरो राजन् । पितृलोके महीयते ॥७॥

मनुनि माकण्डेयजी ने कहा— हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर उत्तम अक्षुशेखर पर जाना चाहिए । वहाँ पर उन देव के दर्शन से ही मनुष्य सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाया करता है ॥ १ ॥ इसके उपरान्त फिर हे राजेन्द्र ! उत्तम नर्मदेश्वर तीर्थ में गमन करे । हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोक में एक परम प्रतिष्ठित पद पर समाहित हुआ करता है ॥ - ॥ फिर अश्वतीर्थ को गमन करना चाहिये और वहाँ पर पहुँच कर स्नान करे । इसका ऐसा फल होता है कि वह मनुष्य परम मुग्ध दर्शनीय और प्रीति के करने वाला हुआ करता है । इसके पीछे पितामह नाम वाले तीर्थ पर जावे जिसको पहिले ब्रह्मजी ने निर्मित किया था । वहाँ पर मनुष्य का स्नान करके भक्तिभाव से पितृवर्णों को पिण्डदान करना चाहिए ॥ ३ । ४ ॥ तिलों और दही में मिश्रित जल भी तर्पण के लिये पितृवर्णों को देवे । उस तीर्थ का ऐसा अद्भुत प्रभाव है कि वहाँ पर किया सभी व्यर्थ हो जाया करता है ॥ ५ ॥ सावित्री तीर्थ पर पहुँच कर जो भी व्यक्ति उसमें स्नान किया करता है वह अपने समस्त पापों को विधुनित करके अन्त में ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है । फिर मनोहर नामक तीर्थ पर गमन करे जो कि एक परम शोभन तीर्थ है । हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करने वाला मानव स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥ ६ । ७ ॥

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! मानसं तीर्थमुत्तमम् ।
 तत्र स्नात्वा नरा राजन् ! रुद्रलोऽमहोयते ॥
 ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! कुञ्जतीर्थं भुत्तमम् ।
 विख्यातं त्रिषु लोकेषु सर्वपापप्रणाशनम् ॥६
 यान्कान्कामयते कामान् पशुपुत्रधनानि च ।
 प्राप्नुयात्तानि सर्वाणि तत्र स्नात्वा नराधिप ॥१०
 ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! त्रिदशज्योतिर्विश्रुतम् ।
 यत्र ता ऋषिकन्यास्तु तपोऽनप्यस्त युवता ॥११
 भर्ता भवन्तु सर्वासामोदवरः प्रभुरव्ययः ।
 प्रीतस्तासा महादेवो दण्डरूपधरा हरः ॥१२
 विकृताननीव भन्सुव्रती तीर्थमुपागतः ।
 तत्र कन्या महाराज ! वरयन् परमेश्वरः ॥१३
 कन्या ऋषेर्वरयतः कन्यादानं प्रदीयताम् ।
 तीर्थं तत्र महाराज ! ऋषिकन्येति विश्रुतम् ॥१४

इसके अन्तर में हे राजेन्द्र ! उत्तम मानस तीर्थ पर गमन करना चाहिए । हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य रुद्रलोक में प्रतिष्ठित हो जाता है । फिर हे राजेन्द्र ! सर्वोत्तम कुञ्जतीर्थ में गमन करे जो सभी सौख्य में अत्यधिक विख्यात है और सब प्रकार के पापों के विनाश करने वाला है । उस तीर्थ पर जो—जो भी कामनाओं के प्राप्त करने की इच्छा करता है जैसे पुत्र—पशु और धन आदि उन सभी का प्राप्ति हे नराधिप वहाँ पर स्नान करके प्राप्त कर लेता है । इसके पश्चात् हे राजेन्द्र ! त्रिदश ज्योतिर्विश्रुत नाम यान्ने तीर्थ पर जाना चाहिये जहाँ पर वे ऋषि कन्याएँ सुन्दर स्त्री वाली होकर तपश्चर्या करती थीं ॥ ६ । ६ । १० । ११ ॥ उन कन्याओं का यही मतों पर था कि हम सबका भर्ता अविनाशी प्रभु ईश्वर होंगे । उनकी तपस्या में दण्डरूप के धारण करने वाले हर महादेव परम प्रमत्त हो गये थे । वह देवेश्वर विकृत मुण्ड वाले

वीमन्सु व्रती उस तीर्थ पर समागत हुए थे। वहाँ पर हे महाराज ! परमेश्वर ने उन कन्याओं का वरण किया था। कन्या का वरण करने को श्रापियो ने कन्यादान दी। हे महाराज ! ऋषि कन्या इस नाम वाला एक प्रसिद्ध तीर्थ था ॥१२-१४॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
 ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! स्वर्णनिन्दुत्विति स्मृतम् ॥१५॥
 तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! दुर्गतिं न च पश्यति ।
 अप्सरेश ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ॥१६॥
 क्रीडते नागलोकस्थो ह्यप्सरे, सह मोदते ।
 ततो गच्छेत् राजेन्द्र ! नरकं तीर्थमुत्तमम् ॥१७॥
 तत्र स्नात्वाचंयेद्देवं नरकं च न पश्यति ।
 भ्राम्भूतिं ततो गच्छेद्दुःखवासपरां जनः ॥१८॥
 एतत्तीर्थं समासाद्य चावतारं तु शाम्भवम् ।
 अचयित्वा विरूपाक्षं रुद्रलोकं महीयते ॥१९॥
 अग्निस्तोत्रं नरः स्नात्वाभारभूतो महात्मनः ।
 यत्र तत्र भूतस्थापि ध्रुवंगणेश्वरीगतिः ॥२०॥
 कतिकम्यं तु मासस्य ह्यचंयित्वा महेश्वरम् ।
 अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥२१॥

हे राजन् ! उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके सभी पापों से प्रमुक्त हो जाता है। हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् स्वर्ण निन्दु इस नाम से विश्रुत तीर्थ में जाना चाहिये ॥ १५ ॥ हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य दुर्गति को कभी भी नहीं देखता है। इसके अनन्तर अप्सरे नामक तीर्थ पर गमन करे और वहाँ पर स्नान कर समाचरण करना चाहिए ॥ १६ ॥ इस तीर्थ के स्नान का यह फल होता है कि वह नागलोक में समवस्थित होकर अप्सराओं के साथ आनन्दानुभव किया करता है। हे राजेन्द्र ! फिर वहाँ से नरक नामक उत्तम तीर्थ में गमन

करे । उस तीर्थ में स्नान करके देव का अभ्यर्चन करे तो वह मनुष्य कभी भी तरक नरे नहीं देवता है । इसके अनन्तर भाद्रभूति नाम वाले तीर्थ पर जावे और उपवास में पराधन होवे ॥ १७ ॥ १८ ॥ फिर इसके उपरान्त श्वाकतार नामक तीर्थ का समासादन करे तथा वहाँ पर भगवान् विष्णु का अर्चन करने से वह मनुष्य रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥ १९ ॥ इस तीर्थ में जिसका नाम भारभूति है स्नान करके जहाँ-तहाँ भूत हुए महात्मा की भी निश्चय ही गणेश्वरी (गणेश सम्बन्धित) गति हुआ करती है । कार्तिक मास में महेश्वर का समर्चन करके अश्वमेध यज्ञ के पुण्य से दशगुना फल प्राप्त हुआ करता है—ऐसा महामतीषी लोग कहा करते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

दोषकानां शतं तत्र घृतपूर्णं तु दापयेत् ।
 विमानं सूर्यसङ्घासं व्रजते यत्र शङ्करः ॥२२॥
 वृषभं यं प्रच्छेत्, शङ्खकुन्देन्दुसप्रभम् ।
 वृषायुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति ॥२३॥
 धेनुमेकान्तु या दद्यात्स्मिस्तोर्धेनराधिप ! ।
 पापस्य मघुस्युक्तं मद्यार्णाविविधानि च ॥२४॥
 यथाशक्तत्वाच्च राजेन्द्र ! ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।
 तस्य तीर्थं प्रभावेण सर्वं करोतिगुणभवेत् ॥२५॥
 नर्मदाया जलपीरवा ह्यर्चयित्वा वृषध्वजम् ।
 दुर्गात्स्नानपश्यति तस्मिस्तोर्धेनराधिप ! ॥२६॥
 ह्रमयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति ।
 यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च हिमवाश्च महोदधिः ॥२७॥
 गङ्गायाः शरितो यावत्तावत् स्वर्गमहोयते ।
 अनाशङ्कन्तुषु दुर्गात्स्मिस्तोर्धेनराधिप ॥२८॥
 गर्भवाये तु राजेन्द्र ! न पुनर्जायते पुमान् ।
 ततो गच्छेत्, राजेन्द्र ! आषाढीतीर्थमुत्तमम् ॥२९॥

तत्र स्नात्वा नरो रात्रिन्निन्द्रस्यार्द्धासन लभेत् ।

स्त्रियास्तोर्षी ततो गच्छेन् सर्वपापप्रणाशनम् ॥३०

वहाँ पर एक सौ दीपकों को घृत से पूर्ण करके प्रज्वलित करे और उनका दान करे। वह पुरुष जहाँ भगवान् शङ्कर होते हैं सूर्य के सदृश दिमागों के द्वारा गमन किया करता है ॥ २८ ॥ जो आदमी, शङ्ख-कुण्ड और इन्द्र के समान प्रभा में सम्पन्न वहाँ पर वृषभ का दान किया करता है वह वृष से सम्बन्धित धान के द्वारा रुद्रलोक में गमन किया करता है ॥ २९ ॥ हे नराधिप ! उस तीर्थ में जो कोई एक घेनु का दान किया करता है—मधु से सयुक्त पापस औऱ अनेक प्रकार के भयों को गया शक्ति है राजेन्द्र ! ब्राह्मणों के लिये भोजन कराता है। उस तीर्थ के प्रभाव से यह सभी करोड़ मुता फल बरसा जाता है ॥ २५।२५॥ हे नराधिप ! नर्मदा के जल का पान करके और तृपध्वज का धर्मचर्चन करके सब तीर्थों में जाने वाला मनुष्य कभी भी अपनी दुर्गति को नहीं देखता है। वह मनुष्य हम से युक्त धान के द्वारा सीधा रुद्रलोक को चला जाता है। जब तक चन्द्र—सूर्य—हिमवान्—महोदधि और गङ्गा आदि सरिताएँ समार में स्थित हैं तब तक वह स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया जाता है। हे राजेन्द्र ! गर्भ के वास को फिर कभी भी प्राप्त नहीं किया करता है। इसके अनन्तर हे राजेन्द्र ! आम आपादी तीर्थ में गमन करना चाहिए। हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य इन्द्र के आर्धे आसन पर अपनी स्थिति प्राप्त किया करता है। इसके पीछे स्त्री के तीर्थ में गमन करे जो सब प्रकार के पापों का नाश करने वाला है ॥२६-३०॥

तस्मापि स्नातनात्रस्य ध्रुव गाणेदवरी गर्तः ।

ऐरण्डीनर्मदयोश्च सङ्गमं लोकविश्रुतम् ॥३१

तच्च तीर्थं महापुण्य सर्वपापप्रणाशनम् ।

उपवात्सपरो भूत्वा नित्यकृतपरायणः ॥३२

तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! मुच्यते ब्रह्महृत्प्रया ।
 ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! नम्मंदादधिसङ्गमम् ॥३३
 जामदग्न्यमिति ख्यात सिद्धोयथ जनादंनः ।
 यत्रोत्त्वा बहुभिपंजं रिन्दो देवाधिपोऽभवत् ॥३४
 तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! नम्मदादधिसङ्गमे ।
 त्रिगुण च श्वमेधस्य फलप्राप्नोतिमानवः ॥३५

वहाँ पर भी केवल स्नान भर कर लेने वाले की निश्चय ही
 गणेश्वरी गति हुआ करती है । ऐगण्डी और नम्मंदा इन दोनों सरिताओं
 का सङ्गम लोक में परम प्रसिद्ध है । यह तीर्थ महान् पुण्य वाला है और
 समस्त पापों के नाश करने वाला भी है । वहाँ पर उपवास में परायण
 होकर तथा नित्य ही ब्रतों में तत्पर होकर वहाँ स्नान करके हे राजेन्द्र !
 मनुष्य ब्रह्महत्या से भी मुक्त हो जाता करता है । इसके उपरान्त हे
 राजेन्द्र ! नम्मंदा और उदधि का जहाँ सङ्गम होता है वहाँ जाना चाहिए ।
 वहाँ जाने वाला मानव अश्वमेध यज्ञ के पुण्य से त्रिगुण पुण्य-फल प्राप्त
 किया करता है ॥ ३३-३५ ॥

पश्चिमस्योदधे सन्धौ स्वर्गद्वारविघट्टनम् ।
 तत्र देवाः मगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः ॥३६
 आराध्यन्ति देवेश त्रिसन्ध्यं विमलेश्वरम् ।
 तत्र स्नात्वा नरोराजन् ! रुद्रलाकेमहोयते ॥३७
 विमलेश पर तीर्था न भत न भविष्यति ।
 तत्रापवासं कृत्वा ये पश्यन्ति विमलेदवरम् ॥३८
 शमजन्मवृत्तं पाप हित्वा यान्त्यमरालयम् ।
 ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! कौशिकीतीर्थमुत्तमम् ॥३९
 तत्र स्नात्वा नरो राजन्नुपवासपरायणः ।
 उपोष्य रजगीमेवा नियतो नियताशनः ॥४०

एतत्तीर्थत्रिभावेण मुच्यते ब्रह्महृदयया ।
 सर्वतीर्थानिपेकन्तु यः पश्येत् सागरेश्वरम् ॥४१॥
 योजनाभ्यन्तरे तिष्ठन्नावर्त्तो सस्थितः शिवः ।
 त दृष्ट्वा सर्वतीर्थानि दृष्टान्येव न संशयः ॥४२॥

पवित्रमोडाव की गण्डि में स्वर्ग द्वार विघट्टन है । वहाँ पर देव-
 गण—यगध्वज—श्रृणुपिबृद्ध—सिद्ध और चारण ये सब नानो सन्ध्यामो में
 विमलेश्वर देवेश की समाराधना किया करते हैं । हे राजन् ! वहाँ पर
 मनुष्य स्नान करके स्त्रलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है । यह विम-
 लेश्वर परम प्रमुख तीर्थ है जो न दृशा और न हो ॥ । वहाँ पर उपवास
 करके जो भागवान् विमलेश्वर का दर्शन किया करते हैं वे सब अपने
 पहिले जन्मों में मात जन्मों क किये हुए पापों में मुक्त होकर
 सीधे अमृत समय अमरालय को चले जाया करते हैं । इसके पीछे हे
 राजेन्द्र ! उत्तम कौशिकी तीर्थ में गमन करे ॥ ३६ । ३७ । ३८ । ३९ ॥
 हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके उपवासों में परायण होवे और एक रात्रि
 में वहाँ निवास करके नियत अग्रज वाला तथा नियत जो रहता है वह
 इस तीर्थ के प्रभाव में ब्रह्म हत्या में मुक्त हो जाया करता है । जो
 मनुष्य सर्व तीर्थों के अभिपेक सागरेश्वर का दर्शन किया करता है ।
 योजन के अभ्यन्तर में आवर्त्त में प्रभु सिद्ध स्थित रहने हुए वही पर
 समश्रित रहते हैं । उनका केवल एक ही तीर्थ का दर्शन करके इस
 दर्शक ने सभी तीर्थों को देखा दृशा ही समझ लेना चाहिये यथादि
 उसने अन्य सभी का दर्शन कर लिया है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है
 ॥ ४०-४२ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तो यत्र रुद्रः स गच्छति ।
 नर्मदासङ्गम यावदावधामरकण्टकम् ॥४३॥
 एतन्तरे महाराज ! तीर्थकोटयो दशस्मृताः ।
 तीर्थान्तीर्थान्तर यत्रश्रृणिकोर्तिनिपेवितम् ॥४४॥

साग्निहोत्रैस्तु विद्वद्भिः सर्वैर्ध्यानपरायणं ।
 सेवितानेन राजेन्द्र । त्वीप्सितार्थप्रदायिका ॥४५॥
 यस्त्विदं वं पठेन्नित्यं शृणुयाद्वापि भारतः ।
 तस्य तीर्थानि सर्वाणि ह्यभिपिञ्चन्ति पाण्डव ! ॥४६॥
 नर्मदा च तदा प्रीता भवेद् नान्न सशयः ।
 प्रीतस्तस्य भभेद्द्रो माकण्डेयो महामुनि ॥४७॥
 यन्ध्या चंभु लभेत् पुत्रान् दुर्भगा सुभगा भवेत् ।
 कन्या लभेत भर्तार यश्च वाञ्छेत् तु यत् फलम् ॥४८॥
 तदेव लभते सर्वं नात्र कार्या विचारणा ।
 ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो विजयो भवेत् ॥४९॥
 वैश्वरस्तु लभते लाभ शूद्रः प्राप्नोति सद्गतिम् ।
 मूर्खस्तु लभते विद्या त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ॥
 नरकञ्च न पश्येत्तु वियोगञ्च न गच्छति ॥५०॥

यह पुरुष सभी पापों में छटाराग पाकर वहां पर ही चला जाता है जहाँ पर साक्षात् भगवान् रुद्र विराजमान रहा करते हैं और वहां पर वह तब तक रहता है जब तक नर्मदा का मङ्गल और अमरकण्ठक समारंभ स्थित है ॥४३॥ इसी बीच में हे महाराज ! दश तीर्थों की टिप्पणियाँ बनाई गई हैं । तीर्थों से दूसरे तीर्थों में जहाँ पर ऋषि कीटि नियोजित है । अग्नि-होत्र करने वाले—ध्यान में परायण ममत्त विद्वानों के द्वारा सेवित हुए हमसे हे राजेन्द्र ! यह अभीष्ट अर्थों की प्रदान करने वाली हुआ करती है ॥४४, ४५॥ हे पाण्डव ! जो तीर्थों के महात्म्य का नित्य ही पाठ किया करता है तथा इसका भक्तिभाव से श्रवण किया करता है उसका सभी तीर्थ समवेन अभिषेक किया करते हैं ॥४६॥ यह नर्मदा सरिता सर्वदा उस पर परम प्रसन्न होती है—इसमें कुछ भी मनाय नहीं है । उस पर रुद्र देव भी प्रसन्न होते हैं तथा महामुनि माकण्डेय भी प्रसन्न हुआ करते हैं । इससे पठन एवं श्रवण से यन्ध्या रत्री पुत्रों वा लाभ लिया करती है

और जो दुर्मेया होती है वह सुमया होनाया करती है । जो काया होती है मनोमोष्ट स्वामी की प्राप्ति कर लेती है और जो भी कोई जैसा भी कुछ फल चाहता है वह उमी समय में सुख ही सब कुछ पा जाय करता है— इस विषय में कुछ भी विचारण (व्यर्था) करने की आवश्यकता ही नहीं है । जो ब्राह्मण होता है उसको वेद के ज्ञान का लाभ होता है और जो क्षत्रिय है वह सदा युद्ध में विजय प्राप्त करने वाला होता है । वैश्य अपने व्यवसाय में लाभान्वित होता है तथा शूद्र की सद्गति हो जाया करती है । जो मद्रापूढ होता है उसे विद्या का लाभ होता है । जो नर इषका तीनों सव्याओं में पाठ किया करता है वह कभी भी नरक का दर्शन नहीं किया करता है और न कभी क्रियो से उस का विषाण ही हुआ करता है ।

॥१७, ४८, ४९, ५०॥

७७—भृगु वंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

इत्यारुष्यं स राजेन्द्र ओद्धारस्याभिवर्णनम् ।
 ततः पप्रच्छ देवेण मत्स्यस्य जलाशवे ॥१
 ऋषीणां नाम गोत्राणि वंशावतरण तथा ।
 प्रवराणां तथा साम्यमसास्य विस्तरात् ॥२
 महाश्वेन ऋषयः शशा रवायम्भुवान्तरे ।
 तेषां वैवस्वते प्राप्ते मम्भवे मम कीर्तये ॥३
 दाक्षायणीनन तथा प्रजा कीर्तये मे प्रभो ।
 ऋषीणां च तथा वक्ष भृगुनशान्विघ्ननम् ॥४
 मन्यन्तरेऽस्मिन् सशस्त्रे पूर्वं वैवस्वते तथा ।
 चरित्र कथ्यते राजन् । ब्रह्मणः परमेष्ठिन ॥५
 महादेवस्य ज्ञापित त्वत्तनया देह स्वयं तथा ।
 ऋषयश्च समुद्भूताश्च्युत शुक्रं महात्मनः ॥६

देवाना मातरो हृष्ट्वा देवपत्न्यस्तथैव च ।

स्फुल्लशुक्र महाराज । ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥७

महर्षि श्री मनुजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इस प्रकार से इस लोहूंग के अभिषेक का श्रवण करने फिर इसके उपरान्त उस मत्स्य के स्वरूप वाले देवेश्वर से उस ब्रह्मणव से पृष्ठा गया था । श्री मनुजी ने कहा—हे भगवन् ! अब ऋषियों के शुभ नाम तथा गोत्र—वंशों का अवतरण एवं प्रयोग की ममता और अवस्था आज कृपा करके विस्तार के साथ बताने की प्रार्थना ॥५२२॥ स्वयम्भुव मन्वन्तर में महादेव जी के द्वारा ऋषियों को ज्ञान दे दिया गया था वैवस्वत प्राप्त होने पर उसका भी मन्वन्तर आप मुने कालिन करके प्रवण करादिये ॥५२३॥ हे प्रभो ! आप मरे साधन दाशापणो (उभ प्रत्रापति न समुत्पन्न) जो प्रजा हुई थी उसका भी वर्णन करिये तथा ऋषियों का वंश एवं शूद्रों के वंश की विशेष वृद्धि भी बतलाइये ॥५२४॥ श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! पहिले इस वैवस्वत मन्वन्तर में समुत्पन्न ज्ञान पर परमेष्ठी ब्रह्माजी का जो चरित्र है वर कहा जाता है । महादेव जी के ज्ञान से स्वयं ही देह का त्याग करके महात्मा के मुक्त क च्युत हो जाने पर ऋषिगण समुत्पन्न हुए थे । देवों की मानाये दण्ड हर इसी भीम देव पत्नियों भी समुत्पन्न हुई थी हे महाराज ! परमेष्ठी ब्रह्माजी का शुभ (वीर्य) स्फुल्ल हो गया था ।

॥५२५॥ ६, ७३३

तज्जुहाव तता ब्रह्मा ततो जाता इत्याशनात् ।

तता जाता महानेजा शमुश्च तपसा निधि ॥८

अङ्गारेर्वाङ्गना जानी ह्यर्षिचम्योर्षपस्तथैव च ।

मरीचिम्या मरीचिस्तु तता जालो महातपा ॥९

केशस्तु कपिगा जान पत्न्यश्च महातपा ।

केश प्रपद्मं पुत्रहस्तताज तोमहातपा ॥१०

यमुद्रज्यात् समुत्पन्नो वसिष्ठस्तु तपोधन ।

भृगुःपुलोम्नस्तुसुतादिव्यांभार्गामविन्दत ॥११

यस्यामस्य सुता जाता देवा द्वादशयाज्ञिकाः ।

भुवनो भोवनश्चैव भुजन्मः सुजनस्तथा ॥१२

गुचिक्रतुरक्ष भूर्धा च त्वाज्यश्च वसुदश्च ह ।

प्रभवश्चाव्ययश्चैव दक्षोऽप्यद्वादशस्तथा ॥१३

इत्येते भृगवो नाम देवा द्वादश कीर्तिताः ।

पीलोम्यांजनयन् विप्रान्देवानानुकनीयसः ॥१४

इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने हवन किया था फिर हुताशन से उत्पत्ति हुई थी । इसके उपरान्त महान् तेज वाले तपो की निधि भृगुदेव समुत्पन्न हुए थे ॥१॥ अङ्गारो में अङ्गिरा उत्पन्न हुए और हुताशन की ऋषियों से अत्रि ऋषि की उत्पत्ति हुई थी और इसके अनन्तर मरीचिणो में महान् तपस्वी महर्षि मरीचि उत्पन्न हुए थे ॥६॥ कशो में कपिश और महान् तपस्वी पुनस्त्य उत्पन्न हुए । पुनस्त्य कशो से फिर महान् तपस्वी पुनह समुत्पन्न हुए ॥१०॥ वसु के मध्य से तप के ही घन वाले वसिष्ठ ऋषि प्रभूत हुए थे । भृगु महर्षि ने पुलोमा की पत्नी को अपनी दिव्य भार्या बनाई थी ॥११॥ इसी भार्या में उन महर्षि के द्वादश याज्ञिक सुत उत्पन्न हुए थे । उन बारह नुतो के नाम ये हैं—भुवन—भोवन—सुजन्य—गुजन—गुचि क्रतु—भूर्धा—त्वाज्य—वसुद—प्रभव—अव्यय और दक्ष ये द्वादश हैं । ये सब भृगु वंश वाले बारह देव कीर्तित हुए थे जो पीलोमी में देवों के छोटे भाई विप्रों को जन्म ग्रहण कराया था ॥१२, १३, १४॥

यवनन्तु महाभागमाप्नुवान तथैव च ।

आप्नुवानात्मजश्चीर्षी जमदग्निस्तदात्मजः ॥१५

और्षी गायकरेस्तेषा भार्गवाणा महात्मनाम् ।

तत्र गात्रकरास्त्रन्ये भृगोर्वै दीप्ततेजसः ॥१६

भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च ।

और्वश्च जमदग्निश्च वात्स्यो दण्डिर्नरायणः ॥१७

वेंगायनो वीतिहृद्यः पेलश्चंचात्र शौनकः ।
 शौनकायन जीवन्ति रावेद.कार्पणिस्तथा ॥१८
 वैहीनरिविरूपाक्षो रीह्रित्याणनिरेव च ।
 वंश्वानरिस्तथा नीलो लुब्धः सावणिकश्चसः ॥१९
 विष्णु पौरोर्षि वालाकिरेलिकोजन्तभागिनः ।
 भतभार्गोयमाकण्डजविनो वीतिनस्तथा ॥२०
 मण्डमाण्डव्यमाडूकफेनपारतनितस्तथा ।
 स्थलपिण्ड शिखावण शाक.राक्षिस्तर्धवच ॥२१

महाभाग च्यवन तथा आप्नुवान् उत्पान हुए । आप्नुवान का
 आत्मज औवं हुआ और उसका पुत्र जमदग्नि हुआ था । उन महान् आत्मा
 वाली भार्गवों के गोत्र के करने वाला औवं हुआ था तथा धन्य भी दीप्त-
 तेज वाले भृगु के गोत्रकर हुए थे ॥१५, १६॥ अब उन सब के नामों
 का उल्लेख किया जाता है—भृगु—च्यवन—आप्नुवान—औवं—जम-
 दग्नि—वात्स्य—दण्डि—नडायन—वेंगायन—वीति हृद्य—शौनकायन—
 जीवन्ति—आवेद—कार्पणि—वैहीनरि—विरूपाक्ष—रीह्रित्यायनि—वं-
 श्वानरि—नील—लुब्ध—सावणिक—विष्णु—पौर—वालाकि—ऐलिक—
 अन्त भागिन—भूत—भार्गोय—माकण्ड—जविन—वीतिन—मण्ड—
 माण्डव्य—माण्डूक—फेनप—स्तनित—स्थल पिण्ड—शिखावर्ण और शाकंराशि
 ॥१७।१८।१९।२०।२१॥

जालधिः सोधिकः क्षत्र्य नुत्सन्मो मोद्गलायनः ।
 कर्मायनो देवपति पाण्डुरोचि सगालवः ॥२२
 साङ्कृत्यश्चातवि सार्पियज्ञपिण्डायनस्तथा ।
 गार्ग्ययिनो गायनश्च ऋषिर्गाहृमिनस्तथा ॥२३
 गोष्ठायनो वात्यायना वेशम्पायन एव च ।
 वंरिणिनि नाङ्कुरवो याज्ञेयिर्भाट्टकायनिः ॥२४
 लानाटिर्नाटुनिश्चैव लोधिण्योपरिमण्डली ।

आलुकिः सौचिकः कोत्सरत्नथान्यः पैङ्गलायनिः ॥१५
 सात्थायनिर्मलायनिः कोटिलिः कोचहस्तिकः ।
 सोहमोक्तिः सकोवाक्षिः कोसिश्चान्द्रमसिस्तथा ॥१६
 नैकजिह्वो जिह्वाकण्ठ व्यधाद्यो लोह्वरिणः ।
 शारद्वतिकनेतिष्यीलोनदिश्वचलकुण्डल ॥१७
 वागायतिश्चानुमतिः पूर्णिभार्गतिकांश्चकृत् ।
 सामान्येन यथा तेषा पञ्चने प्रवरामता ॥१८

जालधि-सौचिक-क्षुभ्य-कुत्सन्य-मोद्गलायन-कर्मायन-द्वयति-
 पाञ्चरोचि-सगान्द्र-साह्व्य-चातकि-साभि-यज्ञपिण्डायन-गार्गायन-
 गायन-श्रुपि-गार्हाप्यन-गोष्ठायन-वात्सायन-वैशम्पायन-वैकण्ठिन-
 शाङ्करव-पाञ्चैथि-भ्रातृ कार्यानि-मालाटि-नाकुलि-लौक्षिण्य-परिमण्डल
 आलुकि-सौचिक-कोत्स-पैङ्गलायनि-सात्थायनि-मालायनि-कोटिलि-
 कोच हस्तिक-सोहमोक्ति--सकोवाक्षि-कोनि-चान्द्रमसि-नैकजिह्व-
 जिह्वाक-व्यधाद्य-लोह्वरिण-शारद्वतिकन-निय-गोलाक्षि-चल कुण्ड -
 वागायनि-अनुमति-पूर्णिभा यतिः य सब सामान्य ह्य से ये । उनम
 पांच सद मे प्रवर माने गये है ॥१२२२३॥२४॥२५॥२६॥२७॥२८॥

भृगुश्च च्यवनश्च व आप्नुवानस्तथैव च ।

आवश्च जमदग्निश्च पञ्चने प्रवरा मता ॥२९

क्षतः पञ्च प्रवराणि शृणु त्वन्धाम् भृगुडहान् ।

जमदग्निविदश्च व पौलस्त्या वैजभून्या ॥३०

श्रुपिश्चभयजातश्च कायानि जाकटायनः ।

और्वेया सारताश्चैव सवपाप्रवरा शुभाः ॥३१

भृगुश्च च्यवनश्च व आप्नुवानस्तथैव च ।

पञ्चपरमदवाह्या श्रुयस्य परिकीर्तिताः ॥३२

भृगुदासा मागश्या ग्राम्यायानिकशयना ।

आग्निभिवन्तया विल्विर्नैरुशिः कृपिरेव च ॥३३

आष्टिपेणो गादंभिश्च कादंमायनिरेवच ।

आश्वायनिस्तथारूपिर्षे चाप्येयाः प्रकीर्त्तिताः ॥३४

भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च ।

आष्टिपेणस्तथारूपिः प्रवरा पञ्चकीर्त्तिताः ॥३५

वे पाँचो प्रवरो के नाम ये हैं — भृगु-च्यवन-आप्नुवान-और जमदग्नि ये ही पाँच प्रवर माने गये हैं ॥२६॥ इसके आगे मैं अन्य भृगु-द्रहो को बतलाता हूँ । उनका श्रवण तुम करलो—जमदग्नि-विद-पीतस्त्य-वेज्रभृत्-ऋषि-उभय जात-कायनि-शाकटायन-और्वेय और मास्त सबमे प्रवर एव शुभ थे ॥३०॥३१॥ भृगु-च्यवन और आप्नुवान ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कीर्त्तित किये गये हैं ॥३२॥ भृगुदास-मार्गपय—ग्राम्यायनि—कटायनि—आपस्तम्ब—वित्तिव-नैकशि—कपि-आष्टिपेण—रूपि—ये सब आप्येय परिकीर्त्तित हुए हैं । इनमे भृगु-च्यवन-आप्नुवान—आष्टिपेण और रूपि ये पाँच प्रवर माने गये हैं ॥३३॥३४॥३५॥

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्त्तिताः ।

यास्को वा वीतिहव्यो वा मथितस्तु तथादमः ॥३६

ज्वन्त्याग्निमौञ्जश्च पिलिश्चैव चलिस्तथा ।

भागिलो भगावितिश्च कौशापिस्त्वथ काश्यपिः ॥३७

चानपिः श्रमादगेपिः सौरस्तिथिस्तथैव च ।

गार्गीयस्त्यथ जावालिस्तथा पीण्णायनो ह्यृषिः ॥३८

ग्रामदश्च तथैतेषामार्षेयाः प्रवरा मताः ।

भृगुश्च वीतहव्यश्च तथा रंवलसंववसो ॥३९

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्त्तिताः ।

चालायनि. शाकटाक्षो मंत्रेयः छाण्डवस्तथा ॥४०

द्रीणायनो रीत्मायना पिशली चापि बायनिः ।

हमजिह्वस्तथैतेषामार्षेयाः प्रवरा मताः ॥४१

ये परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कीर्त्तित हुए हैं । यास्क—वीति

हव्य—मथित—दग—जैवान्त्यायनि—मोञ्ज—पिलि—चलि—भगिल—
 भागविति—कैशापि—काश्वपि—बालपि—श्रमदापेपि—सौर—तिथि—गार्ग्य—
 जात्रालि—घोष्पायन—ऋषि और ग्रामद ये सब आप्त्येय एव प्रवर माने
 गये हैं । भृगु—वीतहव्य—रैवस ये सब परस्पर में अर्धवाह्य ऋषिगण कहे
 गये हैं । शालयनि—शाकटाक्ष—मैत्रेय—छाण्डव—द्रीणायन—रीवमायन—
 पिशली—कायनि—हंसजिह्व ये सब आप्त्येय प्रवर माने गये हैं ॥३६॥
 ॥३७, ३८, ३९, ४०, ४१॥

भृगुश्चीवाय वध्यृष्वो दिवोदामस्तथैव च ।

परस्परमर्धवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥४२

एकायनो याज्ञपतिर्मत्स्यगन्धस्तथैव च ।

प्रत्यूहश्च तथा सौरिश्चीत्तिर्वै कादमायनि ॥४३

तथा गृत्समदो राजन् ! सनकश्च महान् ऋषिः ।

प्रवरास्तु तथात्तानामाप्त्याः परिकीर्तिता ॥४४

भृगुर्गृत्समदश्चैव आपवितौ प्रकीर्तितौ ।

परस्परमर्धवाह्या ऋषी वै परिकीर्तितौ ॥४५

एते तत्रोक्ता भृगुवशजाता महानुभावा नृप गोत्रकाराः ।

एषा तु नाम्ना परिकीर्तितेन पाप समग्रं विजहातिजन्तु ॥४६

भृगु—वध्यृष्व—दिवोदाम ये सब परस्पर में अर्धवाह्य ऋषिगण
 परिकीर्तित किये गये हैं । एकायन—याज्ञपति—मत्स्यगन्ध—प्रत्यूह—
 सौरि—ओक्ष—कादमायनि—हे राजन् ! गृत्समद और महान् ऋषि
 सनक वे कहे हुए ऋषियों में प्रवर तथा आप्त्येय कहे गये हैं । भृगु—
 गृत्समद ये दोनों आप्त्येय कीर्तित किये गये हैं । ये दोनों परस्पर में ऋषि
 अर्धवाह्य कीर्तित हुए हैं । ये भृगु के वंश में उत्पन्न महानुभाव गोत्र
 करने वाले हैं । हे नृप! इन नामों के कोर्तन से जन्तु समग्र पापों को त्याग
 दिया करता है ॥४२, ४३, ४४, ४५, ४६॥

७—आङ्गिरसवंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

मरीचितनया राजन् ! सुहृषा नाम विश्रुता ।
 भार्या चाङ्गिरसो देवास्तस्याः पुत्रा दश स्मृताः ॥१
 आत्मायुदमनो दक्षः सदःप्राणस्तथैव च ।
 हविष्माश्च गविष्ठश्चऋतः सत्यश्च ते दश ॥२
 एते चाङ्गिरसोनाम देवा वै सोमपायिनः ।
 सुरूपा जनयामास ऋषीन् सर्वेश्वरानिमान् ॥३
 बृहस्पतिङ्गीतमञ्च सवत्तमृषिमुत्तमम् ।
 उतथ्य वामदेव च अजस्यमृषिजन्तथा ॥४
 इत्येते ऋषय सर्वेगोत्रकाराः प्रकीर्तिताः ।
 तेषा गोत्रसमुत्पन्नान् गोत्रकारान्निबोध मे ॥५
 उतथ्योगीतमश्नीत्र तीलेयोऽभिजितस्तथा ।
 साधनेमि सलोगाक्षिःक्षीर कौण्डिकिरेवच ॥६
 राटुकणिः सौपुरिश्च कैराति मामलोमकिः ।
 पीपजितिर्भागवतो ह्यु पिश्नीरोडवस्तथा ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् मरीचि के पुत्री सुरूपा—
 इस नाम से प्रसिद्ध भार्या थी । आङ्गिरस देव उनके दस पुत्र बताये गये
 हैं ॥१॥ आत्मायु—दमन—दक्ष—सदः प्राण—हविष्मान्—गविष्ठ—ऋत—
 सत्ये ये दस उनके नाम थे । ये सब आङ्गिरस नाम वाले सोमपायी देव
 थे । इन सर्वेश्वर सब ऋषियों को सुरूपा ने ही जन्म दिया था ॥२, ३॥
 बृहस्पति—गीतम—सवत्त—उत्तम ऋषि—उतथ्य—वामदेव—अजस्य—
 ऋषिज—ये सब ऋषिगण गोत्रकार बहे गये हैं । अब उनके गोत्र में
 समुत्पन्न जो गोत्र कार हैं उनको भी मुझसे जान लेना चाहिये । उतथ्य—
 गीतम—तीलेय—अभिजित—साधनेमि—सलोगाक्षि—क्षीर—कौण्डिक—
 राटुकणि—सौपुरि—कैराति—मामलोमकि—पीपजिति—भागवत—ऋषि—
 ऐरीडव ॥४-७॥

कारोटकः सजीवी च उपविन्दुमुर्दिपिणो ।
 वाहिनोपतिर्वशाली क्रोष्टा चैवाण्णायनिः ॥८
 सोमोत्रायनिकासोहकीकृत्याः पाण्डिवास्तथा ।
 रोहिण्यायनिरेवाग्नी मूलपः पाण्डुरेव च ॥९
 क्षपाविश्वकरोऽग्निश्च पारिकारारिरेव च ।
 श्याप्येयाः प्रवरश्चैव तेषां च प्रवरान् शृणु ॥१०
 अङ्गिरा सुवचोतथ्य उशिजश्च महानृपिः ।
 परस्परमववाह्या ऋषयः परिकीर्तितः ॥११
 आत्रेयायनिर्सोवेष्ट्यो अग्निवेश्यः शिलास्थितिः ।
 वालिशायनिश्चैकेपी वाराह्निर्वाष्कलिस्तथा ॥१२
 सौटिश्चत्रिणकणिश्चप्रावहिश्चाश्वलायनिः ।
 वाराह्निर्वह्निंसादी च शिखाश्रीविस्तथ्यं च ॥१३
 कारकिश्च महाकापिस्तथा चोडुपतिः प्रभुः ।
 कौचकिर्धूमितश्चैव पुष्पान्वेपिस्तथ्यं च ॥१४

कारोटक—सजीवी—उपविन्दु—मुर्दिपिण—वाहिनोपति—वंशाली—
 क्रोष्टा—वाण्णायनि—सोमोत्रायनि—कसोह—कीकृत्या—पाण्डिवा—
 रोहिण्यायनि—अग्नि—मूलप—पाण्डु—अपाविश्वकर—अरि—पारिकारारि—
 वेष्ट्याप्येय ओत्र प्रवर ये अथ आगे उत्तके प्रवरो का श्रवण करो । अङ्गिरा-
 सुवचोतथ्य—उत्तित—महानृपि—ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण
 कीर्तित किये गये हैं । आत्रेयायनि—सोवेष्ट्य—अग्निवेश्य—शिलास्थिति—
 वालिशायनि—एकेपि—वाराहि—वहिमाही—शिखाश्रीवि—कारकि—महाकापि—
 उडुपति प्रभु—कौचकि—धूमिति—पुष्पान्वेपि ॥८, ९, १०, ११, १२॥
 ॥१३, १४॥

सोमतन्विर्ब्रह्मतन्विः सालडिर्वालडिस्तथा ।
 देवदारिर्देवस्थानिर्हा रकाणिः सारिङ्गयिः ॥१५
 प्रावेपिः साद्यभुश्रीविस्तथा गोमेदगन्धिकः ।

मत्स्याच्छायो मूलहरः फलाहारस्तथैव च ॥१६

गाङ्गोदधिः कोरूपतिः क्रीरुक्षेत्रस्तथैव च ।

नामकिर्जत्यद्रीणिश्च जंहुवलायनिरेव च ॥१७

आपस्वम्विमीञ्जवृष्टिर्माष्टं पिङ्गलिरेव च ।

पंतश्चैव महातेजा शालङ्क्यनिरेव च ॥१८

द्वयं तथेयो मास्तश्चैवा त्वाप्येयः प्रवरो नृप ! ।

अङ्गिरा प्रथमस्तेषां द्वितीयश्च वृहस्पतिः ॥१९

तृतीयश्च भरद्वाजः प्रवराः परिकीर्तिताः ।

परस्परमववाह्या इत्येते परिकीर्तिताः ॥२०

काण्वायनाः कोपचपास्तथा वात्स्पतरायणाः ।

भाष्ट्रुकुट्राष्ट्रपिण्डी च लैन्द्राणि सायकामनिः ॥२१

मोमति-वि-वृद्धन-वि-मालडि-वालडि-दे-रारि देव स्थानि-हारि-

कपि-मग्नि-वि-प्र-वेपि-माय मुग्नि-वि-गोपेद गन्धिक-मस्त्याच्छाय-

मुनहर-फलाहार-गाङ्गोदधि-कोरूपति-क्रीरुक्षेत्र-नामकि-जंहुवलायनि-

आपस्वम्वि-मीञ्ज-वृष्टि-माष्टपिङ्गलि-पंत-महातेजा-

शालङ्क्यनि-द्वय-तथेयो-मास्त-त्वाप्येय-प्रवर-हे नृप ! उनमे अगिरा

प्रथम था भीर द्वितीय बहर्गनि था । तीसरा भरद्वाज ये मर प्रवर कीर्तित

किये गये है । ये परस्पर में अववाह्य कह गये है । काण्वायन-कोरुचप-

वात्स्य तरायण-भाष्ट्रुक-राष्ट्रपिण्डी-लैन्द्राणि-सायकामनि ॥१६॥

॥१६, १७, १८, १९, २०, २१॥

क्रोष्टास्ती बहुवीती च तानकृन्मधुरावहः ।

लावकृद्गालविद्गाथो भाकटिः पौलिकामनिः ॥२२

इन्द्रनश्च तथा चक्रो नाग्य श्यामामनिस्तथा ।

वालाकि नाहरिश्चैव पञ्चाप्येयाः प्रकीर्तिताः ॥२३

अङ्गिराश्च महातेजा श्वेदानायो वृहस्पतिः ।

भरद्वाजश्चैव गगंः संवदश्च भगवानृषिः ॥२४

परम्परसर्ववाह्या श्रुपयः परिकीर्तिताः ।
 कपीनरः स्वस्तिनरो दासि, शक्तिः पतञ्जलिः ॥२५
 भृशसिर्जलसन्धिश्चरविन्दुर्मादिः कुसीदकिः ।
 ऊर्वस्तु राजकेती च वीषटि शसपिम्नथा ॥२६
 शालिञ्चकलशोकण्टः श्रुपि, शारीर्यम्नथा ।
 वाटगोश्रान्यायनिश्चैश्चभाराम्याश्रनिश्च च ॥२७
 भारद्वाजि मौनुधिञ्च लक्ष्मी दवसनीन्तथा ।
 श्यापयोऽममनञ्चैव प्रवरो भूमिपोत्तम ॥२८

कोष्ठाशी—बहुशोनी—नाचक्रन मधुगावः—नाचकृत—गाल—
 विद्—गापी—साकटि—पीपत्रयनि—रुदम—रुपी—गार्ग्य—श्यामायनि—
 काशकि, साक्षरि, य पान आपय प्रतीनित ह्य हैं । अङ्गिरा, महातेजा,
 देवाचार्यं ब्रह्मपति, शरदाज, गार्, मे-य, भगवद् श्रुपि दे परम्पर से
 अववाह्य श्रुपिमाण जहे ग्य है । कपीनर स्वस्तिनर, दासि, शक्ति,
 पतञ्जलि, भृशसि, जलसन्ध, विन्दु मादि, कुसीदकि, ऊर्व, राजकेती,
 वीषटि, शसपि, शालि चरशोकण्ट श्रुपि शारीर्य, काण्ट, शान्यायनि
 भाराम्यायनि, भारद्वाजि मौनुज लक्ष्मी, दवमता र भूमिपोत्तम । ये
 इत्येव, अमिमन प्रवर वान ७ ॥२०- २३, २४, २५, २६, २७, २८॥

अङ्गिरा दमवाह्यरन तथा चंदापुत्रक्षयः ।
 परम्परसर्ववर्णी च लीक्षिर्गाय हरिम्नथा ॥२९
 गालाश्चैव श्यापयः सवयः पवरो मतः ।
 अङ्गिरा मर्कानिञ्चैव गौरवोत्तिभ्तथैव च ॥३०
 परम्परसर्ववर्णा श्रुपयः परिकीर्तिताः ।
 बृहदुक्त्या धामदेवस्तथा वि प्रवरो मताः ॥३१
 अङ्गिरा बृहदुक्त्या च धामदेवस्तथैव च ।
 कुत्साकुत्सेम्बवाहया एवमाहुः पुरातना ॥३२

रथीतराणां प्रवरा व्याप्येयाः परिकीर्तिताः ।

अङ्गिराश्च विरूपश्च तथैव च रथीतरः ॥३३

रथीतराह्यवैवाह्या नित्यमेव रथीतरैः ।

विष्णुवृद्धि शिवमतिजंतृणः कत्तृणस्तथा ॥३४

पुत्रवद्वच महातेजास्तथा वरपरायणः ।

व्याप्येयोऽभिमतास्तेषा सर्वेषा प्रवरो नृप ! ॥३५

अङ्गिरा, दमवाह्य, उरुक्षय, परस्परायण्वर्णा, लोक्षि, गार्ग्य, हरि, मालवि, व्याप्येय, सबका प्रवर माना गया है । अङ्गिरा, संकृति, गौर धीति ये सब परस्पर में अर्वाह्य ऋषिगण कीर्तित किये गये हैं । बृहदुक्ष, वामदेव ये त्रिप्रवर माने गए हैं । अङ्गिरा, बृहदुक्ष, वामदेव, कुस्माकुत्सै से ये अर्वाह्य थे—ऐसा पुरातन मनोयोग कहते हैं । रथीतरों में प्रवर ये व्याप्येय परिकीर्तित हुए हैं । अङ्गिरा, विरूप और उती भीति से रथीतर । रथीतरों में निरुय ही विवाहन करने के योग्य थे । विष्णु वृद्धि, शिवमति जंतृण कत्तृण, पुत्रव, महातेजा. वरपा यण हे नृप ! उन सबका व्याप्येय प्रवर अभिमता था ॥३६॥३७॥३८॥३९॥

अङ्गिरा मत्स्यदग्धञ्ज मुद्गलश्च महातपाः ।

परम्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥३६

हसजिह्वा देवजिह्वो ह्यग्निजिह्वो विराडपः ।

अपाग्नेयस्त्वद्वयुश्च परण्यस्ताविमोद्गलाः ॥३७

व्याप्येयाभिमतास्तेषा सर्वेषा प्रवराः शुभाः ।

अङ्गिराश्चैव ताण्डिश्च मौद्गल्यश्च महातपाः ॥३८

परम्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।

अपाण्डुश्च गुरुश्चैव तृतीयः शाकटायनः ॥३९

ततः प्रागायमा नारी मार्कण्डे मरणः शिवः ।

पटुमर्वटपश्चैव तथा नाडायनाह्यपिः ॥४०

श्यामायनस्तथैवैषा व्याप्येयाः प्रवरा शुभाः ।

अङ्गिराश्चाजमीणश्च कट्यश्चैव महातपाः ॥४१

परस्परमवेवाह्या ऋषयः परिकीर्तिता ।

तित्तिरिः कविभूश्चैव गार्ग्यश्चैव महानृषिः ॥४२

अङ्गिरा, मस्त्यदग्न, मुद्गल, महानपा ये ऋषिगण आपस में अवेवाह्य कहे गये हैं । हमजिह्व, देवजिह्व, अग्नि जिह्व, विराडप, अपामेय, अश्वपु, परश्यास्ताविमद्गल ये उनके लक्षणों सबके परम शुभ प्रवर अभिमत हुए हैं । अङ्गिरा, ताण्डि, मोद्गल्य, महातपा ये सब ऋषिगण आपस में विवाह न करने के योग्य थे—इसमें कहे गये हैं । अण्डु, गुरु, तृतीय शाकटायन, इसके उपरान्त प्रागाथमा नारी, मार्कण्ड, नरण, शिव, ६ दुमकटप, नाडायन, ऋषि, श्यामायन उसी प्रकार स लक्षणों इनके शुभ प्रवर थे । अङ्गिरा, आजमीण्ड, कट्य, महातपा ये सब परस्पर में ऋषिगण अवेवाह्य कहे गये हैं । तित्तिरि, कविभू, गार्ग्य और महानृ ऋषि ॥३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२॥

व्याथप्रो हि मतस्ते सर्वपा प्रवर शुभः ।

अङ्गिर म्त्रित्तिरिश्चैव कविभूश्च महानृषिः ॥४३

परस्परमवेवाह्या ऋषयः परिकीर्तिता ।

अथ ऋक्षमरद्वाजी ऋषिवान् मानवस्तथा ॥४४

ऋषमैववश्चैव पञ्चार्पेयाः प्रकीर्तिताः ।

अङ्गिराः सभरद्वाजस्तथैव च बृहस्पतिः ॥४५

ऋषिमिववश्चैव ऋषिवान् मानवस्तथा ।

परस्परमवेवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥४६

भारद्वाजो हुतःशौङ्गःशिशिरेयस्तथैव च ।

इत्येते कथिता सर्वे द्वयामुप्यायणगोत्रजाः ॥४७

पञ्चार्पेयास्तथा ह्येया प्रवराः परिकीर्तिताः ।

अङ्गिराश्च भरद्वाजस्तथैव च बृहस्पतिः ॥

मोद्गल्यः शंशिरश्चैव प्रवराः परिकीर्तिताः ॥४८

एते तवोक्ताङ्गिरसस्तु वधे महानुभावा ऋषिगोत्रकारा ।
येषान्तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषा जहाति ॥४६

उन सबका ध्वर्ष्य शुभ प्रवर माना गया है । अङ्गिरा, तित्तिरि, कविभू, महानृषि, ये सब परस्पर मे अगोवाह्य ऋषिगण कीर्तित किये गये हैं । इसके उपरान्त ऋक्ष, भरद्वाज, ऋषिवान्, मानव ऋषि और मैत्रवर ये पाँच आर्षेय कीर्तित किये गये हैं । अङ्गिरा, भरद्वाज बृहस्पति ऋषि, मित्रवर, ऋषिवान् मानव ये सब परस्पर मे अगोवाह्य ऋषिगण कहे गये हैं । भारद्वाज, हुत, शौङ्ग, शंशिरैय, ये सब द्व्यामुष्याद्यण गोत्र मे समुत्पन्न कहे गए हैं ॥४३, ४४, ४५, ४६, ४७॥ इन सबके पाँच आर्षेय प्रवर परिकीर्तित हुए हैं उनमे अगिरा, भरद्वाज, बृहस्पति, मीदु-गल्प, शंशिर ये प्रवर कहे गये हैं ॥४८॥ ये सब अङ्गिरस के वंश मे महानुभाव गोत्रकार ऋषिगण आपको बतला दिये गये हैं । जिनके केवल नाम मात्र के ही कीर्तित करने से पुरुष अपना समग्र पाप को त्याग दिया करता है ॥४६॥

७७-अत्रिबंधज ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

अत्रिवंशसमुत्पन्नान् गोत्रकारान्निबोध मे ।
कदंभायनशाम्बेयास्तथा शारायणाश्च ये ॥१
उद्दालकिः क्षोणकगिरथी क्षीरतवश्च ये ।
गौराग्नोवा गौरजिनस्तथा च प्रायणाश्च ये ॥२
अद्वंषण्या वामरण्या गोपनास्तकिविन्दवः ।
कणजिह्वो हरप्रीतिर्नद्राणिः शाकनायनिः ॥३
संनपश्च सर्वलेय अत्रिर्गोर्गोपतिस्तथा ।
जलदो भगपादश्च सौपुण्ड्रश्च महातपाः ॥४

छन्दोगेयस्तथैतेषां श्रद्धार्थेषाः प्रवरा मना ।
 द्वावाश्च तथा विश्वंभ्राचंनानशाण्ड च ॥१५
 परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिता ।
 दाक्षिण्यिः पणत्रिंशच्च ऊर्गनाभिः शिलादिति ॥१६
 वीजवापी शिरोपश्च मौञ्जकेयो गविष्ठिरः ।
 भलन्दनस्तथैतेषां श्रद्धार्थेषां प्रवरा मना ॥१७

श्री यन्म्य भगवान् ने कथा-अग्नि के वज्र से उ-पन्न होने वाले
 गोत्रकारों का नाम मुझसे प्राप्त करने जो कइमायम श्राव्य तथा शारा-
 यण थे । उक्षलकि, शोण, वागिरथ जीर जो शीरुनच य । जो गोर शीव,
 गोरवित तथा चैत्र यण थे । अहोपण्य वामरथ्य, गोपन, नर्किवन्दु, वण-
 शिह्व, हरप्रोति, तैटाणि, शकचापति, नैयव, सर्वैक्य, अग्नि, गोपीपति-
 जलद, भगपाद, सी पुष्पि, महानदा और छन्दोगेय इनके श्रद्धार्थ प्रवर
 माने गये हैं । द्वावाश्च, विश्व और द्वावाशाण्ड य भाग में सर्वैकह्य
 श्रद्धार्थ कहे गये हैं । दाक्षिण्यि, पणत्रि, ऊर्गनाभि शिलादिति, वीजवापी
 शिरोप, मौञ्जकेय, गविष्ठिर जो भलन्दन य उनके प्रवर और श्रद्धार्थ
 माने गये हैं ॥१-३॥

अग्निगविष्ठिरश्चैव तथा पूर्वोत्तिवि स्मृतः ।
 परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिता ॥१८
 द्वालोपपुत्रिकापुत्रानत ऊर्ग्वं निबोध मे ।
 कालेयादच सचालेषा वासरथ्यारनथ च च ॥१९
 धालोपश्चैव मंत्रायाश्श्रद्धार्थेषां पणिकान्तिता ।
 अग्निश्च वामरथ्यश्च पौत्रिण्वं वमहानदिः ॥
 परस्परमवैवाह्या ऋषयः पारकीर्तिता ॥१९
 इत्यग्निवशप्रमवास्तवाह्या महानुभाया नृपगोपकारा
 येषां नु नाम्ना परिकीर्त्तितेन पाप समग्र पुष्पो जहाति ॥१९

अत्रि, गन्धिष्ठिर, पूर्वान्विधि ये ऋषिगण परस्पर मे अववाह्य परि-
कीर्तित किये गये हैं ॥८॥ अब आत्रेय पुत्रिका के पुत्रों को भी मुझसे
समझ लो । काशेय, सचालेय, वामरष्य आत्रेय मैत्रेय, यार्षेय कीर्तित
किये गये हैं । अत्रि, वामरष्य, पौत्रि, महान् ऋषि से सब ऋषिगण आपस
मे विवाह न करने के ही योग्य थे । ये सब अत्रि के वश मे उत्पन्न होने
वाले नृपगोत्रकार महानुभाव हैं जो तुम्हारे सामने बलिबत कर दिये गए
हैं । जिनके शुभ नामों के कीर्तन मात्र से ही पुरुष समस्त पाप का त्याग
कर दिया करता है ॥९-११॥

८०-कुशिकवंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रथर वर्णन

अत्रेरेवापर वशन्तव वक्ष्यामि पार्थिव ! ।
अत्रे सामः सुत श्रीमास्तस्य वशोद्भवानृप ॥१
विश्वामित्रस्तु तपना ब्राह्मण्य ममयाप्तवान् ।
तस्य वशमह वक्ष्ये तन्मे निगदत शृणु ॥२
विश्वामित्रो देवरातस्तथा वंशुनिगालव ।
वतण्डाश्च सलदुश्च ह्यभयश्चायतायनः ॥३
श्यामायना याज्ञवल्क्या जाबाला. संधवायनाः ।
वाभ्रव्याश्च करोपाश्च सश्रुताः वय सश्रुताः ॥४
उन्नुवा औषगहृचा पयोदजनपादपाः ।
खरवाचो हलपमा साधिता वास्तुकीशिकाः ॥५
रुयार्षेया प्रवरास्तेषा सर्वेषा परिकीर्तिताः ।
विश्वामित्रो देवरात उद्दानश्च महायशाः ॥६
परस्परमववाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
देवभ्राताः नुजातेयाः सोमुका. शारकायनाः ॥७

तथा संदेहराता ये कुशिकाश्च नराधिप ! ।

अथैयाऽभिमलस्तेषा सर्वेषा प्रवरः शुभः ॥६॥

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे पार्थिव ! धर्म में अत्रि के दूसरे वंश का वर्णन करूँगा । हे तू ! सोम अत्रिका भुत श्रीमान् सोम इसका पत्नीद्वय था । विश्वामित्र ने तपश्चर्या के द्वारा ब्राह्मणत्व की प्राप्ति कर ली थी । मैं धर्म इसका वंश का भी वर्णन करूँगा । बनाने वाले मुझसे उसका धर्म लोग श्रद्धण कर लेंगे । विश्वामित्र—इवरान—वैकुण्ठगान्धर्व—वत्सल—सलङ्क—शम्भु—आयतायन—श्यामायन—राजवत्स—जावान्—सैन्धवायन—वाध्वान्—करीष—सशुभ्य—सश्वत्—उतूप—लोपगह्वर—पर्वोद जन पादप—खरवाक—हनयम—माधित—काम्पु कौशिक—उन सबके द्वयपैय प्रवर कीर्तिन किए गए हैं । विश्वामित्र—देवरात—महा-यशा उद्दान के परस्पर में विवाह न करने के धर्म ही है—एसे ही शुद्धि-रण वह गए हैं । दक्षव्या—सुजातीय—सोमूक—वात्कायन—तथा वेदहास—हे नराधिप ! जो कुशिक है उन सबका शुभ प्रवर वर्णन अभिमल है ॥६॥

दक्षव्या देवरातो विश्वामित्रस्तथैव च ।

परम्परमववाकाऽशुभयः परिकीर्तिताः ॥६॥

धनञ्जय कपर्देय परिकृतश्च पार्थिव ।

पाणिनिश्चैव द्वापेया सर्व एते प्रकीर्तिता ॥७॥

विश्वामित्रस्तयाश्च माधु-ह-दक्ष एव च ।

द्वापेया प्रवरा ह्येत श्लेषयः परिकीर्तिता ॥७॥

विश्वामित्रा मधु-हन्दा-तथा चैवाद्यमपणः ।

परस्परमववाकाऽशुभयः परिकीर्तिताः ॥८॥

कमलायजिनश्चैव अश्मरश्चस्तथैव च ।

चञ्चुनिश्चाणि द्वापयः सर्वेषा प्रवरो मतः ॥९॥

विश्वामित्रश्चाश्वथा वञ्चुनिश्च महातपाः ।

परस्परमवैवाह्या ऋषयःपरिकीर्तिताः ॥१४

देवप्रवा, देवरात्र तथा विश्वामित्र ये ऋषिगण परस्पर विवाह न करने के योग्य नहें गये हैं ॥६॥ हे पाण्डव ! घनञ्जय, कपर्देय, पशुभूट और पाणिनि ये सब आर्य्य कीर्तित किए गये हैं ॥१०॥ विश्वामित्र तथा आस और माधुच्छन्दस ये द्वापरेय प्रवर ऋषिवर्ग बताये गए हैं ॥११॥ विश्वामित्र, मधुच्छन्द, अपमर्षण ये आपस में अवैवाह्य ऋषिगण कीर्तित हुए हैं ॥१२॥ रुमनायजनि, अश्वरथ्य, चञ्जुलि सबका द्वापरेय प्रवर माना गया है । १३ । विश्वामित्र, अश्वरथ, महातपा धञ्जुलि ये परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण परिकीर्तित हुए हैं ॥१४॥

विश्वामित्रोऽलोहितश्च अष्टकः पूरणस्तथा ।

विश्वामित्रः पूरणश्च तयोद्वीप्रवरो मृती ॥१५

परस्परमवैवाह्याः पूणाश्च परस्परम् ।

लोहिता अष्टकाश्चैषा द्वापरेया परिकीर्तिताः ॥१६

विश्वामित्रो लोहितश्च अष्टकश्च महातपाः ।

अष्टका लोहितैरित्यमवैवाह्या परस्परम् ॥१७

उदरेणः त्रयकश्च ऋषिश्चोदावहिम्नया ।

शाठशायनिः कर्गेशी शान्द्रुयनिन्नावकी ॥१८

मोञ्जयनिश्चभगवान्श्यापेयाःपरिकीर्तिताः ।

प्रिनिगिनीस्तथाविद्योविश्वामित्रस्तथैवच ॥

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥१९॥

एते तयोक्ताः पुराणा नरेन्द्र ! महानुभावाःमन्त्रद्विजेन्द्रा ।

येषान्नु नाम्ना परिकीर्तिनेन पाप ममग्र पुरुषो जहाति ॥२०

विश्वामित्र और लोहित—अष्टक—पूरण—विश्वामित्र और पूरण इन दोनों के बीच प्रवर बत गए हैं । पूरण आपस में अवैवाह्य हैं । लोहित और अष्टक इनके द्वापरेय बताये गए हैं ॥१५, १६॥ विश्वामित्र, लोहित, महातपा अष्टक, व अष्टक लोहितों के साथ आपस में अवैवाह्य हैं ॥१७॥

सदरेण, श्रयक, ऋषि सदामहि, जाटशयनि, कगीगशी, जालयच्छाय, तिला-
 बरि, मोञ्जार्थनि, भाषधान् ये श्यार्थय कीर्तित हुए हैं। खिलिखिति, विच
 तथा विश्वामित्र ये परस्पर मे ऋषियमा अवैवाह्य कहे गए है ॥१८, १९॥
 हे नरेन्द्र ! ये प्राणको द्विजेन्द्र महानुभाव सतत कुञ्जक सव् वनना दिय गए
 है जिनके परम शुभ नामो के मकीर्तन पात्र से ही पुरुष अपने समस्त पाप
 को त्याग कर विशुद्ध हो जाया करता है ॥२०॥



८१-कश्यपवंशज-ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

मरीचि कश्यपः पुत्र. कश्यपस्य तथा कुलि ।
 गौतकत्तान् ऋषीन् वक्ष्य तथा नामानि म शृणु ॥१
 आश्विनणि ऋ निगथा मेघकान्ठिकायना ।
 उदश्रजामाठगरच भोजा दिनयन्त्रक्षणा ॥२
 शालाहोत्रया. कीरिष्ठा कन्यकादचामृगायणा ।
 सन्दाकिन्या वै मृगया श्रुतया भोत्रयापनाः ॥३
 दवयाता सोमयानह्यध्वश्रयाया भयाश्च य ।
 वत्सायना शाक्रयाणा वहिषागमदायनाः ॥४
 सवतन्ति महाचर्जि शरणायन एव च ।
 याध्वयाना कानिवया इगितदानास्तर्ध्व च ॥५
 वात्स्ययनानि कूलजा ह्याश्वलादनिनन्तथा ।
 प्रगायणा पौलमीनिगाश्ववातायनस्तथा ॥६
 कौवेरकाश्च दयाशरा अग्निजर्मायणश्च ये ।
 मेघपा. केकरसरान्थया श्वेन नु वभ्रवः ॥७

श्री गणेश भक्तान् न कदा—महामहर्षि मगीत्रि का कश्यप पुत्र
 द्विभा था तथा कश्यप व कुल्य म ज. गोत्रकार ऋषियण हुए से उनको शुभ

नामावली अथ आप मुञ्जसे श्रवण करतो ॥१॥ आश्रायणि ऋषियण, मेघ-
कीरिटकायन, उदप्रजामाठर, भोज, वितय लक्षण, शालाहलेय, कीरिष्ट,
वन्यक, आसुरायण, मन्दाकिनी में मृगय, श्रुतम, भोजयापन, देवयान,
गोमयान, अधश्छर्या, भया, कात्यायन, शाक्याण, बहिमोग गदायन, भव-
नन्दि, महाचक्रि, दाक्ष पायन, योधयान, कात्तिवय हस्तिदान, वात्स्यायनि
कृतज, आश्वलायनि, प्रागायण, पौतमीलि, आश्व वातायन, कौवेरक,
पयाकार, अग्निशर्मायण, मेपप, कंकरसप, तथा वध्रव ॥२-७॥

प्राचेयो ज्ञानसंज्ञेया आग्ना प्रासेध्य एव च ।
श्यामोदरा वैवशपास्तथाचैवोद्वलायनाः ॥८
काष्ठाहारिणमारीचाआजिहायनहास्तिकाः ।
वैकर्ण्येया काश्यपेया साप्तिसाहारिनायना ॥९
मान्तगिनश्च भृगवस्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः ।
वत्सरः कश्यपश्चैव निध्रवश्चमहातपाः ॥१०
परस्परमवेवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
अतः पर प्रवक्ष्यामि द्व्यामुष्यायणगोजान् ॥११
अनसूयो नाकुरय स्नातपो राजवत्तप ।
शंशिरोदवहिश्चैव संरन्ध्रीरोपसेवकिः ॥१२
या मुनि काद्रपिङ्गाधिः सजातम्बिदस्थैव च ।
दिवावष्टाश्व एत्येते भवन्त्या ज्ञेयाश्च काश्यपीः ॥१३
त्र्यार्षेयाश्च तर्षवेपा सर्वेपा प्रवरा शुभाः ।
वत्सरः वाश्यपश्चैव वमिष्टश्चमहातपाः ॥१४

अथेय, ज्ञान संज्ञेय, अग्नि, प्रासेध्य, श्यामोदर, वैवशप, उद्वलायन,
काष्ठाहारिण, मारीच, आजिहायन, हास्तिक, शैवर्ण्येय, काश्यपेय, साप्ति-
साहारिनायन, मान्तागिन, भृगुतण य मय त्र्यार्षेय परिकीर्तित ह्यु ? ।
अथ यज्ञी में प्राये तप इत्यामुष्यायण गोरजो ने रिषय में जगन करेगे ।
अनसूय, नाकुरम, स्नातप्य, राज वत्तप शंशिरोदवहि, संरन्ध्रीरोप सेवकि,

यामुनि, काद्रु पिद्गाशि, सजातम्बि, दिवावष्टाश्व ये इतने भक्ति भाव से
कारमणों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । इनके सबके व्याप्ये शुभ प्रवर
हैं । वत्सर, काश्यप, वसिष्ठ महातपा ॥८-१४॥

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।

संयातिश्च नभश्चोभो पिप्पलयोऽय जलन्धरः ॥११

भुजातपूरः पूर्यश्च कर्दमो गर्दभीमुखः ।

हिरण्यवाहुर्करातावुभौ काश्यपगोभिलौ ॥१६

कुलहो वृषकण्डश्च मृगकेतुस्तथोत्तरः ।

निदाघममृणौ भत्स्या महान्तः केवलाश्च ये ॥१७

शाण्डिल्यो दानवश्चैव तथा व देवजातयः ।

पैत्यलादित्स प्रवरा ऋषयःपारकीर्तिता ॥१८

व्याप्येवाभिमताश्चौषा सर्वेषा प्रवराः शुभाः ।

असितो देवलश्चैव काश्यपश्च महातपा ॥

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिता ॥१९॥

ऋषिप्रधानस्य च काश्यपस्य दाक्षायणीभ्यः सकलप्रसूतम् ।

जगत्समग्रं मनुसिंहं पुण्यं किं ते प्रवक्ष्याम्यहमन्तरेण ॥ २०

ये समस्त ऋषिगण परस्पर में अवीवाह्य बतलाये गये हैं। संयाति,
नभ ये दोनों, पिप्पलय, जलन्धर, भुजातपूर, पूर्व, कर्दम, गर्दभी मुख,
हिरण्य वाहुक, काश्यप, गोभिल, कुलह, वृषकण्ड, मृगकेतु, उत्तर, विदाघ,
ममृण, भत्स्य, महान्त, केवल, शाण्डिल्य, दानव, देवजाति, पैत्यल दिन्स, य
सब ऋषिगण प्रवर कहे गये हैं इन सबके शुभ प्रवर व्याप्ये अभिमता हुए
हैं । अमित, देवल और महातपा काश्यप ये ऋषिगण परस्पर में अविवाहा
हैं—ऐसा कीर्तिता किया गया है । समस्त ऋषियों में परम प्रधान दाक्षाय
के दाक्षायणीयो में यह सम्पूर्ण प्रसूत हुआ है । यह सम्पूर्ण जगत् सिंह क
पुण्य मनु का पुण्य रूप है । अब मैं इसके उपरान्त आपको क्या बतलाने लूँ
॥१९-२०॥

८२-वसिष्ठ वंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

वसिष्ठवशजान् विप्रान् निबोध वदतो मम ।
 एकार्षेयस्तु प्रवरो वासिष्ठाना प्रकीर्तितः ॥१
 वसिष्ठा एव वासिष्ठा अविवाह्या वसिष्ठजैः ।
 व्याघ्रपादा औपगवाचैवलवाः शाङ्गलायनाः ॥२
 कपिष्ठला औपलोमा अलब्धाश्चपटाः कठाः ।
 गौपयानाबोधपाश्चदाकठ्याह्ययवाह्यका ॥३
 वालिशया. पालिशयास्ततोवाग्रन्धयश्चये ।
 आपस्पूणा शीतवृत्तास्तथान्नाह्यपुरयका ॥४
 लोमाना स्वस्त्रिकरा शाण्डिलिगोडिनिस्तथा ।
 वाडोहलिश्च मुमनाञ्चोणावृद्धिस्तथैव च ॥५
 चौलिथौलिग्रंह्यवन पीलि श्रवस एव च ।
 पीडवो याज्ञवल्क्यश्च एकार्षेयामहर्षयः ॥६
 वसिष्ठ एषा प्रवर अवैवाह्याः परस्परम् ।
 शैलालयो महाहसं कौरव्य क्रोधिनस्तथा ॥७

श्रीमत्स्य महाकाण्डे में कहा—वसिष्ठ वंश में समुत्पन्न विप्रों को
 बतलाते हुए मुझसे श्रवण करो । वसिष्ठों का एकार्षेय प्रवर प्रकीर्तित
 किया गया है ॥१॥ वसिष्ठ ही वासिष्ठ हैं जो वसिष्ठ से समुत्पन्न होने वाले
 ७ गोत्र अविवाह्य हैं । व्याघ्रपाद, औपगव, वैकलव, शाङ्गलायन, कपिशुभ
 औपलोम, अलब्ध, पठ, कठ, गौपयान, बोधन, दाकश्य, वाह्यक, पालि-
 शय, पालिशय, वाग्रन्धय, आपस्पूण, शीतवृत्त, नाह्य पुरयक, मोमहयन,
 स्वस्त्रिकर, शाण्डिलि, गोडनि, वाटाहनि, मुमना, उणाग्राह्य चौलि, पीलि,
 दशवन्, पीलि, श्रवस, पीडव, याज्ञवल्क्य, ये सब एकार्षेय महर्षियण हैं ।
 इनका वसिष्ठ प्रवर है और परस्पर में अवैवाह्य है । शैलालय, महाहसं
 पीडव वासिष्ठाना ॥२-७॥

कपिञ्जलावालखिल्याभागवित्तायनाश्चये ।
 कीलायनःकालशिखःकोरकृष्णासुरायणाः ॥८
 शाकाहार्याः शाकधियः काष्ठा उपलपाश्चये ।
 शाकायनाउहाकाश्चअथमापशगवयः ॥९
 दाकायनावालवयोवाकयो गौरथास्तथा ।
 लम्बायना श्यामवयो ये चकोडोदराष्णाः ॥१०
 प्रलम्बायनाश्च ऋषय औपमन्यव एव च ।
 साडस्य यनाश्चऋषयस्तथा वै वेदशेरका ॥११
 पालङ्कायन उद्गाहा ऋषयश्च वनेश्वर ।
 मातेया ब्रह्मर्बलिन पर्णागारिश्चैव च ॥१२
 व्याप्योर्जभिमनश्चीपा सर्वेषा प्रवरस्तथा ।
 भिगीवमुवशिष्टश्च इन्द्रप्रमादिरेवच ॥१३
 परम्परमवेवाह्या ऋषयः पत्निकीलिता ।
 औपमन्यलास्वमन्ययो पालोहात्वा इत्याश्च य ॥१४

कपिञ्जल, बाल खिल्य, भाग वित्तायन, कीलायन, काल शिख, कोर कृष्ण, सुरायण, शाकाहार्य, शाकाधी, काष्ठ, उपलप, शाकायन, उहाक, मापशगवय, दाकायन, बालवय, वाकय, गौरथ, लम्बायन, श्यामवय कोडोदराष्ण, प्रलम्बायन श्रुतिगण, औपमन्यव, साड्स्यायन श्रुतिवगं, वेदशेरक, पलङ्कायन, उद्गाह ऋषिगण, वनेश्वर, मातेय, ब्रह्मर्बलिन, पर्णागारि, इन सबके प्रवर द्वाप्येय अभिमत है । भिगीवमु वशिष्ट और इन्द्र प्रमाह ये श्रुतिगण अपम मे विवाह विधि नहीं करने के योग्य हुंते हैं—ऐसा ही कहा गया है । औपमन्यन स्वमन्य ये—पालोहत्वा—इत्य ॥८-१४॥

माध्यन्दिनो मात्तनय पंप नादिर्विचक्षुषः ।
 वैश्रुङ्गायन सेवत्का. कुण्टिनश्च नरात्तम ! ॥१५
 व्याप्योर्जाभिमतार्चोया सर्वेषा प्रवरा गुनर ।

वसिष्ठमित्रावरुणौ कुण्डिनश्च महातपाः ॥१६

परस्परमर्वाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।

शिवकर्णो वयश्चैव पादपञ्च तथैव च ॥१७

द्वार्षेयोऽभिमतश्चैवा सर्वेषां प्रवरस्तथा ।

जातकर्ण्योवसिष्ठश्च तथैवात्रिश्च पार्थिव ! ॥

परस्परमर्वाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥१८

वसिष्ठवशोऽभिहिता मयंते ऋषिप्रधानाः सततं द्विजेन्द्राः ।

येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पाप समग्रं पुरुषां जहाति ॥१९

माध्यन्दिन, मासतप, पैपलादि, विचक्षुष, चैश्रुङ्गागन, संवत्स, कुण्डिन हे नरोत्तम ! इन सब के परम शुभ प्रवर द्वार्षेय अभिमत हैं । वसिष्ठ, मित्रावरुण, महानपा, कुण्डिन ये ऋषि वृन्द परस्पर में अर्वाह्य है—ऐसा कीर्तित किया गया है । शिवकर्ण, वय, पादप, इन सबका द्वार्षेय प्रवर अभिमत है । हे पार्थिव ! जातकर्ण्य वसिष्ठ तथा अत्रि ये ऋषि वृन्द आपस में विवाहन करने के योग्य ही बड़े मये है । १५-१८॥ मैंने आपको वसिष्ठ के वश में ऋषियों में प्रधान और निरन्तर द्विजेन्द्र आपका कह दिया गया है । उनके परम शुभ नामों के परिकीर्तन से पुरुष अपने सम्पूर्ण पापों का त्याग कर दिया करता है ॥१९॥

८३—ऋषियों के आख्यान में निमि का वर्णन

वसिष्ठस्तु महातेजानिमे पृथ्वुरोहितः ।

वभूव पार्थिवश्रेष्ठ ! यज्ञारतस्य समन्ततः ॥१०

श्रान्नात्मापार्थिवश्रेष्ठ ! विश्राम तदा गुरुः ।

त यदा पार्थिवश्रेष्ठो निमिवचनमग्रवीत् ॥२

धनवन्मष्टमिच्छामि तन्मा याजयमाचिरम् ।

तप्तवाच महातेजा वसिष्ठःपार्थिवोत्तमम् ॥३
 कञ्चित्कालं प्रतोद्भव तव यज्ञः सुसत्तमः ।
 श्रान्तोऽस्मि राजन् । विश्रम्य याजयिष्यामि ते नृपः॥४
 एवमुक्तः प्रत्युवाच वसिष्ठ नृपसत्तम ! ।
 पारलौकिककार्ये तु कः प्रतोक्षितुमुत्सहेत् ॥५
 न च मे सौहृद ब्रह्मन् ! कृतान्नेन बलीयसा ।
 धर्मकार्ये त्वरा कार्या चन यस्मादिति जीवितम् ॥६
 धमपथ्योदतो जन्तुर्मृतोऽपि मुखमश्नुते ।
 श्व कार्थ्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णेचापराहितकम् ॥७

श्री गत्स्य भगवान् ने कहा—महर्षि वसिष्ठ महान् तेजस्वी थे और निमित्त के पूर्व पुरोहित थे । हे पार्थिव श्रेष्ठ उनके चारों ओर यज्ञ थे उस समय में श्रान्त आत्मा गुह में विश्राम किया था । उनके महीप में जाकर निमित्त ने यह वचन कहा था । हे भगवन् ! मैं देखना चाहता हूँ—मुझे भी यज्ञ करवाइये । महान् तेज वाले वसिष्ठ जो ने उस श्रेष्ठ राजा से कहा था—कुछ समय तक प्रतीक्षा करो । आपके परम श्रेष्ठ यज्ञों से हे राजन् ! मैं थक-सा गया हूँ मैं कुछ समय तक विश्राम करके ही याजन कराऊँगा ॥३-४॥ इस प्रकार से जब कहा गया था उसने हे नृपश्रेष्ठ ! वसिष्ठ जी ने कहा था कि पारलौकिक कार्य में वीत ममुष्य होगा जो प्रतीक्षा करने का उत्साह करेगा । हे ब्रह्मन् ! उस महान् बली यमराज से मेरी कोई मित्रता नहीं है । धर्म के कार्य में तो शीघ्रता करनी चाहिए क्योंकि यह मानव का जीवन तो चन और क्षमिपर हुआ करता है ॥५, ६॥ धर्म की पथ्य ओदन वाला यह जन्तु मृत होकर भी मुख का आनन्दोपभोग किया करता है । जो कार्य अर्थात् धर्म सम्बन्धी कर्म कल करने का विचार हो उसे आज ही करना चाहिए और जो दोषहर के वाद करने का हो उसको दोषहर के पूर्व ही कर डाले—इसी प्रकार धार्मिक कृत्य को ही जितनी

शीघ्रता हो सके उसनी शीघ्रता से सम्पादित करने का सर्वदा विचार रचना मनुष्य का परम कर्त्तव्य है ॥५॥

न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतञ्चास्य न वा कृतम् ।

क्षेत्रापणगृहासक्तमन्यत्र गतमानसम् ॥८॥

वृक्षचोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति ।

नेवान्तेन प्रिय. कश्चित्द्वेष्यश्चास्यन विद्यते ॥६॥

आमुष्य कर्मणि क्षीणे प्रसह्य हरते जनम् ।

प्राणवायोश्चलत्वञ्च त्वया विदितमेव च ॥१०॥

यदत्र जीव्यते ब्रह्मन् ! क्षणमात्रन्तदद्भुतम् ।

क्षारोरं शाश्वत मन्ये विद्याभ्यासे धनाजने ॥११॥

अशाश्वत धमकार्ये ऋणवानस्मि सङ्कटे ।

साङ्ग सभूत सस्भारोभञ्जन्मूलमुपागतः ॥१२॥

नचेद्याजयसे मा त्व अन्य यास्यामि याजकम् ।

एवमुत्तप्तदा तेन निमिता ब्राह्मणोत्तमः ॥१३॥

शशाप त निमि प्राधाद्विदेहस्व भविष्यसि ।

श्रा.त मा त्व समुत्सृज्य यस्मादन्य द्विजोत्तमम् ॥१४॥

मृत्यु इसने कुछ किया है या अभी तक घमं का कार्य नहीं किया है—इसकी बिल्कुल भी प्रतीक्षा नहीं किया करती है। यह तो एक मृक के ही समान पुर प्राय समय पर आकर क्षेत्र—गृह—आपण आदि में समा-सक्त और दूसरे-दूसरे विषयों में मन लगाने वाले मनुष्य की लेकर चल दिया करता है। इसका न तो कोई धारा है और न किसी से इसका डोष ही है। यह तो कर्म में गमासक्त जनको आपण्य के क्षीण हो जाने पर यन्मात्र पण्डित हरण पर निया करता है। यह प्राण वायु चल है और इसकी चलता को प्राय सभी भाँति से जानते ही है। हे ब्रह्मन् ! जो यहाँ पर जीवित रहा करता है उसका एक क्षणमात्र जीवित रहना भी एक अद्भुत आश्चर्य ही है। मैं तो विद्याभ्यास और धन के अर्जन में

ही इस शरीर को शाश्वत मानता हूँ। धर्म कार्य में मैं इसको अशाश्वत मानता हूँ। इस सङ्कट में श्रुणवान् हूँ। वह मैं सम्भृत सम्भार वाला मूल को उपागत हुआ हो गया था। यदि आप मुझ याजन नहीं करावेंगे तो मैं किसी अन्य याजक के समीप में चला जाऊँगा। इस प्रकार से उस समय मैं उस निमि के द्वारा वह श्रेष्ठ ब्राह्मण जब कहा गया था तो उसने महान् क्रोध से उस निमि को शाप दे दिया था कि तू विदह हो जायेगा क्योंकि परम भ्रान्त मुझ को त्याग करके किसी अन्य द्विजोत्तम के समीप जाना चाहता है ॥८-१४॥

धर्मज्ञस्तु नरेन्द्र ! त्व याजक कर्तुं मिच्छसि ।
 निमिस्त प्रत्युवाचाथ धमकार्थरतस्य मे ॥१४
 विघ्नङ्करोपि तान्येत याजनच तथेच्छसि ।
 शापददासि यस्मान्त्व विदेहोऽज्यभविष्यसि ॥१६
 एवमुक्ते नु तो जाती विदेही द्विजपार्थिवी ।
 देहहीनो तयोर्जीवो ब्रह्माणमुपजगत् ॥१७
 तावागतौ समीक्षयाथ ब्रह्मावचनमब्रवीत् ।
 अद्यप्रभति मे स्थान निमिर्जीव ददाम्यहम् ॥१८
 नेत्रपक्षमसु सर्वपा त्व वसिष्यसि पार्थिव ।
 स्वत् सम्ब्रन्धात्तथा तेषा निमेष सम्भविष्यति ॥१९
 चालयिष्यन्ति तु तदा नेत्रपक्षमाणि मानवाः ।
 एवमुक्ते मनुष्याणा नेत्रपक्षमसु सवशः ॥२०
 जगाम निमिर्जीवस्तु वन्दानात् स्वयम्भुव ।
 वसिष्ठ जीव भगवान् ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥२१

हे नरेन्द्र ! धर्म के ज्ञाता आप हैं और आप याजक करना चाहते हैं। इसके अनन्तर, निमि ने उसको इसका उत्तर दिया था कि धर्म में रति रखने वाले मेरे कार्य में विघ्न करने हैं और अन्य के द्वारा कराये जाने वाले याजन को नहीं चाहते हैं। इसीलिए आप शाप दे रहे हैं कि

तू विदेह हो जायगा तो तू भी विदेह हो जायगा । इस प्रकार से कहने पर वे दोनों ही द्विज घोर पाथिव विदेह हो गये थे । उन दोनों के देह से हीन जीवात्मा ब्रह्माजी के समीप में पहुँचे थे । उन दोनों को समागत हुए देखकर ब्रह्माजी ने यह वचन कहा—मात्र से लेकर हे निमि के जीव ! तुझको मैं स्थान देता हूँ हे पाथिव ! तुम सब के नेत्रों के पश्चिम में निवास करोगे ॥११-१६॥ मनुष्य उस समय में नेत्रों के पश्चिमो का चालन करेगा । इस तरह से कहने पर सब ओर मनुष्यों के नेत्रों के पश्चिमो पर वह निमि का जीव स्वयम्भू प्रभु व वरदान में चला गया था । फिर ब्रह्माजी ने वसिष्ठ महर्षि के जीव से यह वचन कहा था—॥२०, २१॥

मित्रावरुणयो ब्रुवो वनिष्ठ । त्व भविष्यसि ।
 वनिष्टेतिचते नाम तत्रापिचभविष्यसि ॥२२
 जन्मद्वयमतोतञ्च तत्रापि त्वं स्मरिष्यसि ।
 एतस्मिन्नव काले तु मित्रश्च वरुणस्तया ॥२३
 बदर्याश्रममासाद्य तस्मिन्पतुरव्ययम् ।
 तस्म्यतोस्तयोरेव कदाचिन्माधवे ऋती ॥२४
 पुष्पितद्रुमसस्थाने शुभे द्वयितमारुते ।
 उवशा तु वरारोहा कुर्वती कुसुमाञ्चयम् ॥२५
 सुसूक्ष्मरक्तवसना तयार्हृष्टिपथङ्गता ।
 ता दृष्ट्वा गुमुषी सुभ्रू नीननीरजलोचनाम् ॥२६
 उभौ चक्षुभतुर्ध्यात्तद्रूपपरिमाहितौ ।
 तपस्यनीस्तया वीर्यमस्यलञ्च मृगासने ॥२७
 स्वप्न रेतस्ततो दृष्ट्वा शापभीती परस्परम् ।
 चक्षुः कल्पे शुक्र तोयपूर्णं मनोरमे ॥२८

हे मित्र ! तू मित्रावरुणों का पुत्र होगा । वही पर भी 'वनिष्ठ'—यह तेरा नाम होगा ॥२२॥ वहा पर भी तुझे बीते हुए दो जन्मों का स्मरण होगा । इसी समय में मित्र और वरुण बदर्याश्रम को

प्राप्त करके अवश्य तपस्या का सतपन करने लगे थे । उन दोनों के इस प्रकार से तपश्चर्या करने पर किसी समय माधव ऋतु में परम शुभ और वहन करने वाली व.यु से युक्त पुष्पिन द्रुमों के समान में फलों के स्तवकी उछालनी हुई वरारोहवाती उर्वशी जा कि अन्य न वारिक और रत्नवर्ण के वस्त्र धारण कर रही थी तब करने वाला उन दोनों की दृष्टि में आ गई थी अर्थात् दोनों ने उर्वशी को देख लिया था । उस नीले कमली के सदृश लोचनो वाली सुन्दर मुद्रा में सम्पन्न मुञ्जू की दम्ब कर उसके रूप लावण्य पर मोहित हुए वे दोनों ही धैर्यहीन होकर धाम बाल हो गये थे । तपस्या करते हुए उन दोनों का धीर्य मृगामन पर स्थानित हो गया था । इसके उपरान्त जब उन्होंने अपने स्वप्न हुए वीर्य को देखा तो वे दोनों शाप से भयभीत हो गये थे और उन्होंने वहाँ पर स्थित जल से भरे हुए मनोहर कलश में उस वीर्य का डाल दिया था ॥ २३, २४, २५, २६, २७, २८ ॥

तस्मादृषिवर्गो जातो तेजसा प्रतिर्मा भुवि ।
 वसिष्ठ उवाच्यमन्त्र्यश्चमित्रावरणयाद्वंशो ॥२६
 वसिष्ठस्तृणयेमेज्य भागिनी नाग्दम्य तु ।
 अम्वती वरारोहा तस्या शक्तिमजोजन्त ॥२७
 शक्तेः पराशर-पुत्रस्तस्य वंश निबोध मे ।
 यस्य द्वैपायन पुत्र-स्वय विष्णुरजायत ॥२८
 प्रकाशा जनितो येन लोके भारत चन्द्रमाः ।
 पराशरस्य तस्य त्व शृणु वणमनूत्तमम् ॥२९
 काण्डपपो वाहनपो जंघपो भीमतापन ।
 गोपालिरेपा पञ्चम एते गौग पराशरा ॥३०
 प्रपीह्यावाह्य मयाः स्नाते या कौतुजातयः ।
 ह्यंश्विः पञ्चमो ह्येषा नीलाग्नेयाः पराशराः ॥३१
 काण्णायना-कपि मुखा-काकेयस्थाजपातयः ।

पुष्करः पञ्चमश्चैषां कृष्णाज्ञेयाः पराशराः ॥३५॥

उसी वीर्य से भूमण्डल में तेज से समन्वित उन दोनो मित्रावरणों को ही ऋषियों में परम श्रेष्ठ समुत्पन्न हुए थे । उनमें एक का नाम वसिष्ठ था और दूसरे का नाम अगस्त्य था ॥ ३६ ॥ वसिष्ठ ने नारद की शगिनो के साथ विवाह किया था जिम वरारोह का नाम अरुणती था । उस अरुणती से उसने शक्ति को समुत्पन्न किया था । शक्ति का पुत्र पराशर हुआ था । अब उसका जो भी वंश हुआ उसे मुझसे समझ लो । जिम पराशर का स्वपुत्र विष्णु दर्शन पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ ३०, ३१ ॥ यह ऐसा था जिमने लोक में भारत चन्द्रमा प्रकाश को प्रसूत किया था । उम पराशर मुनि का जो उत्तम वंश था उसे तुम श्रवण करलो ॥३२॥
 वाण्डप—वाहनप—जंहाप—भीम नावन और इनमें वाचवा गोपालि था । ये गौर पराशर थे ॥ ३३ ॥ प्रय—दयावाह्य—मय और स्वात में जो बौदुक जातिवा है तथा पञ्चम हर्षशिव में मोनाभेय पराशर है ॥ ३४ ॥
 वाष्णायन—वसिष्ठ—वाक्वस्य—जपाति और इनमें वाचवा पुष्कर में सब कृष्णा ज्ञेय पराशर है ॥ ३५ ॥

आविष्टायन वालियास्वामिष्ठादन्वोपयाश्च ये ।

इषोविहस्ताश्चते च पञ्चदशैता पराशराः ॥३६॥

पाटिका वादरिश्चैवस्तम्बा वै क्रोधनायनाः ।

क्षमिरेया पञ्चमस्तु एते श्यामा पराशराः ॥३७॥

सत्यायना वाष्णायनार्तलेयः सप्त पृथवाः ।

सन्तिरेया पञ्चमस्तु एते धूम्राः पराशराः ॥३८॥

सप्तार्धते नृप । वसुमुह्याः पराशराः भूमसमप्रभावाः ।

येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पारं समग्रं पुरुषो जहाति ॥ ३९ ॥

आविष्टायन—वाचिष—स्वामिष्ठा—उपय—इषोक हस्त ये वाचि श्वेत पराशर थे ॥ ३६ ॥ पाटिक—वादरि—स्तम्ब क्राधानायन और इनका पार्षदा क्षमि ये श्याम पराशर हुए थे । सत्यायन—वाष्णायन—र्तलेय—

यूप्य और इनमें पञ्चम तन्त्रि ये मय धृञ्ज पराशर हैं । हे नृप ! ये सूर्य के समान प्रभात होने लग म प्रमुख पराशर सब आपके समक्ष में वर्णित कर दिये गये हैं जिनके शुभ नामों के ही कीर्तन करने से मनुष्य अपने समस्त पापों से छुटकारा पाकर परम विभुद्ध हो जाया करता है ॥ ३७, ३८ ॥

८४—ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

अन. परमगस्त्यस्य वक्ष्प्रवशाद्भ्रवान्द्विजान् ।
 अगस्त्यश्चकरम्भश्चकोशल्य करटस्तथा ॥१
 सुमेधमोमयोभुवस्तथा गान्धारकायणः ।
 पौलस्त्या पौलहाश्वोवक्रतुवजमवास्तथा ॥२
 आर्षेयाभिमतार्क्षीया सर्षेया प्रवरा. शुभाः ।
 अगस्त्यश्च महेन्द्रश्च ऋषिश्चौत्र मयोभुव ॥३
 परस्परमर्ववाह्या ऋषय परिकीर्तिता ।
 पौर्णमासाः पारथाश्च आर्षेया परिकीर्तिताः ॥४
 अगस्त्यः पौर्णमासश्च पारणश्च महातपा ।
 परस्परमर्ववाह्या पौर्णमासान्तु पारणं ॥५
 एवमुक्तो ऋषीणास्तु वंश उत्तमपौरुषः ।
 अतः पर प्रवक्ष्यामि किम्भवान्च कथ्यताम् ॥६
 पुलहस्य पुलस्त्यस्य कर्तोऽनौवमहात्मनः ।
 अगस्त्यस्य तथा चैवकथ वशस्तदुच्यताम् ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा --- अब इससे प्रागे मैं अगस्त्य मुनि के वंश में समुत्पन्न द्विजों का वर्णन करता हूँ—अगस्त्य—करम्भ—कोशल्य—करट—सुमेधस—मयोभुव—गान्धारकायण—पौलस्त्य—पौलह—ऋषुवश मव—

इन मन्त्रों शुभ प्रवर आर्षेय अभिमत है । अगस्त्य-महेन्द्र और मयोभुव ऋषि वे समस्त ऋषिगण परस्पर में श्लोकाह्वय हैं ऐसा परिकीर्तित किया गया है । पूर्णमास और पारण आर्षेय कीर्तित किये गये हैं । अगस्त्य-पूर्णमास तथा मन्त्र तपस्वी पारण—ये आपस में विवाह करने के योग्य नहीं थे और पूर्णमास पारणों के साथ विवाह नहीं था । इस प्रकार से ऋषियों का उत्तम पीछा वाला वंश मैंने कह दिया है । इसमें भागे आज क्या कहें ? आप ही यह मुझे बतलाइये । महर्षि मनु ने कहा—
 पुलह—पुनरुच्य—शत्रु जो महान् आत्मा वाला था तब अगस्त्य का वंश करने हुआ—यही भव बतलाइये ॥ १-७ ॥

मनु द्रुत्वमपत्योऽभूद्राजन्वैवस्यतेऽन्तरे ।

इधमवाह स पुत्रत्वे जग्राह ऋषिसत्तमः ॥८

अगस्त्यपुत्र धमञ्ज आगस्त्याः प्रतवस्ततः ।

पुनहस्य तथा पुत्रास्ययदच पृथिवीपते ॥९

तेषान्नु जन्म बध्वामि उत्तरश्च यथाविधि ।

पुनहस्तु प्रजादृष्टवानातिप्रोत्तमता म्यक्ताम् । १०

अगस्त्यजट्टास्यन्तुपुत्रत्वेवृत्तथास्ततः ।

पीनाहारचतवाराजन् । आगस्त्या परिकीर्तिताः ॥११

पुलस्त्यान्यपमम्भनान् दृष्ट्यारक्षः समुद्रवान् ।

अगमरमस्यमुत्तन्धीमान् पुत्रत्वेवृत्तचारस्ततः ॥१२

पीलस्त्याभ्य तथा राजप्रागस्त्या परिकीर्तिताः ।

मगोपरवादिभे सर्वेपरस्परमनन्वयाः ॥१३

एते सर्वोक्ताः प्रवरा द्विजाना महानुभावाङ्गुपवंशकाराः ।

एषान्नु नाम्ना परिकीर्तितेन पाप समग्रं पुरुषो जहाति ॥१४

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! सर्वस्व मन्वन्तर में मनु बिना मन्वान थाया हुआ था । उस श्रेष्ठ ऋषि ने इधमवाह को पुत्र के रूप में ग्रहण किया था ॥ ८ ॥ बहु धर्म का ज्ञान अगस्त्य का

पुत्र था । इसके पश्चात् ऋतुगण्य आगस्त्य कहे गये थे । हे पृथिवी पते ! पुलह के तीन पुत्र थे । अब मैं उत्तर में यथाविधि उनके जन्म के विषय में वर्णन करूँगा । पुलह ने अपनी प्रजा को देखा था तो वह—अत्यन्त प्रीति युक्त मन वाला नहीं था । इसके उपरान्त उसने द्वाप्य अगस्त्य से समुत्पन्न को पृथक्त्व के रूप में बरण कर लिया था । हे राजन् ! उसी प्रकार से पौनह आगस्त्य परिकीर्तित हुए थे । पुलस्त्य के अन्वय में समुद्रगर्भी को राक्षसों से समुद्रमय वाले देख कर धीमान् ने अगस्त्य के सुत को ही पुत्रत्व में ब्रूत कर लिया था । ॥६॥१०॥११॥१२॥ तथा हे राजन् ! वे पौनस्त्य आगस्त्य कीर्तित हुये । सगोत्र होने में ये सब परस्पर में अन्वय जाने नहीं थे । ये सब ऋषियों के वंशकर महानुभाव द्विजों में, प्रवर थे ? इनका वर्णन आपकी सुना दिया है ! इनके नामों के कीर्तन से मनुष्य अपने सम्पूर्ण पापों को त्याग देता है ॥१३॥१४॥



८५—मनुस्मृत्य संवादे धर्म वंश वर्णन

अस्मिन्ब्रह्मस्वते प्राप्ते ऋणं धर्मस्य पार्थिव । ।
 द्राक्षायणीभ्यः सकल वंशं देवतमुत्तमम् ॥१॥
 पर्वतादिमहादुर्गशरीराणि नराधिप ! ।
 अरुन्धत्याः प्रभूतानि धर्माद्विब्रह्मस्वतेऽन्तरे ॥२॥
 अष्टौ च वनवः पुत्राः सोमपाश्चविभास्तथा ।
 धराध्रुवश्चसामरश्चापशूवानिलानलो ॥३॥
 प्रत्यपश्च प्रभासश्च वनवोऽष्टौ प्रकीर्तिता ।
 धर्मस्य पुत्रो द्रविणः कानपयोध्रुवस्यतु ॥४॥
 कालभ्यावयमानान्तु शरोराणि नराधिप । ।
 मूर्तिमति च कानादि सप्तभूतान्यशेषतः ॥५॥

सोमस्य भगवान् वर्चाः श्रीमांश्चापस्य कीर्त्यन्ते ।
 अनेकजन्मजननः कुमारस्त्वन्लस्यतु ॥६
 पुरोजवाश्चानिलस्य प्रत्यूपस्य तु देवलः ।
 विश्वकर्मा प्रभासस्य सिदधानां स वर्धकिः ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे पाण्डव ! हम वैवस्वत अन्तर के प्राप्त होने पर दाशायणियो से सम्पूर्ण उत्तम अस्ति देवत वश का श्रवण कीजिएगा ॥ १ ॥ हे नराधिप । हम वैवस्वत अन्तर से घर्म से अरुन्धती से पर्वत आदि महा दुर्ग शरीर प्रगुन हुए थे ॥ २ ॥ आठ वधुगण पुत्र-विम के गोमप-धर-ध्रुव-गोम-आप-अनिल-अनल-प्रत्यूप प्रमाण ये सब अष्ट भगुण कीर्तित किये गये है । धर का पुत्र द्रविण हुआ और काल ध्रुव का पुत्र हुआ था । हे नराधिप ! काल के अधयवो के शरीर मूर्तिमान् सम्पूर्ण काल ग ही मन्त्रगुन हुए थे ॥ ३, ४ ५ ॥ गोम का पुत्र भगवान् वर्चा था और जल का पुत्र श्रीमान् हुआ था—ऐसा कहा जाता है । अनल का पुत्र अनेक जन्म जनन कुमार था । अनिल का आत्मज पुरोजवा तथा प्रत्यूप का पुत्र देवल प्रगुन हुआ था । प्रभास का पुत्र विश्वकर्मा था तथा सिदधानों का वह वर्धकि था ॥६, ७ ॥

समीहितकरा प्रोक्ता नागवीर्यादयो नव ।

नम्वापुत्र स्मृतोषोषोभानोपुत्रान्चभानवः ॥८

ग्रहर्शाणाञ्च सर्वेषामन्वेषा चामितौजसाम् ।

मन्त्रस्तथा मन्त्र्यन्तःसर्वेषुत्राः प्रकीर्तिताः ॥९

मरुत्स्यायाश्चमङ्गुन्मस्तथापुत्र प्रकीर्तिताः ।

महर्नास्त्रिमृहर्तापिः साध्याः साध्यामुताः स्मृताः ॥१०

मनोमनुजं प्राणश्च नरोपानो च वीर्यवान् ।

चित्तहार्योऽथनस्त्रीवहमानागायणस्तथा ॥११

विभृन्वापिप्रभुस्त्रीवमन्ध्याद्वाद्गकीर्तिताः ।

विशवावाश्चनयापृथाविश्वेदेवाः प्रकीर्तिताः ॥१२

ऋतुदंक्षोवसुः सत्यः कालकामोमुनिस्तथा ।

कुरजोमनुजोवीजोरोचमानदक्ष ते दश ॥ १३

एतावदुक्तस्तत्र धर्मवंशं सक्षेपतः पार्थिववंशमुख्य ! ।

व्यासेन वक्तुं न हि शक्यमस्ति राजन् विना वपंशतरुनेके ॥ १४

सभी हितकरो वाले नागवीधी आदि नौ वंशाये गये है । सम्बा का पुत्र घोष कहा गया है और भानु क पुत्र भानुगण है ॥ ८ ॥ अन्य अरिभोज वाले यह और नक्षत्रो क सबके मरुवती मे मरुवन्त सब पुत्र प्रकीर्तित हुए हैं ॥ ९ ॥ सङ्कल्प का पुत्र सङ्कल्प कहा गया है । मुहूर्ता के पुत्र मुहूर्त और माध्य माध्या के मुत उत्पन्न हुए थे ऐसा कहा गया है । मनु ग मनु और प्राण — नर — उवान — वीर्यवान् — द्वाय्यं — अयन — हम — नागयग — विभु और प्रभु ये द्वादश माध्य कहे गये है । विश्वा के जो पुत्र थे व विश्वेदेवा कीर्तित हुए थे । ऋतु-दक्ष-वसु-सत्य-काल-काम-मुनि-कुरज-मनुज-वीज-रोचमान ये दश थे । हे पार्थिवो क वंश मे प्रधान । हमन यह धर्म का वंश सक्षेप से आपके समक्ष मे बतला दिश है । हे राजन् ! यह अनेकों सैकड़ो वर्षों के विना भाषान् व्यासदेव के द्वारा भी बतलाया नहीं जा सकता है ॥ १०, ११, १२, १३, १४ ॥

८६-पतिव्रतामाहात्म्य में सावित्री उपाख्यान

ततः स राजा देवेश पप्रच्छामितविक्रमः ।

पतिव्रताना माहात्म्य तत्तमम्बन्धाकथामपि ॥११

पतिव्रताना का श्रेष्ठा कथामृत्युः पराजितः ।

नामसङ्कीर्तन कस्याः कीर्तनीयतदा नरः ॥

एवंपापशयकरमिदानी कथयस्व मे ॥१२॥

बलाम्य धमराजाऽपिनाचरत्यधयापिताम् ।

पतिव्रतानांधमंज ! पूज्यास्तस्यापि ता सदा ॥३॥
 अथ ते वरं विष्टामि कथा पापप्रणाशिनीम् ।
 यथा विमोक्षितो भर्ता मृत्युपाशाद्यतः स्थिया ॥४॥
 मद्रेषु शाकलो राजा बभूवाश्वपतिः पुरा ।
 अपुत्रस्तप्यमानाऽसौ पुत्रार्थी सव कामदाम् ॥५॥
 आराधयति सावित्रीलक्षितोऽसौ द्विजात्तमैः ।
 सिद्धार्थकं हूँ यमानासावित्रीप्रत्यहद्विजैः ॥६॥
 शतसरयंश्चतुर्ध्यान्तु दशमासागतै दिने ।
 काल तु दशायामास स्वान्तनुं मनुजेश्वरम् ॥७॥

महर्षि प्रवर मूनजी ने कहा — इसके उपरान्त मे अपरिमित बल-
 विभ्रम वाले उस राजा ने देवेश से प्रार्थना की कि पतिव्रता नारी का क्या
 वैश्या म हास्य है और इससे सम्बन्धित यदि कोई उपास्यमान हो तो
 उसके लिये भी प्रार्थना की । मनुदेव ने कहा था — हे भगवन् ! पति-
 व्रता नारियों से कौन सी नारी श्रेष्ठ है और जिसने अपने पतिव्रत बल
 के द्वारा मृत्यु को भी पराजित कर दिया था । मनुष्यों को किसके परम
 शुभ नाम का कीर्तन करना चाहिए ? हे भगवन् ! यह समस्त
 पापों के क्षय को करने वाला है । अब इसी का आप बतलाइये ॥५, ६॥
 श्री मत्स्य भगवान् ने कहा — धर्मराज भी मोक्षितो के वैशोम्य का आच-
 रण नहीं किया करता है । हे पतिव्रताओं के धर्म के ज्ञाता ! उसकी
 भी मदा ये पूज्या हो गई है ॥ ३ ॥ यहाँ पर मैं आपको एक पापों के
 प्रणाश कर देने वाली कथा का वर्णन करता हूँ कि जिस प्रकार से एक
 परम श्रेष्ठ पतिव्रता नारी के द्वारा अपना स्वामी मृत्यु के भी पाश से
 विमुक्त कर दिया गया था । ॥ पुण्यजन काल में मद्र देशों में एक
 शाकल राजा अश्वपति हुआ था । यह पृथ्वीन या तथा पृथ के प्राप्ति
 को अभिवादा करने वाले उसने मद्र कामदा देवी को प्रार्थना करने के
 लिए मन्त्रों की थी ॥ ४ ॥ द्विजोत्तमों के द्वारा पतिव्रता होकर उसने

सावित्री देवी की समाराधना की थी । विद्वार्यक द्विजों के द्वारा प्रतिदिन वह सावित्री देवी हूपमान हुई थी ॥ ६ ॥ वे द्विज शत सख्या वाले थे और जब दश मास व्यतीत हो गये तो चतुर्थी के दिन में समय आने पर उस मनुजेश्वर को सावित्री ने प्रत्यक्ष होकर अपना साक्षात् दान दिया था ॥ ७ ॥

राजन् । भक्तोऽसि मे नित्य दान्यामि त्वा मृतां सदा ।
 ता दत्तां मत्प्रसादेन पुत्री प्राप्स्यसि शोभनाम् ॥८॥
 एतावदुत्तवा सा राज्ञः प्रणतस्पर्धव पार्थिव ! ।
 जगामाःशंन देवी यथा वं नृप । चञ्चला ॥९॥
 मालती नाम तस्यामोद्राज्ञ पत्नी पतिव्रता ।
 सृष्टुवे तनया काले सावित्रीमिव रूपत ॥१०॥
 सावित्र्याहृतया दत्ता तद्र पन्नदृशी तथा ।
 सावित्री च भवत्वेया जगद नर्पतिद्विजान् ॥११॥
 शानेन यौवन प्राप्ता ददी मन्ववते पिता ।
 नारदस्तु ततः प्राह राजान दीप्तनेजमम् ॥१२॥
 सवत्सरेण क्षीणाय भविष्यति नपात्मजः ।
 मकृत्स्न्याःप्रदीयन्तेचिन्तयित्वानराग्रियः ॥१३॥
 तथापि प्रददी नन्या ल् मत्मेतान्मजे शुभे ।
 सावित्र्यमि च भर्ताग्मामाद्य नपमन्दिरे ॥१४॥

सावित्री न कहती — राजन् । आप मेरे नित्य ही परम भक्ति करने वाले हैं । मैं भी अने प्रसन्न होकर तुमको एक मृता दूँगी । मेरे प्रसाद से ही हुई परम शोभन उस पुत्री से आप प्राप्त कर लेंगे ॥ ८ ॥ हे पार्थिव ! वम केवल इतना ही रहकर बट देवों प्रणाम करते हुए राजा के सामन से अदर्शन को प्राप्त हो गई थी अने विद्युत् छिन्न जाया पारती है ॥ ९ ॥ उस राजा की पुत्र मा लती नाम वाली पतिव्रता पत्नी थीं उनका समय के सम्भ्रान्त होने पर रूप नाशय मे साक्षात् सावित्री

देवी के सहस्र तनया को प्रसूत किया था ॥१०॥ समाहृत हुई सावित्री ने उसके ही रूप के ममान उसे प्रदान किया था । राजा ने द्विजों से कहा था कि यह नाम से सावित्री हो हीये ॥११॥ समय आने पर वह यौवन को प्राप्त हो गई थी और उसके पिता ने सत्यवान नाम वाले घर को उसका दान कर दिया था । इसके उपरान्त देशपि नारदजी ने दीप्त तेज वाले राजा से कहा था कि यह नृप का आश्मज एक ही वध मे क्षीण धायु वाला हो जायगा । नराधिर । प्रसी भक्ति विचार करके ही बग्या को एव ही वार प्रदान किया जाया करना है ॥ १२ । १३ ॥ तो भी उस राजा ने शुभमेव क पुत्र को जो शुभ या अरुनी बग्या सावित्री का दान कर दिया था । उस सावित्री ने भी नृप को मन्दिर मे अपने स्वामी को प्राप्त कर लिया था ॥ १४ ॥

नारदस्य तु वानयेन दूषमानेन चेतसा ।
 शुभ्रूपा परमा चक्रे भर्तुं श्वनुरयोवने ॥१५
 राज्याद् भ्रष्टं ममायंस्तु नष्टमशुनेनधिप ।
 न तुनोप समासाद्य राजपुत्री तथा स्नुषाम् ॥१६
 चतुर्थोऽह्नि मतं य तथा सत्यवता द्विजाः ।
 श्वनुरेणाभ्यनुज्ञाता तदा राजसुतापि सा ॥१७
 चक्र सिराम धमशा प्राप्ते तस्मिस्तदा दिने ।
 भारुण्यफलाहारः सत्यवागु ययोवनम् ॥१८
 श्वनुरेणाभ्यनुज्ञाता माननाभ द्वभोरणा ।
 सावित्र्यापि जगामार्ता मह भर्ता महद्वनम् ॥ ६
 चेतसा दूषमानेन गृहमाना महदभयम् ।

वने पत्र-७ भर्तार द्रुमाश्चामटशास्त्रया ॥२०
 आश्वामयामाम सराजपुत्री बलात्तावनेपद्याविशातनेप्राम् ।
 सन्तनेनेनाथ द्रुमद्विजानान्बधा मृगाया विविने नृवीरः ॥२१

श्री नारदजी क बाबुन म दूषमान दूष्य म उस सावित्री ने वन

में अपने स्वामी और इश्वर की अत्यधिक मुग्धता करती थी ॥ १५ ॥
 राज्य में भ्रष्ट-वशुभो के नष्ट हो जाने वाले भावों से समुद्र नराधिप उस
 राजपुत्री स्तुत्या को प्राप्त करके नस्तुष्ट नहीं हुए थे ॥ १६ ॥ हे द्विजन्म !
 सत्यवान को आज से चौथे दिन में मरना है । उस समय में उस राज-
 मुता की इश्वर ने अम्यनुज्ञात किया था अर्थात् आज्ञा थी । उस समय
 में उस दिन के जाने पर धर्म की आज्ञा विग्रह (व्रत) विद्या था ।
 घाम पुण्य और फलों के आहार करने व्रत मन्थवान् वन में चले गये
 थे । याचना क भङ्ग में भयभीत इश्वर के द्वारा आज्ञा प्राप्त करने
 वाली वह सावित्री भी अपने स्वामी क साथ ही उस महान् वन को चली
 गयी थी । बहुत ही दृष्टिमान चित्त से उस महान् भय को घन्टर ही
 छिपाती हुई उसने वन में भ्रमण और मनन । इमो से पूछा था ।
 वन में उमने परम बलान्न-पदम के समान विशाल नेत्रो वाली उस
 राजपुत्री को नवीन ने त्रिपिन में मृगो तथा द्रुमो और टिजो
 (पक्षियो) के सन्दर्भन के द्वारा समाश्रयण दिया था ॥ १७ ॥ १८ ॥
 १६ । २० । २१ ॥

२७-सावित्री उपाख्यान (१)

वनेऽग्निम् दाहृत्वाकीर्णं महामार मनोहरम् ।
 नेत्रज्राणानुर्य पश्य वसन्त रनिदधनं ॥१
 चन्द्रप्रशोक दृष्टेनैव रागवन्त सुपस्थितम् ।
 वसन्तो ह्रमतीवाय ममवायनलोचने ॥२
 दक्षिणे दक्षिणतन्ता पश्य रम्या वनस्थलीम् ।
 वृष्टिर्न किञ्चुक्तुं ताज्वलितानलमप्रभं ॥३
 मुर्गाघकृमुमामाशो वनराजिविनिगन ।
 करानि वापुर्दादिग्यमाबदोऽन्वमताशनम् ॥४

पश्चिमेन विमालाधि ! कणिकारैः नुपुष्पितैः ।

वाञ्चनेन विभात्पेषा वनराजीमनोरमा ॥५

अतिमृक्त्तलताजालरद्धमार्गा वनस्थली ।

रम्भा सा चाम्बुर्वाङ्गी कुमुमोत्करनूपणा ॥६

मधुमत्तालिभङ्गारव्याजेन वरवर्णिनी ।

चापाकृष्टि करोतीव कामः पार्श्वे जिघासदा ॥७

मत्स्यशत्रु ने कहा—इस वन में जो शाहूत में एकदम समादीर्घ है मनोहर मशकार को तथा नेशो एव घ्राण को नुयुक्तर-रति के वधन करने वाले वमन्न को देखो ॥ १ ॥ हे घ्राण लोचनी वाली ! यह वमन्न इस वन में शय न नुनम्बन्न और मुन्दर पुष्पो में समन्वित अशोक को देखकर मानो नेत्र उग्राम कर रहा है ॥ २ ॥ दक्षिण में दाहिनी ओर जवनी हुई अग्नि की प्रभा के महान प्रभा वाले पशुपत किमुनी (टाक के वृथो) न पुन-परम रम्भ इन वनस्थली को देखा ॥ ३ ॥ वन की पक्ति में निकला हुआ गुन्धिन कुमुमों के आनोः (मधु) में युक्त यह वायु इन दोनों के वनन के नाग करन वान दाक्षिण्य को कर रहा है । ॥ ४ ॥ हे विमालाधि ! पश्चिम दिशा में यह परम मनोरम वनो की राशि मुन्दर पुष्पो वाले वनिका-नी में वाञ्चन न वा के तुम्ह गोभित हो रही है ॥ ५ ॥ अतिमृक्त्त मताषो के जान प्रारद्ध मार्गा वाली यह वनस्थली चार (मुन्दर) मन्मूलं अन्नो वाली तथा कुमुमो क उत्करो के भूषणो वाली वरम्भ वनना न तुम्ह गोभा दे रही है ॥ ६ ॥ यह वर-वर्णिना क समान ही है और पार्श्व में कामदेव मारने की दृष्टा से चाप का आशय मानो कर रहा है ॥ ७ ॥

पलान्त्रादननद्वयपुनःशोभितयित्तिता ।

विभानि चारुतिलका ताम्रियषा वनस्थली ॥८

वाहितलताशिशिर मञ्जुनारैपुष्पिञ्जल ।

मार्तिर्यैवतना याति मूर्त्तानर्यैष्टतरिय ॥९

पुष्परेणुविलिप्ताङ्गी प्रियामनु सरिद्वने ।
 वसुमं कुसुमं याति कूजन् कामी शिलीमुखः ॥१०
 मञ्जरी सहकारस्थ कान्तावच्छाशपीडिताम् ।
 स्वदत्ते बहुपुष्पेऽपि पुंस्कोकिलयुवा वने ॥११
 काक. प्रसूता वृक्षाग्रे स्वामेकाग्रैश्च चञ्चुता ।
 काकी सम्भावयत्येष पक्षाच्छादितपुत्रिकाम् ॥१२
 शुभाङ्गनिम्नमासाद्य दयितामहितो युवा ।
 नाहारमपि चादत्ते कामाक्रान्तः कपिञ्जलः ॥१३
 कलविद्धुस्तु रमयन् प्रियोत्सङ्गं समास्थितः ।
 मृहृमृद्विशाक्षि ! तत्कण्ठयति कामिनः ॥१४

फलो के आस्वाद से भोषित मुख वाली कोयलो की ध्वनियों से विशेष नाद वाला — चाकू तालक से मधुन यह वनस्थली तुम्हारी ही तरह भोषित हो रही है ॥ ८ ॥ आस्र वृक्ष की शाखाओं के मिलने पर मञ्जरी के पराग में पिञ्जल वर्ण वाली कोकिल अपनी मधुर ध्वनि से ही अपने श्रेष्ठता से कुलीन की भाँति ही प्रकटता की प्राप्ति हुआ करता है ॥ ९ ॥ इन सगिता में समन्वित वन में यह महावामी भोरा पुष्पों के पराग से विशेष रूप से लिप्य अङ्गी वाली अपनी प्रिया के पीछे-पीछे गुञ्जार करता हुआ फूल में फूल पर जाधा करता है । वन में पुंशः काकिल ब्रह्म प्रकार के पुष्पों से सम्भित होने पर भी कान्ता की भाँति अनुरीहित सहकार की मञ्जरी का आस्वाद लिया करता है ॥ १०, ११ ॥ यह कौआ वृक्ष के अग्रभाग में प्रसूता और पक्षी से आच्छादित पुत्रिका वाली अपनी प्रिया काकी (कौआ की पत्नी) को एकाग्र चोंच से प्यार करता है । ॥ १२ ॥ काम से समाक्रान्त हुआ-दयिता के साथ रहने वाला युवा कपिञ्जल शुभाङ्ग निम्न को प्राप्त कर आहार भी ग्रहण नहीं कर रहा है ॥ १४ ॥ हे विद्याक्षि ! अपनी प्रिया के उत्सङ्ग में स्थित हुआ

रक्षण करते दाना बनविद्धु बारम्बार दानी पुरष को वरुण्डित कर रहा है ॥ १४ ॥

दृक्शाखा समाहृतः शुकोऽप्य सह भायया ।
 करेण लम्बयन् शालां करोति सफल सिरः ॥१५
 वनेऽत्र निशितास्वादतृप्तो निद्रामुपागतः ।
 नेने निह्युवा जान्ना चरणान्तरंगामिनी ॥१६
 व्याघ्रशामिपुन पश्य शंलकन्दरमस्थितम् ।
 ययोर्नेत्रप्रमालोके गुह्याभिधेव लक्ष्यते ॥१७
 अथ द्वौषो प्रिया लेटि जिह्वाघण पुनः पुनः ।
 प्रीतिभायानिच तयानिह्यमान स्वयान्तया ॥१८
 उत्तमङ्गहनमूर्धनि निद्रापहृतनेतसम् ।
 लम्बुदरणतः जानन्नृजयत्येव वानरी ॥१९
 भ्रूमां नवतिता रामा मार्जारा दगिनादरीम् ।
 तन्मदनदशमेष न च पीडयन्ते तथा ॥२०
 शकक शकका चामे मयुर्न पीडिते इमे ।
 मर्दानगाप्रचण्डे वर्णयोरुभयमुपागते ॥२१

वृष की शाखा पर अपनी शिपु भागी के साथ समाहृत वह शुभ
 करने कर म शाला को लम्बित करना हुआ सिर को लम्ब करना है ।
 ॥ १५ ॥ इस वन में मान के शब्द में लम्ब हुआ निह निद्रा को उपागत
 हो गया है और उसकी जानना उस अपने चर्मा निह के चरणों के मध्य
 में सेयी हुई है ॥ १६ ॥ पर्वत की शब्दग में लम्बित दो श्यामो के जोड़े
 को देयो जिन दोनो क नेत्रों की प्रकाश के प्रकाश म गुहा मिल-सी हुई
 लक्षित हुआ करती है ॥ १७ ॥ यह हाथी अपनी जिह्वा के अग्र भाग से
 पुन-पुनः अपनी शिपु को बाट रहा है । और अपनी जानना के द्वारा
 जिस समय में वह शब्द निरन्तर होता है तो उसको परम प्रवन्तना
 हुआ करती है । यह व नरी दोः में मन्त्रुह को रगने वाले तथा निद्रा से

अग्रहत चेतना वाले अपने काग्त का जन्तुओं के उद्धारण के द्वारा सुखित ही िमा करती है ॥ १८ ॥ १९ ॥ यह माजरी भूमि में पड़ी हुई और अपने उदर की दिखाने वाली अपनी रम्या पत्नी को नाखून और दशनों से उसका दशन करता है किन्तु उसको किसी प्रकार की पीडा नहीं पहुँचाता है ॥ २० ॥ ये शशक और शशकी दोनों पीडित होकर सो गये हैं । इनके मात्र और चरण सप्रक्त थे और कातो के द्वारा ही प्रकटता को प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥

स्नातया सरसि पद्मादृष्ये नागस्तु मदनप्रियः ।

सम्भावयति तन्वङ्गीमृणालकवलं प्रियाम् ॥२२

कान्तप्रोथसमुत्थानैः कान्तमार्गानुगामिनी ।

करोति कवल मुस्तंश्वगही पोतकानुगा ॥२३

दृढाङ्गमग्निमहिष कर्दमावततनुवने ।

अनुव्रजजि घावन्ती प्रियवद्वचतुष्करः ॥२४

पश्य चारंङ्गि । मारङ्ग त्व कटाक्षविभावनं ।

सभार्यमाहिपश्यन्त कौतूहलममन्त्रिम् ॥२५

पश्य पश्चिमपारदेन रोही कण्डूयते मुखम् ।

स्निहाद्रंभावात्कपंत भतीर शृङ्गकोटिना ॥२६

द्रागिमाञ्चमरी' पश्य सितवाला मगच्छतीम् ।

अन्वाम्ते चमरः कामी माञ्चपश्यतिगवितः ॥२७

अतिपे गदय पश्य प्रकृष्ट भार्यया सह ।

रामन्थन प्रकुर्वाण काकङ्कुकुदि वारयन् ॥२८

पद्मो ने आदृष्य सरोवर मे मदन प्रिय नाम अपनी तन्वङ्गी प्रिया को मृणाल क कायनी क द्वारा प्रणय का प्रदर्शन कर रहा है ॥ २२ ॥ अपने बच्चों के पीछे अनुगमन करने वाली वाराही अपने काग्त के प्रोथ समुत्थानो से कान्त के ही मार्ग का अनुसरण करने वाली होती हुई मुस्तो से कवल किया करती है ॥ २३ ॥ वन में दृढ अङ्गो की सग्नि बाला—

कीच में अवन गरीर वाला और प्रिय वद्ध चतुष्कर महिष धावन करती हुई महिषी के पीछे दौड़ लगा रहा है ॥ २४ ॥ हे चार अङ्गुली वाली ! तुम इस सारङ्ग को देखो जो अपने कटाक्षों के विभावनों से भार्या के सहित एव कौतूहल से युक्त मुझको देख रहा है ॥ २५ ॥ स्नेह के आर्द्र भाव में घपने सींग की नोक में स्वामी का कर्पण करती हुई रोही अपने पीछे के पैर से मुझ को गुजना रही है—इसे भी देखलो ॥ २६ ॥ बहुत ही शीघ्र इस सित बाला वाली ओर गमन न करती हुई घमरो को देगिए । यह कामी घमर इस पीछे है तथा अत्यन्त गवित होना हुआ मुझको देखता है ॥ २७ ॥ रोमन्धन करता हुआ ककुट पर कोए का निवारण करने वाले अपनी भार्या के गाव आनप में प्रकृष्ट इस गवय को देखो ॥ २८ ॥

पदयेम भार्यया साह न्यस्ताग्रचरणद्वयम् ।

विपुने वदनीस्तन्धे वदराशनकाम्यया ॥२९

हम समार्य मरमि विचरन्त मुनिमंतमम् ।

मुमुक्तस्येन्दुर्विश्वस्य पञ्च व श्रियमुद्रहन् ॥३०

समायदचक्रया साज्य कमलागरमध्यग ।

नरोति पश्चिनी वान्ता मुनुण्णा व मुन्दरी ॥३१

मया कर्णोच्चय मुशः । त्वया पुष्पोच्चयः कृतः ।

इन्धनं न कृतं मुधु ! तत्कारिष्यामि साप्रतम् ॥३२

त्वमस्य सरमस्तारे द्रुमच्छाया समाश्रिता ।

क्षुण्णमात्रप्रतीक्षस्य विश्रमस्येन मामिति ॥३३

एवमेतत्कारिष्यामि मम दृष्टिपथस्त्रया ।

दूरं कान्त ! न वनयोर्विभेमि गहने घने ॥३४

ततःम पाष्ठानि चतार तस्मिन्ने तदा राजगुतासमदाम् ।

तस्या त्वदूरे सरमस्तदानी मेने च सा त मृतमेव राजन् ॥३५

भार्या के गाव में रहने वाले—शोनों घरणी की भांने ग्यस्त

करने वाले बेरो के श्रांत की कामना से विपुल बवरी स्कन्ध में दोनो करणों की आंगे रखकर स्थित इसको देखो ॥ २८ ॥ सुमुक्त इन्द्र के चिम्ब की श्री की उद्वहन करते हुए भार्या के सहित सरोवर में सुनिर्मल विचरण करते हुए हृय को देख लो ॥ ३० ॥ भार्या के सहित रहने काता यह शक्रवक्त्र पत्नी जो कि इस कामलाकर (तात्वाव) के मध्य में गमन कर रहा है । वह अपनी सुन्दरी कान्वा की सुन्दर पुष्पो वाली पद्मिनी के समान कर रहा है ॥ ३१ ॥ हे सुध्रु ! मने लो फलो का उच्चय किया है और तुमने पुष्पो का उच्चय किया है किन्तु हे सुध्रु ! हमसे से किमी ने भी ईक्षण एकवित नहीं किया है सो अब मैं उसे कर्मा ॥ ३२ ॥ हे भार्या ! तुम इस सरोवर के तट पर स्थित वृष की छाया में समाश्रित होकर रहो और एक क्षण के लिये मेरे जाने की प्रतीक्षा करना ॥ ३३ ॥ सावित्री ने कहा—मैं जैसा भी आप कहते हैं वही करूँगी । आप मेरी दृष्टि से ही मार्ग में रहेंगे अर्थात् इतनी दूरी पर ही रहिए कि मैं आपकी देखती रहूँ । हे कान्व ! आपको अधिक दूर नहीं जाना चाहिए । मैं गहन वन में जाती हूँ ॥ ३४ ॥ श्री महर्ष्य भगवान् ने कहा—इसके पश्चात् उसने उस वन में काष्ठों की एकवित किया था और उस समय में राजशुता के सामने ही किया था । हे राजन् ! उस वन के समीप में ही उस समय में उस सावित्री ने उसे मृत हो मान लिया था ॥ ३५ ॥

८८--सावित्री उपाख्यान (२)

तस्य पाटयतः काष्ठं जलं शिरसि वेदना ।
 स वेदनात्. सङ्गम्य भार्या वचनमब्रवीत् ॥१॥
 ज्ञापयति ममानेन जाता शिरसि वेदना ।

तमद्वच प्रविशामीव न च जानामि किञ्चन ॥२
 त्वदुत्सङ्गे शिरः कृत्वा स्वप्तुमिच्छामि सांप्रतम् ।
 राजपुत्रीमेवमुक्त्वा तदा सुप्वाप पाथिवः ॥३
 तदुत्सङ्गे शिरः कृत्वा निद्रयाविललोचनः ।
 पतिव्रता महाभागा ततः सा राजकन्यका ॥४
 ददर्श धर्मराज तु स्वयं तं देगमागतम् ।
 नीलोत्पलदलश्याम पीताम्बरधर प्रभुम् ॥५
 विद्युत्कलानिवद्वाङ्गं सतोयमिव तोयदम् ।
 किरीटेनाकं वर्णनं कुण्डलेन च विराजितम् ॥६
 हारभारापितोरस्क तथाङ्गद्विभूषितम् ।
 तथानुगम्यमानं च कालेन सह मृत्युना ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा— बाण्ड का पाठन करते हुए उस के
 शिर मे बड़ी वेदना समुत्पन्न हो गई थी । वह उस समय मे उस वेदना
 से समुत्प्रीडित होकर अपनी भार्या सावित्री के समीप मे आकर उससे यह
 कथन बोला—बिना व्यास वाले इस बाण्ड-सञ्चय के कार्य करने से
 मेरे शिर मे वेदना समुत्पन्न हो गई है । मझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि
 किसी अन्धकार मे मे प्रवेश कर रहा है—मे कुछ भी नहीं जान पा रहा
 है कि क्या कारण है । अब तो मे तुम्हारे गोद मे अपना शिर रखकर
 मीना खाहता हूँ । यह पाथिव उस राजपुत्री सावित्री से इस प्रकार से कह
 कर मी गया था ॥१, २, ३॥ उसके उत्सङ्ग मे अपना मस्तक रख कर
 यह निद्रा मे आविष्ट (पलित) सोपना वाला हो गया था । इसके अनन्तर
 उस महाभागा राज कन्या पतिव्रता ने स्वयं ही उस स्थल पर समागत
 हुए धर्म राज को देखा था जो नील कमल के दल के समान श्याम वर्ण
 वाला—पीताम्बर धारी—विद्युत्कलता से विद्युत् अङ्ग वाले जल से युक्त
 मेष के सदृश था तथा मूर्ध्नि समान वर्ण वाले किरीट और कुण्डलो से
 शोभित था । यह धर्मराज उदरस्थन मे हारो के भार से भूषित था

तथा भुजाभौ मे अङ्गद धारण क्रिये ह्ये वा और उसके पीछे काल मृत्यु
स्तथ मे घना वा रहा वा ॥१७॥

स तु संप्राप्य तं देशं देहात्मत्यक्तस्तदा ।
अंगुष्ठमात्रं पुरुष पाशवद्ध वशागतम् ॥८
आकृष्य दक्षिणामाशा प्रथमो सत्वर तदा ।
सावित्र्यपि वरारोहा दृष्ट्वात् गतजीवितम् ॥९
अनुवद्मज गच्छन्तन्धमराजमर्तन्द्रिता ।
कृताञ्जलिरुवाचाथ हृदयेन प्रवेपता ॥१०
इमं लोकं मातृभवत्या पितृभवत्यानु मध्यमम् ।
गुरुं शुभ्रपया चैव ब्रह्मलोक समश्नुते ॥११
सर्वे तस्यादृताः धर्मा यस्यैतेत्रय आदृताः ।
अनादृतास्तु यस्यैतेसर्वास्तस्याफला क्रिया ॥१२
यावत्त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्य समाचरेत् ।
तेषां च नित्यं शुभ्रपा कुर्वातिप्रयहिते रतः ॥१३
तेषामनुपरोक्षेन पारतन्त्र्यं यदाऽऽचरेत् ।
तत्तन्निवेदयेत्तैम्यो मनोवचनकमभिः ॥
त्रिष्वप्येतेषु कृत्यं हि पुरुषस्य समस्यते ॥ १४ ॥

वह धर्मराज उस स्थल पर आकर सत्यवान् के शरीर से उस
समय मे अंगुष्ठ मात्र जो निङ्ग शरीरघारी पुरुष था उसकी वाशवद्ध
करके अपने वदन मे कर पीचकर सीधना मे दक्षिण दिशा की ओर वसी
समय चल दिया था । वह वरारोहा सावित्री भी उस अपने स्वामी को
जीवित रहित देखकर अनन्दिता होनी हुई उसी के पीछे अर्थात् गमन करने
वाले धर्मराज के पीछे चल दी थी । इसके उपरान्त वह हाथ जोड़
कर काँपते हुए हृदय मे यह बोली—॥८, ९, १०॥ यह जीवात्मा माता
की भक्ति मे इमं लोक की—पिता की भक्ति मे मध्यम को और गुरु की
शुभ्रपा से ब्रह्मलोक को प्राप्ति किया करता है । उस पुरुष ने सभी धर्मों

का समादर कर लिया है जिसने इन तीनों ऊपर बसाये हुए धर्मों को पूर्ण कर लिया है । जिसने इन तीनों का आदान नहीं किया है उसकी समस्त अग्य क्रियाएँ बिल्कुल ही फलहीन हुआ करती हैं । जब तक ये तीनों ही जीवित हैं तब तक अग्य किसी का समाचरण नहीं करना चाहिए । जो प्रिय के हित में रहत है उसे उनकी निरय ही शुभ्रूपा करनी चाहिए । उनके अनुपरोध से जब भी पारतन्त्र्य का आचरण करे वह—वह सब उनको मन बचन और कर्म के द्वारा निवेदन कर देना चाहिये । पुष्प का इन तीनों में भी पूर्ण कृत्य स्थित रहा करता है ॥११-१५॥

वृत्तेन कामेन निवर्त्तयाशु धर्मा न तेभ्योऽपि हि उच्यते ।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात्तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि ॥१५

गुरूप्रजारतिभक्ता त्वञ्च साध्वी पतिव्रता ।

विनिवर्त्तस्व धर्मज्ञे ! ग्लानिभवति तेऽधुना ॥१६

पतिर्हि देवत स्त्रीणा पतिरेव परादणम् ।

अनुगम्यः स्त्रिया साध्व्या पतिः प्राणधनेश्वरः ॥१७

मितन्ददाति हि पिता मित आता मितं सुतः ।

अमिनस्य च दाता भर्तार का न पूजयेत् ॥१८

नीयते यत्र भर्ता मे स्वयं वा यत्र गच्छति ।

मयापि तत्र गन्तव्यं यथाशक्ति सुरोत्तम ! ॥१९

पतिमादाय गच्छन्तमनुगन्तुमह यदा ।

त्वां देव ! न हि दास्यामि तदा त्यक्ष्यामि जीवितम् ॥२०

मनस्विनी तु या काचित् वैधव्याशरद्पिता ।

मुहूर्त्तमपि जीवेत् मण्डनार्हा ह्यमण्डिता ॥२१

वृत्त काम से अब गुम भति शोष निवृत्त हो जाओ उनके लिये भी घमं नही है—यह कहा जाता है । मेरा उपरोध और गुह्यारा वचन (धम) होया । अब इसी कारण से मैं बामना हूँ ॥१५॥ आपसी गुरुवर्ग की पूजा में रति या ती—भक्त—साध्वी और परम पतिव्रता हैं । हे धर्मज्ञे ! यदा

आप वापिस लौट जाइये । अब आपको बहुत ग्लानि हो रही है ॥१६॥
सावित्री ने कहा — स्त्रियो का परम देवता पति ही होता है और पति ही
परायण होता है । अतएव साध्वी स्त्री के द्वारा प्राण घनेश्वर पति का
सर्वदा अनुगमन करना चाहिए ॥१७॥ स्त्री को ससका पिता परिमित हो
दिया करता है — भाई और मुत भी स्त्री को परिमित ही दिया करते
हैं । अपरिमित का दाता अपने स्वामी का पूजन कोन सी स्त्री नहीं करेगी ?
॥१८॥ हे सुरोन्म ! जहा पर मेरे स्वामी को ले जाया जा रहा है
अथवा स्वयं आप जहाँ पर जा रहे हैं । मुझको भी वया शक्ति वही पर
जाना चाहिए ॥१९॥ जब मैं मेरे पति को लेकर गमन करने वाले आपका
हे देव ! मैं अनुगमन नहीं कर सकूँगी तो मैं अपने भी जीवन का त्याग
कर दूँगी ॥२०॥ जो कोई भी मण्डन के योग्य मनस्विनी स्त्री जब
बंधव्य के अधारे से दूषित होकर अमण्डित हो जाती है तो वह एक
मुहूर्त पर भी जीवित रहेगी ? ॥२१॥

पातकने ! महाभाग ! पस्तिुष्टोऽसिम ते शुभे ! ।

विना मत्प्रव्रत प्राणैर्वरवरय भाचिन्म ॥२०

विनष्टचक्षुषोराज्यश्चक्षुषा सह कारय ।

च्युनगाष्टस्य धमज्ञ ! स्वदारस्य महात्मनः ॥२१

दूरे पर्ये गच्छ निवर्त भद्रे ! भविष्यतीद सकल त्वयोत्तम् ।

ममापगोघस्तव च क्लम म्यालयधुना तेन तव शचीमि ॥२२

यमराज ने कहा — हे पतिव्रते ! हे महान् भाग वाले ! हे शुभे !
मैं तुम से बहुत ही मन्तुष्ट हो गया हूँ । अब तुम सरवदान के प्राणो के
बिना अन्य कोई भी वरदान मुझम माँग लो और यदिक विलम्ब मत
करो ॥२२॥ सावित्री ने कहा — हे धम्मज्ञ ! विनष्ट नेत्रों वाले
मेरे मशान् घातवा वाले प्रभुर की जिनता कि राज्य च्युन ही गया है
यब आप उनको बाँधो के सहित पुनः राज्य प्राप्त करा दीजिये ॥२३॥
यमराज : कहा — हे भद्रे ! दूर मार्ग न तुम चली जाओ और वापस

सोच जाओ । जो बानने कहा है वह सभी कुछ हो जायगा । सब मेरी ओर में रोक होगी और तुम्हको परिश्रम होना इनोलिए मैं उक्त तुमने यह कह रहा हूँ ॥ २४ ॥

८६—मावित्री उपाख्यान (३)

वृत्तः क्लमः कुतो दुःखः सद्भिः सह नमागमे ।
 न्तान्तस्मान् मेऽस्त्वानिस्त्वत्ममोषे सुरोत्तम ! ॥१॥
 साधुना वाप्यसाधुना नन्न एव सदागतिः ।
 नैवानता नैव सतामसन्तो नैवमात्मनः ॥२॥
 विषान्निभपञ्चन्द्राद्यो न तथा जायन्ते भयम् ।
 अकारण जन्द्वाग्मेभ्यो जायतेयथा ॥३॥
 मन्तः प्राणानपि त्यक्त्वा परार्थं कुर्वते यथा ।
 तथाऽनन्तोर्जपि नन्त्यज्य पर्णपीडामु तत्परा ॥४॥
 त्यजन्त्यसनयं लोकस्तृणवद्वय कारणात् ।
 परोपघातगतारत परलोकन्तया सतः ॥५॥
 निवायेषु निष्कायेषु तथा श्रेयाः जगद्गुरः ।
 अमनासपघातात् राजान शतवान् वयम् ॥६॥
 नगन् परीक्षयेद्राजा साधून् नम्मानयेत्तदा ।
 निग्रहस्यामताकुर्यात्स्त्रिलोके लोकजित्तमः ॥७॥

मावित्री ने कहा—मत्स्यपुराणों के बाद समाप्त होने पर कुछ बर्तनी है और क्लम भी बर्तनी है । हे सुरोत्तम ! आदिके समीप में जो कि मत्स्यपुराण है मुझे तो दिग्गुर भी स्वार्थि नहीं होती है ॥ ॥ साधु पुरुष हो कदावा अन्तःपुत्र हो इन सबकी मन्त ही मन्त प्रति हुआ करने है अर्थात् मन्त ही मन्त ही किया करने है । जो अन्त है वे न तो

सत्पुरुषों का—न असत्पुरुषों का और अपने आपका ही उद्धार किया करते हैं असनों में उद्धार करने की कोई भी शक्ती ही नहीं हुआ करती है ॥ २ ॥ विष—अग्नि—मरें और क्षत्र से उतना मय नहीं होता है जैसा विना ही कारण के इस जगत् के बैरी छानों में भय उत्पन्न हो जाया करता है । सन्त पुरुष तो अग्नि प्राणों का भी परिहाराय करके मदा दूसरों के अर्थ की किया करते हैं उसी भाँति असन्न पुरुष भी प्राणों तक परिहाराय कर दूसरों की पीडा देन में परायण रहा करते हैं ॥३, ४॥ यह लोक जिसके कारण से प्राणों की निमक के समान त्याग देता है । उसी प्रकार में सत्पुरुष जो परायण उपधत्त में समय होते हैं वे परलोक की भी त्याग दिया करते हैं ॥ ॥ उसी प्रकार से इस जगत् के गुरु श्री ब्रह्माजी ने निकाय—निकायों में असत्पुरुषों के उपख्यान के लिये स्वयं ही राजा को ज्ञान दिया है ॥६॥ राजा जो कर्त्तव्य है कि वह सरो की परीक्षा करे और मदा साधुपुरुषों का सम्मान करना चाहिए । जो राजा असत्पुरुषों का निग्रह किया करता है और उसकी ऐसा करना भी चाहिए क्योंकि उन्मत्त यह कर्त्तव्य भी है वही इस लोक में लोकों का परम श्रेष्ठ जेना होना है ॥७॥

निग्रहेणामता राजा सत्ताञ्च परिपालनम् ।

एतावदेव कर्त्तव्य राज्ञा स्वर्गमधोऽमुता ॥८

राजकृत्य हि त्वादेष्टु तान्प्रत्यञ्जगतीपते ।

अमता निग्रहादेव सताञ्च परिपालनम् ॥९

राजमिदं प्रत्यक्षान्नाममता क्षामिना भवान् ।

तेन स्वर्गाधको देवो देवभ्यः प्रनिभभाषि मे ॥१०

जगत् प्रायनेमद्भि मनामस्यस्तथाभवान् ।

तेन त्वमनुमान्या म क्लमादव ! न विद्यते ॥११

नष्टाऽग्नि ते विज्ञानार्क्ष ! अचनेपर्ममगतः ।

विना सस्येन प्राणाद् वग वग्व मा चिम् ॥१२

सहोदराणां भ्रातृणां कामयामि शत विभो ! ।
 अनपत्य. पिता प्रीतिं पुत्रलाभात् प्रयातु मे ॥१३
 तामुवाच यमो गच्छ यथागतमनिन्दिते ! ।
 औध्वदेहिकवार्येषु यत्न भर्तुं समाचर ॥१४

असतो का निग्रह और सत्पुरुषों का परिपालन करने से यह सम्पुत्रः राजा कहलाने के योग्य होता है जो स्वर्ग की प्राप्ति करने का इच्छुक है उस राजा का यही इतना कर्तव्य होता है । हे जगतीपते ! सौत्रों में राजा का यही कृत्य होता है इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है असतो का निग्रह और सत्तों के परिपालन का कर्तव्य ही तो राजाओं का प्रायः दूआ करता है । राजाओं के द्वारा भी जो शामिल नहीं होते हैं उन असतों के सबके शासन करने वाले फिर आप होने हैं । इसी कारण में मुझे तो ममस्त देवों में भी अधिक देव आप ही प्रतीत हो रहे हैं । ॥८।६। १० ॥ यह जगत् तो सम्पुत्रों के द्वारा ही धारण किया जाता है और उन सम्पुत्रों में आप सर प्रधान हैं । इसी कारण में आपके पीछे अनुगमन करने वाली मुझकी हे देव ! कोई भी कर्म नहीं होगा है । यमराज ने कहा—हे विशालाक्षि ! तुम्हारे इन धर्ममङ्गल वचनों में मैं तुममें परम सम्पुत्र एव प्रसन्न हो गया हूँ । सत्यवान् के प्राणों की रक्षाकर अन्य जो भी आप चाहें वही करदान मुझमें माँग लो । विनम्र मा करो ॥ ११। १२ ॥ सावित्री ने कहा—हे विभो ! मैं अपने गौ महोररा के प्राण करने की कामना रखती हूँ । मेरे पिता मन्तान हीन हैं गौ ये पुत्रों के लाभ में प्रसन्न हो जायें । फिर यमराज ने उस सावित्री से कहा—हे अनिन्दिते ! अब तुम जिन मार्ग में आई हो पारिवर्ग सभी आपों और अपने स्वामी के और्ध्व देहिक वार्यों के करने में यत्न करो ॥ १३. १४ ॥

तानुग-नुमम शतानुगत्या लोकांतरं गतः ।
 पतिप्रतापि नेन त्वं मूढमम याम्यमि ॥१५

गुरुशुश्रूषणाद्भूदे ! तथा सत्यवतो महत् ।
 पुण्यं समर्जितं येन न याम्येनमह स्वयम् ॥१६
 एतावदेव कर्तव्यं पुरुषेण विजानता ।
 मातुः पितुश्च दुश्रूपा गुरोश्च वरवर्णिनि ! ॥१७
 तोषितं त्रयमेतच्च सदा सत्यवता वने ।
 पूजितं विजितं स्वर्गस्त्वयानेन चिर शुभे ! ॥१८
 तपसा ब्रह्मचर्येण अग्निशुश्रूषया शुभे ।
 पुरुषाः स्वर्गमायान्ति गुम्शुश्रूषया तथा ॥१९
 आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः ।
 नार्तेनात्यवमन्तव्या ब्राह्मणा न विशेषतः ॥२०
 आचार्यो ब्रह्मणो मूर्ति पिता मूर्तिः प्रजापते ।
 माता पृथिव्या मूर्तिम्नु भ्राता वै मूर्तिरात्मनः ॥२१

हमारे लोक में गये हुए इनका अनुग्रह तो नही कर सकती ही ।
 तुम परिश्रम ही इसी कारण से मूर्तों मान मेरे साथ चल सकोगी ।
 हे भद्र ! गुरुओं की सेवा से इस स-पवान् ने महान् पुण्य का अर्जन किया
 है और इसी कारण से मैं स्वय ही इसको ले जा रहा हूँ ॥१५, १६॥ हे
 वागर्जनि ! विशेष ज्ञान वाले पुरुष का इतना ही कर्त्तव्य हुआ करता है
 कि वह माता-पिता और गुरु की शुश्रूषा करना रहे ॥१७॥ इस सत्यवान्
 ने सदा वन में इन तीनों को परम मन्त्रुष्ट किया है और समर्चित किया
 है । इसने स्वर्ग को जीत लिया है और तुमने भी ऐसा ही चिरकाल तक
 हे शुभे ! किया है ॥१८॥ हे शुभे ! तपश्चर्या से—ब्रह्मचर्य से—अग्नि
 शुश्रूषा से तथा गुरु वर्ग का सेवा में पुरुष स्वर्ग में प्राप्ता करते है ॥१९॥
 आचार्य—पिता - माता - पुत्र माता और विभिन्न रूप से ब्राह्मण इनका
 आर्त्त दान में भी मुख्य को कभी अत्रमान नहीं करना चाहिए ॥२०॥
 यह आचार्य साक्षात् ब्रह्म की मूर्ति है—पिता प्रजापति की मूर्ति है—

माना पृथिवी की मूर्ति है और भाई तो अपनी आत्मा की ही मूर्ति होना है ॥ २१ ॥

जन्मना पितरो वनेश सहेते मम्मवे नणाम् ।
न तस्य निष्कृति शक्या कतुर्वपंशतरपि ॥२२॥
तयोन्नित्य प्रिय कुर्यादायस्य तु सर्वदा ।

तेष्वेव त्रिषु नुष्टेषु तपः सर्वे समाप्यते ॥२३॥

तेषां त्रयाणां शुभ्रूपा परमन्तप उच्यते ।

न च तरुवनुजातो धर्ममग्न्य समाचरेत् ॥२४॥

तएव हि त्रया लोकास्तएव त्रय आश्रमा ।

तएव च त्रयोवेदास्त्रयैवात्ताम्त्रयोऽनयः ॥२५॥

पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माता दक्षिणतः स्मृतः ।

गुरुगृह्वनीयश्च साग्निज्ञोऽगरीयसो ॥२६॥

त्रिषु प्रमाद्यते तेषु त्रीन् लोकान् जयते गृही ।

दीप्यमानः स्वऋषुषा देववद्दिदिव मोदने ॥२७॥

कृतेन कामेन निवर्तं भद्रे । भविष्यतीद सकल त्वयोक्तम् ।

ममोपरोधस्तत्र च बन्धनः स्यात् तथाऽधुना तेन तवप्रवीमि ॥२८॥

मनुष्यों के समुत्पन्न होने से उनके माता-पिता जन्म से ही पूर्ण ब्रह्म की महा करणे हैं उन ब्रह्म की निष्कृति मनुष्य की बर्षों में भी नहीं कर सकता है ॥२२॥ अतएव मनुष्य का यह परम कर्तव्य होता है कि उनका निम्न ही उमे प्रिय करना चाहिए तथा जो आचार्य्य हो उनका भी सर्वदा प्रिय रहे । इन तीनों के कुष्ट होने पर ही मनुष्य का सभी प्रकार का तप समाप्त हो जाता करता है । वे तीनों ही उनके तीन लोक हैं—वे तीनों उमके तीन आश्रम हैं—वे तीनों ही तीन वेद हैं तथा वे ही तीन मनुष्य की तीन धर्मियां हैं । पिता गार्हपत्य अग्नि—माता दक्षिणाग्नि और गुरु धातवनीय अग्नि हैं । वे ही सर्वसे बड़ी तीन अग्नियां ब्रह्म ब्रह्म माना जाता है । इन तीनों के विषय में कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिए । जो इन कर्तव्य का पालन करता है वह गृही तीनों लोकों

को जीत लिया करता है और अपने शरीर की कान्ति से वह दीप्यमान होता हुआ देव के ही समान दिवलोक में आनन्द का अनुभव किया करता है ॥२३-२७॥ यमराज ने कहा—हे भद्रे ! कृत काम से निवृत्त हो जाओ जो तुमने कहा है वह सम्पूर्ण हो जायगा । मेरी ओर से उपरोध होगा और तुमकी क्लम होगी । इसी से तुमसे यह मैं बोलता हूँ ॥२८॥

२०—सावित्री उपाख्यान (४)

धर्मजने सुरश्रेष्ठ ! कुतो ग्लानिः क्लमस्तथा ।
 त्वपादमूलसेवा च परम धर्मकारणम् ॥१
 धर्मजित्तथा काय पृथ्येषु विज्ञानता ।
 तल्लाम सवलाभेभ्यो यदा देव विशिष्यते ॥२
 धर्मश्चायंश्च कामश्च त्रिवर्गो जन्मनः फलम् ।
 धर्महीनस्य कामाथी बन्ध्यासुतसमी प्रभो ! ॥३
 धर्मदयंस्तथा कामो धर्माल्लोकद्वय तथा ।
 धर्मैकोऽनुयात्येन यत्र बवचन गार्गिनम् ॥४
 शरीरेण सम नाश सवमन्यद्वि गच्छति ।
 एको हि जायते जन्तुरेकैव विपद्यते ॥५
 धर्मस्तमनुयात्येको न सृहृन्न च बान्धवाः ।
 क्रियासीमाप्यलावण्य सर्व धर्मेण लभ्यते ॥६
 बहून्द्रोपेन्द्रशबेन्दुवया कान्यनिलाम्भसाम् ।
 वस्वशिवधनदायाना ये लोकाः सर्वकामदाः ॥७

हे सुरश्रेष्ठ ! धर्म के अर्जन करने में ग्लानि और क्लम क्यों होगा ? आपके चरणों की मूल सेवा ही परम धर्म का कारण है ॥ १ ॥ विशेष ज्ञान रखने वाले पुरुष का ठीकी भाँति से धर्म का अर्जन करना

चाहिए। हे देव ! जबकि उन धर्मों का लाभ सभी प्रचार के लाभों से
 विभिन्न हुआ करता है ॥२॥ धर्म—अर्थ और काम यही निर्वाह मनुष्य
 जन्म का परम फल होता है। हे प्रभो ! जो धर्म से हीन पुरुष है उसके
 काम और अर्थ कष्टों के सुत्रों के ही समान हुआ करता है ॥३॥ धर्म से
 अर्थ तथा काम और धर्म में दोनों लोभ होते हैं। जहां पर भी यह गमन
 करता है उसके वीक्षे एवं धर्म ही अनुगमन किया करता है ॥४॥ धर्म
 सभी कुछ शरीर के ही साथ में नाम को प्राप्त हो जाता करता है।
 यह जन्म एक ही अवेसा समुत्पन्न हुआ करता है और एक ही अवेसा
 मृत्यु को प्राप्त होता है ॥५॥ अब यह मृत्युगत होता है तो उस समय में
 केवल एक मात्र धर्म ही उसका अनुगमन किया करता है। उस समय में
 न तो कोई भिन्न साथ में जाता करता है और न वाग्धव ही उसके साथ
 जाते हैं। विद्या—सौभाग्य और रूप नावण ये सभी कुछ धर्मों के द्वारा
 ही प्राप्त किए जाया करते हैं ॥६॥ दत्ता—इन्द्र—उपेन्द्र—शंभु—इन्द्रु-
 यम—अर्क—अग्नि—अनिल—जल—वसु—अश्विनी कुमार और धनद
 आदि के जो समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाले सोच है इनकी प्राप्ति
 मनुष्य धर्मों के ही द्वारा किया करता है। हे पुरुषों के अन्त करने वाले !
 धर्म से ही मनोहर द्वीप और गुंजर मुख देने धनों को यह पुष्टि प्राप्त
 करता है ॥७॥

धर्मेण तानवाप्नोति पुष्टयः पुरुषान्तक ! ।

मनोहराणि द्वीपानि वर्षाणि सुमुखानि च ॥८॥

प्रयाग्नि धर्मेण नरास्तथैव नरगण्डिकाः ।

नन्दनाशोनि मूर्त्तयानि देवोद्यानानियानि च ॥९॥

तानि पश्येन त्वश्यन्ते नाकगृष्टन्त्या मरुः ।

विमानानि विचित्राणि सध्वयात्मकानि शुभाः ॥१०॥

तजमानि शशोराणिमदा पुष्पयनापत्रम् ।

राज्ये नृर्वाङ्मृजा च कामान्निन्दितधेयिना ॥११॥

सस्काराणि च मुख्यानि फलपुण्यस्य दृश्यते ।
 रुचमयंदूर्यदण्डानि चण्डांशुसदृशानि च ॥१७
 चामराणि सुराध्यक्ष । भवन्ति शुभकर्मणाम् ।
 पूर्णेन्दुमण्डलाभेन रत्नाशुकविकारिणा ॥१८
 धार्यतां याति द्वेषेण नरः पुण्येन कर्मणा ।
 जयशङ्खस्वरोधेण मृतमगधनिः स्वन्तं ॥१९

मनुष्य धर्म के द्वारा ही नरगण्डिका को प्राप्त किया करने हैं और नन्दन आदि मुख्य देवों के जो दयान हे उनमें चले जाया करत हैं । पुण्य के द्वारा ही इन सबकी प्राप्ति होती है तथा मनुष्यों के द्वारा नाक-पृष्ठ को भी प्राप्त किया जाता है । विचित्र विमान तथा परम शुभ अस्त्राग्ने' और तंजम शरीर आदि सब सदा पुण्य वालों का ही फल है । राज्य-नृपतियों के द्वारा पूजा-ईधित काम सिद्धि एव मुख्य सस्कार यह सभी पुण्य का ही फल दिखलाई देता है । हे सुराध्यक्ष ! सावर्ण एव वैदूर्य के दण्ड जो कि मूर्ख के ही समान हे और चामर इन सबकी प्राप्ति होना शुभ कर्मों का ही फल होता है । पूर्ण चन्द्र की आभा वाले और रत्नाशुक विनाशी छत्र के धारण करने का जबसर मनुष्य पुण्य कर्मों के द्वारा ही प्राप्त किया करता है । जयकार बतलाने वाले शङ्खों के स्वर-समूह में तथा मृत और मगधों की ध्वनियों से समन्वित भी मनुष्य पुण्य धर्म से ही होता है ॥ ६- ४ ॥

वरासन सभङ्गार फल पुण्यस्य कर्मणा ।
 वराश्रपान गोतञ्च भृत्यमाल्यानुलेपनम् ॥२५
 रत्नयस्त्राणि मुख्यानि फल पुण्यस्य कर्मणः ।
 रूपीदायंगुणोपेतास्त्रियश्चात्मनोहरा ॥२६
 वासः प्रासादपृष्ठेषु भवन्ति शुभकर्मिणा ।
 सुवर्गकिङ्किणीमिश्रचामरार्पाडधारिणः । २७
 वहन्ति तुरगा देव नर पुण्येन कर्मणा ।

तस्य द्वाराणि यजनन्तपोदानन्दमः क्षमाः ॥१८
 ब्रह्मचर्यं तथा सत्यन्तीर्यानुभरणं शुभम् ।
 स्वाध्यायसेवासाधूना सहवासः सुराचथम् ॥१९॥
 गुह्याणां चैव शूद्राणां ब्राह्मणानां च पूजनम् ।
 इन्द्रियाणां जयश्चैव ब्रह्मचर्यममत्सरम् ॥२०॥
 तस्माद्धमः सदा कार्पोनिस्त्यमेव विजानता ।
 नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य च वा कृतम् ॥२१॥

भूङ्गार के सहित बरासन भी पुण्य कर्म का फल होता है ।
 श्रेष्ठ अन्न—पान—गीत—भूषण—मास्य और अनुत्पन्न—रत्न और
 वस्त्र इन प्रकार की मुख्य वस्तुएँ प्राप्त होना भी परम पुण्य कर्म का
 फल होता है । रूप लावण्य एव अनेक सद्गुणों से सम्पन्न अतीव मनोहर
 स्त्रियों—बड़े मङ्गलों में निवास शुभ कर्म वालों को ही होता है । हे देवी
 भुवर्ण की रिकणी में मिथिला नामक एक प्राचीन के धारण करने वाले
 सुरग मनुष्य को पुण्य कर्म में बहूत किया करते हैं । उस पुरग के द्वार-
 यजन—तप—दान—क्षमा—ब्रह्मचर्य—सत्य—शुभ तीर्थानुभरण—स्वा-
 ध्याय—साधु सेवा—सहवास—सुरों का अर्जन—गुह्यार्थ की सुश्रूषा—
 ब्राह्मणों का अभ्यपन—इन्द्रियों के ऊपर विजय—मत्सरता का अभाव—
 इन सबकी प्राप्ति पुण्य कर्म के द्वारा हुआ करती है ॥ १४, १९, २०,
 १८, १९, २० ॥ इन कारण से ज्ञानवान् पुरगों को निरय ही धर्म का
 समाचरण करना चाहिए क्योंकि मृत्यु इनके कृत तथा अकृत को कुछ भी
 प्रतीक्षा नहीं किया करती है ॥२१॥

यान्नाग्नचरेद्धर्ममनिरय देव ! जीवितम् ।
 कोहि जानाति कस्याद्यमृत्युरेयापतिष्यति ॥२२॥
 पश्यतांश्रयस्य लोकस्य मरणं पुरतः स्थितम् ।
 अपमृत्योश्च नरितमत्याश्चर्यं सुरोत्तमम् ॥२३॥
 मुषरशापेक्षया यान्ती गृह्णत्यापेक्षया मुषा ।

मृत्योर्दत्तसङ्गमाहृदः स्याद्विरः किमपेक्षते ॥२४
 तत्रापि विण्डा(न्द)तस्त्र.ण मृत्पुनातस्यका गतिः ।

न भयमरणञ्चैवप्राणिनाममय भवचित् ॥
 तत्रापि निर्भयाः सन्तः सदा मुकृतकारिणः ॥२५

तुण्डाऽस्मितेविशालाक्षि । वचनघंममङ्गतैः ।
 विना सत्यवतः प्राणान् अरंवरयसाचिरम् ॥२६

वरयामि त्वया दत्त पृथ्वाणा शतमौरमम् ।
 अनपत्यस्य लोकेषु गति किल न विद्यते ॥२७

कृतेन नामेन निवृत्तं भद्रे । भविष्यतीद सकल यथोक्तम् ।
 ममोपरोधस्त्वव च बलम स्यात्तयाऽपुना तेन तव ब्रह्मामि ॥२८

हे देव ! बालक को ही नित्य धर्म का आचरण करना चाहिए क्योंकि यह जीवन अनिरस है । कौन जानता है कि किसी मृत्यु आज ही आ जायगी । इस लोक के देवते ही हुए भीत सामन स्थित रहा करती है । हे मुरोत्तम ! देव के समान इसका चरित होता है—यही महान् आश्चर्य की बात है । युवावस्था में स्थित की अपेक्षा बालक और वृद्धता की अपेक्षा युवा इस मृत्यु की मोद में समाकृष्ट हो रहा है । जो एकदम स्याद्विर है वह फिर किस अवस्था की अपेक्षा किमा करता है । ॥ २ , २३ , २८ ॥ उस वना में भी मृत्यु के द्वारा प्राण की प्राप्ति करने वाले उसकी क्या गति होगी । मरण भय नहीं है । प्राणियों की अमय कहा है । जो मुकृत क करने वाले हैं वे वही पर भी सदा सन्न पुण्य निभय होते हैं ॥ २५ ॥ यमराज न कहा—हे विशालाक्षि ! तुम्हारे धर्म से सङ्ग वचनो में भयान्त ही परि-तुष्ट हो गया है किन्तु रूपवान के प्राणों की छोड़कर छोड़ ही मुझसे कोई ना अरदान बोलें । सावित्री ने कहा—हे भगवन् ! आपके द्वारा दिये हुए सौ औरत पुत्रों का वरदान मैं चाहती हूँ क्योंकि जो सन्तान से हीन है उनको नौरी में कोई भी गति नहीं है । यमराज ने कहा—हे भद्रे ! अब तेरा काम पूर्ण हो गया है

तुम यापिन लीट जाओ। जो भी तुमने कहा है वह सही हो जायगा।
साय बनने में मेरा उग्रोध (हतावट) है और तुमको व्ययं श्रम होता
है। इसी से मैं तुमसे यह बोल रहा हूँ ॥ २६, २७, २८ ॥

६१-मावित्री उपाख्यान (५)

धर्ममर्मविधानात् । सर्वधर्मप्रतर्क । ।
त्वमेव जगतो नाथः प्रजासयमनोयमः ॥१॥
कर्मणामनुरूपेण यस्माद्यमयसे प्रजाः ।
तस्माद्देव प्राच्यसे देव । यम इत्येव नामतः ॥२॥
धर्मणेमाः प्रजा सर्वा यस्माद्रज्यसे प्रजा ! ।
तस्मात्त धमराजेति नाम मद्भिर्निगद्यते ॥३॥
मुञ्चत दुष्कृतबोधे पुरोधाय यदाजनाः ।
एतस्मकानमृता यान्ति तस्मात्त्व मृत्युरुच्यसे ॥४॥
काल कलाद्धं पश्यन् सर्वेषां त्वं हि तिष्ठसि ।
तस्मान् कालेति ते नाम प्राच्यते तत्प्रदर्शयिषिः ॥५॥
सर्वेषामेव भूतानां यस्मादन्तकरो महान् ।
तस्मात्त्वमन्त्रकः प्रोक्तः सर्वदेवमहाद्युते ! ॥६॥
वियम्यतास्त्व सत्यः प्रथमं परिधीतितः ।
तस्मनाद्देवस्यतोनाम्ना सर्वलोकेषु काव्यते ॥७॥

मावित्री में कहा — हे मन्त्र धर्मों के प्रवर्तक ! आप तो धर्म के
कर्मा का जो विधान है उससे जाना है और आप ही इन जगत्तों के नाथ
है यदा प्रजाओं व मरघन करने वाले यम है ॥ १ ॥ कर्मों के अनुकूल
श्रिग कारण में आप श्रजाओं का यमन किया करते हैं हे देव । इसी
कारण में "यम"—इस नाम से आपको पुकारा जाया करता है । हे

प्रमो ! क्योंकि धर्म के द्वारा इन समस्त प्रजाओं का आप रञ्जन किया करते हैं इसी से सत्पुरुषों के द्वारा आप “ धर्मराज ”—इस नाम से पुकारे जाया करते हैं ॥ २, ३ ॥ जब मनुष्य मुकुन और दुष्कृत इन दोनों को आपसे रसकर मृत्युगत होकर आपके समीप में जाया करते हैं इसी कारण से आपको “ मृत्यु ”—इस नाम से कहा जाया करता है । काल की कलादं कलन करते हुए सबके मध्य में आप स्थित रहा करते हैं इसी कारण से तत्त्वदर्शियों के द्वारा “ काल ”—यह नाम आपका कहा जाता है । क्योंकि सभी प्राणियों के आप महान् अन्त कर देने वाले हैं इसी कारण से हे महादुते ! समस्त देवों के द्वारा आपका अन्तक कहा गया है । आप विवस्वान् के पुत्र प्रथम रहे गये हैं इसीलिये समस्त लोकों में ‘वैवस्वत’—इस नाम से आपको कहा जाता है ॥४-७॥

आयुष्ये कर्मणि धीणे गृह्णामि प्रसभञ्जनम् ।
 तदा त्व कथ्यसे लोके सवप्राणिहरेतिवम् ॥८
 तव प्रसादाद्देवेश ! सङ्करो न प्रजायते ।
 सतां सदा गतिदेव ! त्वमेव परिक्लृप्तितः ॥९
 जगतीऽऽपजगन्नाथ ! मर्यादापरिपालक ।
 पाहि मा त्रिदशश्रेष्ठ ! दुःखतागरणागताम् ॥
 पितरो च तपेवास्य राजपुत्रस्य दुःखितो ॥१०
 स्तत्रेन भवन्वाधर्मज्ञे ! मया तुष्टेन सत्यवान् ।
 तव भर्ता विमुक्तोऽयत्नन्वकामाद्रजावले । ॥११
 धार्यं कृत्वा त्वया साद्वं वत्सराशोतिपञ्चकम् ।
 नाकपृष्ठमयात्तह्य त्रिदशैः सहस्रयते ॥१२
 त्वयि पुत्रशतञ्चापिसत्यवान् जनयिष्यति ।
 तै चापिसर्वे राजानःप्रत्रियास्त्रिदशोपमाः । १३
 मुह्यास्त्वभ्राम पुत्रास्या भविष्यन्ति हि शाश्वताः ।
 पितुश्च ते पुत्रशतं भविता तव मातरि ॥१४

आयुष्य में कर्म के शीघ्र होने पर आप मनुष्य को बलपूर्वक ग्रहण किया करते हैं उस समय में लोक में आप "सर्वं प्राणिहर" इस नाम से कहे जाते हैं । हे देवेश ! आपके प्रगाढ़ से सङ्कर नहीं होता है । हे देव ! मनुष्यों की सदा आप ही गति कीर्तित किये गये हैं । हे जगन्नाथ ! आप इस जगत् के सर्वादा के परिवालक हैं । हे देवो मे परमश्रेष्ठ ! शरणागति में समागत दुःखिता मेरी रक्षा करो । इस राजपुत्र के माता पिता इसी भाँति परम दुःखित हो रहे हैं ॥ ८, ६, १० ॥ यमराज ने कहा—हे धर्मज्ञे ! तेरे इस स्तव से और भक्तिभाव से तुष्ट हुए मेरे द्वारा तेरा स्वामी मरुदधान् छोड़ दिया गया है । हे भवसे ! अबलघ्न नाम वाली तुम यही स खती जाओ । यह अब तेरे साथ राज्य का मुख्य भोग कर पितामी वय तक जीवन रह कर फिर भन्त में स्वर्ग पर समारोहण कर देशों के साथ रमण करेगा । यह मरुदधान् तुझमें ही पुत्र मनुष्यन करेगा । वे भी सब देवताओं के समान क्षत्रिय राजा लोग होंगे । तुम्हारे नाम में पुत्रों की भाङ्ग्या वाले समुद्र एवं शाश्वत होंगे और तुम्हारी माता में तुम्हारे पिता से भी एक ही पुत्र उत्पन्न होंगे ॥ ८, ६, १०, ११, १२, १३, १४ ॥

मानव्या मानवानामशाश्वता.पुत्रपीत्रिणः ।

भ्रातरमते भविष्यन्तिक्षत्रियास्त्रिदशोपमाः ॥१५

स्तोत्रेणानेनधर्मज्ञे ! कल्पमुत्थाय यस्तु माम् ।

कीर्त्तयन्ति सत्यापिशीघंमामुभविष्यति ॥१६

एतावद्गुता भगवान् यमस्तु प्रमुच्य त राजगुतं महारमा ।

अदन्तं सत्र यमो जगाम कालेन साद्धं सह मूर्युना च ॥१७

मामकी के नाम वाले मामकी में शाश्वत पुत्र एवं पीत्र होंगे । वे देशों के समान उग्रमा वाले क्षत्रिय तेरे भाई होंगे । हे धर्मज्ञे ! जो पुत्र यमः/नाम में उद्वार इस स्तोत्र के द्वारा मेरा कीर्त्तन करेगा उसकी भी हीर्ष जायू हो आयवी ॥ १५ । १६ ॥ मरुदध भगवान् ने कहा—इतना

कहकर महात्मा भगवान् यमराज ने उस राजपुत्र की छोड़कर वही पर
बहु यमराज काल और मृत्यु के साथ ही अदर्शन को प्राप्त हो गये
थे ॥ १७ ॥

६२—सावित्री उपाख्यान (६)

सावित्री तु ततः साध्वीजगामवरवर्णिनी ।
यथा यथा गतेनैव यत्रासीत्सत्यवान् मृतः ॥१॥
सा समासाद्य भर्तारं तस्योत्सङ्गगत शिरः ।
कृत्वा विवेश नत्स्वङ्गो लम्बमाने दिवाकरे ॥२॥
सत्यधार्मिणि निमुक्तो धर्मराजाच्छनैः शनैः ।
उन्मीलयत नेशाम्यां प्रास्फुरच्च तराधिप ! ॥३॥
ततः प्रत्यागप्राणः प्रियां वचनमन्नवीत ।
कृत्वासौ प्रयातः पुरुषो यो मामप्यपकर्षति ॥४॥
न जानामिवगरोहे ! कश्चासौपुरुषःशुभे ।
वनेऽस्मिन्नुवा रुसर्वाङ्गि ! मुप्तस्यचदिर्नगतम् ॥५॥
उपवासपरिश्रान्ता दुःखिता भवती मया ।
अस्मद्दुहं दयेनाद्य पितरो दुःखितो तथा ॥
द्रष्टुमिच्छाम्यहं मुञ्चु । गमने त्वरिता भव ॥६॥

श्री सत्य भगवान् ने कहा—इसके अनन्तर वर वर्णिनी साध्वी
सावित्री जैसे २ मार्ग से गयी थी और जहाँ पर मृत सत्यवान् था वैसे
ही वह चली गयी थी । उसने अपने स्वामी को प्राप्त करके जिसका
तिर उसके गोद में था इस तरह से उसके तिर को रखकर दिवाकर के
सम्बन्धित होने पर उस तन्व्यङ्गो ने उस स्थल पर प्रवेश किया था ॥ १ ॥
॥ २ ॥ सत्यवान् का जीवात्मा धर्मराज से धीरे धीरे निमुक्त होकर है
तराधिप ! उसने नेशां का उन्मीलन किया था और बहु प्रस्फुरित हुआ ।

इसके पश्चात् प्रत्यागत प्राण वाला वह होकर अपनी प्रिया से यह वचन
 धीना—वह पुष्ट बर्हा चला गया जो मुझको भी अपरविन कर रहा है ।
 हे वरारोहे ! हे मुझे ! मैं नहीं जानता हूँ यह कौन पुष्ट था । हे चाण-
 सर्वाङ्ग ! आज इस दिन मे सोते हुए मुझको पूरा दिन व्यतीत हो गया
 है । मैंने उपवास से परित्याग्न आकर भी दुःखित किया है । हमारे बुरे
 हृदय में आज हमारे माता-पिता भी बहुत दुःखित हुए हैं । हे मुष्ट ! मैं
 माता-पिता से दर्शन करना चाहता हूँ अब गमन करने में शीघ्रता वाली
 हो जाओ । १-६ ॥

आदित्येऽस्तमनुप्राप्ते यदि ते रचित प्रभो । ।

आश्रमन्तु प्रयास्यावः श्वशुरीहीनचक्षुषी ॥७

यथा वृत्तञ्च तथैव शृणु वक्ष्ये यथाश्रमे ।

एतावदुक्तवा मर्तार मह भर्त्रा तदा ययौ ॥८

आससादाश्रम चैव सह भर्त्रा नृपान्मजा ।

एतस्मिन्नेव काले तु लब्धचक्षुमहीपतिः ॥९

धर्मत्सेनः समायंस्तु पर्यंतप्यत भागव । ।

प्रियपुत्रमपश्यन्वं स्नुषाञ्चैवाथ कर्षिताम् ॥१०

भागवाम्यमानस्तु तथा स तु राजा तपोधनेः ।

दृष्ट्वा पुत्रमायान्त स्नुषया सह कानने ॥११

माविशौ तु वरारोहा मह मत्स्यवता तदा ।

पवन्दे तत्र राजानं सभायं श्वशुरङ्गयम् ॥१२

परिस्पर्त्त तदा पित्रा सत्यवान् राजनन्दन ।

अभिवाद्य ततः पर्वान् वने तस्मिन्सप्तपोधनान् ॥१३

उपाम तत्र मां राक्षसृषिभिः सर्वधर्मविन् ।

माविक्रयषि जगादाथ ययानृत्तमनिदिता ॥१४

माविशौ देवी ने बर्हा—हे प्रभो ! अगवान् मूर्ख के अन्तर्गत की
 प्राण होने पर यदि धारकी समन्द हो तो आश्रम में अपने दे गान श्वशुर

तो दोनों हीन नेत्रों वाले हैं । जिस प्रकार से जो कुछ हुआ है वह सब आश्रम में ही बतलाऊँगी उसका श्रवण करना । इस तरह से अपने भर्ता से इतना गात्र कहकर स्वामी के साथ ही उसी समय में वह सावित्री चली गयी थी ॥ ७ ॥ = ॥ वह नृपात्मजा भर्ता के आश्रम में प्राप्त हो गई थी । इसी समय में नेत्रों को प्राप्त करने वाला वह महीपति द्युम-त्सेन भार्या के सहित हे भार्गव ! परितृप्त हुआ था क्योंकि उसने अपने प्रिय पुत्र को और अपनी परम कृश पुत्र बधू को देखा था । वह राजा वहाँ पर तस्त्रियों के द्वारा समाश्वस्त होता हुआ स्नुषा के साथ वन में आये हुए पुत्र को देखा था । वह वर आरीहू वाली सावित्री ने उस समय में सत्यवान के साथ वहाँ आकर क्षत्रियों में श्रेष्ठ भार्या के सहित राजा की वन्दना की थी । तब वह राजनन्दन सत्यवान् अपने पिता के द्वारा भली भाँति आलङ्कन किया गया था । इसके अनन्तर उसने वन में उन समस्त तपोधनों का अभिवादन किया था । वह सब घर्म का वेत्ता उस रात्रि में उन श्रृंगियों के साथ वही पर रहा था और इसके उपरान्त सावित्री ने भी जो परम आनिन्दित थी जो कुछ भी घटित हुआ था वह सारा हाल कहकर सुना दिया था ॥ १-१४ ॥

व्रत समापयामास तस्यामेव यथानिधि ।

तत्तस्तुर्यस्त्रियामान्ते ससैन्यस्तस्य भूपतेः ॥१५

आजगाम जनः सर्वो राज्यार्याय निमन्त्रणे ।

विज्ञापयामास तदा तत्र प्रकृतिशासनम् ॥१६

विचक्षुपस्ते नृपते येन राज्यं पुरा हतम् ।

अभार्यैः स हतो राजा भवास्तस्मिन् पुरेनृपः ॥१७

एतच्छ्रुत्वा गयी राजा बलेनचतुरङ्गणा ।

लेभे च सकल राज्यं घमराजान् महात्मनः ॥१८

भातृणां तु शतं लेभे सावित्र्यपि वराङ्गना ।

एवम्पतिव्रता साध्वीपितृपक्षं नृपात्मजा ॥१९

उज्जहार वगरोहा भर्तृपक्षं तयं च ।

भोगायामास भर्तारि मृत्युपाशगत तदा ॥२०

तस्मात्साध्यः स्त्रियः पूज्याः सतत देववधरैः ।

तामा राजन् ! प्रसादेन धार्यंते वै जगत्पयम् ॥२१

तासान्तु वाक्य भवतीह मिथ्या न जातु लोकेषु चराचरेषु ।

तस्मात्प्रदा ताः परिपूजनीयाः कामान् समग्रानभिवामयानैः ॥२२

उसी रात्रि में जो महाप्रत पहण किया था उसको समाप्त किया था । इसर अनन्तर सभी जन उस राजा को स्त्रियों के समीप में सेना के महिन हुए वादों से समन्वित राज्याय के लिये निमन्त्रण में वहाँ पर समागत हुए और उस समय में उन्होंने प्रहृति भासन को विज्ञापित किया था । हे नृपते ! नेत्रहीन आपका जितने पहिले राज्य उपहृत किया था उस राजा को आपक ही समाप्तो ने मार डाला है और अब आप ही उस पुर के राजा हैं । यह श्रवण करके वह राजा क्षुभसेन धनुरङ्गी वन के साथ वहाँ पर चला गया था और महारजा धर्मराज से अपने सम्पूर्ण राज्य को पुन प्राप्त कर लिया था । वराहना सावित्री में भी भी भाइयों की प्राप्ति करनी थी । इस प्रकार से उन परम साखी पतिव्रता ने जो नव की आत्मजा थी अपने पिता के पक्ष का भी उद्धार कर दिया था तथा उन वगरोहा ने भाइयों के पक्ष का भी उद्धार कर दिया । उस समय में वाणिप्रत के महान् प्रह्वनम वन से अपने भर्ता को मृत्यु के परम पीर पाण में मुक्त करा दिया था । इसी कारण में मनुष्यों को पूजा करनी चाहिए । हे राजन् ! उनके ही प्रसाद में ये तीनों भुवन धारण किये जाते हैं ॥ १३, १५, १७, १८, १९, २०, २१ ॥ इन चरणर मोदों में सभी भी उन मनीमाखी मरिपाओं के वचन मिथ्या नहीं हुआ करते हैं इसी कारण में सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त करने वाले मनुष्यों के द्वारा सर्वदा उन मारियों की धर्यनता पश्य ही करनी चाहिए ॥२३॥

६३—अभिषिक्त राजा का कृत्य वर्णन

राजोऽभिषिक्तमात्रस्य किमुकृत्यतमं भवेत् ।
 एतन्मे सर्वमाचक्ष्व सम्यग्वेत्तियतोभवान् ॥१
 अभिषेकाद्रंशिरसा राज्ञा राज्यावलीकृता ।
 सहायवरण कार्यं तत्र राज्यं प्रतिष्ठितम् ॥२
 यदप्यल्पतरं कर्म तदप्यंकेन दुश्चरम् ।
 पुरुषेणासहायेन किम् राज्यं महोदयम् ॥३
 तस्मात्सहायान् वरयेत् कुलीनान् नृपतिः स्वयम् ।
 शूरान् कुलीनजातीयान् वल्लयुक्तान् श्रियान्वितान् ॥४
 रूपसत्वगुणापेतान् सज्जनान् क्षमयान्वितान् ।
 क्लेशक्षमान् महात्साहान् धर्मज्ञाश्च प्रियवदान् ॥५
 हितोपदेशकान् राज्ञः स्वामिभक्तान् पशोऽर्थिनः ।
 एवविधान् सहायाश्च शुभकर्ममु योजयेत् ॥६
 गुणहीना अपि तथा विज्ञाय नृपतिः स्वयम् ।
 फर्मस्त्वेव नियुञ्जीत यथायोग्येषु भागशः ॥७

महर्षि मनु ने कहा—जिस राजा का राज्यासन पर अभिषेक कर दिया जावे उस अभिषिक्त नृपति का क्या कर्तव्य है क्योंकि केवल उसका अभिषेक भर ही हुआ है । यह सभी कुछ मुझे बतलाइये क्योंकि आप तो सभी कुछ को भली भाँति जानते हैं ॥ २ ॥ श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—अभिषेक के द्वारा भोग हुए मस्तक वाले और राज्य के कार्यों के देखने वाले राजा को चाहिए कि बहुतस प्रतिष्ठित राज्य में वहाँ पर अपनी सहायता करने वालों का वरण करे ॥ २ ॥ चाहे बहुत ही छोटा सा भी कोई कार्य हो किन्तु वह भी एक के द्वारा पूर्ण कर लेना महान् कठिन हुआ करता है जिस पुरुष का कोई भी सहायक न हो । यह साधारण से साधारण कार्यों के विषय में भी ऐसा ही देखा जाता है किन्तु राज्य

सामन तो महान् उदय वाजा एक परम विनास कार्य है ॥ ३ ॥ अतएव
 नृपति को स्वयं ही कुनीन सहायको का वरण करना चाहिए वे सहायक
 ऐसे होने चाहिए जो दूरभीर ही—अच्छे कुल और उतम जाति में
 समुत्पन्न होने वाले हों—वन में सम्पन्न एवं धी में समन्वित हों ॥४॥
 राजा को अपने सहायको के वरण करने में देगना चाहिए कि वे ह्य
 और महव युग में युक्त हों—सज्जन हों—धन से समुक्त हों—इतनी
 में रहने करने में समर्थ हों—महान् उत्साह वाले हों—धर्म के ज्ञाता
 हों—शिव व्रतन बोलने वाले हों । राजा को सदा हिन का उपदेश करने
 वाले—स्वामी के परम भक्त (और दस का चाहने वाले हों) । इस तरह
 के मनी धीन रूढ़ दरिद्रास कर सहायको का वरण राजा को करना
 चाहिए और फिर उनकी शुभ कर्मों में योजित करना चाहिए । जो गुणों
 में हान है इतना भी राजा स्वयं जानकर मया योग्य कर्मों में भाग करके
 निवृत्त करना चाहिए ॥ १, ६, ७ ॥

कुनीन, शीतगम्पप्रो धनुर्षदविशारदः ।

रस्तिनिशामनिधामु कुशल दलक्षणमाविता ॥८

निमित्तं सन्तुने ज्ञाने चेत्तापंच विकल्पिते ।

पुनः समता दूरस्तया वनेशमहोच्छ्रुः ॥९

द्वृष्टनक्षत्रविद्यानज्ञ पञ्चगुणारविमेषवित् ।

गणामेतापति कार्यो द्राक्ष्येण क्षत्रियोऽपरा ॥१०

प्राग्नुः सुन्दरा रक्ष्येण विषयासो न चोदयतः ।

चित्तशरवण सर्वथा प्रतीरगो विधीयते ॥११

समानयासो दूत स्याद्दृष्टनापारिनारदः ।

जलः वनेशमहो यासो देवतापविनायकित् ॥१२

विशानाऽनारादय दत्त म स्यान्महोत्तमः ।

दक्षता न मध्य द्वा वारो म द्वा सुवनेभवेत् ॥१३

नालवा वरायता दूत इष्टमया निराकुलाः ।

राज्ञा तु रक्षिणः कार्याः सदा बलेनसहा हिताः ॥१४

सेनापति राजा का एक परम सहायक अङ्ग होता है। वह कैसा होना चाहिए यह बतलाया गया है। राजा का सेनापति—श्रेष्ठ स्वभाव से युक्त—धनुविद्या का सहाय विद्वान्—हाथियों और बन्दरों की शिक्षा में परम प्रवीण कोमल और मधुर भाषण करने वाला—शकुन के निर्भयों का ज्ञाने वाला—चिरिन्मा के विषय का ज्ञाना—कृमज—कर्मों से दूर—बतेशों का महिषु—मन—मूढ़ तत्वों के विधान का ज्ञाना—निरर्थक एक सार के तत्वों का ज्ञानकार ऐसे अनेक गुणों से विभिन्न सेना का स्वामी राजा को बनाना चाहिये क्योंकि सेना ही राज्य एवं प्रजा की रक्षा करने वाली होती है और सेनापति उसका प्रधान होता है। अतः सेनापति जाति का हाहाण अथवा जन्मिण होना चाहिए। वह प्राणु—मुदर रूप वाला—दम और प्रियव्रती होना चाहिये उद्यत स्वभाव वाला उसको नहीं रहना चाहिये। राजा का दूत सभों के वित्त को शङ्कन करने वाला और प्रतीहार बनाना चाहिये। दूत को जैसा भी कहा जावे वही कहने वाला तथा देश भाषा का विद्वान् होना चाहिए। जो राजा का दूत हो उसकी शक्तिशाली—बने-गों का सहक करने वाला—दाम्नी—देम और कान्त के विभक्त का ज्ञान रखने वाला तथा देश एवं काल का विकार होना आवश्यक है। जो जिसके काल में बनना नहीं है वही दूत राजा का ज्ञान है ॥ ८, ९, १०, ११, १२, १३ ॥ राजा को अपनी रक्षा करने वाले ऐसे ही व्यक्तिओं को करना चाहिए जो प्राणु—स्वायत—दूर दृष्ट मन—निशानुल—मदा बनेगों के सहक करने के स्वभाव वाले तथा हित हो ॥ १४ ॥

अनाहार्यो नमोऽस्य दृढमवितरश्च पाथिव्ये ।

ताम्बूलधारी भवति नारा वाप्यथ तद्गुणा ॥१५

पाङ्गुप्यविधितत्त्वज्ञो देशभाषावजारादः ।

सन्धिविग्रहकः पार्यो राजा नमजिदारादः ॥१६

कृतावृत्तज्ञो भूस्वानां ज्ञेयः स्याद्देशरक्षिता ।
 आयव्ययज्ञोलोकज्ञो देशोत्पत्तिविशारदः ॥१७
 गुरुपस्तरुणः प्रागु द्वंद्वमवित्तः कुलोचितः ।
 मूरः वनेशमहश्चैव सङ्गधारी प्रकीर्तितः ॥१८
 शूर्पच यन्मयुक्तरश्च गजाश्वरयज्ञोविदः ।
 धनुर्धारी भवेद्राज्ञः सर्ववनेशमहः श्रुविः ॥१९
 निर्मित्तगकुनज्ञानी ह्यशिक्षाविशारदः ।
 ह्यापु वैदनत्वज्ञो भुवोभागविचक्षणः ॥२०
 यन्नावनज्ञो रथिन स्थिरदृष्टिः प्रियम्बदः ।
 शूर्पच कृत्विद्यश्च मारथिः परिकीर्तितः ॥२१

राजा वा साम्यूनधारी घनाहार्य—अनुगत और राजा में दृढ़
 भक्ति वाला होना चाहिये मयवा उन्ही गुणों वाली पुत्र्य में होकर
 साम्यूनधारिणी नारी भी हो सकती है ॥ १५ ॥ राजा के द्वारा पाहुण्य
 विद्य क तर्क वा ज्ञाना—दत्त भाषा वा विद्वान् और नीति शास्त्र वा
 पण्डित, मण्डि एवं विषय करन वाला नियुक्त होना चाहिये । देन वा
 रक्षिता मूर्खों क कृत और कृत के जानने योग्य होवे । जो आय और
 व्यय का ज्ञान होता है वह लाभ वा बेला तथा देन की उत्पत्ति का
 मनीषी समुदा होता चाहिये । राजा वा यज्ञधारी गुरुत्वरूप वाला—
 तरुण—प्रागु—दृढ़ भक्ति वाला—मनुष्य कृत म समुत्पन्न—शूर्पवीर—वनेशों
 के मर्दन करने वाला नियुक्त होना चाहिये । राजा वा धनुषधारी ऐना
 हो बनाना चाहिये जो मूर—यय म मयु-न—पत्र, पश्य और रथ के
 के विषय में पून क न मयु वाया श्रुवि धार मर्षी तरु के वनेशों की
 मर्दन करने वाला हो । राजा की माना मारथि कृत ही गोश्वर विद्वत
 गुणों वाली नियुक्त करना चाहिये जो निर्मित्त और कृतों क ज्ञान वाला
 हो—मर्षी वा । देन वा विशारद—प्रागु की प्रागु क वेद के मर्षी वा
 मर्षी—शूर्पच वा पश्य—य यय वा जानने वाला वा रथि यपी क

विषय में मलीमाँत विजया रखता हो । स्थिर दृष्टि वाला—प्रिय बोनने
वाला—शूर—कृतविद्य हो ॥ १७-२१ ॥

अनाहार्यः रुचिर्दक्षश्चिकित्सितविदाम्बरः ।

सूत्रशास्त्राविशेषज्ञ सूत्राध्यक्षः प्रज्ञस्यते ॥२२

सूत्रशास्त्रविधानज्ञा, परभेद्या कुलोद्गताः ।

सर्वे महानसे धार्या, कुतकेशनखा नरा, ॥२३

गम, शनीच मिह्वेच धर्मशास्त्रविशारदः ।

दिप्रमुख्य कुलीनश्च धर्माध्यकरणी भवेत् ॥२४

कार्यस्तथाविधास्तत्र द्विजमुषथा, सभासद ।

सर्वदेशाक्षरभिज्ञा सर्वशास्त्रविशारद, ॥२५

लेखका कथितोग्र, सर्वोपकरणेषु वै ।

दास्योपेतान् मुसम्पूर्णान् समश्र्णिगतान् समान् ॥२६

भ्रान्तराशै निमेषस्तु नेगका म वरः स्मृतः ।

उपायवाक्यकुशल, सर्वशास्त्रविशारद ॥२७

वह्वर्थवचना चान्पेत लिखक, स्यान्नुपात्म ! ।

पुरुषान्तरत्तत्त्वज्ञा शान्त्वशास्त्रानुपा ॥२८

नृपति का मूपाध्यक्ष यत्री प्रशस्त होना है जो आहार्य न हो—
हनि-दक्ष-चिकित्सा के आताओं में परम श्रेष्ठ तथा सूत्रशास्त्र की विशेष-
ज्ञाओं का ज्ञाता होता है ॥ २२ ॥ सूत्रशास्त्र के विधान के ज्ञाता—परी-
कों भेदन के योग्य अर्थात् कुल में उद्भूत ऐसे ही मनुष्य सब महान्स में
(रसोई में) रागन चाहिये जिनके केन्द्र जीव नखून बटे हुए हो ॥२३॥
नृप का धर्माध्यक्षारी मुख्य विशेष में प्रमुख - कुलात्-धर्मशास्त्र वा महान्
विद्वान् श्री शत्र तथा मित्र में समान रहने वाला होना चाहिये । वही
पर राजा की मला में ऐन ही तदर्थ होने चाहिये जो सभासद द्विजों में
मुख्य हो—गमन देशों की भाषाओं के जामिन हो तथा सम्पूर्ण शास्त्रों
के विशारद होवे । राजा के यहाँ जो लिखक परम श्रेष्ठ श्री बहू गया है

है—इसके ज्ञाता अनाहाय्यं—सदा शुचि—निष्ण और अप्रमत्त मनुष्य ही राजा के घन (कोष) का व्यवस्था होना चाहिए। सगन्त आषक द्वारों में घनाष्यक्ष के तुल्य ही नर नियुक्त होने चाहिए ॥ २६, ३०, ३१ ॥
 ध्यय द्वारों में भी राजा को उसी प्रकार के मनुष्यों की नियुक्ति करनी चाहिए। जो अष्टाङ्गों में भनी भाँति विक्रिस्ता का ज्ञान रखता हो—
 परस्पर से सभागत हो—धम्मन्निमा—अच्छे कुल में समुत्पन्न हो और अनाहाय्यं हो वही पुरुष राजघर में बैठ होने का अधिकारी होना है। राजा के द्वारा वरुण में उमका वह प्राणाचार्य जानना चाहिए। हे राजन् ! राजा के द्वारा सदा जनों से पूज्य मया काय्यं वत जाति का पण्डित और हाथियों को शिखा के विधान का ज्ञाता एवं क्लेशों को महत् करने में समर्थ ऐसा राजा का गजाध्यक्ष परम प्रशस्त माना जाता है और इन्हीं गुणों से सम्बन्धित अपने आसन वाला भी विशेष रूप से प्रशस्त होता है ॥ ३२, ३३, ३४, ३५ ॥

राजारोही नरेन्द्रस्य रावेकर्मसु शस्यते ।

ह्ययशिक्षाविधानतद्विनक्तिस्तत्तद्विदारदः ॥३६

अदवाध्यक्षो महीं मत्तुं स्वासनश्च प्रशस्यते ।

अनाहाय्यञ्च शूरश्च तथा प्राज्ञः कृत्वाद्गतः ॥३७

दुर्गाध्यक्षः स्मृतो राज उद्युक्तः सवकमसु ।

यास्तुविद्याविधानगो लघुहस्तो जितधमः ॥३८

दोषदनी च दूरश्च स्थपतिः परिकीर्तितः ।

यन्प्रभुवत्ते पाणिभुवत्ते विभुवत्ते भुवत्तवारिते ॥३९

अस्याचार्यो निरुद्देशः कुशलश्च विजिष्यते ।

दृष्टः कुलोद्गतः भूक्तः पितृप्रेतामह शुचिः ॥४०

राजामन्तपुराण्यज्ञो विनीञ्च तथेप्यते

एव सप्तार्धकारं पु पुरपाः सप्त ते पुरे ॥४१

परीक्ष्य चाधिकार्यैः स्य राजा सर्वेषु कर्मसु ।

स्वयंप्रजापतिरत्त्वजः सततं प्रतिजाप्रता ॥४२

राजा का मंत्र पर ममारोहण करने वाला सभी प्रकार के कर्मों में प्रशस्तनीय होता है। अश्वों की शिक्षा के विधान को जानने वाला तथा विद्वानों के विषय में पण्डित राजा का अश्वों पर रहने वाला अश्वश और स्वामन प्रशस्त माना जाता है। शनाहार्य और शूर तथा प्राज्ञ एव अश्वे कुत्र मे उत्पन्न राजा का दुर्ग का अश्वश कहा गया है जो सभी प्रकार के कर्मों में उत्कृष्ट रहता है। वास्तु कला की विद्या में महा पण्डित—हूने हाथ वाला—धर्म को जीत देने वाला—दीर्घदर्शी और शूर स्वयंति कीर्ति प्राप्त किया गया है। अन्न मुक्ता में—वाणि मुक्त में—विमुक्त में और मुक्त धारिण में अश्वशचार्य उद्भोग से रहित एव कुशल विनिष्ट हुआ करता है। विना-विनामह में पसे जाते वाला—विविध—बुद्ध तथा कुलीन मूकन एवं विनीत राजाओं का अश्वःपुर का अश्वश असीष्ट हुआ करता है। इन प्रकार में इन सत् अधिकार के पक्षों पर पुर में मान पुत्र राजा के द्वारा सभी भाति परीक्षा करके अधिकार के योग्य निवृत्त करना चाहिये जो कि सभी कर्मों में उपयुक्त होंगे और सभी कर्मों में निरन्तर प्रतिज्ञाप्रत और जाति के अर्थ के ज्ञान को इनका स्थापन करना चाहिये ॥३६-४॥

राजः स्वयंप्रजापतिरत्त्वजः सततं प्रतिजाप्रता ।

कर्मण्यपरिमेयानि राज्ञो वृषकुलीकृतम् ॥४३

उत्तमाधममध्यानि युरध्या कर्माणि पार्थिवः ।

उत्तमाधममध्यानि युरध्यानि नियोजयत् ॥४४

नगरभविपरीमाज्ञाया नाशमवाप्नुमात् ।

निरीयं पीडयत् सति श्रुत्वा सौमं कुत्स नमसु ॥४५

साया वृषभविधानाया पुरुषाणां महीशिरा ।

पुरुषाणां वृषभविधानाया पुरुषाणां महीशिरा ॥४६

यदुपिर्मात्रवेदाम राज्ञो मन्त्रं वृषभं पृथक् ।

- मन्त्रिणामपि नो कुर्यान्मन्त्रिमन्त्रप्रकाशनम् ॥४७
- वचिश्च कस्य विश्वासो भवतीह सदा नृणाम् ।
- निश्चयस्तु सदा मन्त्रे वार्ध एकेनसूरिणा ॥४८
- भवेद्वा निश्चयावाप्तिः परबुद्ध्युपजीवनात् ।
- एकस्यैव कार्यभ्रतुं भूयः कार्यो विनिश्चयः ॥४९

नृपति के वायुवी के आकार में ऐसा ही व्यक्ति नियुक्त किया जाना चाहिये जो दक्ष हो और सभी कर्मों में उद्यत रहता हो । हे नृप कुतोदह ! राजा के यहाँ उसके अपरिमेय कर्म हुआ करते हैं । पश्चिम का कर्त्तव्य है कि कर्मों की उत्तम-मध्यम और अधम श्रेणियों को समझना ही उत्तम-मध्यम-अधम पुरुषों में से तदनुसार ही पुरुषों को नियोजित करें । यदि उत्तम कर्म में मध्यम और मध्यम कर्म में उत्तम पुरुष की विपर्याय से नियुक्ति की जावेगी तो इस विपरीतता से नृप का नाश ही जायगा । राजा को नियोग-पौष्ट्य-भक्ति-धन-शौध्य-कृत और नय इन सबको भली भाँति समझ बूझ कर ही पुरुषों की वृत्तिका विधान करना चाहिये और दूसरे पुरुषों के विज्ञान एवं तत्त्वभार के विवर्धन से ही निर्मुक्त करने की निताम्न आवश्यकता होती है ॥ ४३, ४४, ४५, ४६ ॥ राजा को चाहिए कि वह पृथक-पृथक बहुत से लोगों से स्वच्छया मन्त्रणा करे और अपने मन्त्रियों में भी अपने मन्त्र का प्रकाशन कभी नहीं करना चाहिए ॥ ४७ ॥ इस समार में राजाओं का कहो पर भी किसी का विश्वास नहीं हुआ करता है और बड़ा किमो भी एक सूरि से अपने विश्वाशनीय मन्त्र में निश्चय कर लेना चाहिए । अथवा राजा को अपने निश्चय की प्राप्ति पर बुद्धि के उन्मीलन में किसी भी एक से ही हो जावे तो भी पुनः उसका विशेष निश्चय अर्थात् ही अर्थों के द्वारा भी करना चाहिये ॥ ४८, ४९ ॥

ग्राह्यान् पयुं पासीत जग्गीशान्प्रमुनिष्वितान् ।

नासच्छास्त्रवतो मूढास्ते हि लोकस्य कष्टकाः ॥५०

वृद्धान् हि नित्यं मेवेत विप्रान् वेदविदः मुनीन् ।
 तेभ्यः शिक्षेत विनयं विनीतात्मा च नित्यशः ॥५१
 ममप्रा वशगा कुर्व्यान् पृथिवीं नात्र संशयः ।
 बह्व्योषिनयाद्भ्रष्टा राजानः सपरिच्छदाः ॥५२
 धनम्याचंय राज्यानि विनयात्प्रनिपेदिरे ।
 त्रैविद्यं च्यम्प्रीविद्या दण्डनोति च शाश्वतीम् ॥५३
 आन्याशिकी त्वात्मविद्याम्प्रातरिम्भाश्च लोकतः ।
 इन्द्रियाणा जये योग ममातिष्ठेद्दिवानिशम् ॥५४
 जितेन्द्रियोहि क्षान्तोति वनेम्यापयितु प्रजाः ।
 यजेतराजा बहूनि क्रतुभिश्च मद्दक्षिणैः ॥५५
 धर्मायंनंय विप्रैभ्यो दद्याद्भोगान्धनानि च ।
 मास्त्र्यम्भिकमास्त्रैश्च राष्ट्रादाहार्येद्वर्षासम् ॥५६

राजा का परम कर्ता है कि वह जैसे ही शासनो की उपासना करे
 ओ वेदव्यो और ममत्त जासो मे मुनिश्चय पावे हो। तथा अमत्त शास्त्रो
 पावे एव मूढ न हो। मूढ मोग ता भवेत्स साध के लिए बण्टव ही दूषा
 करो है ॥५०॥ विनीत आत्मा पावे नृप का नियम हो मूढ-वेदो के वेदा
 और परम मुक्ति विद्यो का योग करना चाहिए। और उनमे ही नियम
 दिनच की शिक्षा का पटन भी करना चाहिए ॥५१॥ इस तरह मे विनय
 की शिक्षा सर्वदा पटन करने बाता राजा ममभूतं पृथ्वी को अपने मम-
 गामिनी कर निचा करना है—इसमे तेष मान भी ममम मही है। बहू-
 मे ममभूतं सपरिच्छदाः पावे नृप भी केवल अविनय के कारण ही अपने
 ममत्त शासन कमे म बण्ट हो जाया करो है ॥५२॥ धन मे श्वित रहने
 पावे भी केवल दिनच हो के कारण मे ही राजो को प्राप्त कर मुने
 है। ओ मोग वयो विद्या के मद्द मोगा है उनमे प्रयो विद्या को—
 ममभूती दण्ड नोति को—आन्याशिकी तथा आत्म-विद्या को पटन करे।
 लोक मे बान्धवों को—और इन्द्रियो के दिनच मे योग को मद्दनिच

भीषणे में समान्धित होता चाहिए ॥५३, ५५॥ जो राजा इन्द्रियो पर नियन्त्रण रखकर जितेन्द्रिय होता है वह अपनी प्रजा को बश में रख सकता है । राजा का परम कर्तव्य है कि वह दक्षिणा से संयुक्त बहुत से ऋतुओं के द्वारा यज्ञ किया करे । धर्म और अर्थ के लिये विप्रों को भोग एवं धनों का दान देना चाहिए । प्रति मन्वत्सरो तथा मासों के हिमाव से उसे राष्ट्री में बलि का आहरण करना चाहिए ॥५५, ५६॥

स्वात्स्वाध्यायपरोलोकैर्नतैर्तपितृवन्धुवत् ।
 आवृत्तानागुस्कुलावृद्धिजानापूजकोभवेत् ॥५७
 नपाणामक्षमो ह्येप विधिर्विद्वोऽभिधीयते ।
 सतस्तेनातवा मित्रा हरन्ति न दिनशयति ॥५८
 तस्माद्वाजा विधातव्यो ब्राह्मो वं ह्यक्षयो विधिः ।
 समोत्तमाधर्म राजा ह्याहूय पालयेत्प्रजाः ॥५९
 न निवर्तत सप्रामाद् क्षात्र प्रतमनुस्मरन् ।
 सप्रामेस्वनिवर्तिव प्रजाना परिपालनम् ॥६०
 शुश्रूषा ब्राह्मणनाञ्च राजा निर्वयसम्परम् ।
 कृषणानाथवृद्धाना विध्वानाञ्च पालनम् ॥६१
 योगशोभञ्च वृत्तिञ्च तथैव परिकल्पयेत् ।
 वर्णाधमव्यवस्थान तथाकार्यं विदोषतः ॥६२
 स्वधमप्र-युतान् राजा स्वधर्मं स्थापयेत्तथा ।
 आश्रमेपुत्रया कार्यमन्न तैलञ्च भोजनम् ॥६३

नृप को लोक में सर्वदा स्वाध्याय पराधण होना चाहिए और प्रजाजनों में सबके साथ तदनुकूल पिता एवं कन्यु के मुख ही व्यवहार करे । जो द्विज गुणकुलो से अपनी अधिधि पूर्ण कर वापिस आवें उनकी पूजा राजा की करनी चाहिए ॥५७॥ राजाओं के लिए यह विधि अत्यय एवं ब्राह्म कही जाती है । इससे वह अनव मित्रों का हरण किया करते हैं तथा कभी विनाश को प्राप्त नहीं होता है । अतएव राजा को इस ब्राह्म

अप्यस्य विधिं को कर्तव्यः । राजा वा बलंभ्यः हे हि वह सम—
 उन्नतं पीर अथमो के द्वारा समाह्वानं कर प्रजाजनो का पालन विद्या
 करे ॥१२८, १२९॥ नृप को कमी भी अपने शत्रुओं के दान एव धर्म का
 स्मरण करने हुए सधाम से मुह नहीं मोड़ना चाहिए । मर्यादों से अनिवृत्त
 होता भी प्रजा का पूर्ण परिपालन ही होता है । ब्राह्मणों की सुधूपा
 राजाओं के बन्धाला करने वाली परम धेय ही होती है । राजा का
 बलंभ्य है कि जो दृश्य-धनाय-वृद्ध एव विद्यया हो उनका भली भाँति
 पालन को और उनका योग्य होन तथा शक्ति की परिहरणता कर देवे ।
 विनियम से बनी एव आधमों की व्यवस्था का कार्य सम्पन्न करना
 राजा का निजान्त आकाशक कर्म है । जो मनुष्य अपने धर्म का त्याग
 करके बलंभ्य से वदुत हो गये है उनको पुनः अपने उचित धर्म के मार्ग
 पर राजा का स्थापित करना चाहिए । जो आधम बानी है उनके आधमों
 से अन्न-जैन पीर मोहन आदि की व्यवस्था नून को ही कर देनी चाहिए
 ॥६०-६३॥

स्वयमेवानमेद्राजा सत्कृतात्प्रगवमानयेत् ।

तापने मयकार्याणि राज्यमात्मात्मनमेव च ॥६४

निवेदयेन्मरुतेन देववाचिनरमचक्षुः ।

द्वे प्रश्ने वेदिनाये च शृजयी वक्रा ष मानवे ॥६६

शृङ्गुम इवाङ्गानि रक्षोद्विगमात्मनः ।

न विदयमेदं विदयन्ते विदयन्ते नानि विदयन्ते ॥६७

विदयामाद्रूपमुत्तमं मनादपि निवृत्तविः ।

विदयामदे-पाप्मररुत्तमस्वभूतं हेतुना ॥६८

यत्र यद्विचलयेदर्थान् निहृवन्च पराक्रमे ।

पृथक्-पावि त्रुणोः शशापन्थ विनिशिषेत् ॥६९

एतद्वहारी च भवेत् तथा नृपय-नृः ।

पिनावाः स्य शिषिबहुः प्रमत्तमपा दसयत् ॥७०

आथम्यो में जो आवश्यक वस्तुएँ हों उनकी व्यवस्था राजा को स्वयं ही ध्यानपूर्वक करनी चाहिए। जो सत्कार करने के योग्य पुरुष हैं उनका कभी भूलकर भी राजा को अपमान नहीं करना चाहिए। राजा को अपने समस्त कार्य—राज्य और अपने आपको भी तपस्वियों के लिये समर्पित कर देना चाहिये और प्रयत्न पूर्वक निवेदन करके देवों की भाँति ही चिरकाल पर्यन्त उनकी अभ्यर्चना करे। मनुष्यों के द्वारा दो प्रकार की बुद्धियों का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये जो कि ऋजवी और यथा नाम वाली कही जाया करती हैं। जो वक्रा बुद्धि है उसका ज्ञान प्राप्त करके उसे कभी भी सेवन नहीं करना चाहिए। जब भी वह आकर यथावृद्धि उपस्थित हो तो उसका प्रतिबाध कर देना चाहिए। ऐसे ढंग से रहना चाहिए कि कोई भी दूसरा इसके छिद्र को न जान सके और दूसरे के छिद्र को स्वयं समझ ले ॥६४, ६५, ६६॥ अपने गुप्त अङ्गों की भाँति ही अपने कर्म को गोपनीय रखना चाहिये तथा अपने आपके छिद्र को रक्षा करे। जो पुरुष विश्वास करने के योग्य नहीं है उस पर कभी विश्वास नहीं करे किन्तु जो विश्वास का पात्र हो उस पर भी अल्प-धिक पूर्ण विश्वास नहीं करना चाहिए। विश्वास के घात से जो भय समुत्पन्न होता है वह भूलों का भी छेदन कर दिया करता है। तत्त्वमूल हेतु में दूसरे को भी विश्वास दिला देना चाहिए ॥६७, ६८॥ दगुला की भाँति धर्मों का चिन्तन करे और सिंह के समान पराक्रम से यत्न करे। शूक (भेड़िया) के तुल्य लुप्त होकर छिप जाये तथा शक के सदृश विनिर्मुक्त करने वाला होवे। नृप को एक शूकर के समान दृढ़ प्रहार करने वाला होता चाहिये। शिखि के तुल्य चित्रकार तथा कुत्ते के तुल्य दृढ़भक्ति वाला होना चाहिए ॥६९, ७०॥

तथा च मधुराभाषी भवेत्कोकिलवन्नृपः ।

काकशङ्खी भवेन्नित्यमज्ञातवसति वसेत् ॥७१

नापरीक्षितपूर्वञ्च भोजनं शयनं प्रजेत् ।

यत्र पुष्पमलङ्कारं यच्चान्यन्मनुजांस्तम ! ॥७२
 न गाहेज्जनसम्बाध नचाज्ञानजलाशयम् ।
 अपरीक्षितपूर्वञ्च पुष्पैराप्लकारिभिः ॥७३
 नारोहेत्कुञ्जरं द्याल नादान्त तुरगनया ।
 गायिशता स्त्रियश्च गच्छेन्नैव देवोत्मवे वसेत् ॥७४
 नरेन्द्रनक्षत्र्या घमंज्ञ क्षान्ता यत्तोमवेन्वृषः ।
 मद्भृत्याश्च तथा पुष्ट्याः मत्तत प्रतिमानिताः ॥७५
 राज्ञा महाया कर्तव्या पृथिवी जेतुमिच्छता ।
 यथाहंश्चाप्यगुप्तो राजा फर्मगु योजयेत् ॥७६
 घमिष्टान् घमंकार्येषु क्षत्रान् मन्नामयमंगु ।
 निपुणानथकृष्येषु मयघ्नीय तथा नृचीन् ॥७७

मृत्यु को क्षीयित के समान मधुर आभाषण करने वाला होना
 चाहिए । जो पतित अज्ञान है उसी में निवास करना चाहिए । राजा को
 बीए के तुल्य मञ्जूषुक रहना चाहिए । बिना परीक्षा किए हुए किसी भी
 राजा को भावन एव धरन नहीं करना चाहिए । हे मनुजोत्तम ! इसी
 भाति में पतित परीक्षा करने का मन्त्र-पुष्प-अप्लकार तथा अन्य मन्त्र
 को उरभोग में माना चाहिए । ७१, ७२॥ किसी भी जन मन्त्राध वा
 गाहन म कर और जो मन्त्राध अज्ञान है उसमें भी उर मन्त्र अथवाहन
 राजा को नहीं करना चाहिए । इन सबकी परीक्षा भी आप्तवाती पुरयो
 क द्वारा ही नहीं करना चाहिए । राजा का वर्णन है कि त्रिगवा
 पहिले अपनी तरह म ज्ञान न किया गया हो ऐव मन्त्र-ध्याय तथा
 अज्ञान अथ पर ममारोहण नहीं करे । त्रिगवा की विषय में पूर्ण ज्ञान
 प्राप्त न कर बिना चाव उनका समन मृत्यु को नहीं करना चाहिए और
 देवोत्तम में वभी भी निवास न करे । हे घमंजि ! क्योंकि मृत्यु मरे-ठ
 परकी वा ज्ञान हाता है उसको धरन मन्त्र ध्याय को मर्दा परिपुष्ट
 और प्रतिमानित रहना चाहिए । जो राजा इन मन्त्र भूमि के ऊपर मप

प्राप्त करने की इच्छा रखता है उसको चाहिए कि अपने सहायता करने वाले लोगों को बनावे । राजा को उचित योग्यता रखने वाले प्राणधारियों को ही कर्मों में योजित करना चाहिए ॥७३-७६॥ जो पुरुष परम धम्मिष्ठ हों उनकी ही घर्मों के कार्यों में और जो अतीव शूरवीर हों उन्हें संग्राम के कार्यों में एवं जो परम निपुण हों उन्हें श्रम सम्बन्धी कृत्यों में और जो पवित्र हो उनको ही सभी कर्मों में योजित करना चाहिए ॥७७॥

स्त्रीषु षण्ठ नियुञ्जीत तीक्ष्णं दारुणं दारुणकर्मसु ।

घर्मं चार्थं च कामे च नये च रविनन्दन ! ॥७८

राजा यथाहंङ्कु यच्चि उपघाभिः परीक्षणम् ।

समतीतोपदान् भृत्यान् कुर्याच्छिस्तवनेचरान् ॥७९

तत्पादान्वेषणो यत्तांस्तदध्यक्षांस्तु कारयेत् ।

सवमादीनि कर्माणि नृप कार्याणि पार्थिव ॥८०

सर्वथा नेप्यते राजस्तोक्ष्णोपकरणक्रमः ।

कर्माणि पापसाध्यानियानि राजो नराधिप ! ॥८१

सन्तस्तानि न कुर्वन्तितस्मात्तानित्यजेन्नृपः ।

नेप्यतेपृथिवीशातान्तीक्ष्णोपकरणक्रिया ॥८२

यस्मिन् कर्मणि यस्य स्याद्विशेषेण च कोशलम् ।

तस्मिन् कर्मणि त राजा परीक्ष्य विनिवेशयेत् ॥८३

पितृपतामहान् भृत्यान् सर्वकर्मसु योजयेत् ।

विनादायादकृत्येषु परीक्षां स्वकृतान्तरान् ॥८४

स्त्रियों से सम्बन्धित सभी कार्यों में नपुंसक पुरुषों को नियुक्ति करे तथा जो अशक्त दारुण कर्म हों उनमें तीक्ष्ण प्रकृति वाले पुरुषों को रखे । हे राजनन्दन ! घर्म—प्रय—काम और नय में राजा को उपघातों के द्वारा भली भाँति परीक्षण करके ही जो जिस कार्य के कर्मों की क्षमता तारक हो उसी की उसमें नियुक्ति करनी चाहिए । समतीतोपद चरों

को मत्स्यवक्र में भृत्य बनावे ॥७८, ७९॥ उनसे पादान्वेषण करने वाले उनके अध्वशों को भी नियोजित करे । इसी प्रकार के सभी कर्मों को नृशों के द्वारा पूर्ण करना चाहिए । हे पार्ष्णिभ ! राजा का सर्वथा तीक्ष्ण उपकरण का काम अभीष्ट नहीं हुआ करता है । हे नराधिप ! राजा के जो कुछ ऐसे कर्म होते हैं जो कि पापों द्वारा ताप्य हुआ करते हैं सन्त पुरुष उनको कभी नहीं किया करते हैं अथवा राजा का कर्त्तव्य है कि उनको त्याग देवे । राजाओं को तीक्ष्ण उपकरणों की क्रिया कभी भी अभीष्ट नहीं—हुआ करती है । त्रिम कर्म में त्रिम पुरुष की विशेष रूप में कृपानता ही उग कर्म में राजा की उत्तमी परीक्षा करने ही उग पुरुष का विनिवेश करना उचित होता है । जो ऐसे भृत्य हैं कि उनके पीर भवन रिता—विनामह के समय से ही धने जाने वाले हैं उनको सभी प्रकार के कर्मों में नियुक्त कर देना चाहिए । स्वहृताश्रयों को दयादृग्म्यों में परीक्षा के विना भी नियुक्त कर देवे । ८०-८४॥

नियुञ्जीत महामाग । तस्य ते हितराग्निः ।

परराजगृह्णात्प्राप्तान् जनमग्रहकाभ्यया ॥८५॥

दुष्टान् वाप्यघयादुष्टान् आश्रयीत प्रयत्नतः ।

दुष्ट विहाय विद्वाम न कुर्यान्नभूमिपः ॥८६॥

गृह्णीत तस्यार्थि यमेत जनमग्रहकाभ्यया ।

राजा दशान्वरप्राप्त पुरुष पूजयेद् भुजम् ॥८७॥

मामय देशमप्राप्तो यदुमानेन चिन्तयेत् ।

काम भुजराजन राजा नव कुर्यान्नराधिप ॥८८॥

न घ या मविभक्तान् भुजान् कुर्यान्नचष्टपन ।

कप्रदोऽन्नधिप सर्वो निग्निश इति चिन्तयेत् ॥८९॥

भुज्या मनुजनात्पुं । रति ॥९०॥ सप्तमः ।

नेना पारिण्य पारित्र राजा विज्ञाननिपतः ॥९०॥

हे महाभाग ! जन-संग्रह की कामना से दूसरे राज गृह से प्राप्त हुए उसके उन हितकारियों को नियुक्त करना चाहिए । दुष्ट हों अथवा अदुष्ट हों प्रयत्न से उनको आश्रय देवे । राजा को दुष्ट को जानकर उसका विश्वास नहीं करना चाहिए । जन-संग्रह की कामना से उसकी वृत्ति कर देनी चाहिए । राजा को अन्य देश से प्राप्त हुए पुरष की अत्यधिक पूजा करनी चाहिए ॥ ८५, ८६, ८७ ॥ यह मेरे देश में प्राप्त हुआ है अतएव उसके विषय में बहुमान चिन्तन करना चाहिए ! हे नराधिप ! राजा को इच्छापूर्वक भृत्याजन नहीं करना चाहिये ॥ ८८ ॥ उन भृत्यों को किसी भी प्रकार से सविभक्त नहीं करे । शत्रुओं को अग्नि-विष-सपं और विस्त्रिष्ट ऐसा ही चिन्तन करना चाहिए ॥ ८९ ॥ हे मनुज शादूल ! जो भृत्य शपित हो जावे उनके विषय में एक ओर से राजा को चारों कें द्वारा नित्य ही चरित्र का विशेष ज्ञान करते रहना चाहिये ॥ ९० ॥

गुणिनां पूजन कुर्यात् निगुणानाञ्चशासनम् ।
 कथिताःसततराजनू ! राजानश्चारवक्षुषः ॥९१
 स्वके देशे परे देशे ज्ञानशीलान् विचक्षणान् ।
 अनाहार्यान् वलेशसहान्नियुञ्जीत तथाचरान् ॥९२
 जनस्याविदितान् सौम्यान् तथा ज्ञातान् परस्परम् ।
 वणिजो मन्त्रकुशलान् सांवत्सरचिकित्सकान् ॥९३
 तथा प्रवाजिताकाराश्चारान् राजा नियोजयेत् ।
 नैकस्य राजा श्रद्दध्यात् चारस्यापि सुभाषितम् ॥९४
 द्वयोः सम्बन्धमाज्ञाय श्रद्दध्यान्नपतिस्तदा ।
 परस्परस्याविदितो यदिस्याताञ्च तावुभौ ॥९५
 तस्माद्राजा प्रयत्नेन गूढाश्चारान्नियोजयेत् ।
 रागापरागोभृत्यानां जनस्यचगुणागुणान् ॥९६
 सर्वं राजां चरायत्तन्तेषु यत्नपरोभवेत् ।

वर्मणा केन मे लोके जनः सर्वोऽनुरज्यते ॥६७

विज्यते केन तथा विज्ञेयं तन्महीक्षिता ।

विगमजनकं लोके वज्रनीय विदोषतः ॥६८

तथा च गगप्रमया हि लक्ष्यो राजा मत्तभास्करवंशचन्द्र ।

तस्मात्प्रयत्नेन नरेन्द्रमुख्यै कार्योऽनुरागो भुवि मानवेषु ॥६९

राजा का कर्तव्य है कि ओ गुणीजन हो उनका सत्कार एवं पूजन करे तथा जो गुणहीन हों उन पर शासन करे । हे राजन् ! राजा लोग निश्चय पाशों के पशुओं वाले ही बड़े जाया करते हैं ॥ ६९ ॥ पहले राष्ट्र तथा देश में तथा दूसरे देश में मान के शील वाले—विषय—अनाहयं और वरुण सहसरे। की नियुक्ति करनी चाहिए ॥ ६९ ॥ राजा का कर्तव्य है कि ऐसे गुणधरो को नियुक्त करे जिनको साधारणतया मनुष्य नहीं जानते हो—गोप्य—परस्पर में ज्ञान—वणिज मन्त्र में पुनः—साधारण विद्वान्—द्वाराजिनो (गाधु-गम्यामिवो) के आकार अर्थात् वेद-भूषा मान हा । राजा को किसी भी एक गुणधर के कथन पर भी श्रद्धा कभी नहीं करनी चाहिए ॥ ६९, ६९ ॥ जब दो बार उनी एक विषय का समान रूप से प्रतिपादन करे तभी राजा को विश्वास करना चाहिए किन्तु दोनों के सामर्थ्य को पटित समझ कर ऐसा करे । यदि वे दोनों भी परस्पर में प्रतिद्वन्द्वित हा तो उनमें सर्वोत्तम का ज्ञान लेना बहुत-ही आवश्यक है । दूना कारण से राजा को अत्यन्त गूढ़ चरों को निर्दिष्ट करना उचित है । भूषों के राज और अत्याग तथा जनों के गुण और परगुण का ज्ञान लेना सब कुछ गुणधरो के ही (राज भी का) अर्थ है । अतएव राजा को उन के विषय में ज्ञान परावण होना ही चाहिए । राजा का परम कर्तव्य यही है कि वह सब मन्त्र ज्ञान-समर्थता पर कि ऐसे किम कर्मों से प्राप्त हो सकें जिनसे अनुसन्धित होत है और जोर मा जेरा कर्म है विषय ज्ञानो को युक्त मायुष्य होता है जो ज्ञानो में विशाल समुत्पन्न कर्म माना कार्य है । उनको गुण रूप से प्रतिद

कर देना चाहिए । हे भास्कर वेश के चन्द्र ! राजाओं की लक्ष्मी रस से ममुत्पन्न होने वाली है—ऐसा ही माना गया है । इस कारण से राज-प्रमुखों को चाहिए कि प्रयत्न पूर्वक भूमण्डल में मानवों से राजाओं को मली भाँति अनुराग करना चाहिए ॥६५-६६॥

६४—राजकृत्य वर्णन (१)

यथा न वर्तितव्य स्यान्मनो राजोऽनुजीविना ।
 तथा ते कथयिष्यामि निबोध गदता मम ॥१
 राजा यत्तु वदेद्वाच्यं श्रोतव्य तत्प्रयत्नतः ।
 आक्षिप्य वचन तस्य न वक्तव्यं तथा वचः ॥२
 अनुकूल प्रिय तस्य वक्तव्य जनसमदि ।
 रहोगतस्य वक्तव्यमप्रिय यद्धित भवेत् ॥३
 पराथमस्य वक्तव्यं समे चेत्तसि पार्थिव ।
 स्वायंः भुद्भिर्द्वि वक्तव्यो न स्वय तु कथञ्चन ॥४
 कार्य्यतिपातः सर्वेषु रक्षितव्यः प्रयत्नतः ।
 नच हिंस्य घन किञ्चित् नियुक्तेनचकर्मणि ॥५
 नोपेक्ष्यस्तस्यमानश्च तथा राज्ञः प्रियो भवेत् ।
 राजश्चनतथाकार्य्यं वेपमापितचेष्टितम् ॥६
 राजलीला न कतव्या तद्विद्विञ्च वर्जयेत् ।
 राज्ञः समोऽधिकोवानकार्य्योविषोविजानता ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—राजा के अनुजीवी के द्वारा मन जिम प्रकार से नहीं बरतना चाहिए वही मैं आपसे बतना लूंगा । अब आप मुझसे इनकी समझ लो । जिमकी कि मैं कह रहा हूँ ॥१॥ राजा जो कुछ भी पचन नहे उसे प्रयत्न पूर्वक थपथप कर लेना चाहिए । उमरे

वचन पर आधेप करके फिर कुछ भी अपना वचन नहीं कहना चाहिए ।
 ॥२॥ जन समद में उम नृप का प्रिय और अनुकूल ही वचन बोलना
 चाहिए । यदि कोई उमके हित को बतलाने वाला भी वचन कहना हो तो
 उसे चाहे वह अप्रिय भी हो उमी समय में उमसे कहना चाहिए जब
 हृत्स्य में स्थित हो ॥३॥ हे पापित ! दुःख परमार्थ वित्त के सम होने
 पर ही बोलना चाहिए । यदि वचना कोई स्वार्थ हो तो उसे स्वयं कभी
 भी न कहकर मित्रों के द्वारा ही कहलाना चाहिए ॥४॥ सब में दार्याति-
 पात प्रथम पूवक रक्षित रक्षना चाहिये । कर्म में नियुक्त होने पर कुछ भी
 धन नहीं मारना चाहिए ॥५॥ उमके मान की कभी भी उपेक्षा नहीं करनी
 चाहिए । इसी प्रकार म मनुष्य राजा का प्रिय हो जाया करता है । राजा
 के तुल्य वप — मापित और भेष्टित जंगल भी वंगल ही स्वयं नहीं करना
 चाहिए ॥ ६ ॥ राजा की सीमा नहीं करे और उमका जो भी बुद्ध
 विशिष्ट हो वह भी वज्रित कर देना चाहिए । राजा के ही समान
 अथवा उमसे भी अधिप वेष अच्छी तरह में जानते हुए कभी नहीं करना
 चाहिए । ७॥

पूजादिषु तर्धवान्यन् वीक्षणं तु प्रदर्शयेत् ।
 प्रदर्शयतीक्ष्णं चास्मदाजानन्तु विशेषयेत् ॥८॥
 अन्नपूरजनाप्यथ वीरदूतं निराकृतं ।
 मंगलं न प्रजडाजन् दिना पाथियशागनात् ॥९॥
 निरन्तराश्चावमाना प्रयत्नन तु मादयेत् ।
 दक्ष्यं गुण्य भवद्राजा न तत्तर्धं प्रजादायेत् ॥१०॥
 नृपेण श्रावितं धर्मवादा-मायावदा नृपानाम् ! ।
 नास्मथावदन्नास्ति तथा गतात्प्रयाभन्तं ॥११॥
 आशावदन्तानां निदन्तु मन्थावदवगन्धिगः ।
 विदन्तु मन्थावदवगन्धिगः ॥१२॥

सततं त्रियमाणेस्मिन् लाघवन्तु त्रजेद् घृवन् ॥१३

• राज. प्रिराणि वाक्यानि चात्यर्थं पुनः पुनः ।

• महानुशीलस्तु भवेत् न चापि भृकुटीमुतः ॥१४

उसी भाँति दूत (खेल) आदि में अग्य कौशल का प्रदर्शन करे और इनका कौशल प्रदर्शित करके राजा की विनियता का प्रदर्शन करना चाहिए । हे राजन् ! राजा क शासन के बिना अन्तः पुर के जनाघटनों के साथ—सशु के दूतों के साथ और जो राजा के द्वारा निराकृत हों उनके साथ ससर्ग नहीं करना चाहिए ॥८, ९॥ स्नेह के अभाव को और अवमान को प्रयत्न के साथ गोपन करके रखना चाहिए और जो राजा का कोई भी गोपनीय विषय हो उनका भी कभी अकाशन नहीं करे । हे नृपोत्तम ! वाच्य तथा अवाच्य नृप के द्वारा जो भी प्राबिन हो उसे लोक में कभी भी प्राबिन न करे । ऐसा करने से राजा का वह उमे लप्रिय हो जाया करता है । जिना भी दूतों को आजा देने पर भी शोभता से स्वयं उठकर राजा से यह कहना चाहिये कि वरा में इन काय्य का सम्पादन करनू— यहो एक ज्ञाना पुरुष का कलश्य है ॥१०, ११, १२॥ कार्य की अवस्था को विशेष रूप से जानकर जैसा भी वह काय्य होवे उसको निगूतर करते हुए भी लाघव निगवय रूप से कर ॥१३॥ राजा के प्रिय वाक्यों को अत्यधिक और बारम्बार नहीं बहे । राजा के समक्ष में महान् सुधीन ही रहना चाहिए तथा कभी भृकुटियों का बटाकर न खजे ॥१४॥

नातिवक्ता न निवक्ता न च मातृशरिक्स्तथा ।

आत्ममम्मावितश्च न भवेत् कथञ्चन ॥१५

दुःश्रुतानि नरेन्द्रस्य न तु सद्भोतयेत् क्वचित् ।

पश्चमश्चमनद्धार राजा दत्तं तु धारयत् ॥१६

औशर्मण न तद्दयमन्यस्म भूतिमिच्छता ।

तत्रैवात्मानं कार्यां दिवा स्वप्ना न कारयेत् ॥१७

नानिदिष्ट तथाद्वारे प्रावन्तु कथञ्चन ।

न च पश्येत्तु राजानमयोग्यामु न भूमिषु ॥१८
 राजन्तु दक्षिणे पाद्वे वामे चोपविनेत्तदा ।
 पुग्स्ताच्च तथापश्चाद्वासनन्तु विगर्हितम् ॥१९
 जम्भा निष्ठीवनद्याम काप पर्यास्तिकाश्रयम् ।
 भृकुटि वान्तमुद्गारन्तस्ममीपे विचजेयेत् ॥२०
 स्वयं तस न पुर्वीत स्वगुणाग्यापग वुधः ।
 स्वगुणाग्यापने युक्ता परमेव प्रयोजयेत् ॥२१

राजा के सामने न तो अग्र्यधिक धोने यासा ही रहे और न
 दिन्तु न मानन यासा मोन होकर ही रहे । मत्सरता में मुक्त भी होकर
 न रहे तथा विगी भी प्रहार में आत्म सम्भावित भी नहीं रहना चाहिए
 ॥१८॥ जो कुछ भी राजा के द्वार विषे हुए दुष्ट हो उनका कभी भी
 कभी पर महान न नही करना चाहिए । जो भी कभी देवान् राजा के
 हाथ प्राय सम्प—अम्प और अन्तु हो तो उनका धारण करके रहना
 चाहिए ॥१९॥ भूमि के सादन वामे का उदारता में उनको कभी दूगरे
 को नहीं दे दान और कभी पर अम्प आगत सम्पना चाहिए तथा दिन में
 स्वयं नही कर ॥१९॥ जो द्वार अनिश्चित हो या मार्ग हो उसमें विगी
 भी प्रहार में प्रयत्न नही करना चाहिए । अथवा भूमिमें से सम्पत्ति
 राजा को कभी नहीं देना चाहिए । सर्वदा राजा के दक्षिण तथा वाम
 प्राय में ही उपविष्ट होना चाहिए । राजा के आगे प्रथम पीठ अथवा
 अम्प सम्पना दक्षिण होना है ॥१८, १९॥ राजा के समीप में जब भी
 कभी उपविष्ट होना या मनुष्य का चाहिए कि जवार्द्ध—पुत्र का पुत्रता—
 धर्मता—पशुधर्मता (समन्त) आदि का मन्त्रा मन्त्र धर्मता—भृकुटि
 धर्मता—वामिनी धर्मता—उत्तर मन्त्रा इन सबका धर्मन कर देवे । पुत्र
 पुत्र को राजा के समीप में रहने अथवा पुत्र का मन्त्रा अथवा पुत्र का
 अर्थ करना चाहिए । पुत्र का पुत्रता । अथवा राजा के समीप में पुत्र
 का ही प्रयत्न करना चाहिए ॥१८, १९॥

हृदय निर्मलं कृत्वा परां भवितमुपाश्रितं ।
 अनुजीविगणैर्माध्यं नित्यं राजामतन्द्रितैः ॥२२
 शाठ्यं लौल्यं च वैशून्या नास्तिक्यं क्षुद्रता तथा ।
 चापत्यञ्च परित्याज्य नित्यं राज्ञोऽनुजीविभिः ॥२३
 श्रुतिविद्यासुशीलंश्च सयोज्यात्मानमात्मना ।
 राजसेवान्ततः कुर्याद् भूतयेभूतिवर्द्धनीम् ॥२४
 नमस्कार्याः सदा चाम्य पुत्रवल्लभमन्त्रिणः ।
 स चर्चदचास्यविद्वत्सो नतुकार्यं कथञ्चन ॥२५
 अपृष्टश्चास्य न त्रपात् काम कुर्यात्तथा यदि ।
 हित तथ्यञ्च वचनहितैः महमुनिदिचनम् ॥२६
 चित्तञ्चंदास्य विज्ञेयं नित्यमेवानुजीविना ।
 भक्तं रागाधनकुर्यात्-चित्तज्ञोमानवः सुखम् ॥२७
 रागापरागो चैवास्य विज्ञेयो भूतिमिच्छता ।
 त्यजेद्विरक्तो नृपती रक्तवृत्तिन्तु कारयेत् ॥२८
 विरक्तः कारयेन्नाशं विपक्षाभ्युदयं तथा ।
 आशावर्द्धनकं कृत्वा फलनाशं करोति च ॥२९
 अकोपौऽपि सकोपाभिः प्रमन्नोऽपि च निष्फलः ।
 वाक्यं च समदं वक्ति वृत्तिच्छेदं करोति वै ॥३०

जो राजाओं के अनुजीवी गण ही उनको अपना हृदय निर्मल करके पराभक्ति का उपाश्रय करते हुए नित्य ही अतन्द्रित रहना चाहिए। राजा के अनुजीवियों को शाठ्य-लौल्य-वैशून्य-नास्तिक्य-क्षुद्रता-चापत्य-इन दोनों का सर्वदा परित्याग कर देना चाहिए ॥२२, २३॥ श्रुति-विद्या और सुशीलता गुणों वाले पुरुषों को आत्मा के द्वारा अपनी आत्मा को संयोजित करके अन्ततः वैभवं की प्राप्ति के लिये भूति के वर्धन करने वाली राजा की सेवा करनी चाहिए। राजा के पुत्र-वल्लभ और मन्त्रियों सदा नमस्कार करना उचित है। मन्त्रियों के द्वारा इसका किसी प्रकार से

भी विग्रहण नहीं करना चाहिए ॥२४, २५॥ बिना कुछ पूरे हुए इसमें भागण करे । यदि इच्छा बोलने तो हिरो के सहित आन गुनिशिवन द्वित और तस्य वचन बाचना चाहिये ॥ ६॥ जो राजा के अनुजीवी हो उनको निग्र ही इसमें निज की वृत्ति बने जानते रहना चाहिये । चित्त की वृत्ति का ज्ञान च्छन मान मानव को मुक्त पूर्वक स्वामी का समाराधन करना चाहिए । विभूति के प्राप्त करने को इच्छा वागे पुरण को इस राजा के गण एवं अरणाग को अच्छी तरह म जान लेना अत्यन्त आवश्यक है । इनको जान कर फिर त्याग करे । विरक्त नहीं रहे । नृपति रक्त वृत्ति कराये । विरक्त नाश कराना है और विपश का अम्बुदम कराना है । आना की वृत्ति करके पत्र का नाश किया करता है । बिना काम बाता भी योग म मुक्त के समान होता है । प्रम न होता हुआ भी विग्रहण है तथा मद्र म मुक्त मानव बोलना है और वृत्ति का ऐसन कर देना है । ॥२६-३०॥

प्रदेशवाचकमुद्रितो न मन्भावगनेऽप्यथा ।
 आराधनामु गर्वायु मुक्तास्त्र विनेष्टते ॥२१
 यस्यामु दाप क्षिपति वाचननन्द करोति च ।
 मन्त्रा विमुग्धना मुनगस्तुतनेऽपि च ॥२२
 र्षिष्टीक्ष्णति ज्ञान्यय द्वियमाणे च कर्माणि ।
 विरक्तमथान शंताय शृणु रक्तस्य ससुनम् ॥२३
 तृष्ट्या प्रमन्त्रो मन्त्रि वाचय गृह्णाति वादराय ।
 कृत्वातिरिचिप्रमन् मन्त्रवर्षाणि सामानम् ॥२४
 विरिक्तमथाने वाचय रक्षणेन च मन्त्रो ।
 वाचय तृष्ट्यादन. श्रुया मन्त्र तु तन्त्रायाम् ॥२५
 मन्त्रिवाचरति वाचयति मन्त्रमन्त्रनिनन्दो ।
 उवाचमन्त्र गृह्णाति मन्त्रमन्त्रादराया ॥२६

कथान्तरेषु स्मरति प्रहृष्टवदनस्तथा ।

इति रक्तस्य कतं व्या सेवा रविकुलोद्भव ! ॥३७

मित्रं न चापत्सु तथा च भृत्या भजन्ति ये निर्गुणमप्रमेयम् ।

विभुं विशेषेण च ते व्रजन्ति सुरेन्द्रधामामरवृन्दजुष्टम् ॥३८

उदित हुआ प्रदेश वाक्य को अन्वया सम्भावित नहीं होता है और सब आनाघनाओं में मुक्त की भाँति विचेष्टित किया करता है । कथाओं में दोषों का श्लेष किया करना है और वाक्य का भङ्ग करना है । गुणों के सङ्कीर्तन करने पर भी विगुण के सघन दिखलाई देता है । कर्मों के करने पर भी अन्यत्र दृष्टि डालता है— ये ही एक विरक्त पुण्य के लक्षण हुआ करते हैं । अत्र जो अनुरक्त होता है उसके लक्षणों का भी श्रवण करयो । देखकर परम प्रसन्न अनुरक्त हुआ करता है और जो भी वाक्य कहा जाता है उसे बड़े ही आदर में ग्रहण करता है । कुशल-श्लोक के प्रश्न आदि करना है और उपविष्ट होने के लिये आसन दिया करता है विविक्त दर्शन में और इसके एकान्त में इसकी शङ्का नहीं करता है । उसकी उन कथा की श्रवण करके प्रसन्न मुख हो जाता करता है ॥ ३१-३५ ॥ उसके द्वारा कहे हुए अप्रिय वाक्यों को भी अभिनन्दित किया करता है तथा बोड़े से भी उपासन को बड़े आदर से ग्रहण करता है । अन्य कथाओं में प्रहृष्ट मुख वाला होकर स्मरण करता है । हे रविकुलोद्भव ! इस प्रकार के अनुरक्त की सेवा करनी चाहिए । आपत्ति के समयों में मित्र को उस प्रकार से नही जिम तरह भृत्यगण हैं वे अप्रमेय और निर्गुण की तथा करते हैं । वे भृत्य देववृन्दों के द्वारा संविन सुरेन्द्र के धाम को तथा विशेष रूप से विभु को प्राप्त किया करते हैं ॥ ३६ । ३७ । ३८ ॥

६५—राजकृत्य वर्णन (२)

राजा महायज्ञपुत्रं प्रभूतयवमेन्धनम् ।
 रम्यमाननमामन्न मध्यमन्देनमावनेत् ॥१॥
 वैश्वानृद्रजनप्रायमनाहार्यं तयापरैः ।
 सिञ्चिद्ब्राह्मणमनुक्तं बहुसंकरन्तया ॥२॥
 कदैवमातृषु रम्यनुरव्यजनान्वितम् ।
 करंरापीडितञ्चापि वदुपुष्पस्य तया ॥३॥
 अगम्य पञ्चत्रासा तद्वामगृहमापदि ।
 समदुष्टमुगं राजं मननं प्रियमाश्रितम् ॥४॥
 महीनृद्विहीनञ्च व्याघ्रनश्चरवजितम् ।
 एवंविधं यद्यामाभ्य राजा विपद्यमायमेत् ॥५॥
 पत्रदुर्गं नृपं कुर्यात्पदगामेवतमवुधः ।
 धनुर्दुर्गं महीदुर्गं नरदुर्गं तथैव च ॥६॥
 यार्थं त्रैवाम्बुदुर्गं न गिरिदुर्गं च पाथिव ! ।
 सर्वेषामेव दुर्गानां गिरिदुर्गं प्रशस्यते ॥७॥

श्री मत्स्य पुराणम् न ब्रह्म—राजा की अथवा महायज्ञी के सम-
 विध होकर प्रभूत यवम और मन्धन वाने—रम्य एवं आनन सामग्री
 वाने मध्यम देण से निराम करना पाठिए ॥ १ ॥ यह स्पष्ट देना होना
 पाठिए जिससे राजा का निराम हो वैश्व और मद्रजन बहुनाशन से रहते
 हो एवं दुर्गों के उपाय को धारण न हो सकें । राजा का निराग यवन
 पुत्र काश्रमी से भी पुत्र तथा यदु वाने के करने बाधा होवे ॥ २ ॥
 अद्वैत मातृ—रम्य—बहुसिञ्चन वाने से दुर्ग—करने से अतीति
 तथा कदुग पुत्र एवं च ॥ यथा—पर (मनु) के बन्धी से अद्वैत देना
 अर्थात् राज से बाग दुर्ग होना पाठिए । दुर्ग भी दुर्ग से सम—निर-
 म्य राजा का विद—महीनृदा के विहीन—व्याघ्र और कवरी से

के अष्टभाग में परम गुच्छ देव का आसन होना चाहिए । दूसरे चौथी व अष्टभाग में राजा व रहने का वेद्यम गृह निर्मित किया जाना चाहिए । तीसरी चौथी व अष्टभाग में धर्म का अधिस्तरण करना चाहिये और चतुर्थे चौथी के अष्टभाग में मोक्षुर विरचित करें । इस प्रकार से उत्तम पुर को चौबीस—आसन ओह गुल कराना चाहिए । मुक्तिहीन—विहीन—सकस्य भक्ष्य लोकोर और आसन महाकुल पर को रचना कराये । मरी व तीर पर निवास करते हुए अथ पश्ये की प्रसंगा विद्या करते हैं । दसक भविष्यत अन्य प्रयत्नपूर्वक विमोक्ष आता को नहीं करना चाहिए । ॥८-१४॥

राजा कोनचूह काय दक्षिणे राजवेदमनः ।
 तस्यापि दक्षिणे भागे गजस्थान विधीयते ॥१५
 गजानां प्राङ्मुखी जाना कनध्यायाद्युच्छ्रुत्तुगी ।
 आनय च तथा भागे आयुधामागमप्यते ॥१६
 महानमदन धमर । समेशानानवापराः ।
 गृह पुरोधस काय यामनो राजवेदमनः ॥१७
 यान् पदविशालं च विविदिमावस रेवच ।
 मनीर व तथा भागे पाष्टामाग विधीयते ॥१८
 गवा स्थान सपोरात्र गुरमाणा तथैव च ।
 वनराभिमुद्या श्र को गुरमाणा विधीयते ॥१९
 दक्षिणाभिमुद्या याश्च परिशिष्ट्यान्तु गदिताः ।
 गुरमाणोपवाधया प्रसीदे मायं गानिरीः ॥२०
 पुरपुत्रान् वानगान्यैव सर्वं प्रीत्य विधीयत ।
 धारददगनायानु गरागा भेनुमेवप ॥२१

राजा व विमान दृष्ट व दक्षिण भाग में राजा को अरवा कोनचूह उजाना चाहिए । गज भी दक्षिण भाग में गजो के रहने का स्थान निर्मित कराई ॥ १२ ॥ दसगावा का मुख पूर्व अथवा उत्तर दिशा की

और करवाना चाहिए। आग्नेय भाग में आपूर्णा का आगार बनना अभीष्ट होता है। हे धर्मज्ञ ! महानम (रसोई पर) दूसरी कर्म-शाखाएँ और पुरोहित का गृह ये सब राजा के वैश्व के नाम भाग में निर्मित करावे। वही पर उसी भाग में मन्त्री—वेदवेत्ता और चिकित्सा करने वाले का गृह तथा कोठारागार भी निर्मित कराने चाहिये ॥१६। १७। १८॥ यहाँ पर गौत्री का स्थान—तुरङ्गों का स्थान करावे। तुरङ्गों की जो श्रेणी है वह उत्तर की ओर मुख वाली होनी चाहिये; जयवा दक्षिणाभिमुख हो। परिशिष्ट सभी गृहों कहीं गयी हैं। वे तुरन्त सम्पूर्ण रात्र में जलने वाले प्रदीपों के साथ रखने चाहिए। उन अश्वशालाओं में कुक्कुटों—बातुरों—मर्कटों और विशेष रूप में वस्त्र के गृहों धेनु को भी रखना चाहिए ॥ १६, २०, २१ ॥

अजदिच धार्या यत्नेन तुरगाणां हितधिषा ।

गोमजाश्वदिशासासु तत्पुरोपस्य निर्गमिः ॥२२

अस्तंगते न कर्तव्यो देवदेवे दिवाकरे ।

तत्र तत्र यथास्थान राजात्रिजाय सारथीन् ॥२३

दाद्यादावसथस्थान सर्वपापानुपवणः ।

योघाना शिल्पिनाञ्चैव सर्वपापविशेषतः ॥२४

दद्यादावसथान् दुर्गे कालमन्त्रविदां शुभान् ॥

गोर्वद्यामश्चर्वद्याश्च गजवद्यास्तथैव च ॥२५

आहरेत भृश राजा दुर्गे हि प्रबला रुजः ।

कुशीलयाना विप्राणा दुर्गे स्थानं विधीयते ॥२६

न बहूनामतो दुर्गे विनाकार्यं तथा भवेत् ।

दुर्गे च तत्र कर्तव्या नानाप्रहरणान्विताः ॥२७

सहस्रपातिनो राजस्तीस्तु रथा विधीयते ।

दुर्गे द्वाराणि गुप्तानि कार्याभ्यपि च भूमिजा ॥२८

धरुवों के द्विष्ट चाहने वाले को यत्नपूर्वक अज्ञानों को भी वहाँ

सर्वेषां शिल्पिभाण्डानां संचयश्चात्र चेष्यते ।
 वादित्राणाञ्च सर्वेषामौषधीनान्तर्ध्वज ॥३४
 यवसानां प्रभूतानामिन्धनस्य च सञ्चयः ।
 गुडस्य सर्वतलानां गोरसानान्तर्ध्वज च ॥३५

यहाँ पर दुर्ग में सभी आयुधों का संग्रह रचना परम प्रशस्त होता है । पाण्डव को यमुपो जा-दीपणीयो का और तीमरों का सञ्चय रचना आवश्यक है । शरो का—कवचो का—खड्गों का—लघु—गुहान—हुड और परिधों का भी संग्रह करे । बहुत तादाद में पाषाणो का—मुद्गारों का—त्रिशूलों का—पदियों का और हे पाण्डव कुठारों का भी संग्रह करना चाहिए ॥ २६, ३०, ३१ ॥ नरोत्तम को प्राप्त—ममूल—शक्ति—परश्वध—चक्र—चर्म के सहित धर्मों का भी वहाँ सर्ग में संग्रह हीना उचित हीता है । कुहान—धुर—वेध—गोठक—तुप—दाय और अङ्गारों का भी सञ्चय करे । सभी प्रकार के शिल्पियों के भाण्डों का सञ्चय भी दुर्ग में अभीष्ट हीता है । सब तरह के वादित्र और सभी औषधियाँ तथा प्रभूत यवस और ई घन का संचय वहाँ रखे । गुड, सभी तरह के तैल और गोरसों का संग्रह दुर्ग में करना आवश्यक है ॥ ३२।३३ ३४ । ३५ ॥

वसानामथ मज्जाना स्नायूनामस्थिभिः सह ।
 गोक्षमेपटहानाच यवगोधूमयोरपि ॥३६
 तथैवाभ्रटानांच यवगोधूमयोरपि ।
 रत्नाना सधवस्त्राणां लोहात्सामप्यशेषतः । ३७
 कलापमुद्गमापाणाचणकानान्तिर्लः सह ।
 तथा च सर्वशास्यानां पानुगोमययोरपि ॥ ३८
 शरामजंजमं भूज जतुलास्ता च टङ्कणम् ।
 राजा सच्चिनुयाद्दर्मे यः चान्यदापि किंचन ॥३९
 कुम्भादचागोधिपः यार्या व्यालसिहादयरतथा ।

मृगायन्व यक्षिजसन्वैव रथयान्ते च परस्परम् ॥४०॥
 स्थानानि च विन्द्यानां मुग्धानि पृथक् पृथक् ।
 वनस्थानि महाभाग ! मत्सेन पृथिवीधिता ॥४१॥
 उरवानि चाप्यनुवतानि राजद्रव्याप्यनेपथः ।
 मुग्धानि पुरे कुर्याज्जनाना हितकाम्यया ॥४२॥

राजा वा पत्न्य वसन्ध्य है कि वह वना—मत्स्य—अधिपति के
 साथ स्नानु—गोषम—पटह—सभी प्रकार के धान्य—अन्नपर—मव—
 गोषुम (गेहू)—रत्न—सभी वस्त्र—सम्पूर्ण प्रकार के सोह—स्नान—
 सुदुग्ध—माष (उद)—विन—घना—सभी तरह के कस्य—योगु—गोमय—
 मग—अन्नरस—सूत्र—अनु—साधा—टहुप (मुहाणा) और अन्य भी जो
 सुदुग्ध ही इन सबका मन्थन करके म राजा को करना ही चाहिए । आसी-
 विषों के द्वारा कृष्णा व कर्मे तथा स्थान—विह आदि मृग और परिभण
 इन सबकी परस्पर में रक्षा करनी चाहिए ॥३६॥ ३७॥ ३८॥ ३९॥ ४०॥
 भाग्य में जो भी जीव विनाश करने का है उनका अन्त में स्थान
 निमित्त बतावे और अन्त में उनका सुख करे । ४ महाभाग ! राजा
 को वन के साथ वन सभी सुदुग्ध करना चाहिए । जो वना स्थित करे है
 और जो नदी भी बह करे है उन सम्पूर्ण राजद्रव्यों को पुर में सुदुग्ध करना
 के लिए जो वापना म रखना चाहिए ॥ ४१॥ ४२॥

जीववर्षमस्यैवमासमवन्तात्सुपुत्रम् ।
 सायस्यो ग्रीष्मर्षो मुद्गपयो लघोय च ॥४३॥
 माघपयो च मर्दुमासिषेऽवनामयम् ।
 पारा वसन्ते मृगा य मृगो वल्लकारिका ॥४४॥
 शृङ्गो शृङ्गाटो द्वयो लघुभ्रुवमरेदुता ।
 मधुपयो विजयि मयाशाया मयावता ॥४५॥
 मन्थनः मन्थनाय च कुर्यात्सुदुग्धम् ।
 पयो मयाशाया मुदावा यान् परस्परमप्युवा ॥४६॥

शुक्रातिशुक्रकाश्मयं छत्रातिच्छत्रवीरणाः ।

इक्षुग्निष्कु विकाराश्च फाणिताद्याश्च सत्तम ॥४७

सिंहो च सहदेवो च विश्वेदेवाश्चरोधकम् ।

मधुकं पुष्पहंसाख्या शतपुष्पा मधूलिका ॥४८

शतावरोमधूकेच पिप्पलन्तालमेव च ।

आत्मगुप्ता कट्फलाख्यादाविका राजशीर्षकं ॥४९

एक राजा का परम कर्तव्य होता है कि सभी प्रकार की वन-स्पतियों का सञ्चय घपने पुर में न करे । उनमें कुछ नामों का उल्लेख यहाँ पर किया जाता है—जीव कर्पम—काकोल—आमलकी—आटरूपक—शालपर्णी—पृष्ठ पर्णी—मृद्गपर्णी—मापपर्णी—मदद—सारिवा दोनों प्रकार की—तीनों बलाएँ—वाग—श्वमन्ती—बट्या—बहती—कष्ट कारिका—शृङ्गी—शृङ्गारकी—द्रोणी—वर्षामदभरेणुका—मधुपर्णी—दोनों विदागी—महाभीरा—महातपा—धन्वन—सहदेवो नाम धारिणी—कटुक—ऐरण्डक—विष—पर्णी—शतानाम वाली—मृद्वोका—फलगु—मर्जारयाष्टका—शुक्रातिशुक्र का—अश्वरो—छत्राति छत्रका—वीरणा—इक्षु—इक्षु विकार—फाणिता आदि—सिंह—सहदेवो—विश्वेदेवा—अश्वरोधक—मधुक—पुष्पहस नाम वाली—शत-पुष्पा—मधूलिका—शतावरी—मधूक—पिप्पल—ताल—आत्म गुप्ता—कट्फला—दाविका—राजशीर्षकी ॥ ४३-४९ ॥

राजसर्पघान्याकमृष्यप्रोक्ता तथोक्तया ।

कालशाक पद्मबीज गोवल्ली मधुवल्जिका ॥५०

शीतपाकी कुवेराक्षी काकजिह्वोरुपुष्पिका ।

पर्वतपुत्रमी चोमी गुञ्जातकपुननवे ॥५१

कतेरु कारकादमीरी बल्या शालक केसरम् ।

तुषघान्यानि सर्वाणि शमीघान्यानि चैव हि ॥५२

क्षोर क्षीरन्तथा तक्र तैल मज्जा वसा घृतम् ।

नौपदचारिष्टकाशाड्वातामसामवाणम् ॥५३

एवमादीनि चान्यानि विशेषो मधुरोगणः ।
 राजा सञ्चिनुपात्सर्वे पुरे निरवशेषतः ॥५४
 दाडिमाग्नातकी चैव त्रिन्तिडीकाम्लवेतमम् ।
 भद्रयकचंघुननुचकरमहंरूपकम् ॥५५
 योजपूरककण्डूरे मालतीराजचंघुकम् ।
 योलेवद्वयपर्णानि द्वयोराम्नातयोरपि ॥५६

राज सर्वे—धान्याक—सृष्टप्रोग—वराटा—वास जाव—पद्म
 बीज—गोरन्धी—मधुसन्निहा—शीतवाही—कृशेशशी—बाक बिह्वा—
 उफ पुनिहा—दवंग—प्रदुप—गुच्छा तव—पुननवा दोनी—बसेर—बाए
 बावमीरी—बन्दा—फामूर—बेगर—मय तुप घान्य—लीर—शीट—
 तव—रैव—यमा—मन्दा—पूत—नीप—अस्थित—शीट याताय—
 मोमबाणव—दम प्रकार व घान्य मधुरोगण—दम मधी का पूर्ण रूप मं
 मन्त्र रात्रा बी बरना आवासव है ॥ ५०, ५१, ५२, ५३, ५४ ॥
 दाडिम—भाघावत—त्रिन्तिडीर—भाम्लवेतम—मय कर्चंगु—सदुष—
 वामहं—बभरव—वीरपुत्र—बभरु—मामनी—रात्रवंगुव—दानी कोरव
 पर्ण—दानी भावना ॥ ५४, ५६ ॥

पारायण नामक प्राजातात्रयस्य च ।
 वरिष्णामकर सुप्रदत्तस्तनटस्य च ॥५७
 जाह्नव नवनीलस्य सौधीरवज्रपीडके ।
 गुराम इव मद्यानि मन्दतम्रदधीनि च ॥५८
 गुणवानि शेष सर्वाणि मेघमधनमल द्विज ।
 एवमादीनि चान्यानि राजा सञ्चिनुपात्पुरे ॥५९
 गंभीरिन्दुदत्ताटेवपावमामृगामवम् ।
 पृथग्वीरनीरविष्ट पारसेय मयाहवम् ॥६०
 श्रीरं शार बावभमर विज्ञेयो मधुरोगणः ।
 एवमादीनि चान्यानि राजा सञ्चिनुपात्पुरे ॥६१

पिप्पली पिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम् ।

कुवेरकं मरिचकं शिग्रुभल्लातसपपाः ॥६२

कुष्ठाजमोदाकिणिहीहिङ्गुमूलकघान्यकम् ।

कारवीकुञ्जिका याज्या मुमुषा कालमालिका ॥६३

पारावत-नागरक-प्राचीनोलक-कपित्थ-आमलक-जुक्कल-
दन्तशठ-जाम्बव-नयनीत-सौवीरक-रूपोदक-सुरा-आसव-मद्य-
मण्ड-तम्र-दधि-सद्य शुक्ल पदार्थ-हे द्विज ! और अम्लगण इस
प्रकार के सभी पदार्थों का मन्त्रव्य राजा को अपने पुर में करना च.हि.ए ।
सैन्धोद-पाठेय-पाष्य-सामुद्र-लोमक-कुप्य-सौवर्चल-विह-
वालकेय-यवाह्वक-और्व-धार-कानभरम लवण गण- इम भ्रूति
के पदार्थों का पूर में सबद्र राजा को करना आवश्यक है । पिप्पली-
पिप्पली मूल-चव्य-चित्रक-नागर-कुवेरक-मरिच-शिग्रु-भल्लातक-
सपप-कुष्ठ-जमोद-आकिणि-हिङ्गु-मूलक-घान्यक-कारवी-
कुञ्जिका-याज्या-मुमुषा-कालमालिका-॥६०-६॥

फणिज्जकोधलशुन भूस्तृणां मुग्मन्तथा ।

कायस्था च वयस्या च हरितान मन.शिला ॥६४

अमृता च रुदन्ती च राहिष कुङ्कु मन्तथा ।

जया एरण्डकाण्डीरं मल्लकीहञ्जिका तथा ॥६५

सर्वपित्तानि मूत्राणि प्रायोहरितकानि च ।

फलानि शैव हि तथा मूशमना हिङ्गुपट्टिवा ॥६६

एवमादीनि चान्धानि गणः कटुकमजितः ।

राजा सञ्चिनुयाद्दुर्गे प्रयत्नन नवोत्तम ! ॥६७

मुस्तञ्चन्दनह्रीवेकृतमालरुदारवः ।

दारद्रानलदोशारनक्तमालरुदम्बरम् ॥ ६८

दूर्वा पटोलकटुका तीघत्वक् पत्रक वना ।

रिसावतिक्तभूनुम्बी विषा चातिविषा तथा ॥६९

तान्नीसपत्रनगरं गङ्गापलांघिनं द्रुता ।

लाकोदुम्बरिका दिव्या तथा चौर सुरोद्भवा ॥७२

पण्डित, कौश, सन्त, भूतल, गुरग, पादप, यक्ष, हरि-
मान, मन्त्रिण, प्रमृता रत्नी, रीति, कुंकुम, जया ऐरव, काशीर,
मन्त्रिणी, हरिचक्र, मन्त्री विद्या, मृग, प्राचीरितक, पत्र, मूर्धमण्डला,
दिगुद्विजा इय प्रकार न गव धार्य श्री कट्टक गङ्गा माता मण । हे
सुरोत्तम । राजा को अपने दुर्ग में गङ्गा गङ्गाव नरना पाहिए ।
मृग, पन्न, श्रीवैर कृष्णामय, दाह, हरि, मनस, उमीर, मन्त्रिण,
कश्यप, दूर्गा पत्रो, कट्टका, दीपक, पत्रक, वया विद्या, विद्या,
भृगुश्री, विद्या, श्रीवैरया मन्त्री पत्र, तमर मन्त्रिणी, विद्या, काह,
दुर्गा, दिव्या सुरोद्भवा ॥ ६४-७० ॥

पद्म-या गी, जी मागो अपरश्याम दन्तिना ।
रमाञ्जन भूङ्गाज पत्रङ्गा परिपेलमम् । ७१
दुर्गा श्री गङ्गा वामा श्यामाक मन्धनाकुली ।
मन्त्री श्यामनाम मन्त्रिणा श्री ननुद्भवा ॥७२
रमा श्री गङ्गावती साताश्रीना हरिणा ।
मेनाद उगमन्त्री विद्या श्रीवैरुन्नी ॥७३
मा श्री गङ्गावती श्रीवैरुन्नी श्री ॥ गङ्गा ।
पत्रिका पद्म श्री पद्मनाभमन्त्रिणा ॥७४
मन्त्रिणी पद्मनाभमन्त्रिणा श्रीवैरुन्नी ।
मन्त्रिणा श्रीवैरुन्नी श्रीवैरुन्नी श्रीवैरुन्नी ॥७५
मन्त्रिणा श्रीवैरुन्नी श्रीवैरुन्नी श्रीवैरुन्नी ॥७६
मन्त्रिणा श्रीवैरुन्नी श्रीवैरुन्नी श्रीवैरुन्नी ॥७७
मन्त्रिणा श्रीवैरुन्नी श्रीवैरुन्नी श्रीवैरुन्नी ॥७८

पनङ्गी, परिवेलव, दुस्पर्जा, गुरुणी, वामा, श्यामाक, गन्धताकुली, रूप-
पर्णी, व्याघ्रनख, मन्त्रिणा, चतुरगुला, रग्मा, अकुरारफोला, ताला
स्फोता, हरेगुफा, येलप्र, वेलेस, तुम्बी, विपाणी, लोघ्रमुष्पिणी,
मालती, कम्कृष्णा, धृषिकका, जीविता, पणिका, गुडुची, सगरा, तिक्त
संज्ञायाना, इमनरह के सभी पदार्थों का मन्त्रय राजा को अपने पुरमे करना
चाहिए । अमया, आमलक, विधीतक, प्रियगु, घातकी, पुष्प मोच,
अजुनामन, अतन्ना स्त्री, तुवरिका स्योता, कटुफल, भूर्जपत्र, शिलापत्र,
पाटला पत्र, लोमक, समझा, त्रिवृतामूल कार्यास, गेरिक, अञ्जत
॥ ७१-७७ ॥

विद्रुमं स मधुच्छिष्टकुम्भिकाकुमुदोत्पलम् ।
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थकिशुका । शिशुपा शमी ॥७८
प्रियालपीलुकासारिशिरीषाः पद्मकन्तया ।
विल्वोऽग्निमन्थः प्लक्षञ्च श्यामाकश्च वक्रो घनम् ॥७९
राजादनं करीरञ्च धान्यकं प्रियकस्तथा ।
कङ्गुलाशोकवदराः कदम्बस्रदिरद्वयम् ॥८०
एषा पत्राणि सारणिमूलानि कुमुमानि च ।
एवमाशीनिचान्वा निकवायाख्योमतोरसः ॥८१
प्रयत्नेन नृपथेष्ठ ! राजा सञ्चिनुयात्पुरे ।
कोटाश्च मारणे याग्या व्यङ्गतायां तथैव च ॥८२
वातधूमाश्च मार्गणा दूषणानि तथैव च ।
घार्याणि पाथिकद्रुमै तानि वक्ष्यामि पाथिव ॥८३
प्रियाणा धारणं कार्यं प्रयत्नेन महीभुजा ।
विचित्राश्चाङ्गदा धार्या विपस्य क्षमनास्तथा । ८४

विद्रुम—मधुच्छिष्ट—कुम्भिका—कुमुदोत्पल—न्यग्रोध—उदुम्बर—
मधुगय—किशुक—शिशुप—शमी—प्रियाल—पीलुका—सारि—शिरीष—
पद्मक—विल्व—अग्निमन्थ—प्लक्ष—ञ्च—श्यामाक—वक्र—घन—राजादन—

फरोर-घान्यक-श्रिाव-संकोल-अशोक-वदर-कदम्ब--रदिर-इनके पत्र-सार-मूल और कुमुप इस प्रकार के तथा अन्य आदि कषाय नाम वाला रस माना गया है । हे नृपो मे परमश्रेष्ठ ! राजा को चाहिए इन सबका प्रयत्नपूर्वक अपने पुर मे सञ्चय करे । ध्यङ्गता मे मारण मे योग्य कीट-मागों के वातघूम तथा दूषण राजाओ को दुर्ग मे रखने चाहिए हे पाथिव ! उनको मे बतलाऊंगा । महोभुज को प्रयत्न पूर्वक विषो को धारण करना चाहिए । विचित्र अङ्गद तथा विष के शमन करने वाले भी रखने चाहिए ॥७८-८४ ॥

रक्षोभूततपिशाचघ्ना पापघ्नाः पुष्टिवधनाः ।
 कलाविदश्च पुरुषाः पुरे धार्याः प्रयत्नत ॥ ५
 भीतान् प्रमत्तान् कुपितास्तथैव च विमानितान् ।
 कुभृत्यान् पापशीलाश्च न राजा वासयेत्पुरे ॥६
 यन्त्रायुधाट्टालचयोपपन्न समग्रधान्योर्पाधिसम्प्रयुक्तम् ।
 वणिग्जनैश्च वृत्तमावसेत दुर्गं सुगृप्तं नृपातः सदैव ॥७

राजा के द्वारा अपने पुर मे राक्षस, भूत और पिशाचो के हनन करने वाले-पापो का विनाश करने वाले-पुष्टि के बढाने वाले कलाधो के वेत्ता पुरुष प्रयत्न पूर्वक रखने चाहिए । ॥ ८५ ॥ जो पुरुष भीत-प्रमत्त-कुपित--विमानित-पापशील और कुभृत्यो को अपने पुर मे न भी नही बसाना चाहिए ॥ ८६ ॥ अनेक आयुध-अट्ट लिकाओ के समूह से उपपन्न तथा सम्पूर्ण धन्य एव औषधियो से समुत्त-वणिग्जनों के द्वारा समाकीर्ण और भलोभाति रक्षित दुर्ग मे ही राजा को सदैव निवास करना चाहिए ॥८७ ॥

६६— राजधर्म वर्णन (१)

रक्षोऽनानि विपन्नानि यानि धार्याणि भूभुजा ।
 अगदानि समाचक्ष्व नानि धर्मभृताम्बर ! ॥१
 वित्वाटकी यवक्षारं पाटलावाहिलकोपणाः ।
 श्रीपर्णी शल्लकीयुक्तोनिववायः प्रोक्षणपरम् ॥२
 सविषं प्रोक्षित तेन सद्यो भवति निविषम् ।
 यवसन्धवपानीयवस्त्रशय्यासनोदकम् ॥३
 कवचाभरणं छत्रं बालध्वजनवेश्मनाम् ।
 शैलुः पाटलातिविषा शिशुमूर्धा पुनर्नवा ॥४
 समङ्गावृषमूलञ्च कपित्थवृषशोणितम् ।
 महादन्तशठन्तद्वत् प्रोक्ष्णं विपनाशनम् ॥५
 लाक्षाप्रियंगुमञ्जिष्ठा सममेला हरेणुका
 यष्ट्याह्वा मधुरा नीव बभ्रुपित्तेनकल्पिताः ॥६
 निखनेदगोविषाणस्यं सप्तरात्रं महीतले ।
 ततः कृत्वा मणि हेम्ना बद्धं हस्तेन धारयेत् ॥७

महर्षि मनु ने कहा—हे धर्मधारियो मे परमश्रेष्ठ ! राजाओं के हनन करने और विषों का नाश करने वाले भी राजा को धारण करने अर्थात् रखने चाहिए उन अगदों को घाप बतलाइये ॥१॥ श्रीमत्स्य भगवान् ने कहा—वित्वाटकी, यवक्षार पाटला, वाहिल कोपणा, श्रीपर्णी और मास्तकी इनका बवाय सर्वश्रेष्ठ प्रोक्षण होता है । यदि कोई भी विषयुक्त हो तो उसमें प्रोक्षित होकर वह तुरन्त ही निविष हो जाता करता है । यव, सैन्धव, पानी, वस्त्र, शय्या, आसन, उदक, कवचाभरण, बाल ध्वंजन, वेश्म, इनके विष का नाश शैलु, पाटल, अतिविषा, शिशु, मूर्धा, पुनर्नवा, समङ्गा, वृषमूल, कपित्थ, वृषशोणित और महादन्तशठ इन सबके उसी मालि प्रोक्षण करने से हो जाता करता है ॥ २ । ३ । ४

। १॥ लक्षा, त्रिभङ्ग, मञ्जिष्ठा, ये तद्वत् सन्तान मय और एता (इना-
दयो), हरेष्टुता, मष्टि नामस्यतो, मधुरा वधुदित्त से कलित्त कर
रहे । इनके अनन्तर मदि को हेम से बद्ध करके हाथ में धारण करना
चाहिये ॥ ६, ७॥

सन्मृष्टं मदिपत्तेन मद्यो भवति निविपम् ।
मनोहवया शमोपत्रं नृन्दिवा श्वेतनर्पयाः ॥८
कश्चिपद्मृष्टमञ्जिष्ठा पिनेन इनइनकलित्ताः ।
मुनो गो क्विनाश्च मौन्याक्षिप्तोजरोगदः ॥९
विपदित्त्वं परम जायं मगिरलञ्च पूर्ववत् ।
मृषिका जनुका चानि हन्ते वद्धा विपादहा ॥१०
हरेष्टुतांती मञ्जिष्ठा रजनी मधुरामधु ।
अज्ञत्वक् सुग्म लक्षा इवपित्तं पूर्ववद्भुवि ॥११
वादित्राणि पनाकाश्च पिष्टंरैतः प्रनेपिताः ।
श्रुत्वा मृष्टता समाप्राप मद्योभवति निविपः ॥१२
श्रुपम पञ्चलदशं मञ्जिष्ठा रजनीद्वयम् ।
मृष्टमलात्रिदृतापत्र विडङ्गानोन्नावरणी ॥१३
मधुक वेनम क्षौद्र विपाणे च निधापयेत् ।
तन्मादुष्णाम्बुना भाव प्रागुक्तं योजयेत्ततः । १४
शुबल सर्जरसोपेतसर्पया एलवाल्कं ॥१५
मुवोगा तन्करनुरी कुमुमैरजुंनस्य तु ।
धुनो वासुगृहे हन्ति विप स्यावरजङ्गमम् ॥१६

इतन्ते सन्मृष्ट मदिप तुल्य ही निविप हो जाना करता है ।
मनोहवया, शमोपत्र, नृन्दिवा, श्वेत नर्पया, कश्चिपद्, मृष्ट, मञ्जिष्ठा,
पित्त के द्वारा इनइन कलित्त किये हुए है सोम्य ! कुता, गो और
कविना के किये आक्षिप्त यह दूनरा अशद होता है ॥ ८-१५ ॥ पूर्व को
मौद्रि मगिरल परम विषयित्त करना चाहिये । मृषिका और जनुका भी

हाथ में बाँधने पर विष के अपहरण करने वाली होती है ॥ १० ॥ हरेणु मांभी, मन्त्रिष्ठा, रजनी हल्दी, मधुका, मधु, अश्रत्क, सुरम, लाक्षा (लाख)—इनको पूर्व की ही भाँति श्वान को पिल लेकर पेयण करे करे और इनसे वादित्रो और पताकाओ पर प्रलेप करे तो यवण करके—देख करके और मूँष काके सुरम ही विष से रहित हो जाया करता है । ॥ ११ । १२ ॥ व्युषण—पाँवो लक्षण—मजीठ—दोनों प्रकार की हल्दी—छोटी इनायवी—शिवतापत्र—विडङ्ग—इन्द्र वास्पी—मधुक—त्रैलस और शोद्र—इन सबको विपाण में निघागिन करो केवल उष्ण जल से पहिले बत्ताये हुए को योजित करना चाहिए । शुक्लमर्ज रस से युक्त—सर्पप—और एलव लुकों से समन्वित—सुवोगा—नम्कर—सुर तथा अर्जुन वृक्ष के पुष्प इनके द्वारा निर्मित घूप निवास गृह में देवे तो म्याबर और जङ्गम दोनों के विष का हनन हो जाया करता है ॥ १३-१६ ॥

न तत्र कौटा न विषन्दुंगा न मरीसृपाः ।

न कृत्या कर्मणाञ्चापि धूपोऽयं यत्र दह्यते ॥ १७

कल्पितं रचन्दनक्षीरपलाशद्रुमवल्कलैः ।

मूर्खलावालुसरसानाकुलीतण्डलीयकैः ॥ १८

यथायः सर्वोदकार्येषु काकमाचीयुता हितः ।

रोचनापयनेपालीकुङ्कुमंस्तिलकान् वहन् ॥ १९

विपनं बाध्यते स्याच्च नरनारीनृपप्रियः ।

चूर्णं हंरिद्रामञ्जिष्ठाकिणिहीकणनिम्बजैः ॥ २०

दिग्ध निविषतामेति गायं सर्वविपादितम् ।

शिरिषस्य फल पत्रं पृष्पंत्वङ्मूलमेव च ॥ २१

गोमूत्रघृष्टो ह्यगदः सर्वकर्मकरः स्मृतः ।

एकधीर ! महीपथ्यः शृणु चातः परं नृपः ! ॥ २२

जिस स्थान में इन घूप को जलाया जाता है वहाँ पर कोई भी कीट नहीं रहते हैं । न कोई विष का प्रभाव ही रहता है और दग्दुर

नया सरोसूय भी नहीं रहा करते हैं। वहाँ पर कृत्या के भी कर्मों की स्थिति नहीं होती है ॥ १७ ॥ चन्दन, शीर, पलाश, द्रुम वल्कल, मूर्वा, एला, बालु सरसा, नाकुला और तण्डुलीय इससे कल्पित क्वाथ जो कि कार्मुवी से युक्त हो तो वह सब उद कार्यों में हितप्रद होता है। रोचना पत्र, नेपाली और कुकुम से युक्त तिलो की वहन करने वाला नर-नारी, नून प्रिय कभी भी विषो से वाधित नहीं हुआ करता है। हरिद्रा, मज्जीठ, किण ही कण और निम्बज इनसे दिग्ध गन्ध जो सब विषो से अर्दित हो शीघ्र ही निविपता को प्राप्त हो जाता है। शिरीष वृक्ष के फल पत्र, पुष्प, त्वचा और मूल इन पाँचो अङ्गो को गोमूत्र के साथ पीस डाले तो यह सब काम करने वाला अगद हो जाता है—ऐसा कहा गया है। हे एक वीर ! ह नून ! इससे भी परम महोपधियों के विषय में मुझमें क्षाप श्रवण कीत्रिए ॥१८-२२॥

बन्ध्या कर्कोटकी राजन् ! विष्णुकान्ता तथोत्कटा ।

सतमूली सितानन्दा बला मोचा पटोलिका ॥२३

सामाविण्डा निशा च तथा दग्धहा च या ।

स्थले कर्मलिनी या च विशाली शङ्खमूलिका ॥२४

चण्डाली हस्तिमगधा गोऽजापर्णी करम्भिका ।

रवना शैव महारक्ता तथा वह्निशिखा च या ॥२५

कोशातकी नक्तमाल प्रियालञ्च सुलोचनी ।

वारुणी वसुगन्धा च तथा वं गन्धनाकुली ॥२६

ईश्वरी शिवगन्धा च श्यामला वसनालिका ।

जातुकानी महाश्वेता श्वेता च मधुयष्टिका ॥२७

वज्रकः पारिभद्रश्च तथा वं सिन्धुवारकाः ।

जीवानन्दा वसुच्छिद्रा नत्तनागरकण्टका ॥२८

हे राजन् ! बन्ध्या, कर्कोटकी, विष्णुकान्ता, उबनटा, सतमूली, सितानन्दा, बला, मोचा, पटोलिका, सामाविण्डा, निशा, दग्धरहा, स्थल

कमलिनी, विशाली, र्द्यव मूलिका, चण्डाली,^१ हस्ति मगधा, गोज्जापर्णी,
करम्बिका, रक्ता, महारक्ता, बर्हिनिखा, कौशातकी, नक्तमाल, प्रियाल,
सुलोचनी, वाङ्गी, वसुगन्धा, गन्धनाकुली, ईश्वरी, शिवगन्धा, श्यामला,
वंशनालिका, जनुकाली, महाश्वेता, श्वेता, मधुमण्डिका, वक्षक, पारिभद्र,
मिन्पुवारक, जीवानन्दा, वसुच्छिद्रा, नत नागर कण्टका ॥ २३, २४, २५
२६, २७, २८ ॥

नालश्च जाली जातीच तथाच वटपत्रिका ।
कातंस्वरं महानीला कुन्दुरुहे सपादिका ॥२६
मण्डूरुपर्णी वाराही द्वे तथा तण्डुलीयके ।
सर्पाक्षी लवली ग्राही विश्वरूपासुखाकरा ॥३०
रजापहो वृद्धिकरी तथाचैव तु शल्यदा ।
पत्रिका रोहिणी चैव रक्तमाला महोपधी ॥३१
तथामलकवन्दाकं श्यामचित्रफला च या ।
काकोली क्षीरकाकोली पौलुपर्णी तथैव च ॥३२
केशिनी वृषिकाली च महानागा शतावरी ।
गरुडी च तथा वेगा जले कुमुदिनी तथा ॥३३
स्थले चोत्पत्तिनी या च महाभूमिलता च या ।
उ-मादिनीसोमराजासर्वरत्नानिपायि च ॥३४
विशेषान्मरकतादीनि कीटपक्षं विशेषतः ।
जीवजाताश्च मणयः सर्वे धार्याः प्रयत्नतः ॥३५

नाल, जाली, जाती, वट पत्रिका, कातं स्वर, महानीला, कुन्दु-
रई, ममादिका, मण्डूरु पर्णी, वृद्धिकरी, शल्यदा, पत्रिका, रोहिणी, रक्त-
माला, महोपधी, आमलक, मन्दाक, श्याम चित्रफला, काकोली, क्षीर
काकोली, पौलुपर्णी, केशिनी, वृषिकाली, वाराही दोनो—तण्डुलीयक,
सर्पाक्षी, लवली, ग्राही, विश्वरूपा, सुखाकरा, सुरजापद, महानागा,
शतावरी, गरुडी, वेगा, जल में कुमुदिनी, स्थल में उत्पत्तिनी, महाभूमि-

सता, उग्मादिनी. सोमराजी, हे पाण्डव ! समस्त रत्न, विशेष रूप से मर-
कत आदि—विशेष रूप से कीटपक्ष, जीवजात और सब मणियाँ यत्नपूर्वक
धारण करने चाहिए ॥ २६-३५ ॥

रक्षोघ्नाश्च विषघ्नाश्च कृत्यावैतालनाशनाः ।

विशेषान्नरनागाश्च गोखरोष्ट्रसमुद्भवाः ॥३६

सर्पतित्रिगोमायुवस्त्र(क)मण्डकजाश्च ये ।

सिंहव्याघ्रर्क्षमार्जारद्वीपिवानरसभवाः ॥

कपिञ्जला गजा वाजिमहिषणभवाश्च ये ॥३७॥

इत्येवमेतैः सकलैरुपेनद्रव्यैश्च सर्वे स्वपुरं सुरक्षितम् ।

राजा वसेत्तत्र गृहं सुशुभ्रं गुणान्वितं लक्षणसम्प्रयुक्तम् ॥३८

राक्षसों के हनन वाले—विष के नाशक, कृत्या और बैताल के
नाश करने वाले—विशेष रूप से नर और नाग—गोखर उष्ट्रो समुद्भव
वाले—सर्प, तित्तिर, गोमायु, वस्त्र और मण्डकज—सिंह, व्याघ्र, ऋक्ष,
मार्जार, द्वीपी और वानरो से समुत्पन्न—कपिञ्जल, गज, वाजि, महिष
और एण से प्रसूत इस प्रकार से इन सबसे समुपेत तथा सब द्रव्यों क
द्वारा सुरक्षित अपने पुर में राजा को निवास करना चाहिए जो कि राजा
का गृह सुशुभ्र-गुणों से समन्वित और सभी सुन्दर लक्षणों से सम्प्रयुक्त
होना चाहिए ॥ ३६, ३७, ३८ ॥

६७-राजधर्म वर्णन (२)

राजरत्नारहस्यानि यानि दुर्गे निधापयेत् ।

कारयेद्वा महीभर्ता ब्रूहि तत्त्वानि तानि च ॥१

शिरीषोद्गुम्बरशमीवीजपूरं घृतप्लतम् ।

क्षुद्योगः कथितो राजन् ! मासाद्धन्तु पुरातनैः ॥२

कशेरुफलमूलानि इक्षमूलं तथा विसम् ।
 दूर्वाक्षीरघृतमण्डः सिद्धीर्ष्य मासिकः परः ॥३
 नर शस्त्रहतं प्राप्तो न तस्य मरणं भवेत् ।
 कल्मापवेणुना तत्र जनयेत्तु विभावसुम् ॥४
 गृहे त्रिरपसव्यन्तु क्रियते यत्र पार्थिव ! ।
 नान्योऽग्निर्ज्वलते तत्र नात्र कार्याविचारणा ॥५
 कार्पासस्था भुजङ्गस्य तेन निर्मोचनं भवेत् ।
 सर्पनिवासने धूपः प्रशस्तः सतत गृहे ॥६
 सामुद्रसन्धवयवा विद्युद्दग्धा च मृत्तिका ।
 तयानुलिप्तं यद्वेश्म नाग्निना दह्यते नृप ! ॥७

महर्षि मनु ने कहा—मही के भरण करने वाला अपने दुर्ग में
 जिन राज्य की रक्षा के रहस्यों को निष्ठापित करे अथवा करावे आप
 कृपा करके उन तत्त्वों को यतलाइये ॥ १ ॥ श्रीमत्स्य भगवान् ने कहा—
 हे राजन् ! शिरोप, उदुम्बर, शमो, बीजपूर को घृत से प्लुत करे इसको
 पुगतन लोगो के द्वारा द्युद्योग कहा गया है जो मास के अर्द्ध तक होता
 है ॥ २ ॥ कशेरु के फल और मूल, ईख का मूल, विस, दूर्वा, क्षीर घृत,
 से मण्ड मिश्र होता है जो पर एव मासिक होता है ॥ ३ ॥ शस्त्र से हत
 हुए नर को प्राप्त हो जावे तो उसका मरण नहीं होता है । जहाँ पर
 कल्माप वेणु से विभावसु का जनम करना चाहिए । हे पार्थिव ! जहाँ
 पर गृह में तीन बार अपसव्य किया जाता है । वहाँ पर अन्य कोई भी
 अग्नि नहीं जलती है—इस विषय में कोई विचारण करने की आवश्यकता
 नहीं है । कार्पास में स्थित हो तो उससे भुजङ्ग का निर्मोचन हो जाता
 है । यह धूप निरन्तर सर्पों के निर्वासन करने के कर्म में परम प्रशस्त
 होता है ॥ ३, ४, ५, ६ ॥ सामुद्र सन्धव, यव, विद्युत् से दग्ध मृत्तिका,
 इससे जो गृह अनुलिप्त किया जावे तो हे नृप ! वह वेश्म अग्नि से कभी
 भी दग्ध नहीं किया जाता है ॥७॥

दिवा च दुर्गे रक्षयोऽग्निर्वीति वाते विशेषतः ।
 िपाच्च रक्षयो नृपतिस्तत्र युक्तिनिबोधमे ॥८
 क्रीडानिमित्तं नृपति धारयेन्मृगपक्षिणः ।
 अन्न वं प्राक् परीक्षेत वह्नो चान्यतरेषु च ॥९
 वस्त्रं पुष्पमलङ्कारं भोजनाच्छादनं तथा ।
 नापरीक्षितपूर्वंतु स्पृशेदपि महामतिः ॥१०
 स्याच्चासौ वक्त्रसन्तप्त, सोढ्वे गञ्च निरीक्षते ।
 विपदोऽथ विप दत्त यच्च तत्र परीक्षते ॥११
 स्रस्तोत्तरीयो विमनाः स्तम्भकुड्यादिभिस्तथा ।
 प्रच्छादयति च त्रिमान लज्जते त्वरते तथा ॥१२
 भुव विलिखति ग्रीवा तथा चालयते नृप ! ।
 कण्डूयति च मूर्धानि परिलोड्याननन्तथा ॥१३
 क्रियासु त्वरितो राजन् ! विपरीतास्वपि ध्रुवम् ।
 एवमादीनि चिह्नानि विपदस्य परीक्षयेत् ॥१४

दिन के समय में दुर्ग में अग्नि की रक्षा करनी चाहिए । विशेष रूप से उस समय में रक्षा करनी आवश्यक है जब वायु बहना किया करता है । खास तौर से नृपति की सुरक्षा अवश्य ही बननी चाहिए । इसमें जो युक्ति अमल में लाई जावे उसको भी तुम मुझसे समझ लो । ॥ ८ ॥ क्रीडा के निमित्त राजा को मृगों और पक्षियों को धारण करना चाहिये । सर्व प्रथम अग्नि में अन्न की परीक्षा कर लेनी अत्यावश्यक है । अन्य तर पदार्थों में भी वस्त्र, पुष्प, अलङ्कार, भोजन तथा आच्छादन इन सबका महान् मति वाले राजा को पहिले भली भाँति परीक्षा किये बिना कभी भी स्पर्श नहीं करना चाहिए ॥ ९, १० ॥ यह वक्त सन्तप्त होने और उद्वेग के सहित विपतियों को देखता है । वहाँ पर दिये हुये विप की जो परीक्षा करता है अपने उत्तरीय वस्त्र को छोड़ देने वाला- उदात्त स्तम्भ कुड्यादि से अपने आपको ढक लिया करता है अर्थात्

छिपा लिया करता है और उसी प्रकार से लज्जा करता है एवं शीघ्रता किया करता है ॥ ११, १२ ॥ हे नृप ! भूमि पर लिखता है—गरदन को घुमाया करता है—मस्तक को खुजलाता है और अपनी आत्मा का परि-लोडन किया करता है तथा हे राजन् ! इन विपरीत क्रियाओं में भी निश्चय ही शीघ्रता वाला होना है । इसी तरह के जो चिह्न होते हैं उन विपद के लक्षणों की परीक्षा करनी चाहिए ॥ १३, १४ ॥

समीपे विक्षिपेद्बहनी तदन्नं त्वरयान्वितः ।

इन्द्रायुधसवर्णन्तु रुक्षं स्फोटसमन्वितम् ॥१५

एकावर्तन्तु दुर्गन्धि भृशञ्चटचटायते ।

तद्मसेवनाज्जन्तोः शिरोरोगश्च जायते ॥१६

सविपेऽङ्गे विलीयन्ते न च पार्थिव ! मक्षिकाः ।

निलोनाश्च विपद्यन्ते संस्पृष्टे सविपे तथा ॥१७

विरज्यति चकोरस्य दृष्टिः पार्थिवसत्तम ! ।

विकृतिञ्च स्वरो याति कोकिलस्यतथानृप ! ॥१८

गतिस्खलति हसस्य भृङ्गराजश्च कूर्जति ।

क्रीञ्चो मदमथाभ्येति कृकवाकुर्विरोति च ॥१९

विक्रोशतिशुकोराजन् ! सारिकावमतेततः ।

चामीकरोऽन्यतोयातिमृत्युं कारण्डवस्तथा ॥२०

मेहते वानरो राजन् ! ग्लायते जीवजीवकः ।

दृष्टरोमा भवेद्बधुः पृषतश्चैव रोदिति ॥२१

समीप में स्थित लोगों का त्वरग से समन्वित होते हुए ही उस अन्न को भस्म में प्रक्षिप्त कर देना चाहिए । इन्द्रायुध के वर्ण के समान—रुक्ष, स्फोट से समुत्, एकावर्त, दुर्गन्ध में युक्त होकर अत्यन्त धर-चर ध्वनि किया करती है । उसके घम के सेवन से जन्तु के शिर में वेदना और रोग समुत्पन्न हो जाया करता है ॥ १५, १६ ॥ हे पार्थिव ! विप-में गुप्त अन्न में मक्षिका विलीन नहीं हुआ करती है तथा सविप अन्न

के संस्पर्श होने पर वे मक्षिकाएँ उसी में विलीन हो जाया करती हैं ।
 ॥ १७ ॥ हे पार्थिव श्रेष्ठ ! चकोर पक्षी की दृष्टि विगत अर्थात् हीनता
 को प्राप्त हो जाया करती है । हंस की गति जो कि अति प्रशंसनीय
 होती है स्थलित हो जाया करती है -भृङ्गराज कूजन करता है । क्रीञ्च
 मद को प्राप्त हो जाता है और वृकवाकु विरुत करने लगता है । हे
 राजन् ! शुक विक्रोशन करता है--सारिका वमन करती है । चामीवर
 ग्रन्थ ओर जाता है--कारण्डव मृत्यु को प्राप्त होता है--हे राजन् ! वानर
 मेहन करता है--जीव जीवक ग्लानि करता है--अम्बू हूट रोमो घाला
 होता है और पृथ्वी रुदन करता है ॥ ८-२१ ॥

हृषमायाति च शिखी विपसन्दर्शनान्नुप । ।

अन्नञ्च सविष राजशिचरेण च विपद्यते ॥२२

तदा भवति निःश्राव्य पक्षपुं पितोपमम् ।

व्यापन्नरसगन्धञ्च चन्द्रिकाभिस्तथा युतम् ॥२३

व्यञ्जनानान्तु शुष्कत्वं द्रवाणां बुद्बुदोद्भवः ।

ससन्धवाना द्रव्याणाजायतेफेनमालिता ॥२४

सस्यराजिश्च ताम्रा स्यात् नीला च पयसस्तथा ।

कोकिलाभा च मद्यस्य तोयस्य च तपोत्तम । ॥ ५

धान्यम्लस्य तथा कृष्णा कपिला कोद्रवस्य च ।

मधुश्यामा च तक्रस्य नीला पीता तथैव च ॥२६

घृतस्योदकसङ्काशा कपोताभा च सत्तनुः ।

हरिता माक्षिकस्यापि तैलस्यच तथारुणा ॥२७

फलानामप्यपवावना पाकः क्षिप्रं प्रजायते ।

प्रकोपश्चैव पववानां भाल्याना म्लानता तथा ॥२८

हे नृप! विष के सदृशं से शिखी हर्षको प्राप्त होता है। हे राजन्! विष के सहित अन्न चिरकाल से विपन्न करता है । उस समय से निःश्राव्य - व्यापन्न रस और गन्ध से युक्त - चन्द्रिकाओ से समन्वित और

पशु पशुपितोपम हो जाना है ॥२२, २३॥ व्यञ्जनों में शुष्कता—द्रव पदार्थों में घुद्धों की उत्पत्ति और जो संघद से युक्त पदार्थ हैं उनमें फेन मालिना उत्पन्न हो जाया करती है । जो सस्यो राजि है ताम्र वर्ण वाली और पय को आभा नीली हो जाती है । मद्य एवं तोय की आभा कोकिला के तुल्य हो जाया करती है । हे नृपोत्तम ! धान्याम्न की कृष्ण और को-द्रव की कपिल—सशकी मधुश्याम, नील, पीन, हो जाया करती है । घृत की उदक के समान तथा कपोल जैसी आभा हो जाती है । माक्षिक (शहद) की हरी एवं तैल की अरुण आभा होती है । जो फल अपवच होते हैं उन पर प्रकोप होना है तथा माल्यो को म्लानता हो जाया करती है ॥२४-२८॥

मृदुता कठिनानां स्यान् मृदूनाञ्च विपर्ययः ।

मूढमाणां रूपदलनं तथा चैवातिरङ्गता ॥२६

श्याममण्डलता चैव वस्त्राणा वै तथैव च ।

लोहानाञ्च मणीनञ्च मलयङ्कोपदिग्धता ॥३०

अनुत्पन्नगन्धानां माल्यानाञ्च नृपोत्तम ।

दिग्धता च विज्ञेया तथा राजन् । जलस्य तु ॥३१

दन्तकाण्डत्वचः श्यामास्तनुसत्वास्तथैव च ।

एवमादीनि चिह्नानि विज्ञेयानि नृपोत्तम । ॥३२

तरमाद्राजा सदा तिष्ठेन् मणिमन्त्रोपघांगणैः ।

उर्वरैः सरक्षितो राजा प्रमादपरिवर्जकः ॥३३

प्रजावरोर्मूलमिहावनीशस्तद्रक्षणाद्राष्ट्रमुपैति वृद्धिम् ॥

तस्मात्प्रयत्नेन नृपस्य रक्षा सर्वेण कार्या रविवंशवन्त्र ! ॥३४

जो कठिन एवं कठोर द्रव्य हैं उनमें कोमलता घोर जो स्वभाव से ही मृदु पदार्थ हैं उनमें विपर्यय हो जाया करता है । मूढम पदार्थों के रूप का दलन होता है तथा अतिरङ्गता आ जाया करती है । वस्त्रों में श्याम मण्डलता होती है । सब प्रकार के लोह और मणियों में मल के

पङ्क की उपदिग्भता हो जाती है । हे नृपोत्तम ! जो अनुलेपन करने के द्रव्य हैं जिनमें सुन्दर गन्ध होती है उनमें और मात्स्यो में तथा जल में विगन्धता उत्पन्न हो जाया करनी है । दन्तकाष्ठ की त्वचा श्याम घोर तनु सन्व हो जाती है । हे नृपोत्तम ! इस प्रकार से इन चिन्हों को जान लेना चाहिए । इसी कारण से राजा को सर्वदा मणि-मन्त्र और औषधों के गणों से मंयुत होकर ही निवास करना चाहिए अथवा स्थित रहना चाहिए इन उक्त पदार्थों से अच्छी तरह से संरक्षित एव प्रमाद से परिवर्जित राजा को होना चाहिए ॥२६-३३॥ महा पर अश्वनीश राजा के तरह का मूल होता है । उसका संरक्षण रहने से ही राष्ट्र वृद्धि को प्राप्त होता है । हे रविवश चन्द्र ! इसी कारण से सब प्रकार के प्रयत्न से नृप की रक्षा करनी चाहिए ॥३४॥

६८-राजधर्म वर्णन (३)

राजन् । पुत्रस्य रक्षा च वर्तव्या पृथिवीक्षिता ।
 आचार्यश्चात्र कृतव्यो नित्ययुक्तश्च रक्षिभिः ॥१॥
 धमकामार्थशास्त्राणि धनुर्वदञ्च शिक्षयेत् ।
 रथे च कुञ्जरे च न व्यायामङ्कारयेत्सदा । २
 शिल्पानि शिक्षयेच्चैन नाप्तो मिथ्या प्रियं वदेत् ।
 शरीररक्षाध्याजेन रक्षिणोऽस्य नियोजयेत् ॥३॥
 नचास्य सङ्गो दातव्यः क्रुद्धलुब्धावमानितं ।
 तथा च विनयेदेन यथा च योवनगोचरे ॥४॥
 इन्द्रियैर्न विकृष्येत सता मार्गत्सिद्धिर्गमात् ।
 गुणाघानमशक्यन्तु यस्य कतुं स्वभावयः ॥५॥
 दन्धन तस्य कतव्यं गुप्तदेश सुखान्वितम् ।
 अविनीतकुमार हि पुलमासु विशीर्यते ॥६॥

अधिकारेषु सर्वेषु विनीतं विनियोजयेत् ।

आदौ स्वल्पे ततः पश्चात्क्रमेणाय महत्स्वपि ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! राजा को अपने पुत्र की रक्षा करना चाहिये और रक्षा करने वालों के सहित नित्य युक्त यहाँ पर आचार्य को नियुक्त करना चाहिए ॥१॥ उस पुत्र को धर्म—काम और धर्म शास्त्रों को तथा धनुर्वेद की शिक्षा दिलवानी चाहिए । रथ में तथा कुञ्जर में भी दीक्षित करावे और सदा इस अपने पुत्र से व्यायाम करवाना चाहिए ॥२॥ इस पुत्र को अनेक शिल्पों की शिक्षा दिनवावे । ऐसा प्रयत्न करे । कब वहाँ प्राप्त अर्थात् सत्य बन्ना होवे और कभी उम्मे मिथ्या बोलने का अवसर ही न होवे । राजा के पुत्र के शरीर की रक्षा के लिए से रक्षियों को नियोजित करना चाहिए ॥३॥ क्रुद्ध—लुब्ध और अपमानित हुए व्यक्तियों के साथ इस पुत्र का सङ्ग कभी भी न होने देवे । जैसे ही यह जीवन में पदार्पण करे इसको विनीत बनाना चाहिए ॥४॥ सज्जनों के सुदुर्गम मार्ग से इन्द्रियों के द्वारा अपकृष्ट नहीं होने देवे । स्वभाव में ही अशुभ गुणों का आधान करना चाहिये । किसी गुप्त देश में मुख से समन्वित उसका वर्णन करना चाहिए । जो राज कुमार अविनीत होता है उसका कुल शीघ्र ही विगोण हुआ करता है । सभी अधिकार के बावों में विनीत का नियोजन करना चाहिए । आदि में छोटे पद पर इसके पश्चात् क्रम से बड़े पदों पर भी नियुक्तियाँ करे ॥५, ६, ॥

मृगया पान्मन्त्राश्च वर्जयेत् पृथिवीपतिः ।

एतान्ये सेवमानास्तु विनष्टाः पृथिवीक्षतः ॥८

ब्रह्मो भद्रादल ! तेषां सङ्ख्या न विद्यते ।

द्विवा स्वाप क्षितीशस्तु विशेषेणविवर्जयेत् ॥९

वाक्पाज्जय न कर्मभ्य दण्डपा . प्यमेव च ।

परोक्षान्तरा च तथा वजनीया महीक्षिता ॥१०

अयंस्य दूषण राजा द्विप्रकारं विवर्जयेत् ।

अर्थानां दूषणञ्चकं तथार्थेषु च दूषणम् ॥११

प्राकाराणां समुच्छेदो दुर्गादीनामसत्त्विया ।

अर्थानां दूषणं प्रोक्तं विप्रकीर्णत्वमेव च ॥१२

अदेशकाले यद्दानमपात्रो दानमेव च ।

अर्थेषु दूषणं प्रोक्तमसत्कर्मप्रवर्तनम् ॥१३

काम, क्रोधोमदोमानो लोभो हर्षस्तथैव च ।

एते वज्रपाः प्रयत्नेन सादरं पृथिवीक्षिता ॥१४

जो पृथिवी का स्वामी हो उसको मृगया (शिकार)—मदिरा पान और अशक्वडा (दूत) का परिवर्जन कर देना चाहिए । इन का जो सेवन किया करते हैं वे भूपतिगण विनष्ट हो जाया करते हैं । हे नरशा-टूल ! ऐस बड़न—से राजा लोग हैं उनकी कोई भी सख्या नहीं है । राजा को दिन में निद्रा लेना विशेष रूप से बर्जित कर देनी चाहिए । राजा का कर्त्तव्य है कि ह कभी भी बर्णों की बठोरता न बरे तथा दण्ड देने में भी अत्यन्त बठोर उसे नहीं होना चाहिए । नृपति को परोक्ष में किसी की भी निन्दा नहीं करनी चाहिए । अथ के दो प्रकार के दूषण का वर्जन राजा को करना आवश्यक है—एव अर्थों का दूषण तथा अर्थों में दूषण । प्रकारों का समुच्छेद और दुर्गादि की असात्त्विया मही अर्थों का दूषण कहा गया है तथा विप्रकीर्णता भी अर्थों का दूषण होता है । अनुचित देश तथा अनुशुक्त काल में जो दान दिया जाता है और दान का जो पात्र ही नहीं है उसको दान देना एव असत्कर्म में प्रवर्तन करना अर्थों में दूषण बनाया गया है । पृथिवी के स्वामी को प्रयत्न पूर्वक आदर क मन्त्रित काम—क्रोध—मद—मान—लोभ और हर्ष इनका वर्जन अवश्य ही कर देना चाहिए ॥८—१४॥

एतेषां विजयं कृत्वा कार्यो भृत्यजयन्ततः ।

कृत्वा भृत्यजयं राजा पौरान् जानपदान् जयेत् ॥१५

कृत्वा च विजयन्तेषां शत्रून् बाह्यास्ततो जयेत् ।

बाह्याश्च विविधा ज्ञेयास्तुल्याभ्यन्तरकृत्रिमाः ॥१६॥
 गुरुवस्ते यथापूर्वं तेषु यत्नपरो भवेत् ।
 पितृपतामह मित्रमामित्रञ्च तथा रिपोः । १७
 कृत्रिमञ्च महाभाग ! त्रिं त्रिविधमुच्यते ।
 तथापि च गुरुः पूर्वं भवेत्तत्रापि चादृतः ॥१८॥
 स्वाम्यमात्यो जनपदो दुर्गं दण्डस्तथैव च ।
 कोशोमित्रञ्चधर्मज्ञ ! सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥१९॥
 सप्ताङ्गस्यापि राज्यस्य मूलस्वामी प्रकीर्तितः ।
 तन्मूलत्वात्तथाङ्गानां सतुरक्ष्यः ॥२०॥
 पङ्कजं रक्षा कतव्या तथा तेन प्रयत्नतः ।
 अङ्गं भयो यस्तथैकस्तु द्रोहमाचरतेऽल्पधीः ॥२१॥

इन सब पर अपना पूरा विजय करके ही राजा को फिर अपने
 भृत्यों पर भी जय प्राप्त करना चाहिए । जब भृत्यों पर विजय करली
 ज वै तो फिर इसके उपरान्त पौरों एवं जनपदों पर विजय करना
 आवश्यक होता है ॥१२॥ इन सब पर विजय को स्थापित करके इसके
 अनन्तर ही राजा को बाहर रहने वाले शत्रुओं पर जय का लाभ लेना
 चाहिए । जो बाह्य शत्रु होते हैं वे अनेक प्रकार के हूमा करते हैं । वे
 तुल्य—आभ्यन्तर और कृत्रिम होते हैं ॥१६॥ वे यथा पूर्व बहून् बड़े
 हूमा करते हैं इसलिए उनमें यत्न परायेण राजा को होना आवश्यक है ।
 पिता पितामह के समय में चले आने वाला मित्र तथा रिपु ना अमित्र
 (शत्रु) है महाभाग ! कृत्रिम मित्र तीन प्रकार का कहा जाता है । तो
 भी पूर्व गुरु होता है । उनमें भी आदृत होना चाहिए । हे धर्मज्ञ !
 स्वामी—अमात्य—जनपद—दुर्ग—दण्ड—कोश और अमित्र इन सात
 अङ्गों वाला राज्य कहा जाया करता है । यद्यपि राज्य का ये उपर्युक्त
 भाग अङ्ग होने ह ता भी इन सातों में भी मूल स्वामी ही कीर्तित किया
 गया है । सभी अङ्गों का उसकी मूल होने से उसकी प्रयत्न पूर्वक रक्षा

करनी चाहिए । अन्य छँ बड़ों की भी उसके द्वारा प्रयत्न के साथ सुरक्षा करनी चाहिए । इन बड़ों में जो कोई एक द्रोह कित्ती भी बड़ से करता है वह अन्य बुद्धि वाला ही होता है ॥१७-२१॥

बन्धस्तस्य तु कर्तव्यः शीघ्रमेव महीदिता ।

न राजा मृदुना भाव्य मृदुहि परिभूयते ॥२२

न भाव्य दारुणेनात्तिलीक्षणादुद्विजते जनः ।

काले मृदुर्यो भवति काले भवति दारुणः ॥२३

राजा लोकद्वयापेक्षी तस्य लोकद्वय भवेत् ।

भृत्यं सह महीपाल. परिहासं विवर्जयेत् ॥२४

भृत्याः परिभवन्तीह नृप हर्षवशङ्गतम् ।

व्यसनानि च सर्वाणि भूपति. परिवर्जयेत् ॥२५

लोकसंग्रहणार्थाय कृतकव्य सनी भवेत् ।

शीण्डीरस्य नरेन्द्रस्य निश्यमुद्रित्तचेतसः ॥२६

जना विराममायान्ति सदादु सेव्यभावतः ।

स्मितपूर्वाभिभाषीस्यात्सवस्येवमहीपातः ॥२७

वध्येष्वपि महाभाग ! भ्रुकुटि न समाचरेत् ।

भाव्यधर्मभृत्श्रेष्ठ ! स्थूललक्ष्येणभूभुजा ॥२८

राजा का कर्तव्य है कि ऐसे द्रोह करने वाले व्यक्ति का बन्ध कर देवे और शीघ्र ही उसकी गँध कर बन्द कर देना चाहिए । राजा को मृदु नहीं होना चाहिए जो राजा मृदु होना रहे वह परिभूत हो जाया करता है ॥२२॥ राजा को अत्यन्त दारुण भी नहीं होना चाहिए क्योंकि अत्यन्त तीक्ष्ण राजा से प्रजाजन उद्विग्न हो जाया करते हैं । जो राजा उचित समय पर मृदु होता है तथा आवश्यकता के अनुसार उचित अवसर पर दारुण होता है वह दोनों लोकों की अपेक्षा वाला हुआ करता है और उसके दोनों ही लोक सफल हुआ करते हैं । राजा को अपने भृत्यों के साथ सभी भी परिहास नहीं करना चाहिए । जो राजा हर्ष के वशङ्गत हो

जाया करता है उसको भृत्य परिभूत कर दिया करते हैं । राजा को सभी प्रकार के व्यसनो को परिवर्जित कर देना चाहिए । लोक के संग्रहण के लिए यदि कोई व्यसन करने वाला भी होवे तो उसे कृतक व्यसनी ही होना चाहिए । जो नरेन्द्र शोण्डीर होता है उससे नित्य ही उद्विग्न चित्त वाले मनुष्य विराग को प्राप्त हो जाते हैं और उनके हृदय मे सदा दुःसेव्य भावना उत्पन्न हो जाया करती है । महीपति का कर्तव्य है कि सभी के साथ मुस्कराते हुए भाषण करने वाला होवे । जो लोग अपराधों के कारण बध के भी योग्य हो हे महाभाग ! उन पर भी राजा को अपनी भोंहिं तिरछी नही करनी चाहिए । हे घर्मधारियों मे परम श्रेष्ठ ! राजा को सर्वदा स्थूल लक्ष्य से मुक्त ही होना चाहिए ॥२३-२८॥

स्थूललक्ष्यस्य वशगा सर्वाभवति मेदिनी ।

अदीर्घसूत्रश्च भवेत् सर्वकर्मसु पार्षिवः ॥२६

दीर्घसूत्रस्य नृपतेः कर्महानिध्रुवम्भवेत् ।

रागे दपे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि ॥३०

अप्रिये चं व कर्तव्ये दीर्घसूत्रः प्रकस्यते ।

राजा सवृतमन्त्रेण सदा भाव्यं नृपोत्तम ! ॥३१

तस्यासंवृतमन्त्रस्य राजः सर्वापदो ध्रुवम् ।

कृतान्येव तु कार्याणि जायन्ते यस्यभूपतेः ॥३२

नारुद्धानि महाभाग ! यस्य स्याद्वसुधावशे ।

मन्त्रमूलसदारार्ज्यतस्मान्मन्त्रः सुरदाितः ॥३३

कर्तव्यः पृथिवीपालैर्मन्त्रभेदभयात्सदा ।

मन्त्रावत्साधितो मन्त्रः सम्पत्तीनांमुखावहः ॥३४

मन्त्रच्छन्नेन वहवो विनष्टाः पृथिवीक्षितः ।

आकारैरिङ्गितगंस्था चेष्टया भाषितेन च ॥३५

जिम नृपका मूल लक्ष्य होता है उसकी यह मम्पूर्ण मूमि वश-
गाभिनी हुआ करती है । पार्षिव को समस्त कर्मों मे दीर्घसूत्री नहीं

रहना चाहिए। जो नृपति दीर्घ मूर्खी होता है उसके कर्मों की हानि निश्चित रूप से हो जाया करती है। राग में—हृष्य में—मान में—द्रोह में—पाप कर्म में और अप्रिय कर्तव्य में दीर्घमूर्ख होना प्रशस्त माना गया है। हे नृपोत्तम ! राजा को अपना मन्त्र सवृत रखने वाला सर्वदा होना चाहिए। जो राजा अपने मन्त्र को असवृत रखता है उसको सभी आपतियाँ निश्चित रूप से आ जाया करती हैं। जिस राजा के कार्य किये जाने पर ही लोगो को मालूम हुआ करते हैं और हे महाभाग ! आरम्भ किये हुए या पूष में नहीं ज्ञात/होते हैं उस राजा के वश में यह समय वसुधा हुआ करता है। राज्य का मूलतत्त्व मन्त्र ही सदा होता है इसलिए मन्त्र को पूर्ण रूप से सुरक्षित रखना चाहिए। मन्त्र के भेद के होने वाले भय में राजाओं को सदा उसे पूर्ण रक्षित रखना आवश्यक है। मन्त्र के ज्ञाता के द्वारा सुमाधित मन्त्र सभी सम्पत्तियों का और सुख का देने वाला हुआ करता है। मन्त्र के छल से बहुत से राजा लोग विनष्ट हो गये हैं। आका — इन्द्रित—गति—नेष्टा—भाषत—नेत्र तथा मुख को विकृत—इनके द्वारा अज्ञान मनका ज्ञान हो जाया करता है और जो नीति शास्त्र में कुशल हाते है वे सभी कुछ मन का भाव जान लिया करते हैं और जो ऐसे कुशल हैं उनके वश में यह सम्पूर्ण वसुधरा रहा करती है ॥२६—३५॥

नेत्रवक्त्रविकारंश्च गृह्यतेऽतर्गत मनः ।

नयस्य कुशलेस्तस्य वशे सर्वा वसुधरा ॥३६

भवतीह महीपाले सदा पार्थिवनन्दन ! ।

नैकस्तु मन्त्रयेन्मन्त्र राजा न बहुभि सह ॥३७

तारोहेद्विपमा नावमपरोक्षितताविकम् ।

ये चास्य भूमिजयितो भवेयुः परिपन्थिनः ॥३८

तानानयेद्वशे सर्वान् सामादिभिरुपक्रमैः ।

यथा न स्यात् कृशाभावः प्रजानामनवेक्षया ॥३९

तथा राज्ञा प्रकृतं व्यं स्वराष्ट्रं परिरक्षता ।

मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ॥४०

सोऽचिराद् भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सत्रान्धवः ।

भृतो वत्सो जातवत्सः कर्मयोग्यो यथा भवेत् ॥४१

तथा राष्ट्रं महाभाग ! भृतं कर्मसहम्भवेत् ।

यो राष्ट्रं मनुगृह्णाति राज्यं स परिरक्षति ॥४२

हे पाण्डव नन्दन ! ऐसे परम-कुशल राजा के वश मे यहाँ पर यह पृथ्वी वशीभूत रहा करती है । राजा को कभी एक अकेला ही मन्त्रणा नही करना चाहिए और वहुतों के साथ भी अपने गुप्त मन्त्रों के विषय ये मन्त्रणा नहीं करे । राजा को कभी भी विषम नौका पर समा-रोहण नही करना चाहिए जिसके नाविक के विषय मे पहिले परीक्षण नही कर लिया हो । जो इसकी भूमि पर विजय प्राप्त करने वाले परिपन्थी हो उन मयको नाम आदि उपक्रमो के द्वारा अपने वश मे ले आना राजा का कर्तव्य होना चाहिए । जिससे प्रजाओ के अनवेक्षण से कृशी-भाव न होने पावे । अपने राष्ट्र का पाररक्षण करने वाले नृप को उसी भाँति करना चाहिए कि मोह से जो अनवेक्षण करके अपने राष्ट्र का घपनो ओर आकर्षण कर लेवे । जो ऐसा नही करता है वह नृप बान्धवों के सहित शीघ्र ही अपने राज्य से ओर जीवन से भी छुट्ट हो जाया करता है । अतएव ऐसा ही होवे जो भृत-वत्स-जातवत्स और कर्म के योग्य होवे । हे महाभाग ! राष्ट्र को उसी भाँति करे जो भृत और कर्म सह हो जावे । जो राष्ट्र पर अनुग्रह किया करता है वह राज्य का परि-रक्षण करता है ॥३७-४२॥

सञ्जातमुपजीवेत्तु विन्दते स महत्फलम् ।

गृह्याद्विरप्य धान्यञ्च मही राजासु रक्षिताम् ॥४३

महता तु प्रयत्नेन स्वराष्ट्रस्य च रक्षिता ।

नित्यं स्वैभ्यः परेभ्यश्च यथा माता यथा पिता ॥४४

गोपितानि सदा कुर्यात् संवतानीन्द्रियाणि च ।

अजस्रमुपयोक्तव्यं फलन्तेभ्यस्तथैव च ॥४५

सर्वं कर्मदमायत्त विधाने देवामानुषे ।

तयोर्देवमचिन्त्यञ्च पौरुषे विद्यते क्रिया ॥४६

एव महीं पालयतोऽस्य भतु लोकांनुरागः परमो भवेत्तु ।

लोकानुरागप्रभवा च लक्ष्मीर्लक्ष्मीवयश्चापि पराचलक्ष्मी ॥४७

जो सज्जात है उसको उपजीवित करे तो महान् फल वह प्राप्त किया करता है । वह राजा हिरण्य—धान्य—और सुरक्षित मही का ग्रहण करता है । बड़े भागी प्रयत्न से अपने राष्ट्र की जो रक्षा करने वाला है वह नित्य ही अपने लोगो से और दूसरो से माता तथा पिता की भाँति ही समादर प्राप्त करता है । राजा का कर्त्तव्य है कि वह सदा इन्द्रियो को संवत एव गोपित करे और निरन्तर उनसे उपयुक्त फल प्राप्त करना चात्रिए ॥४३, ४४, ४५॥ देवमानुष विधान मे सम्पूर्ण यह धर्म अर्थात् है उन दोनो मे जो देवी विधान है वह विशेष चिन्तन के योग्य नहीं है और पौरुष मे ही क्रिया विद्यमान रहा करती है ॥४६॥ इस प्रकार से इस मही के पालन करने वाले इस नृप का परम लोकानुराग हुआ करता है । जब लोक का अनुराग राज मे होता है तो उसी से समुत्पन्न होने वाली लक्ष्मी हुआ करती है और लक्ष्मीवाद की ही परालक्ष्मी होती है ॥४७॥

६६—देव थीर पुरुषार्थ में कौन बड़ा है ?

देवे पुरुषकारे च किं ज्यायस्तद्ब्रवीहि मे !

अत्र मे सशयो देव ! च्छेतुमहंस्यशेषतः ॥१

स्वमेव कर्म देवास्य विद्धि देहान्तराजितम् ।

तस्मात्पीरपमेवेह श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ॥२

प्रतिकूलन्तथा दैवं पौरुषेण विहन्यते ।
 मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यमुत्थानशालिनाम् ॥३
 येषां पूर्वकृतं कर्म सात्त्विक मनुजोत्तम ! ।
 पौरुषेण विना तेषां केषाञ्चिद्दृश्यते फलम् ॥४
 कमणा प्राप्यते लोके राजसस्य तथा फलम् ।
 कृच्छ्रेण कर्मणा विद्धि तामसस्य तथा फलम् ॥५
 पौरुषेणाप्यते राजन् ! प्राथितव्यं फलं नरैः ।
 दैवमेव विजानन्ति नराः पौरुषदर्जिताः ॥६
 तस्मात्त्रिकालं संयुक्तं दैवन्तु सफलं भवेत् ।
 पौरुषं दैवसम्पत्त्या काले फलतिपार्थिव ! ॥७

महर्षि मनु ने कहा—हे देव ! देव और पुरुषकार में कौन बड़ा है ? यह मुझे बतलाइये । इसमें मुझे संशय हो रहा है सो इसका छेदन आप पूर्णतया कर दीजिये ॥ १ ॥ श्री भगवान् ने कहा—दैव नाम वाला जो कर्म है वह भी अपना ही कर्म समझना चाहिये क्योंकि वह वही अपना किया हुआ कर्म है जो दूसरे (प्रथम) देह के द्वारा अर्जित किया गया है। इसीलिये मनीषी लोग इस संसार में पौरुष को ही श्रेष्ठ कहा करते हैं ॥ २ ॥ यदि दैव प्रतिकूल भी होता है तो उसका पौरुष के द्वारा हनन हो जाया करता है । ऐसा देखा जाता है कि जो मङ्गल आचार से युक्त और नित्य ही उत्थानशाली लोग होते हैं वे पौरुष से प्रतिकूल दैव को विलुप्त कर देते हैं ॥ ३ ॥ हे मनुजोत्तम ! जिन पुरुषों का पूर्व जन्मों में किया हुआ सात्त्विक कर्म होता है ऐसे कुछ पुरुषों का अच्छा फल विना ही पौरुष के किये देखने में आता है ॥ ४ ॥ लोक में राजस कर्म का फल कर्म के द्वारा ही प्राप्त किया जाता है । तामस कर्म का फल कठिन कर्म के द्वारा समझ लो ॥ ५ ॥ हे राजन् ! पौरुष के द्वारा मनुष्यों को प्राथित फल की प्राप्ति की जाया करती है । जो मनुष्य पौरुष से अर्जित हुआ करते हैं वे तो केवल एक दैव को ही जाना

करते हैं ॥ ६ ॥ इसलिये त्रिकाल से सयुक्त देव सफल हुआ करता है ।
हे पाण्डव ! पौरुष जो है वह देव को सम्पत्ति से समय पर फल दिया
करता है ॥ ७ ॥

देवं पुरुषकारश्च कालश्च पुरुषं तम ! ।
त्रयमेतन्मनुष्यस्य पिण्डितं स्यात् फलावहम् ॥८
कृष्टिवृष्टिसमायोग दृश्यन्ते फलसिद्धयः ।
तास्तु काले प्रदृश्यन्ते नैवाकाले कथञ्चन ॥९
तस्मात्सदेव कर्तव्य सधर्मं पौरुष नरैः ।
विपत्तावपि यस्येह परलोके ध्रुवं फलम् ॥१०
नालसा प्राप्नुवन्त्यर्थात् न च देवपरायणाः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन आचरेद्धर्ममुत्तमम् ॥११
त्यक्त्वाऽलसान् देवपरान् मनुष्या-
नुत्थानयुक्तान्पुरुषान् हि लक्ष्मीः ।
अन्विष्य मत्नाद् वृणुयान्नृपेन्द्र !
तस्मात्सदोत्थानवता हि भाव्यम् ॥१२

हे पुरुषोत्तम ! देव-पुरुषकार और काल-ये तीनों का तिमड्डा
पिण्डित होकर ही मनुष्य को फल देने वाला हुआ करता ॥ ८ ॥ कृष्टि
और वृष्टि के समान ही योग फल सिद्धियों के दिखलाई दिया करते हैं ।
वे काल के उपस्थित होने पर ही अच्छी तरह से दिखलाई दिया करते
हैं और भसमय में किसी भी प्रकार से दिखलाई नहीं देते हैं । इससे
मनुष्यों को सदैव धर्म के सहित पौरुष करना ही चाहिये । चाहे विपत्ति
भी क्यों न हो पुरुषकार करे क्योंकि जिसका इस लोक में और परलोक
में निश्चित फल होता है । जो आलसी नर होते हैं वे और केवल देव को
ही मानने में परायण होते हैं वे लोग अर्थों की प्राप्ति नहीं किया करते
हैं । इसलिये सभी प्रकार के प्रयत्नों से उत्तम धर्म का समावर्ण करना
आहिए । हे नृपेन्द्र ! यह लक्ष्मी अलस-देव परायण मनुष्यों को त्याग

करके उत्थान से युक्त पुरुषों को ही खोज करके यत्नपूर्वक वरण किया करती है। इसी कारण से मनुष्य को सदा उत्थान वाला ही होना चाहिए ॥ ६-१२ ॥

१००—राजधर्म वर्णन में साम प्रयोग वर्णन

उपायांस्त्वं समाचक्ष्व सामपूर्वान् महाद्युते ! ।
 लक्षणञ्च तथा तेषां प्रयोगञ्च सुरोत्तम ! ॥१॥
 सामभेदस्तथा दानदण्डञ्च मनुजेश्वर ! ।
 उपेक्षा च तथा माया इन्द्रजालञ्च पार्थिव ! ॥२॥
 प्रयोगाः कथिताः सप्त तन्मे निगदतः शृणु ।
 द्विविधं कथित साम तथ्यञ्चातथ्यमेव च ॥३॥
 तत्राप्यतथ्य साधूनामाक्रोशायैव जायते ।
 तत्र साधुः प्रयत्नेन सामसाध्यो नरोत्तम ! ॥४॥
 महाकुलोना ऋजबोधमंनित्याजितेन्द्रियाः ।
 सामसाध्या न चातथ्यन्तेपुसामप्रयोजयेत् ॥५॥
 तथ्यं साम च कर्तव्यं कुलशीलादि वणनम् ।
 तथा तदुपचाराणां कृतानाञ्चैव वर्णनम् ॥६॥

महर्षि मनु ने कहा—हे महाद्युत वाले ! हे सुरोत्तम ! अब ध्याय साम पूर्वक जो उपाय हैं उनका वर्णन कीजिए । उन उपायों का लक्षण और प्रयोग भी बतलाने की कृपा कीजिये ॥ १ ॥ श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे मनुजेश्वर ! हे पार्थिव ! साम, भेद, दान, दण्ड, उपेक्षा, माया और इन्द्रजाल—ये सात प्रयोग कहे गये हैं । मैं अब उनको कहना हूँ तो आप मुझसे उनका श्रवण कर लो । यह साम दो प्रकार का कहा गया है । एक तथ्य साम होता है और दूसरा अतथ्य

साम हुआ करता है ॥ २ । ३ ॥ इन दोनों में जो अतथ्य साम साधु पुरुषों के आक्रोश के लिये ही हुआ करता है । हे नरोत्तम ! उसमें प्रयत्नपूर्वक साधु साम ही साध्य होना चाहिये ॥ ४ ॥ महान कुलीन, सरल, नित्य धर्म करने वाले और जितेन्द्रिय पुरुष साम के द्वारा माध्य हुआ करते हैं । उनमें कभी भी अतथ्य साम का प्रयोग नहीं करना चाहिये । तथ्य साम का ही प्रयोग करना चाहिये जिसमें कुन और शील आदि का वर्णन होता है तथा किये हुए उसके उपचारों का वर्णन किया जाता है ॥ ५, ६ ॥

अनयेव तथा यक्त्या कृतज्ञाख्यापनं स्वकम् ।

एव साम्ना च कतंव्या वशगा धर्मतत्पराः ॥७

साम्ना यद्यपि रक्षासि गृह्णन्तीति परा श्रुतिः ।

तथाप्येतदसाधूना प्रयुक्तं नोपकारकम् ॥८

अतिशङ्कितमित्येव पुरुष सामवादिनम् ।

असाधवो विजानन्ति तस्मात्तत्तेषु वर्जयेत् ॥९

ये शुद्धवशाः ऋजवःप्रणीता धर्मस्थिताः सत्यपराविनीताः ।

ते सामसाध्याः पुरुषाःप्रदिष्टा मानोमता ये सतसञ्च राजन् ॥१०

इसी युक्ति से अपने कृतज्ञता का ख्यापन इस प्रकार से माम के द्वारा धर्म में परायण मनुष्य अपने वशवर्ती करने चाहिए ॥ ७ ॥ यद्यपि साम के द्वारा गक्षस भी ग्रहण किये जाते हैं—ऐसी पराश्रुति है तो भी असाधु पुरुषों में प्रयोग किया हुआ यह कभी उपकार करने वाला नहीं होता है ॥ ८ ॥ जो असाधु पुरुष होते हैं वे सामवादी पुरुष को अतिशङ्कित है—ऐसा ही हमेशा जाना करते हैं । इसीलिए इस साम का प्रयोग उनमें वर्जित ही कर देना चाहिए । जो शुद्ध वश वाले—सरल सीधे—प्रणीत—धर्म में स्थित—सत्य परायण और विनीत पुरुष हैं उन्हीं पुरुषों को साम के द्वारा साध्य कहा गया है । हे राजन् ! जो निरन्तर ही मानोमत्त होते हैं वे ही साम से साध्य हुआ करते हैं ॥ ९, १० ॥

१०१—राजधर्म वर्णन में भेद प्रयोग वर्णन

परस्परन्तु ये दुष्टाः क्रुद्धा भीतावमानिताः ।
 तेषां भेदं प्रयुञ्जीत भेदसाध्या हि ते मताः ॥१॥
 ये तु येनैव दोषेण परस्मान्नापि विभ्यति ।
 ते तु तद्दोषपातेन भेदपीया भृशन्ततः ॥२॥
 आत्मीया दर्शयेदाशा परस्माद्ददीयेद्भयम् ।
 एव हि भेदयेद्भिन्नान् यथावद्वशमानयेत् ॥३॥
 सहितानि विना भेद शक्रेणापि सुदुः सहाः ।
 भेदमेव प्रणसन्ति तस्मान्नयविशारदाः ॥४॥
 स्वमुखेनाश्रयेद्भेदम्भेदम्परमुखेन च ।
 परोक्ष्य साधु मन्येत भेद परमुखाच्छ्रुतम् ॥५॥
 सद्यः स्वकायेषु दिदृश्य कुललेर्येहि भेदिता ।
 भेदितास्ते विनिदिष्टा नैव राजार्थवादिभिः ॥६॥
 अन्त कोषो बहिः कोषो यत्र स्यात्ता महीक्षिताम् ।
 अन्तः कापा मह्यस्तत्र नाशकः पृथिवीक्षिताम् ॥७॥

श्री महर्षय भगवान् ने कहा—जो दुष्ट पुरुष परस्पर में क्रुद्ध-
 नीत और अवमायित है । उनका भेद प्रयुक्त करना चाहिये क्योंकि वे
 लोग भेद के द्वारा ही साध्य होते हैं— ऐसा माना गया है ॥ १ ॥ जो
 लोग जिस ही दोष में दूसरे से भी नहीं डरते हैं वे उस दोष के पात से
 अत्यन्त ही भेदन करने के योग्य होते हैं ॥ २ ॥ अपनी आशा को दिख-
 लावे और दूसरे से भय का प्रदर्शन करना चाहिए । इसी प्रकार से मित्रों
 का भेदन करे और यथावत् उनको अपने वश में लाना चाहिये ॥ ३ ॥
 जो महिन हैं वे विना भेद के इन्द्र के द्वारा भी सुदुः सह दृष्टा करते हैं ।
 इसलिये ऐस अवसर पर नय शास्त्र के परिष्कृत लोग भेद की ही प्रशंसा
 किया करते हैं । प्रथम मुख से भेद का आश्रय कर और पराये मुख से

भेद ग्रहण करे । अतएव भली भाँति भेद की जाँच करके ही पराये मुख से सुने हुए भेद को मानना चाहिए ॥ ४ । ५ ॥ तुम्हें ही अपने कार्य का उद्देश्य करके कुशल पुरुषों के द्वारा जो भेदित होते हैं वे ही भेदित विनिदिष्ट होते हैं और राजा के द्वारा अयंवादियों से भेदित नहीं हुआ करते हैं ॥ ६ ॥ जहाँ पर राजाओं का अन्तःकोप और वहिःकोप हुआ करता है । इनमें जो अन्तःकोप होता है वह महान् है और नाश करने वाला होता है जो नृपो का विनाशक है ॥ ७ ॥

साम्ना न कोपोवाह्यस्तु कोपः प्रोक्तो महीभूतः ।

महिषीयुवराजभ्या तपासेनापतेर्नृप ॥८

अमात्यमन्त्रिणाञ्चैव राजपुत्रोत्थैव च ।

अन्तःकोपो विनिदिष्टो दारुण पृथिवीक्षिताम् ॥९

वाह्यकोपे ममुत्पन्नं सुमहत्यपि पाथिवः ।

शुद्धान्तस्तु महाभाग । शीघ्रमेव जयी भवेत् ॥१०

अपि शक्रममो राजा अन्तःकोपेन नश्यति ।

सोऽन्तःकोप प्रयत्नेन तस्माद्रक्षयोभहीभूता ॥११

परतः कोपमुत्पाद्य भेदेन विजिगीषुणा ।

ज्ञातीना भेदनं कार्यं परेषां विजिगीषुणा ॥१२

रक्ष्यञ्चैव प्रयत्नेन ज्ञातिभेदस्तथात्मनः ।

ज्ञातयः परितप्यन्ते सततं परितापिताः । १३

तथापि तेषां कर्तव्यं सुगम्भीरेण चेतसा ।

गृह्णान्दानमानाभ्यां भेदस्तेभ्यो भयङ्करः ॥१४

न ज्ञातिमनुगृह्णन्ति न ज्ञातिं वै श्वसन्ति च ।

ज्ञातिमर्भेदनायास्तु रिपवस्ते न पाथिवः । १५

भिन्ना हि शक्या रिपवः प्रभूता स्वल्पेन संन्येन निहन्तमानी ।

सुसहताना हि तदस्तु भेदं कार्यं रिपूणां नयशास्त्रविदिभिः ॥१६

राजा का कहा हुआ कार जो कोप वाह्य होता है वह साम के

द्वारा नहीं शास्य नहीं होता है। हे नृप ! राजाओं का अन्तःकोप महिषी-
 युवराज-सेनापति-भ्रमरार्य-मन्त्री और राजपुत्र का महान् दारुण विनि-
 श्चिष्टक्रिया गया है ॥८८॥ ८९॥ सुमहान् वाह्य कोप के समुत्पन्न होने पर
 भी हे महाभाग ! अन्तःकरण में शुद्ध राजा बहुत ही शीघ्र जयशील हुआ
 करता है ॥१०॥ भले ही कोई राजा इन्द्र के समान ही बयो न होवे वह
 भी अन्तःकोप से विनष्ट हो जाया करता है। इस कारण से राजा के
 द्वारा प्रयत्न पूर्वक अन्तःकोप की रक्षा करनी चाहिए ॥११॥ विजय
 प्राप्त करने की इच्छा वाले क द्वारा भेद से दूसरे से कोप का उत्पादन
 करावे दूसरे के विजिगीषु की जातियों का भेदन करना चाहिए ॥१२॥
 तथा अपना जाति भेद अत्यधिक प्रयत्न से रक्षित रखना चाहिए। परिता-
 पित की हुई जातियों निरन्तर परितप्त हुआ करती है ॥१३॥ तो भी
 सुगम्भीर चित्त के रखने वाले को उनका दान तथा मान से ग्रहण करना
 चाहिए। उनका साथ भेद करना तो महान् मघद्वार हुआ करता है ॥१४॥
 राजाओं के द्वारा शत्रुगण जातियों से भेदन करने के योग्य होते हैं अर्थात्
 शत्रुओं की जातियों से भेद कर देना चाहिए और ऐसा कर देवे कि वे
 अपनी जातियों पर अनुग्रह तथा विश्वास बिल्कुल ही नहीं करें ॥१५॥
 भेद के द्वारा भिन्न किये हुए बहुत से शत्रु भी युद्ध में बहुत ही शोडी सेना
 के द्वारा मारे जा सकते हैं नये शास्य के ज्ञानियों की जो सुमहत्त ही उनका
 भेद कर देवे और शत्रुओं का भेद अवश्य ही कर देना चाहिए ॥१६॥

१०२-राजधर्म वर्णन में दान प्रयोग वर्णन

मर्षणामयपायाना दान श्रेष्ठतम मतम् ।
 मुदत्तानेह भवन्ति दानेनामयत्नाकजित् ॥ १ ॥
 न मार्जस्त राजन् । दानेनवजगो यो न जायते ।
 दानेन वशगा देवामवन्तीहस्तदानृणाम् ॥ २ ॥

दानमेवोपजीवन्ति प्रजाः सर्वा नपोत्तम ! ।
 प्रियो हि दानवान् लोके सर्वस्यैवोपजायते ॥३॥
 दानवानचिरेणं तथा राजा परान् जयेत् ।
 दानवानेव शक्नोति सहतान् भेदितुं परान् ॥४॥
 यद्यप्यलुब्धगम्भीराः पुरुषाः सागरोपमाः ।
 न गृह्णन्ति तथाप्येते जायन्ते पक्ष्पातिनः ॥५॥
 अन्यत्रापि कृत दान करोत्यन्यान्यथा वशे ।
 उपायेभ्य प्रशसन्ति दान श्रेष्ठतमं जनाः ॥६॥
 दान श्रेष्ठतम पुंसा दान श्रेष्ठतम परम् ।
 दानवानेव लोकेषु पुत्रत्वे ध्रियते सदा ॥७॥
 न केवल दानपरा जयन्ति भूलोकमेकं पुरुषप्रवीराः ।

जयन्ति ते राजसुरेन्द्रलोक मुदुर्जयं यो विबुधाधिवासः ॥८॥

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—ये जिनने भी उपाय बतलाये गये हैं
 उन सब में दान का उपाय सबसे परम श्रेष्ठ उपाय माना गया है । यहाँ
 समार में अच्छी तरह से दिए हुए दान से मनुष्य उभय लोको का विजेता
 हो जाया करता है ॥३॥ हे राजन् ! इस लोक में ऐसा कोई भी पुरुष
 नहीं है जो दान के द्वारा वशवर्ती न हो जावे यह दान तो एक ऐसा
 उत्तम साधन है कि इस दान से सदा मनुष्यो के वश में देवगण भी आ
 जाया करते हैं ॥४॥ हे नृपोत्तम ! सम्पूर्ण प्रजा दान को ही समाश्रित कर
 के उपजीवित रहा करती हैं । इस लोक में विप्र तो सबका ही दानवान्
 उत्पन्न हुआ करता है ॥५॥ दान देने वाला राजा बहुत ही शीघ्र शत्रुओं
 को जीत लिया करता है और जो दान वाला होता है वही सहत परो को
 भेद युक्त कर सकता है ॥६॥ यद्यपि ऐसे भी पुरुष होते हैं जो अलुब्ध
 और गम्भीर सागर के समान हैं जो ग्रहण नहीं किया करते हैं तो भी
 पक्षपाती हो जाते हैं ॥७॥ अन्यत्र भी किया हुआ दान किम तरह से अंगो
 को वग में करा दिया करता है किन्तु मनुष्य उपायो से दिये हुए दान को

परम श्रेष्ठ तप कह कर इसकी प्रशंसा किया करते हैं। यह दान ही पुण्य का परम श्रेष्ठ साधन होता है और दान की परम श्रेष्ठता कही जाती है। जो दानवान् होता है वह ही लोक में सदा पुण्य में धारण किया जाता है ॥६, ७॥ जो दान परामणु प्रवर पुण्य होते हैं वे केवल एक इम भू-लोक को ही नहीं जीतते हैं वे तो सुदुर्जय राज सुरेन्द्रलोक को भी जीत लिया करते हैं जो देवगणों के निवास का स्थल होता है ॥८॥

१०३—राजधर्म वर्णन म दण्डोपाय वर्णन

न शक्या य वशे कर्तुं मुपायत्रितयेन तु ।
 दण्डेन तान् वशीकुर्यात् दण्डो हि वशकृन्नृणाम् ॥१
 सम्यक् प्रणयनं तस्य तथा कार्यं महीक्षिता ।
 धर्मशास्त्रानुसारेण म सहायेन घोमना ॥२
 तस्य सम्यक् प्रणयन यथाकार्यमहीक्षिता ।
 दानप्रस्थांश्च धर्मज्ञान्निर्ममान्निष्परिग्रहान् ॥३
 स्वदेशे परदेशे वा धर्मशास्त्रविशारदान् ।
 समीक्ष्य प्रणयेद्दण्डं सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम् ॥४
 आधमी यदि वा वर्णा पूज्यो वाऽथ गुणमहान् ।
 नादण्ड्या नाम राज्ञोऽस्ति य स्वधर्मेण निष्ठति ॥५
 अदण्ड्यान् दण्डयेद्वाजा दण्ड्याश्चैवाप्यदण्डयन् ।
 इह राज्यात्परिभ्रष्टो नरकञ्च प्रपद्यते ॥६
 तस्माद्वाजा विनीतेन धर्मशास्त्रानुसारतः ।
 दण्डप्रणयनं कायं लाकानुग्रहकाम्यया ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—जो मनुष्य नाम—दान और भेद— इन तीनों उपायों में भी वश में नहीं किया जा सकते हैं उनको दण्ड से

ही अपने वश में करना चाहिए वयो कि यह दण्ड ऐसा साधन है जो मनुष्यों को वश में कर देने वाला होता है ॥११॥ राजा के द्वारा इस दण्ड का प्रणयन भली भाँति करना चाहिए और धीमान् किसी सहायक के साथ एक घर्म शास्त्र के अनुसार ही दण्ड का प्रयोग करे ॥२॥ राजा के द्वारा उस दण्ड का प्रणयन जिस प्रकार से करना उचित है वह बहुत अच्छा होना चाहिए । वानप्रस्थ—घर्म के ज्ञाता—ममता से रहित—निष्परिग्रह—अपने या पराये देश में घर्म शास्त्र के मन्त्र पण्डितों को भली भाँति दक्षिण करके दण्ड का प्रणयन करना चाहिए क्योंकि इस दण्ड में सभी कुछ प्रतिष्ठित होता है ॥३॥ किसी आश्रम में संस्थित हो—वर्णों (ब्रह्मचारी) हो—पूज्य—महान् और गुरु हो तो ऐसा पुरुष राजा के द्वारा दण्ड देने के योग्य नहीं हुआ करता है क्योंकि वह तो अपने घर्म में संस्थित रहना है । निष्कर्म यह है कि जो भी कोई अपने घर्म के मार्ग पर भली भाँति चल रहा है वह कभी भी दण्डनीय नहीं होता है ॥५॥ जो राजा दण्ड न देने के योग्य पुरुषों को दण्डित करता है और दण्ड देने के योग्य हो उनको दण्ड नहीं देता है वह राजा यह पर राज्य से परिभ्राट होकर अन्त में नरक का गामी होता है ॥६॥ इस कारण से विनीत भ्रात्र वाने राजा के दाग लोको के ऊपर अनुग्रह करने की कामना से घर्म शास्त्र के अनुसार ही दण्ड का प्रणयन करना चाहिए ॥७॥

यत्र श्यामो लोहिताक्षोऽण्डश्चरति निर्भयः ।

प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेतसाधुपश्यति ॥८॥

वालवृद्धातुरयतिद्विजस्त्रोऽवधवायत ।

मात्स्यन्यायेन भक्ष्येरन् यदि दण्ड न पातयेत् ॥९॥

देवदंत्योगगणाः सर्वे भूतपतत्रिणः ।

उत्त्रामयेधूर्मर्गदा यदि दण्ड न पातयेत् ॥१०॥

एष ब्रह्माभिधापेषु सर्वब्रह्मणेषु च ।

सर्वविक्रमकोपेषु व्यवसामे च तिष्ठति ॥११॥

पूज्यन्ते दण्डिनो देवैर्न पूज्यन्ते त्वदण्डिनः ।
 न ब्रह्माणं विधातारं न पूषायमणावपि ॥१२
 यजन्ते मानवाः केचित् प्रशान्ताः सर्वकर्मसु ।
 रुद्रमग्निञ्च शक्रञ्च सूर्याचन्द्रमसौ तथा ॥१३
 विष्णु देवगणांश्चान्यान् दण्डिन पूजयान्त च ।
 दण्ड. शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ॥१४

अहा पर प्याम नाहिताथ दण्ड । नमय होकर चरण क्रिया करता

है वहा पर प्रजा को कोई भी गैह नही होना है यदि नेता अच्छी प्रकार से देखता है ॥१२॥ यदि दण्ड का पानन नही किया जाता है तो बालक-
 वृद्ध-आतुर-यति-द्विज-मत्री विधवा इनका मध्य न्याय से ही दुष्ट लोग
 खा जाया करते है । यदि दण्ड का पानन नही किया जाता है तो देव,
 दैत्य, उरग मण, मंत्र भूत और पतनी मर्यादा का उन्नमण कर देवे ।
 ॥६, १०॥ यह ब्रह्माभिशापो म—ममन्त प्रहर्गो म—मव विप्रम कोषो
 मे भीर इयवमाथ म स्थित रहा काना है ॥११॥ दण्डा देवो के द्वारा पूजे
 जाया करते है और जो अदण्डा राज है वे नही पूजे जाते है । विधाता
 ब्रह्मा और पूषा अयमा को भी पूजा नही करत है । ममन्त कर्मो मे कुछ
 प्रशान्त मानव यजन किया करत है । रुद्र आग्नि, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा,
 विष्णु, देवगण और अन्य दण्डिगण की पूजा करते है । षड ही प्रजा का
 शासन किया करता है और दण्ड ही सब प्रजा का अभिरक्षण किया करता
 है ॥१२, १३, १४॥

दण्डः मुष्नेषु जागति दण्ड धर्म विद्वुषुषा ।

राजदण्डमसादत्र पाषा पाप न बुवंत ॥१५

यमदण्डमयादक परस्परमयादीप ।

एव सांसादिक तारु सब दण्डे प्रतिष्ठितम् ॥१६

अथे तमामि मजपुषंदि दण्ड न पातयेत् ।

यस्मादण्डा दमयात् अदण्ड्या-दमयत्यति ॥

दमनाद्दण्डनाञ्चैव तस्माद्दण्डं विदुर्बुधा ॥१७॥

दण्डस्य भीतैस्त्रिदशैः समेतैर्भागोधृत- शूलधरस्य यज्ञे ।

दत्त कुमारे ध्वजिनीपतित्वं वर शिशूनाञ्च भयाद्वलस्य ॥१८॥

सुप्त हुआ मे दण्ड ही जगता है और घुघ लोग दण्ड को ही धर्म जानते हैं । राजा के द्वारा प्राप्त होने वाले दण्ड के भय से ही पापी लोग पाप कर्म नहीं किया करते है ॥१७॥ कुछ लोग यमराज के द्वारा मिलने वाले दण्ड के भय से और पारस्परिक दण्ड के भय से भी पाप कर्म नहीं करते है । इस प्रकार से इस सांविधिक लोक मे सभी कुछ दण्ड मे ही प्रतिष्ठित है ॥१८॥ यदि दण्ड का पातन नहीं किया जावे तो सब लोग अघतम मे मज्जन किया परे । क्योंकि दण्ड दमन किया करता है और जो अदण्डनीय है उनका भी दमन किया करता है । दमन करने से और दण्डन करने से बुद्ध लोग हमको दण्ड करते है दण्ड से भीतरुए समेत देवो ने यज्ञ मे भगवान् शूलधर का भाग धृत किया था कुमार मे सेनापतित्व का पद दिया था और वल के भय से शिशुओ का वर दिया था ॥१७, १८॥

१०४-राजधर्म वर्णन में देवसाम्यत्व वर्णन

दण्डप्रणयनार्थयि राजा मृष्टः स्वयम्भुवा ।

देवभागानुपादाय सर्वभूतादिगुप्तये ॥१॥

तेजसा यदमु कश्चिन्नैव शक्नोति धीक्षितुम् ।

तत्ता भवति लोकेषु राजाभास्करवत्प्रभुः ॥२॥

यदास्य दशने लोक- प्रसादमुपगच्छति ।

नयनानन्दकारित्वात्तदा भवति चन्द्रमाः ॥३॥

यथा यमः प्रियदृष्येप्राप्ते कालेप्रयच्छति ।

तथा राजा विधातव्याःप्रजास्तद्वि यमत्रतम् ॥४॥

वरुणेन यथा पार्श्वेद्वएव प्रदृश्यते ।
 तथा पापान्निगृहणीयाद् व्रतमेतद्वि वारुणम् ॥५
 परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यति मानवः ।
 तथा प्रकृतयो यस्मिन् स चन्द्रप्रतिमो नपः ॥६
 प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यस्यास्सर्वकर्मसु ।
 दुष्टसामन्तहिंस्रेषु राजान्नेयव्रतैस्थितः ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—भगवान् स्वयम्भू ने दण्ड के प्रणयन के ही नियम राजा का सृजन किया था और इस की सृष्टि देवों के भागों को ग्रहण करके समस्त भूतों की रक्षा के लिए की गयी थी ॥१॥ राजा में बहुत तेज होता है और तेज कोई भी इसको देख नहीं सकता है । इसके अनन्तर ही लोको में राजा भगवान् भास्कर के ही समान प्रभु हुआ करता है । जिस समय में इस राजा के दर्शन में लोक प्रसाद की प्राप्ति किया करता है उस समय में यह नयनों को आनन्दकारी होने से चन्द्रमा ही जाता है । २, ३॥ जिस प्रकार से यमराज प्रिय या द्रव्य कोई कंसा भी ही काल आने पर वह घन दू, भेजकर गुला ही लेता है उसी भाँति राजा को भी प्रजा के साथ करना चाहिए और चयवन धारण कर लेवे । वरुण के द्वारा जिस तरह पापों में बद्ध होकर ही दिखलाई दिया करता है उसी भाँति पापों में निगृहीत करे—यही वारुण व्रत कहलाता है ॥५, ५॥ जिस तरह परिपूर्ण चन्द्रमा का दर्शन प्राप्त करके मानव परम हृषित हुआ करता है उन्ही भाँति जिसमें प्रकृतियाँ हैं और वह नृप चन्द्रमा के समान ही होता है । राजा नित्य ही समस्त कर्मों में प्रताप से युक्त अत्यन्त तेजस्वी होता है । दुष्ट सामन्त और हिंसक जीवों में राजा आग्नेय व्रत में स्थित रहा करता है ॥६, ७॥

यथा सर्वाणि भूतानि विभ्रतः पार्थिव व्रतम् ।
 इन्द्रस्यार्कस्य वातस्य यमस्य वरुणस्य च ॥८
 चन्द्रस्याग्ने पृथिव्याश्चतैर्जोव्रत नृपश्चरेत् ।

वापिकाश्चतुरो मासान् यथेन्द्रोप्यथवर्षति ॥६
 तथाभिवर्षेत्त्वंराज्यकाममिन्द्रवतंस्मृतम् ।
 अष्टौमासान्पथादित्यस्तोयहरतिरश्मिभिः ॥
 तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यकर्मव्रतं हि तत् ॥१०
 प्रतिश्य सर्वमूर्तानि यथा चरति मारुतः ।
 तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रनमेतद्धि मास्तप्र ॥११

जिस तरह मे सब भूतो का विशेष मरण करने वाले का पार्थिव
 व्रत होता है । इन्द्र, सूर्य, वायु, यम, वह्ण, चन्द्र अग्नि और पृथिवी का
 तेजोव्रत नष्ट को चरण करना चाहिए । वर्षा के चार मासों में जिस तरह
 से इन्द्र देव वर्षा किया करते हैं उसी भाँति से राजा को अपने राज्य में
 प्रजा को कामनाओं की पूर्ति वर्षा मली भाँति करना चाहिए — इसी को
 इन्द्रव्रत कहा जाता है । जिस तरह से आठ मास तक सूर्य अपनी किरणों
 के द्वारा जल का हरण किया करता है उसी तरह से राजा राष्ट्र से कर
 का आहरण करे — यही नित्य कर्मव्रत कहा गया है ॥६, १०॥ मारुत
 समस्त भूतो में प्रवेश करके जिस तरह से संचरण किया करता है वैसे ही
 चारों के द्वारा राजा को प्रवेश करना चाहिए यही माहन व्रत कहा जाता
 है ॥११॥

१०५ — ग्रह यज्ञादि का विधान वर्षान

ग्रहयज्ञः वथ कार्यों लक्षहोमः कथ नृपैः ।
 कोटिहोमोऽपिवा देव ! सर्वपापप्रणाशनः ॥११
 क्रियते विधिना येन यद्दृष्टं शान्तिचिन्तकैः ।
 तत्सर्वं विस्तराद्देव ! कथयस्व जनादत ! ॥२
 इदानीं कथयिष्यामि प्रसङ्गादेव ते नृप ।

राजा धर्मप्रक्तेन प्रजानाञ्च हितेषुना ॥३
 ग्रहयज्ञः सदा कार्यो लक्षहोमसमन्वितः ।
 नदीनां सङ्गमे चैव सुगणामग्रतस्तथा ॥४
 सुसमे भूमिभागे च देवज्ञाधिष्ठितो नृपः ।
 गुरुणा चैव ऋत्विग्भिः सार्द्धं भूमिं परिक्षयेत् ॥५
 खनेत् कुण्डञ्च तत्रैव सुसम हस्तमात्रकम् ।
 द्विगुण लक्षहोमे तु कोटिहोमे चतुर्गुणम् ॥६
 युग्मापु ऋत्विजः प्रोक्ता अष्टौ वै वेदपारगाः ।
 कन्दमूलफलाहारा दधिक्षीराग्निोऽपि वा । ७

महर्षिवर मनु न कह।—हे देव । नृपों के द्वारा ग्रह यज्ञ और लक्ष होम किस प्रकार से करना चाहिए ? अथवा कति होम भी किस तरह से करे जो कि सभी तरह के प्रबल पापों का विनाश करने वाला होता है । ॥१॥ जिस विधि से यह किया जाता है और जो शक्ति चिह्न लोपो ने देखा है हे जनार्दन देव । उसका वर्णन आप विष्णु पुराण में कीर्तिष्णा ॥२॥ मरुत्य भगवान् न कह —हे नृप । अब मैं प्रसङ्ग से ही तुमको कहूँगा । प्रजाओं के हित के चाहने वाले और धर्म में प्रसक्त नृप के द्वारा एक लाख होम से मयुज ग्रह यज्ञ महा ही करना चाहिए । ग्रह यज्ञ नदियों के संगम में तथा देवों के प्राय ही करना चाहिए ॥३, ४॥ देवों से अधिष्ठित नृप को ममनच भूमि के भाग में गुरुदेव और ऋत्विजों के साथ भूमिका परिक्षय करना चाहिए । वही पर सुसम और एक हाथ लम्बा चौड़ा कुण्ड भी खोदना चाहिए । एक लक्ष के होम करने में यह कुण्ड दुगुना बनावे तथा कति होम करना हो तो चोगुना बड़ा बनवाना आवश्यक है ॥५, ६॥ दोनों में वेदों के पारगामी आठ ऋत्विज बताये गये हैं जो कि कन्द-मूल और फलों के आहार करने वाले अथवा दधि तथा क्षीर के अन्न करने वाले होने चाहिए ॥७॥

वेद्या निधापयेच्चैव रत्नानि विधिधानिच ।

सिकतापरिवेषाश्च ततोऽग्निञ्च समिन्धयेत् ॥८
 गायत्र्या दशसाहस्रं मानस्तोकेन पङ्गुणः ।
 त्रिंशद्ग्रहादिमन्त्रोश्च चत्वारो विष्णुदेवतः ॥९
 कुष्माण्डजुं ह्यात्पञ्च कुसुमाद्यंस्तु षोडश ।
 होतव्या दशसाहस्रं बादरंर्जातवेदसि ॥१०
 त्रियोमन्त्रेण होतव्या सहस्राणि चतुदंश ।
 शेषा पञ्चसहस्रास्तु होतव्यास्त्विन्द्रदेवतः ॥११
 हुत्वा शतसहस्रस्तु पुण्यस्नान समाचरेत् ।
 कुम्भे षोडशसङ्ख्यंश्च सहिरण्यैः सुमङ्गलैः ॥१२
 स्नापयेद्यजमानस्तु ततः शान्तिभविष्यति ।
 एव कृते ते परिमञ्चिद्ग्रहषोडासमुद्भवम् ॥१३
 तत्सर्वं नाशतायाति दत्त्वा वै दक्षिणा नृप ।
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रधाना दक्षिणा स्मृता ॥१४

जो वेदी निमित्त कराई जाये उसमें अनेक प्रकार के रत्नों को
 निधापित करे और उस वेदी का सिकता से परिवेष बनवाना चाहिए ।
 इसके अनन्तर उसमें अग्नि को समिन्धित करे ॥८॥ गायत्री से दश सहस्र
 अ हृतियाँ देवे । मानस्तोक से पङ्गुण—ग्रह आदि के मन्त्रों से तीस—
 जिनके विष्णु देवता है उन मन्त्रों से चार—कुष्माण्डों से पाँच—कुसुम
 आदि में षोडश और बादरों से दश सहस्र अग्नि में हवन करना चाहिए ।
 ॥९, १०॥ श्री वै मन्त्र से चौदह सहस्र आहृतियों द्वारा हवन करे । शेष
 जो पाँच सहस्र आहृतियाँ हैं वे इन्द्र देवत मन्त्रों से हवन करनी चाहिए ।
 ॥११॥ सौ सहस्र आहृतियों का हवन करके फिर पुण्य स्नान करे जो
 सुमङ्गल—साहिरण्य सोनह संख्या वाले कुम्भों के द्वारा किया जाना
 चाहिए ॥१२॥ इस तरह से यजमान का स्नान करावे । इसके अनन्तर
 शान्ति होगी । इस तरह से करने पर जो कुछ भी ब्रह्म प्रहो का षोडश से
 समुत्पन्न होगा वह सब नाश हो जायत ही जाता है । हे नृप ! फिर दक्षिणा

देवे । सब प्रकार के प्रयत्नों से अच्छी दक्षिणा देनी चाहिए क्योंकि यज्ञ में दक्षिणा परम प्रधान कही गयी है ॥१३, १४॥

हस्त्यश्वरथयानानि भूमिवस्त्रयुगानि च ।
 अनडुद्गोक्षत दद्यादृत्विजा चैव दक्षिणाम् ॥१५
 यथा विभवमारन्तु वित्तशाठ्यं न कारयेन् ।
 मासे पूर्णे समाप्तस्तु लक्षहोमो नराधिप ॥१६
 लक्षहोमस्य राजेन्द्र ! विधान परिकीर्तितम् ।
 इदानीं कोटिहोमस्य श्रृणु त्व कथायाम्यहम् ॥१७
 गङ्गातटेऽथ यमुनासरस्वत्योर्नरेश्वर ! ।
 नमदा देविकायास्तु तटे होमा विधीयते ॥१८
 तथापि ऋत्विजः कार्यं रविनन्दन ! योऽद्य ।
 सर्वहामेतु राजर्षे ! दद्याद्विप्रेऽथ वा धनम् ॥१९
 ऋत्विगाचार्यसहितो दोक्षा साम्बत्सरी स्थितः ।
 चैत्रे मासे तु सम्प्राप्ते कार्तिके वा विशेषतः ॥२०
 प्रारम्भः करणीयो वा वत्सर वत्सरं नृप ! ।
 यजमानः पयोमक्षी फलाशोच तथानथ ! ॥२१

ऋत्विजों को दक्षिणा में हाथी — अश्व, गध, मान भूमि, वस्त्र, युग, अनडुवान्, शी गौ आदि समर्पित करे ॥१५॥ जैसा भी अपना वैभव हो उसी के सार के अनुसर ऋत्विजों को दक्षिणा देवे और धन अतुल होते हुए भी दक्षिणा में कृपणता करने का वित्त शाठ्य नहीं करना चाहिए हे नराधिप ! एक मास पूर्ण हो जाने पर यह एक लक्ष आहुतियों का होम समाप्त होजाया करता है । हेराजेन्द्र ! यह एक लक्ष के होम का पूर्ण विधान कीर्तित कर दिया गया है अब मैं कोटि होम के विधान को कहता हूँ उसका आप श्रवण करिये ॥१४-१७॥ हे नरेश्वर ! गङ्गा के तट पर—यमुना सरस्वती के तीर पर—नमदा अथवा देविका नदी के तट पर यह होम करे । हेरविनन्दन ! उसमें भी सोलह ऋत्विज नियोजित करने चाहिए । हे

राजर्षे ! सब प्रकार के होम में विप्र को धन देवे । ऋत्विक् और आचार्य के सहित साम्बत्सरी दीक्षा में स्थित होना हुआ चैत्र मास के प्राप्त होने पर या विशेष रूप से कार्तिक मास के आने पर इसका आरम्भ करना चाहिए । अथवा वर्ष प्रति वर्ष करे । हे नृप ! हे अन्ध ! यजमान को यम का प्रश्न करने वाला तथा फलो का आहार करने वाला होना चाहिए ॥ १८-२१ ॥

यवादित्रीहयो मापास्तिलाश्च सह सर्पयः ।
 पालाशाः समिधःशस्ता वसोधरितयोपरि ॥२२
 मासेऽथ प्रथमे दद्यात् ऋत्विग्न्यः क्षीरभोजनम् ।
 द्वितीये कृशरां दद्याद्धर्मकामार्थसाधनीम् ॥२३
 तृतीये मासि सयावो देवो वै रविनन्दन ! ।
 चतुर्थे मोदका देया विप्राणा प्रीतिमावहन् ॥२४
 पञ्चमे दधिभक्तम्बु पठे वै सवतुभोजनम् ।
 पूषाश्च सप्तमे देया ह्यष्टमे घृतपूपकाः ॥२५
 षष्ठ्योदनञ्च नवमे दशमे यवपट्टिका ।
 एकादशे समापन्तु भोजन रविनन्दन ! ॥२६
 द्वादशे त्वथ सम्प्रान्ते मासे रविफुलोत्तहः ।
 पद्भसं सह अर्क्ष्यश्च भोजन साधकामिकम् ॥२७
 वेमा द्विजाना राजेन्द्र ! मासि मासि च दक्षिणाः ।
 अहृतवासाः सम्वीतो दिनाद्ध होमयेच्छुचिः ॥२८

यव आदि त्रीह, माप, तिल और सर्पय, पालाश की समिधार्थे प्रदास्त होती हैं तथा ऊपर में वसोधरिता ही । प्रथम मास में ऋत्विजों के त्रिये क्षीर का भोजन देना चाहिए । दूसरे मास में कृशारा देवे जो धर्म-काम और अर्थ की साधन करने वाली होती है ॥ २२ । २३ ॥ तीसरे मास में सयाव देवे । हे रविनन्दन ! चतुर्थे मास में विप्रों की प्रीति का आधहन करते हुए मोदक देना चाहिए । पाँचवें मास में दधि और मास

देवे और छठवेँ मास मे सतू का भोजन देना चाहिए । सातवेँ मास में पूषा देनी चाहिए तथा आठवेँ महीना में धृत पूषक का भोजन देवे । ॥ २४ । २५ ॥ नवम मास में पृथुयोदन देवे और दशम मास में यव पण्डिका का भोजन देना चाहिए । हे रविमन्दन ! एकादश मास मे माप के सहित भोजन देवे । हे रवि कुलोद्बह ! द्वादश मास के सम्प्राप्त होने पर-पट्टरसों के सहित भक्ष्यों से मुक्त सर्व काम करन वाला भोजन द्विजों को देना चाहिए । हे राजेन्द्र ! मास-मास मे दक्षिणा भी द्विजों को अक्षय ही देनी चाहिए । अहतवामा और सम्वीत होकर परम शुचि होवे और दिनाह्न में होम करता चाहिए ॥ २६-२८ ॥

तस्मात् सदोत्थितैर्भ्रातृभ्यं यजमानैः सह द्विजैः ।

इन्द्राद्यादिसुराणाञ्च प्रीणनं सर्वकामिकम् ॥२९

कृत्वा सुराणां राजेन्द्र ! पशुघातसमन्वितम् ।

सर्वदानानि देवानामग्निष्टोमञ्च कारयेत् ॥३०

एवं कृत्वा विधानेन पूर्णाहुतिः शते शते ।

सहस्रं द्विगुणा देया यावच्छतसहस्रकम् ॥३१

पुराडाशस्ततः साध्यो देवतार्थं च ऋत्विर्जः ।

युवतो वसन् मानवंश्च पुनः प्राप्सार्चनान् द्विजान् ३२

प्रीणायित्वा सुरान् सर्वान् पितृन्नेव ततः क्रमात् ।

कृत्वा शास्त्रविधानेन पिण्डानाञ्च समर्पणम् ॥३३

समाप्तौ तस्य होमस्यविप्राणामय दक्षिणाम् ।

समाञ्चैवतुलां कृत्वा बद्ध्वा शिवशुद्धयपुनः ॥३४

आत्मानं तोलयोत्तत्र पत्नीञ्चैव द्वितीयकाम् ।

सुवर्णेन तथात्मानं रजतेन तथा प्रियाम् ॥३५

इसलिये द्विजों के ही साथ में यजमानों को सदा उठना चाहिए । इन्द्रादि देवों का प्रीणन सत्र कामनाएँ पूर्ण करने वाला होता ॥ २९ ॥ हे राजेन्द्र ! इस प्रकार से गुरों का पशुघात से समन्वित प्रीणन का

सम्पादन करके समस्त प्रकार के दान देवे तथा देवों का अभिष्टोम करावे इस रीति से सब सम्पादन करके एक-एक शत पर पूर्णाहुति करना चाहिए। जब सहस्र आहुतियाँ हो जावें तो यावच्छत सहस्रक द्विगुणा आहुति देनी चाहिये। इसके अनन्तर देवता के लिये ऋत्विजों के द्वारा पुरोडाश साध्य करे तथा युक्त होता हुआ वास करे। पुनः मानवों के द्वारा द्विजों का अर्चन करना चाहिये ॥ २६, ३०, ३१, ३२ ॥ सब सुरों का प्रीणन (प्रसन्नता) करके पितृगण के लिये त्रम से शास्त्र में वर्णित विधान के द्वारा पिण्डों का समर्पण करना चाहिये ॥ ३३ ॥ उस होम की समाप्ति होने पर विप्रों को दक्षिणा के देने की व्यवस्था करनी चाहिये। तुला को समान क/के दोनो पलडों को भली भाँति बंधि करके उसमें अपने आपको और दूसरी अपनी पत्नी का तोलन करे। सुवर्ण से अपने आपको तोले और चाँदी से अपनी प्रिया का तोलन करे ॥ ३४ । ३५ ॥

तोलयित्वा ददेद्राजा वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
 ददेच्छतसहस्रन्तु रूप्यस्य कनकस्य च ॥३६
 सर्वस्व वा ददेत्तत्र राजसूयफल लभेत् ।
 एतद्कृत्वा विधानेन विप्रास्ताश्च विसर्जयेत् ॥३७
 प्रीयता पृण्डरीकाक्षः सवयज्ञे श्वरो हरिः ।
 तस्मिस्तुष्टे जगत्पुष्टं प्रीणितं भवेत् ॥३८
 एव सर्वोपघाते तु देवमानुषकारिते ।
 एवं शान्तिस्तवाहृता या कृत्वा सुकृता भवेत् ॥३९
 न शोचेज्जन्ममरणे कृताकृतविचारणे ।
 सर्वतीर्थेषु यत्स्नानं सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ॥४०
 तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा यज्ञश्रमं नृप ! ॥४१

राजा को इस भाँति तोलन करके वित्त की शठता का परिहारा करते हुए दान देना चाहिए ॥ ३६ ॥ अपना अपना सर्वस्व दान कर देवे

तो वहाँ पर राजसूय यज्ञ के पुण्य-फल की प्राप्ति का लाभ करे। इस रीति से विधान के साथ सब कुछ करके फिर उन सब विप्रों को विसर्जित कर देना चाहिए। उस समय में यह प्रार्थना करनी चाहिए—भगवान् समस्त यज्ञों के ईश्वर श्री हरि पुण्डरीकाक्ष प्रसन्न हों। उन प्रभु के पूर्णतया सन्तुष्ट हो जाने पर यह सम्पूर्ण जगत् तुष्ट हो आया करता है और उनके प्रीणित होने पर सब प्रीणित हो जाते हैं। इस प्रकार से देवमानुषों के द्वारा कारित सर्वोपदान होने पर इस रीति से आपकी शान्ति बताई गई है जिसको करके तुम सुकृति हो जाओगे। जन्म और मरण के विषय में कुछ चिन्ता नहीं करे तथा कृत एवं अकृत के विषय में भी शोच न करे। हे नृप ! समस्त तीर्थों में स्नान करने का जो पुण्य-फल होता है और सब यज्ञों में जो फल होता है वह सम्पूर्ण फल ये तीन यज्ञ करके ही मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥ ३७ । ३८ ॥ ३९ । ४० । ४१ ॥

१०६—यात्राकाल विधान वर्णन

इदानीं सर्वधर्मज्ञ ! सर्वशास्त्रविशारद ! ।

यात्राकालविधानमे कथयस्व महोक्षिताम् ॥१

यदा मन्यत नृपतिराक्रन्देन वलीयसा ।

पाष्णिग्राहाभिभूतोऽयं तदा यात्रां प्रयोजयेत् ॥२

दुष्टायोधा भूता भृत्याः साम्प्रतञ्चवलमम ।

मूलरक्षासमर्थोऽस्मि तदायात्रां प्रयोजयेत् ॥३

अशुद्धपाष्णिनृपतिर्नतु यात्रां प्रयोजयेत् ।

पाष्णिग्राहाधिक संन्यामूले निक्षिप्यचव्रजेत् ॥४

चीट्या वा मार्गशीर्ष्या वा यात्रा यायान्नराधिपः ।

चीट्यां पश्येच्च नन्दाद्य हन्ति पुष्टञ्च शास्त्रीम् ॥५

एतदेव विपर्यस्तं मार्गशीर्ष्यां नराधिपः ।
 शत्रोर्वा व्यसने यायात् कालेव सुदुर्लभः ॥६
 दिव्यान्तरिक्षक्षितिजेरुत्पातः पीडित परम् ।
 पडच्छपोडासन्तप्तं पीडितञ्च तथा ग्रहैः ॥७

महर्षि मनु ने कहा—हे सर्व घमंश ! आप तो सभी शास्त्रो के महान् मनीषी हैं, इस समय में राजाओं की यात्रा—काल का जो कुछ विधान हो उसे आप कृपा करके मुझे बतलाइये ॥ १ ॥ श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—जिम समय में नृपति वलीयान् आनन्द से युक्त मान लेवे उम समय में पाणिग्राह से अभिभूत इसको तीर्थ यात्रा की प्रयोजना बन्नी चाहिए । दुष्ट योधा—भूत भूत्य है इस प्रकार से इस समय में भेगा बल विद्यमान है । मैं इस समय में मूल रक्षा में समर्थ हूँ । उसी समय में यात्रा को प्रयोजित करना चाहिए ॥ २ । ३ ॥ जो नृपति अशुद्ध पाणि वाला हो उसे यात्रा प्रयोजित नहीं करना चाहिए । पाणिग्राह से अधिक सैन्य को मूल में निक्षिप्त करके गमन करे ॥ ४ ॥ नराधिप को चैत्री अथवा मार्गशीर्षी पूर्णिमा में यात्रा के लिये गमन करना चाहिए । चैत्री में निदाघ के दृश्य को देखे और शारदी पूर्णिमा का हनन करता है ॥ ५ ॥ यह ही मार्गशीर्षी में विपर्यस्त होता है । नराधिप शत्रु के व्यसन में गमन करे क्योंकि यह काल ही सुदुर्लभ होता है ॥ ६ ॥

ज्वलन्ती च तर्ष्वोल्का दिश याञ्च प्रपद्यते ।

भ्रुकम्पोल्का दिशयाति याञ्चवेतु प्रसूयते ॥८

निर्घातिश्च पतेद्यत्र ता यायाद्दुसुधाधिपः ।

स वलव्यसनोपेत तथा दुर्भिक्षपीडितम् ॥९

सम्भूतान्तरकोपञ्च क्षिप्र प्रायादरि नृपः ।

यूकामाशीकवह्वल बहुपङ्क्तया विलम् ॥१०

नास्तिक भिन्नमर्याद तथा मङ्गलवादिनम् ।

अपेतप्रकृतिञ्च निःसारञ्च तथा जयेत् ॥११

विद्विष्टनायक मैन्यं तथा भिन्न परस्परम् ।

व्यसनाशक्तनृपतिं बलं राजाभिद्योजयेत् ॥१२

सैनिकानां न शास्त्राणिस्फुरन्त्यङ्गानिमयत्र च ।

दुःस्वप्नानिचपश्यन्तिबलन्तद्रमियाजयेत् ॥१३

उत्साहबलमप्यतः स्वानुरक्तबलस्तथा ।

तुष्टपुष्टबलो राजा परानभिमुखो ब्रजेत् ॥ ४

दिव्यान्तरिक्ष और क्षिति में समुत्पन्न उत्पानों से परम पीडित-
पडस पीडा से मन्थन तथा शहो में पीडित—जलती हुई उरका जिस
दिशा को जाती है—भूकम्पोत्का जिस दिशा को जाती है और केतु को
प्रभूत किया करती है । जहाँ पर निर्घात गिरता है उन्ही दिशा को राजा
को गमन करना चाहिये । तम नृप को वन-व्यसन में प्रसन्न—दृभिष्ट से
पीडित और जिपक अन्तर कोप समुत्पन्न हो गया हो ऐस शत्रु पर शोध
ही चढाई नृप को कर देनी चाहिए । जिसमें युद्ध और यक्षिवाए बहुत
हो—अधिक पट्टयुत्तन—विना नाशिक—भिनन मय टा बाना—मञ्जुलवादी—
अपेक्ष प्रकृति वाला और निर्यात को जीत लेना चाहिए ॥ ७, ८, ९,
१०, ११ ॥ जिस राजा की सेना ऐसी हो कि उमक नायक से विद्वेष
हो और जो परस्पर में भिन्न हो—जिस राजा की आमकिन वासनों में
हो ऐसी बलहीन नृप क माय श्रायवोग करना चाहिए अर्थात् युद्ध करे ।
जिसके मैनिको व पाम दस्य न हो और जिसमें उद्ग स्फुरित होते हो—
जो युद्ध स्वप्न देखत हो ऐसा पर बल का कामयोजन करना चाहिए ।
उत्साह और बल में युक्त—जिसकी सेना पूर्ण अनुराग वाली हो—तुष्ट
एव पुष्ट बल बाना राजा ही अपने शत्रुओं से युद्ध करने को अभिमुख
होवे ॥ १२, १३, १४ ॥

शरीरस्फुरणे धन्ये तथा दुःस्वप्ननाशने ।

निःमत्त शत्रुने धन्ये जाते शत्रुपुर ब्रजेत् ॥१५

श्रीपु पट्मु मुडेपु ग्रहेष्वनुगुणेषु च ।

प्रश्नकाले शुभे जाते परान् यायान्नराधिपः ॥१६
 एवन्तु देवसम्पन्नस्तथा पौरपस्युतः ।
 देशकालोपपन्नान्तु यात्रां कुर्यान्नराधिपः ॥१७
 स्थले नक्षस्तु नागस्य तस्यापि सजले वसे ।
 उलूकस्यनिशि घ्वाङ्क्षः सचतस्यदिवावसे ॥१८
 एव देशञ्च कालञ्च ज्ञात्वा यात्रां प्रयोजयेत् ॥१९
 पदातिसागबहुला सेना प्रावृषि योजयेत् ।
 हेमन्ते शिशिरे चैव रथवाजिसमाकुलाम् ॥
 खरोष्ट्रबहुलः सेना तथा ग्रीष्मे नराधिपः ॥२०॥
 चतुरङ्गबलोपेता वसन्ते वा शरद्यथ ।
 सेना पदातिबहुला यस्य म्यात्पृथिवापतेः ॥२१
 अभियोज्यो भवेत्तेन वा शत्रुं विपममाश्रितः ।
 गम्ये वृक्षावृते देशे स्थित शत्रुन्तथैव च ॥२२

परम घन्य अर्थात् अनुकूल शरीर के स्फुरण होने पर, दुःखवन्तो
 के नाश होने पर और अच्छे निमित्त एव शत्रुओं के होने पर ही राजा
 को अपने शत्रु के नगर में प्रवेश करना चाहिए । छँ नक्षत्रों के शुद्ध होने
 पर तथा शत्रुओं के बिल्कुल अपने अनुकूल हो जाने पर ही जब, प्रश्न काल
 परम शुभ होवे तभी राजा को शत्रुओं के ऊपर चढ़ाई करनी चाहिए ।
 इस प्रकार से दैव (भाग्य) से सुसम्पन्न होकर पौरुष से भी पूर्ण समन्वित
 राजा को देश तथा काल से उपपन्न यात्रा कर्नी चाहिए । स्थल में नाग
 और सजल देश में नक्ष के वन में होना पर तथा रात्रि में उलूक एव दिन
 में घ्वाङ्क्ष (कौभ्रा) के वधमत होने पर ही इस प्रकार से देश तथा
 काल का ज्ञान प्राप्त करके राजा को अपनी यात्रा करनी चाहिए ॥ १५।
 १६। १७। १८। १९॥ वर्षा ऋतु में ऐसी सेना को तैयार करे जिसमें
 पदाति सैनिक अधिक हों । हेमन्त और शिशिर ऋतु में अधिक रथों एवं
 घोड़ों की समाकुलता होनी चाहिये । नराधिप को ग्रीष्म ऋतु में खर

और उष्ट्रो की अधिकता वाली सेना सज्जित करनी चाहिए ॥२०॥ वसन्त एवं शरद ऋतु में चतुरङ्ग बल से समुपेत सेना बनानी चाहिये । जिसमें पदाति-अश्व-रथ और मज सभी समुचित संख्या में स्थित हों । जिस राजा की सेना अधिक पदाति (पैदल) वाली हो उस विषय का आश्रय लेने वाला शत्रु राजा के द्वारा अभियोजित होना चाहिए । गमन करने के योग्य—वृक्षों से सम्राट् देश में स्थित शत्रु का अभियोजन करे ॥ २१ ॥ २२ ॥

किञ्चित् पङ्क्तौ तथा यायाद् बहुनागो नराधिपः ।

तथाश्वबहुलो यायान्छत्रु सम पश्चिन्धितम् ॥२३

तमाश्वन्तो बहुलान्तानु राजा प्रपूजयत् ।

सरोष्ट्रबहुलो राजा शत्रून्धेन सम्यित ॥२४

वन्धनस्थोऽभियाज्योऽग्निस्त्वाप्रावृषिभृज्जा ।

हिमपातयुने देशेऽस्थितग्रीष्मं प्रियोजयत् ॥२५

यवमेन्धनमयुक्तं कालं पार्थिव ! हेमन्तः ।

शरदसन्तोषमज्ज ! कालीघाट्णणीन्मृनो ॥२६

विज्ञाय राजा हितदेशकालो देव त्रिकालञ्चतयेव वृद्ध्वा ।

यायात्परकालविदामनेन सञ्चिन्धयसाहृद्विजमन्त्रविद्वि ॥२७

बहुत अधिक नागों वाले नराधिप को कुछ पङ्क्तों में उसी प्रकार से गमन करना चाहिए जिस तरह से बहुत अश्वों वाला राजा मार्ग में स्थित समान शत्रु का अभियोजन कर लेवे ॥ २३ ॥ उसका जो बहुत से आश्रय पट्टण करने वाले हों उनका राजा की पूजन करना चाहिए । उष्ट्रो और उष्ट्रों की बहुलता वाला शत्रु राजा जब बन्धन में स्थित हो तो उस बन्धन में स्थित शत्रु को राजा के द्वारा शरद ऋतु में अभियाजन करे । हे पार्थिव ! यवम और इधन में मयुक्त काल हेमन्त होता है । हे धम्मन्त ! शरद और धमन्त ये दोनों ऋतुएँ साधारण काल कहे गए हैं । राजा का कल्याण है कि उस हितकर दश और काल को समझ

कर तथा देव-त्रिकाल को भी जानकर काल के वेत्ता ज्योतिषियों के मत से पूर्ण रूप से जानकर एवं द्विज और मन्त्र वेत्ताओं के साथ मली भीति चिन्तन करके ही यात्रा में गमन तथा शत्रु पर अभियोजन करना चाहिए ॥ २४-२७ ॥

१०७-अङ्ग स्फुरण विचार

ब्रूहि मे त्वं निमित्तानि अशुभानि शुभानि च ।
 सर्वधमन्ता श्रेष्ठ ! त्वहिसर्वाविदुच्यते ॥१
 अङ्गदक्षिणभागे तु शस्त प्रस्फुरणम्भवेत् ।
 अथ शस्त तथा वामे पृष्ठस्य हृदयस्थ च ॥२
 अङ्गानां स्पन्दञ्चैव शुभाशुभविचेष्टितम् ।
 तन्मे विस्तरतो ब्रूहि येन स्यात्तद्विद्यो भुवि ॥३
 पृथ्वीलाभो भवेन्मूर्द्धनि ललाटेरविनन्दन । ।
 स्थानं विवृद्धिमायाति भ्रूनसोः प्रियसङ्गमः ॥४
 भृत्यसन्धिश्चाक्षिदेशे दृगुपगते धानगमः ।
 उत्कण्ठोपगमो मध्येहृष्टराजन् ! विचक्षणः ॥५
 दृग्बन्धने सङ्गरे च जय शीघ्रमवाप्नुयात् ।
 योपिद्रोणोऽप्याङ्गदेशे श्रवणात्ते प्रियाश्रुतिः ॥६
 नासिकायां प्रीतिसौख्यप्रजाप्तिरधरोष्ठजे ।
 कण्ठे तु भोगलाभःस्याद्भोगवृद्धिरथासयो ॥७

महर्षि मनु ने कहा—हे समस्त धर्म धारियों में परम श्रेष्ठ देव ! आपको तो सभी दुष्ट के ज्ञाता कहा जाता है । अतएव अब आप कृपा करके जो निमित्त शुभ हों उन्हें और जो परम अशुभ हों उनको भी बतलाने का श्रम कीजिए ॥१॥ मत्स्य भगवान् ने कहा—मानव के अङ्ग

ये जो दक्षिण भाग है उसमें जो प्रस्फुरण होता है उसे परम प्रयास कहा गया है । उसी भाँति तो वाम भाग में पृष्ठ और हृदय का प्रस्फुरण भी प्राप्त होता है ॥२॥ महर्षि मनु ने कहा—हे भगवन् ! अङ्गों का स्पन्दन और उसके गुण एवं अगुण का विचेष्टित होता है उसको विस्तार पूर्वक मेरे समक्ष में वर्णित कीजिए जिससे इस भूमण्डल में उसी प्रकार का मनुष्य हो जावे ॥३॥ श्री भस्म भगवान् ने कहा—हे रविनन्दन ! सूर्य में स्पन्दन हो तो पृथ्वी का लाभ होता है—ललाट में प्रस्फुरण हो तो स्थान की विशेष वृद्धि होती है—भ्रूओं में हो तो प्रिय का सङ्गम होता है । नेत्र के भाग में स्पन्दन हो तो भृत्य की प्राप्ति होती है और हृदय के उपान्त में प्रस्फुरण हो तो धन का आगम हुआ करता है । हे राजन् ! विचक्षण पुरुषों ने देखा है कि मध्य भाग में स्पन्दन हो तो उत्कण्ठा का उपगम हुआ करता है । हृदयधन में और नखर (युद्ध) में बहुत ही शीघ्र जय का लाभ हुआ करता है । अपाङ्ग देश में होने से स्त्री का उपयोग होता है और श्रवण के अन्त में विस्फुरण हो तो प्रिया की श्रुति होती है । नासिका में स्पन्दन होने से प्रीति होती है और सौख्य होता है अघरोष्ठ में स्पन्दन से प्रजा की प्राप्ति होती है । कण्ठ में भोग का लाभ और अंस दोनों में स्पन्दन से भोग की वृद्धि हुआ करता है ॥४-७॥

सुहृत्स्नेहश्च ब्राह्मणा हस्ते चैव धनागमः ।

पृष्ठे पराजयः सद्यः जयो वक्षःस्थले भवेत् ॥८॥

कुक्षिभ्यां प्रातिकृद्दिष्टा स्थिरा प्रजननस्तने ।

स्थानभ्रंशा नाभिदेशे अन्त्रो वैधनःगमः ॥९॥

जानुसन्धी परं सन्धिवलवद्भिभवेन्नृपः ।

दिशंकुदेशनाशाऽप्य जहृष्वाया रविनन्दन ! ॥१०॥

उत्तम स्थानमाप्नोति पदमथ्या प्रस्फुरणान्नुपः ।

सलाभञ्जनाध्वगमन भवेत्सपदतले नृपः ॥११॥

लाञ्छन पिष्टकञ्चव जय स्फुरणवत्तया ।

विपर्ययेण विहिता सर्वेस्त्रीणां फलागमः ॥

दक्षिणेऽपि प्रशस्तेऽङ्गं प्रशस्तं स्याद्विशेषतः ॥१२

अतोऽन्यथा सिद्धिप्रजल्पनात् फलस्य शस्तस्य च निन्दितस्य ।

अनिष्टचिह्नोपगमे द्विजानां कार्यं सुवर्णं तु तर्पणं स्यात् ॥१३

बाहुओं के प्रस्फुरण से सुदूत का स्नेह और हाथ में होने से घन का समागम हुआ करता है । पृष्ठ में होने से तुरन्त ही पराजय होती है तथा वक्षः स्थल में स्पन्दन से जय हुआ करता है । कुक्षियों में होने से प्रीति उपदिष्ट की गई है और स्तन में स्पन्दन से स्त्री के प्रजनन हुआ करता है । नाभि देश में प्रस्फुरण होने से स्थान का भ्रंश हुआ करता है तथा अंग्र में होने से घन का आगम होता है । जानुओं की सन्धि में प्रस्फुरण होने से परो से सन्धि होती है जो कि बहुत बलवान् हुआ करते हैं । हे नृप ! हे रविनन्दन ! दिशा के एक देश में होने से नाश होता है तथा जङ्घा में स्पन्दन हो तो उत्तम स्थान का लाभ होता है और पैरों में होने से लाभ क सहित मार्ग का गमन होता है । हे नृप ! पादतल में होने से लाञ्छन लगता है और स्फुरण की ही भाँति फिर कभी जान सेना चाहिए । यह पुरुष के विषय में ही कहा गया है स्त्रियों के विषय में विपर्यय से फलागम हुआ करता है । प्रशस्त अङ्ग दक्षिण में भी विशेष रूप से प्रशस्त होता है इसलिए अन्यथा सिद्धि के प्रजल्पन से प्रशस्त और निन्दित फलका अनिष्ट चिह्नों के उपगम होने पर द्विजों का सुवर्ण के द्वारा तर्पण करना चाहिए ॥५-१३॥

१०८— स्वप्न दर्शन वर्णन

स्वप्नाख्यानं कथं देव ! गमने प्रत्युपस्थिते ।

इदमन्तेविविधाकारा कथन्तेषाफलमवेत् ॥१

इदानीं कथयिष्यामि निमित्तं स्वप्नदर्शने ।
 तामि विनाव्यामलेषु तृणवृक्षसमुद्भवः ॥२॥
 वर्षानं मर्दिनि कारुणानां भण्डन नमनतातथा ।
 मलिनान्म्वरधारित्वमभ्यङ्गः पङ्कुशिथिता ॥३॥
 उन्मत्तत् प्रपतनञ्चैव दोलानोद्वरणमेव च ।
 अर्जनं पक्कलोहानां ह्ययानामपि मारणम् ॥४॥
 रक्तपुष्पद्रमाणाञ्च मण्डलगम्य तर्षव च ।
 वगहृक्षेत्रदोष्ट्राणां तथा चागोहृणाक्रिया ॥५॥
 भक्षणं पक्कलोहानां तैलाय क्लृप्तस्य च ।
 तर्जनं हसनञ्चैव विवाहो गीतमेव ॥६॥
 सन्त्रीशालकिहीनालां वाद्यानाभिमिवादनम् ।
 स्रोतोऽवगाहगमनं स्नानं गोमयवार्श्या ॥७॥

महा महर्षि मनु से कहा—हे देव ! कही पर गमन के प्रकृतियुक्त होने पर स्वप्न का आस्थान किस प्रकार से हुआ करता है ? ये स्वप्न ही अनेक तब विभिन्न आकार वाले दिखावाई दिखाने हैं किन्तु उन सबका फल किस प्रकार से हुआ करता है ॥ १ ॥ श्री मन्मथ देवन कहा—इस समय से मैं स्वप्नो के दर्शन से जा निमित्त होता है उन ही बतलाना हूँ। वेदत एक तामिको छाड़ कर गगर क ग्रन्थ किमी भी अङ्ग में तृण धीर मृगो की समुपति —मन्त्रक का घण हो जाना—काम्यो का मुण्डन तथा नानता—मनिन वस्त्रो का छारण करना, अम्यङ्ग, पङ्कु म विगधता, ऊँचे से पतन होना, दोला पर समाराहण करना, पक्क लोही का अर्जन, ह्यो का मारण, रक्त पुष्प वाले द्रुमो के मण्डल का तथा वगहृ, गीछ, धर धीर उष्ट्रो के ऊपर आरोहण करना—पके दूर माल का भक्षण करना तथा वृत्त धीर क्लृप्त का खाना, नाचना, हराणा, विवाह, गीत, सन्त्री के द्वारा चरने वाले बालो से रहित अम्य बालो का अभिवादन करना, स्रोत का भवणाहन गमन करना, गोमयवार्श से स्नान करना आदि से सब हु स्वप्न होते हैं ॥२-७॥

पङ्कोदकेन च तथा महीतोयेन चाप्यथ ।
 मातुः प्रवेशो जठरे चितारोहणमेव च ॥८
 शक्रध्वजाभिपतन पतनं शशिसूर्ययोः ।
 दिव्यान्तरिक्षभीमानामुत्पानाञ्च दर्शनम् ॥९
 देवद्विजातिभूपालगुरुणां क्रोधएव च ।
 आलिङ्गन कुमारीणां पुरुषाणाञ्च मंथुनम् ॥ ०
 हानिश्चैव स्वगात्राणा विरेकवमनक्रिया ।
 दक्षिणादाभिगमन ध्याघिताभिभवस्तथा ॥११
 फलापहानिश्च तथा पुष्पहानिस्तथैव च ।
 गृहाणाञ्चैव पातश्च गृहसम्मार्जनन्तथा ॥१२
 क्रीडा पिशाचक्रव्यादवानरक्षनरंरपि ।
 परादभिभवश्चैव तस्मान्च व्यसनोद्भवः ॥१३
 कापायवस्त्रधारित्व तद्वत् स्त्रीक्रीडनन्तथा ।
 स्नेहपानावगाहोच रक्तमाल्यानुलेपनम् ॥१४

पङ्क के मिश्रित जल से स्नान, मही तोय से स्नान माता के उदर
 में प्रवेश करना, चिता पर समारोहण, शक्र ध्वज का गिरना, चाँद और
 सूर्य का पतन, दिव्यान्तरिक्ष भीमों का और उत्पातों का दर्शन, देव,
 द्विजाति, राजा और गुरु का क्रोध, कुमारियों का आलिङ्गन, पुरुष मंथुन,
 अपने गर्भों की हानि, विरेचन और वमन, दक्षिण दिशा की ओर गमन
 करना, ध्याधि से अभिभव, फल की अपहानि, पुष्प हानि, गृहों का
 गिरना, गृह का सम्मार्जन, पिशाच, राक्षस, वानर, ऋक्ष और नरों के
 साथ क्रीडा करना, दूसरे से अभिभव और उससे ही व्यसन की उत्पत्ति,
 श्रेष्ठा स्त्रियों का धारण करना, स्त्री के साथ क्रीडन, स्नेह पान और
 अवगाहन तथा रक्त माल्य और अनुलेपन करना ये सब दुःस्वप्न होते
 हैं ॥८-१४॥

एवमादीनि चान्यानि दुःस्वप्नानि विनिदिशेत् ।
 ऐषां तद्धृद्यनं घन्यं भूय प्रस्वापनन्तथा ॥१४
 कल्कस्तानन्तिलैर्होमो ग्राह्यणानाञ्च पूजनम् ।
 स्तुतिश्च वासुदेवस्य तथा तस्यैव पूजनम् ॥१५
 नागेन्द्रमोक्षप्रवणं ज्ञेयं दुःस्वप्ननाशनम् ।
 स्वमास्तु प्रथमे यामे सम्प्रसरत्तथाकिनः ॥१७
 पङ्क्तिर्मास द्वितीये तु त्रिभिर्मासस्तृतीयके ।
 चतुर्थे मासमात्रेण पश्यती नात्र सशयः ॥१८
 अरण्योदप्रवेलाया दशाह्नेन फलम्भवेत् ।
 एकस्यां यदि वा रात्रौ शुभं वा यदिवाशुभम् ॥१९
 पश्चाद्दृष्टं यस्तन्नस्यपाकवितिदिशति ।
 तस्मान्छोभनवेस्वप्नेश्चात्स्वप्नोत्पश्यति ॥२०

इसी प्रकार क तथा ऐसे ही अन्य दुःस्वप्न हुआ करते हैं—ऐसा ही विनिर्देश करना चाहिए । ऐसे दुःस्वप्नो का मनी भोगि बदन तथा ऐसे स्वप्न देखकर फिर स्वपन करना अच्छा जाना है इसका फल फिर बुरा नहीं रहा करता है । कल्क म म्नात, तिला म होम और ग्राह्यणो का पूजन, वासुदेव वा स्तवन तथा उनका ही पूजन और गजेन्द्र मोदा की कथा का श्रवण करना — इनके दृ स्वप्नो म होन दाले कृफल का नाश हो जाया करता है । स्वप्न यदि प्रथम ही याम होवे तो उसका फल एक वर्ष तक विपाक की दशा में पहुँचता है । दूसरे प्रहर में स्वप्न हो तो उसका फल छँ मास में होता है । तीसरे रात्रि के प्रहर में स्वप्न देखे तो तीन मासों में फल हुआ करता है और चौथे प्रहर में स्वप्न जो दिखाई देता है उसका फल एक मास में हुआ करता है इसमें कुछ भी शयय नहीं है । यदि अरण्योदय के समय में स्वप्न हो तो दस दिन में फल होता है । एक ही रात्रि में शुभ और अशुभ स्वप्न हो तो जो पीछे दिखाई देता है उसी का पारनिर्दिष्ट करना चाहिए । इसी कारण से यदि कोई अच्छा

स्वप्न हो और पीछे स्वप्न नहीं देखता है तो अच्छा है अतएव अच्छा स्वप्न देखकर फिर सोना ही नहीं चाहिए ॥१५-२०॥

शैलप्रासादनागाश्ववृषभारोहण हितम् ।

द्रुमाणां श्वेनपुष्पाणां गमने च तथा द्विज ॥२१

द्रुमतृणोदभवो नाभौ तथैव बहुवाहता ।

तथैव वट्टशीघ्रत्व फलितोद्भव एव च ॥२२

सुशुक्लमाल्यधारित्व सुशुक्लाम्बर धारिता ।

चन्द्राकंताराग्रहण परिमार्जनमेव च ॥२३

शक्रध्वजालिङ्गनञ्च तदुच्छ्रायक्रिया तथा ।

भूम्यम्बुधीनां ग्रसन शत्रूणाञ्च बधक्रिया ॥२४

जयो विवादे द्यूते च सप्राप्ते च तथा द्विज ! ।

शक्षणञ्चार्द्रमासानां मत्स्यानां पायसस्य च ॥२५

दशन रुधिरस्यापि स्नान वा रुधिरेण च ।

सुरारुधिरमद्यानां पान क्षीरस्य चाथवा ॥२६

अशैर्वा वेष्टन भूमौ निमल गगन तथा ।

मुखेन दोहन शस्त महिषीणां तथा गवाप् ॥२७

सिंहोना हस्तिनोनाञ्च वडवानां तथैव च ।

प्रसादो देवविप्रेभ्यो गुरुभ्यश्च तथा शुभः ॥२८

अब अच्छे स्वप्नों के विषय में बतलाया जाता है—नागेन्द्र, शैल, अश्व, प्रासाद और वृषभ का समारोहण हितकर हुआ करता है । हे द्विज ! श्वेत पुष्पो वाले द्रुमों का गमन में आरोहण भी शोभन होता है । नाभि में द्रुम और तृणों का उद्भव तथा बहुत से बाहुओं की उत्पत्ति हो जाना—बहुत सारे मस्तकों का होना और फलितोद्भव, सुन्दर सुक्ल मालाओं का धारण करना सुक्ल वस्त्रों का धारण, चन्द्र, सूर्य और तारा का ग्रहण, परिमार्जन, शक्र को ध्वजा का आलिङ्गन, उसके उच्छ्राय की क्रिया, भूमि तथा अम्बुधियों का ग्रसन, शत्रुओं के बध करने का कर्म,

विवाह, संश्राम और धून में जीन, आर्द्र मांस का भक्षण, मत्स्यों का भक्षण, पयस का खना, रुधिर का दर्शन, रुधिर में स्नान, सुरा, रुधिर मद्य का पान करना अथवा क्षीर का पान, अंतो के द्वारा वेष्टन जो भूमि में हो, निर्वंत गगन, सुख के द्वारा भैमी तथा योषो का दोहन प्रगस्त होता है । सिंहनियों का, हथिनियों का और बड़वात्रो का भी दोहन प्रगस्त है । देव तथा विश्व की प्रसन्नता और गुरु वर्ग का प्रसन्न भी शुभ होता है ।

॥२१-२८॥

अम्मसा त्वभिषेकस्तु गवा शृङ्गाप्रितेन वा ।

चन्द्राद् भ्रष्टेन वा राजन् । जया राज्यप्रदो हि सः ॥२६॥

राज्याभिषेकश्च तथान्धेदत शिरसस्तथा ।

मरण वह्निदाहश्च वह्निदाहो गृह्णादिषु ॥३०॥

तन्निश्च राज्यलिङ्गाना तन्त्रीवाद्याभवास्तम् ।

तपोदकाना तरण तथा विषमलङ्घनम् ॥३१॥

हस्तिनीबडवानाञ्च गवाञ्च प्रसरो गृहे ।

आरोहणमयादवाना रोदरञ्च तथाशुभम् ॥३२॥

वरस्थीणा तपानामस्तथानिङ्गनमत्र च ।

निगडैर्वन्धन घन्य तथा विष्टानुनपतम् ॥३३॥

जीधितां भूमिपालाना गृह्णामपि दर्शनम् ।

दर्शनं देवतानाञ्च विमलाना तथाम्मसात् ॥३४॥

गुहान्यर्षतानि नश्नुदृष्ट्वा प्राप्नोतिपयत्नाद्भवमर्षलाभम् ।

स्वप्नानि वं घममृता वरिष्ट । व्याघ्रीर्विमोक्षञ्च तथाऽज्जुरोऽपि ॥३५॥

जल के द्वारा अभिषेक का होना अथवा शीशो के शृङ्गों के आघात जल के द्वारा अभिषिञ्जन होना, हे राजन् ! चन्द्र से भ्रष्ट के द्वारा अभिषिचन का होना तो राज्य की प्रदान करने वाला ही आतना चाहिए ॥२६॥ राज्याभिषेक का होना, शिर का छेदन हो जाना, मरण, मणिका दाह, गृह आदि से अग्नि के द्वारा दाह का हो जाना, राज्य के

चिन्हों की प्राप्ति का हो जाना, सन्धो वाले वाद्यों का अग्निवादन होना, जलों में तैरना, विषम स्थान का लङ्घन करना, गृह में हथिनो, बड़वा तथा गौत्रो का प्रसव होना, अश्वो पर समारोहण करना शुभ होना है । अच्छी स्त्रियो का लाभ करना तथा वरस्त्रियो का समालिङ्गन करना, निमडो के द्वारा दन्धन का होना, बिष्ठा से अनुत्पन्न होना यह सब घन्य एवं शुभ होना है । जीविन भूमिपालो का तथा सुहृदो का दर्शन प्राप्त करना दैव का दर्शन करना, विमल जलो का देखना ये सब परम शुभ स्वप्न हुआ करते हैं । मनुष्य इन ऐसे शुभ स्वप्नो को देख कर बिना ही यत्न के क्रिये धुरुरा से प्रथं काल म प्र पा किरा करना है । हे धर्म-धारियो मे वरिष्ठ ! भातुर हो कर भी व्याधियो का विमोक्ष होना शुभ स्वप्न होना है ॥३०-३५॥

१०६-यात्रा के समय मङ्गल-श्रमङ्गल सूचक शकुन वर्णन

गमनं प्रति राजान्तु संमुखादशने च किम् ।
 प्रशस्ताश्चैव सम्भाष्य सवनिताश्चकीर्तय ॥१
 औषधानि त्वयुक्तानिधान्यं कृष्णञ्चयद्भवेत् ।
 कार्पासश्चतृणा राजन् ! शुष्कंगोमयमेव च ॥२
 इन्धनञ्च तथाङ्गारं गुडं तैल तथा शुभम् ।
 अश्वत्थं मतिगं मुण्डन्तयानग्नञ्च मानवम् ॥३
 मुक्तकेशं रुजातञ्च काषायाम्बरधारिणम् ।
 उन्मत्तकन्तथा सख दीनञ्चाय नपुंसकम् ॥४
 अयः पङ्कस्तथा चर्मं केशबन्धनमेव च ।
 तथैवाद्धृतसारणि पिण्याकादीनि यानि च ॥५
 चण्डालद्वपचाश्चैव राजबन्धनपालकाः ।

वधकाः पापकर्मणि गभिणी स्त्री तथैव च ॥६
 तुपमस्मकपालास्थिभिन्नभाण्डानि यानि च ।
 रवतानि चैव भण्डानि मृतंशाङ्गिकमेव च ॥७
 एवमादीनि चान्यानि अशस्तान्यभिदर्शने ।
 अशस्तो वाह्यशब्दश्च भिन्नभैरवजंजरं ॥८

महर्षि मनु ने कहा—हे भगवान् ! जिस समय मे राजा लोग गमन किया करते हैं तो समुख मे दर्शन करने मे क्या-रया प्रशस्त हुआ करते हैं, यह बतलाकर इन सम्पूर्ण शकुनो का वर्णन कृपा करके किये । ॥१॥ श्री म-स्य भगवान न कहा—हे राजन् ! अशुक्त प्रोषध, कुप्युष घान्य, कपास, तृण, शुष्क गोमय, ई धन, अङ्गार, गुड, तैल ये सब शकुन शुभ हुमा करते हैं । अशुद्ध किया हुआ, मलिन, मुण्ड, नग्न मानव, केमो को खुले हुए रखने वाला, रोग से आतं काषय्य वस्त्रो के धारण करने वाला, उन्मत्त सख, दीन नपुंसक, लोहापक, अमं, केशवन्धन, विष्याक आदि सार वस्तुए वन्धन पालक, वधक, पाप कर्म करने वाले, गभिणी स्त्री तुप, मस्म, कपाल, अस्थि, भिन्न भाण्ड, रक्त वर्ण के भाण्ड, मृत, शाङ्गिक इस प्रकार से इत्यादि अभिदर्शन मे अशस्त होते हैं । वाह्य शब्द और भिन्न भैरव जंजर शब्द भी अशस्त हुआ करना है ॥२-८॥

पुरतः शब्द एहीति शस्यते न तु पृष्ठतः ।
 गच्छेति पश्चात् घमंजो ! पुग्स्तात्तुविगहितः ॥६
 नव यासि तिष्ठमा गच्छकिन्तेतत्र गतस्य तु ।
 अन्ये शब्दाश्च ये निष्ठास्तेविपत्तिकरापि ॥१०
 ध्वजादिषु तथास्यान क्रव्यादाना विगहितम् ।
 स्थलानां वाहनानाञ्च वस्त्रसङ्गस्तथैव च ॥११
 तिगंतस्य तु द्वारादौ शिरसश्चाभिघातिता ।
 छत्रध्वजाना वस्त्राणा पतनञ्च तथा शुभम् ॥१२
 दृष्टे निमित्ते प्रथममङ्गल्यविनाशनम् ।

वेशवं पूजययेद्विद्वान् स्तवेन मधुसूदनम् ॥१३

द्वितीये तु ततोदृष्टे प्रतीपे प्रविशेद्गृहम् ।

अथेष्टानि प्रवक्ष्यामि मङ्गलात्पानि तथाऽनघ ! ॥१४

आगे की ओर से आओ—यह शब्द शस्त होना है पीछे की ओर से प्रशस्त नहीं होता है । हे धर्मज्ञ पीछे की ओर से 'गच्छ अर्थात् जाओ'—यह शब्द शस्त कहा गया है जो कि सामने गृहित माना गया है । 'कहा जाते हो'—'रुकजाओ'—'यहां पर जाने से तुझको क्या प्रयोजन है'—ये इस तरह के तथा ऐसे ही अन्य शब्द जो होने हैं वे विपत्ति करने वाले भी हुआ करते हैं ॥६, ८०॥ ऋष्यादो राक्षसो का ध्वज आदि में स्थान गृहित हुआ करता है । बाहनों का रखलन, वस्त्र सङ्ग, द्वार आदि में निगमन करने वाले के शिर का अवघात तथा छत्र, ध्वज और वस्त्रों का पतन भी शुभ होता है । प्रथम में ही निमित्त के देखने पर अमङ्गल्य का विनाश होता है । विद्वान् पुरुष का कर्तव्य है कि भगवान् केशव का पूजन करे और मधुसूदन प्रभु का स्तवन करना चाहिये ॥६-१३॥ हे अनघ ! फिर द्वितीय प्रतीप के देखने पर गृह में प्रवेश कर लेना चाहिए । इसके पश्चान् इष्ट मङ्गलों के विषय में मैं वर्णन करूंगा ॥१४॥

श्वेता. सुमनसश्चेष्टा. पूणकुम्भास्तथैव च ।

जलजाः पक्षिणश्चैवमास मत्स्याश्चर्पाथिव । ॥१५

गावस्तुरङ्गमा नागा बद्ध एकःपशुस्त्वजः ।

त्रिदेशाः सुहृदो विप्रा ज्वलितश्च हुताशनः ॥१६

गणिका च महाभाग । दूर्वा चार्द्रञ्च गोमयम् ।

रुवमरूप्यन्तथा ताम्र सर्वरत्नानि चाप्यथ ॥१७

औषधानिव धर्मज्ञ ! यथाः सिद्धार्थंकास्तथा ।

नृवाह्यमानं यानञ्च भद्रपीठन्तथैव च ॥१८

खड्ग चक्रं पताका च मृदश्वायुधमेव च ।

राजलिङ्गानि सर्वाणि सर्वे रुदितवर्जिताः ॥१९

घृतं दधि पयश्चैव फलानिविचिधानि च ।

स्वस्तिकं वद्धं मानञ्च नन्धावर्तं सकौस्तुभम् ॥२०॥

वादित्राणां मुखः शब्दः गम्भीरः सुमनोहरः ।

गान्धारपड्जञ्जपभा ये च शस्तास्तथा खराः ॥२१॥

हे पाणिब ! श्वेत पुष्प परम श्रेष्ठ होते हैं तथा पूर्ण कुम्भ भी परम शुभ हुआ करते हैं । जलज—पक्षीमण—मास—मत्स्य—गोएँ—तुरङ्गम—नाग—बद्ध एक पशु—अज—त्रिदश—सुहृद् विप्र—जलती हुई अग्नि—गणिका—ताम्र प्रोर हे महाभाग ! सब प्रकार के रत्न—हे धर्मंज ! दुर्वा—आर्द्र सोमय—सुवर्ण—रूप्यक—त्रयोध—यव—सिद्धार्थक—मनुष्यों के द्वारा वाह्यमान धान—भद्रपीठ—खड्ग—चक्र—पताका—मृत्तिका—आयुध—सम्पूर्ण—राजा क चिह्न जो संदित से रहित होवे । घृत—दधि—पय—विचिध भ्राति के फल—स्वस्तिक—वद्धं मान—नन्धावर्तं—कौस्तुभ—वादित्रों का मुखकर शब्द जो गम्भीर एव मनोहर हो—गन्धार, पड्ज—ञ्जपम जो कि शस्त्र तथा खर हैं ॥ १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१ ॥

वायुः सशकरोरुक्षः सर्वत्र समुपस्थितः ।

प्रातलोमस्तथा नाचो विज्ञेयोभयकृद्विज ! ॥२२॥

अनुकूलोमृदुः स्निग्धः मुखस्पर्शः सुखावहः ।

रुक्षादृक्षस्वराभद्राः काव्यादा परिगच्छताम् ॥२३॥

मेघाः शस्ताघनाः स्निग्धागजवृहितमन्निभाः ।

अनुलोमास्तद्विच्छन्नाः गक्रवापन्तथैवच ॥२४॥

अप्रशस्ते तथा ज्ञेये पश्चिपप्रवपणे ।

अनुलोमा ग्रहा क्षरता वाक्पतिस्तु विशेषतः ॥२५॥

आग्निवय श्रद्धानस्व तथा पूज्यामिपूजनम् ।

शस्तान्वेयानि धर्मंज ! प. च स्याग्निवयः प्रियम् ॥२६॥

मनसस्तुष्टिरेवाय परमं जयलक्षणम् ।

एकतः सर्वलिङ्गानि मनसस्तुष्टिरेकतः ॥२७

मनोत्मुक्त्वं मनसः प्रहर्षः शुभस्य लाभो विजयप्रवादः ।

मङ्गल्यलब्धिः श्रवणञ्च राजन् ! ज्ञेयानि नित्यं विजयावहानि ॥२८

धूलि के सहित रूक्ष वायु जो कि सभी जगह समुपस्थित है । हे द्विज ! जो प्रतिलोम और नीच है वह भय करने वाला ही समझना चाहिए । अनुकूल—कोमल—स्निग्ध—सुख देने वाले स्पर्श से युक्त—सुख का आवाहन करने वाला—रूक्ष—अरूक्ष स्वर—अभद्र—परिगमन करने वालो के क्रम्याद—हाथियों के घृहित के सदृश घने, स्निग्ध मेघ प्रशस्त होते हैं । अनुलोम विद्युत् से छन्न-शक्रचाप तथा परिवेष में प्रवर्षण प्रशस्त जानने चाहिए । जो ग्रह अनुलोम होते हैं वे प्रशस्त हुआ करते हैं और वाक्पति विशेष रूप से प्रशस्त माने गये हैं । आस्तिकता—श्रद्धावानता—पूज्यगण का अभिपूजन—हे धर्मज्ञे ! ये सब प्रशस्त हुआ करते हैं और वह भी परम प्रशस्त माना गया है जो अपने मन के लिये अतिशय प्रिय होता है । यहाँ पर अपने मन की जो तुष्टि हुआ करती है वह ही परम जय का लक्षण हुआ करता है । एक ओर तो ये सभी चिह्न होते हैं और एक ओर अपने मन की तुष्टि हुआ करती है । मन की उत्सुकता अर्थात् उत्साह और मनमे होने वाला प्रहर्ष यह ही शुभ का लाभ और विजय का प्रवाद होता है । मङ्गल्य की लब्धि और उसका श्रवण हे राजन् ! नित्य ही विजय के आवह करने वाले जानने चाहिए । ॥ २२-२८ ॥

११०-वाराहवतार के त्रिपय में अर्जुन का प्रश्न

प्रादुर्भवान् पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः ।

सता कथयता विप्र वाराह इति तः श्रुतम् ॥१

न जाने तस्यचारत न विधि नच विस्तरम् ।

न कर्मगुणसंस्थानं न चाप्यन्तमनीषिणः ॥२
 किमात्मको वराहोऽसौ किं मूर्तिः कास्य देवता ।
 किं प्रमाणः किं प्रभावः किं वा तेन पुरा कृतम् ॥३
 एतन्मे शंस तत्त्वेन वाराहं श्रुतिविस्तरम् ।
 यथाहञ्च समेतानां द्विजातीनां विशेषतः ॥४
 एतत्ते कथयिष्यामि पुनाणं ब्रह्मसम्मितम् ।
 महावराहचरितं कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥५
 यथा नारायणो राजन् ! वाराहं वपुरास्थितः ।
 दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिमर्दनः ॥६
 छन्दोपीभिर्द्वारामिः श्रुतिभिः समलङ्कृत ।
 मनः प्रसन्नतां कृत्वा निबोध विजयाधुना ॥७

अर्जुन ने कहा—हे विप्र ! अर्पारमित तेज से युक्त भगवान्
 त्रिप्लु के पुराणों में प्रादुर्भावों को कहने वाले सत्पुरुषों में हमने एक वाराह
 का भी प्रादुर्भाव सुना है ॥ १ ॥ उस वाराह का चरित्र मैं नहीं जानता
 हूँ और न तो उसकी कोई विधि ही मुझे मालूम है और न कुछ विस्तार
 का ही ज्ञान है । उनका कर्म और गुणों का संस्थान क्या था—यह भी
 मैं नहीं जानता हूँ । उन अत्यन्त मनीषी प्रभु का तो अद्भुत ही कर्म—
 गुण संस्थान होगा ॥ २ ॥ यह वराह किस स्वरूप वाला प्रादुर्भाव था ?
 इनकी कैसी मूर्ति थी और इनका देवता कौन था ? इनका प्रमाण
 कितना था और क्या प्रभाव था तथा पहिले उन्होंने क्या किया था ?
 ॥ ३ ॥ भूमि विस्तार इस वाराह को आप तात्त्विक रूप से मुझे तब
 बतलाइये ? विशेष रूप से ये एकत्रित हुए द्विजाति गण हैं इनके अनुसार
 का भी योग्य हो श्रवण कराइये ॥ ४ ॥ श्री शौनक जी ने कहा—अद्भुत
 कर्म वाले भगवान् श्रीकृष्ण के इस महा वराह चरित्र को जो ब्रह्म सम्मित
 पुराण है मैं आपसे कहूँगा ॥ ५ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार से भगवान्
 शत्रुओं के मर्दन करने वाले नारायण न वाराह के वपु में समास्थित

होकर अपनी दाढ से इस समुद्र में स्थित भूमि को उठाकर इसका उच्चार किया था ॥ ६ ॥ छन्द, वाणी, उदार श्रुतियों से सम्यक् प्रकार से अलंकृत होकर तथा मन की प्रसन्नता करके अब उस विजय का ज्ञान करलो ॥ ७ ॥

इदं पुराणं परमं पुण्यं वेदंश्च सम्मितम् ।
 नानाश्रुतिसमायुक्तं नास्तिकाय न कीर्तयेत् ॥८
 पुराणं वेदमखिलं साङ्ख्यं योगञ्च वेद यः ।
 कात्स्नर्येण विधिना प्रोक्तं सौख्याय वं वदिष्यति ॥९
 विश्वेदेवास्तथा साध्या रुद्रादित्यास्तथाश्विनौ ।
 प्रजाना पतयश्चैव सप्त चैव महर्षयः ॥१०
 मनः सङ्कल्पजाश्नीव पूर्वजा ऋषयस्तथा ।
 वसवो मरुतश्चैव गन्धर्वा यक्षराक्षसाः ॥११
 दैत्याः पिशाचाः नागाश्च भूतानि विविधानि च ।
 ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वंश्याः शूद्राः म्लेच्छाश्च ये भुवि ॥१२
 चतुष्पादानिसर्व्वर्णाणि त्रिद्वयं योनिशतानि च ।
 जङ्गमानि च सत्वानि यच्चान्यज्जीवसंज्ञितम् ॥१३
 पूर्णं युगसहस्रे तु ब्राह्मं ऽहति तथागते ।
 निर्व्वर्णाणि सर्व्वभूतानां सर्वोत्पातसमुद्भवे ॥१४

यह बराह पुराण परम पुण्यमय है और समस्त वेदों के सम्मित है । यह अनेक श्रुतियों से भी समायुक्त है । इसका कीर्तन किसी भी नास्तिक के समक्ष में नहीं करना चाहिए यह सम्पूर्ण पुराण वेद ही है । जो साह्य और योग को जानता है वह पूर्ण विधि से कथित इसको सौख्य सम्पादन करने के लिये कहेगा ॥ ८ । ९ ॥ विश्वेदेवा, माध्य, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार और प्रजाओं के पतिगण सप्त महर्षि हैं । पूर्व्वज जो ऋषिगण थे वे सब मन के सङ्कल्प से ही समुत्पन्न हुए हैं । वसुगण, मरुद्गण, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य, पिशाच, नाग, विविध

भूत, ग्राहण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और जो भूमण्डल में श्लोच्छ हैं—समस्त चतुष्पाद, त्रिपायी निर्गत सैकड़ों-जड़म सत्व और जो अन्य जीव संज्ञा में युक्त सब एक सहस्र युगों के पूर्ण होने पर ब्रह्माजी के दिन के समाप्त हो जाने पर सर्वोत्पातों के समुद्रव वाले समस्त भूतों का निर्वाण होगया था ॥ १०-१४ ॥

हिरण्यरेतास्त्रिभिर्दशस्ततो भूत्वा वृषाकपिः ।
 शिखाभिर्विद्यमंल्लोकानशोषयत् वह्नित्ता ॥१५
 दह्यमानास्ततस्तस्य तेजोराशिभिरुदगतैः ।
 विवर्णवर्णादिघाङ्गा हताचिप्सादिभ्रानतैः ॥१६
 साङ्गोपनिषदो वेदा इतिहासपुंगवाम् ।
 सर्वाविद्या क्रियाश्चैत्र मबंधमंपरायणाः ॥१७
 ब्रह्माण्मप्रतः कृत्वा प्रभव विश्वतोमुखम् ।
 सवदेवगणाश्चैत्र त्रयस्त्रिंशत् कोटय ॥१८
 तस्मिन्महनि मशसे त इम मद्दृष्टम् ।
 प्रविशन्ति महात्मान हरि नारायण प्रभुम् ॥१९
 तेषां भूप. प्रवृत्तानां निघनात्पानिरच्यते ।
 यथा न्यस्य सततमुदयास्तमने इह ॥२०
 पूर्णं युगसहस्रान्तं सर्वं नि.शेष उच्यते ।
 यस्मिन् जीवकृतं सर्वं नि.शेषं ममनिष्ठत ॥२१

इसके अनन्तर हिरण्यरेता त्रिभिश्च वृषा रूप होकर शिखाओं के लोको को विशेष रूप से घमस करत हुए वह्नित के द्वारा सबका शापण कर दिया था । इसके अनन्तर समुद्रगत उसका तेज की राशियों से दह्यमान होते हुए अश्विपान आननों के विवर्ण वदन वाले, दग्ध मङ्गों से युक्त होकर हत हो गये थे । महावेद तथा उपनिषद, इतिहासों को आगे करके सम्पूर्ण विद्या-मबंध घम परायण क्रियायें और विश्व तो मुख प्रभव ब्रह्माजी को आगे करके तैनीय करोड समस्त देवताएँ उस दिन के सम्प्राप्त होनेपर महदशर, महात्मा, इस नन प्रभु नारायण हरि के घाम में प्रवेश करते

हैं। प्रवृत्त हुए उनके पुनः निघन से उत्पत्ति कही जाती है जिस तरह से यहाँ पर निरन्तर सूर्य का उदय और अस्तमन हुआ करते हैं। एक सहस्र युगो के पूर्ण हो जाने पर सबका निःशेष कहा जाता है जिसमें सब जीव-कृत निःशेष समवस्थित हुआ था ॥१५-२१॥

सहत्य लोकानखिलान् सदेवासुरमानुषान् ।
 कृत्वासुसस्था भगवानास्तएकजगद्गुरुः ॥२२
 स स्रष्टा सर्वभूताना कल्पान्तेषु पुनः पुनः ।
 अव्यय शाश्वतो देवो यस्यसर्वमिदजगत् ॥२३
 नष्टाकंकिरणो लोके चन्द्रग्रहविवजिते ।
 त्यक्तधूमार्ग्नपवने क्षीणयज्ञवषट्क्रिये ॥२४
 अपर्क्षगण सम्पाते सर्वप्राणिहरे पथि ।
 अमर्यादाकुले रौद्रे सवतस्तमसावृते ॥२५
 अदृश्ये सर्वलोकेऽस्मिन्नभावे सवकर्मणाम् ।
 प्रशान्ते सवसम्पाते नष्टे वैरपरिग्रहे ॥२६
 गते स्वभावसस्थाने लोके नारायणात्मके ।
 परमेष्ठी हृषीकेशः शयनायोपचक्षमे ॥२७
 पीतवासा लोहिताक्षः कृष्णो जीमूतसन्निभः ।
 शिखासहस्रविक्रचजटाभार समृद्धहन् ॥२८
 श्रीवत्सलक्षणधर रक्तचन्दनभूपितम् ।
 वक्षो विभ्रन्महाबाहु स विष्णुरिव तोयदः । २९

समस्त देव, असुर और मानवों के सहित पूर्ण सम्पूर्ण लोको का संहार करके जगत् में गुरु एक ही भगवान् अमुसरथा करके स्थित हुआ करते हैं। इस तरह वही कल्पों के अन्त से पुनः पुनः समस्त भूतो का स्रष्टा होने हे। वह अव्यय-शाश्वत देव है जिसका यह सम्पूर्ण जगत् है। सूर्य की चरित्रण जिसमें नष्ट हो गई है और चन्द्र तथा ग्रहों से जो वजित है— धूम, अग्नि और पवन ने भी जिसका त्याग कर दिया है तथा अग्नि

रहित और यज्ञ एवं वपट् क्रिया से क्षीण, पक्षिण के सम्पात से शून्य, समस्त प्राणियों के हरण करने वाले, अमर्यादा से आकुल, रौद्र, सब ओर से अन्धकार से समावृत मार्ग में सब लोको के दृश्यमान होने पर, सब कर्मों के अभाव में सब सम्पात के प्रदान्त हो जाने पर इस नारायणमक लोक में स्वभाव सस्यान के गत होने पर परमेष्ठी हृषीकेश ने अपने शयन करने का उपक्रम बिधाया। पीत वस्त्रधारी, लोहित नेत्रों वाले, भेष के सदृश, सहस्रो शिखाओं के विक्रम जटाओं के भार का समुद्रहन करने वाले धीशृष्ण विशाजमान थे ॥ २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८ ॥ श्रीवत्स के लक्षण को पारण करने वाले और रक्त चन्दन से विभूषित वक्षःस्थल को रखने वाले—मठान् वाटुओं से युक्त वह तोपद के समय ही श्री विष्णु भगवान् थे ॥ २६ ॥

पुण्डरीकसहस्रेण स्रगम्य शुशुभे शुभा ।
 पत्नी चाम्य स्वयं लक्ष्मीर्देहमावृत्त्यतिष्ठति ॥ ३०
 ततः स्वपिति शान्तात्मा सबलोके शुभावहः ।
 हिमप्यमितयागात्मा निद्रायोगन्प्रागण ॥ २९
 ततो युगसहस्रे तु पर्णं न परपोत्तमः ।
 सत्यमेव विभुभूत्वा वृध्यत विवृधाधिपः ॥ २७
 तनन्वितयत भयः सृष्टिं नारस्य लोककृत् ।
 नरान् देवगणाश्चैव पारमेष्ठ्येन कमणा ॥ २६
 ततः सञ्चिन्तयन् कार्यं देवेषु समितिञ्जयः ।
 सम्भव सर्वतो न्य विदधाति नतागतिः ॥ २५
 कर्ता शैव विक्रता च सहृता व प्रजापति ।
 नारायण परमस्य नारायणः परपदम् ॥ २४

इत विष्णु भगवान् की पत्नी स्वयं साक्षात् लक्ष्मी जो देह को आवृत करके न्यित रहती है एक महम् पुण्डरीको की माला से वह शुभा शांन्त हो रही थी ॥ ३० ॥ शयन उपरान्त समस्त लोक में सुख का

आवहन करने वाले प्रशान्त आत्मा से सम्पन्न शयन किया करते हैं । वह अमित योग के स्वरूपधारी किसी योग निद्रा को प्राप्त हो गये थे ॥३१॥ इसके अनन्तर एक सहस्र युगों के पूर्ण हो जाने पर वह विष्णु पुरुषोत्तम जो वितुषो के स्वामी हैं स्वयमेव ही प्रबुद्ध हो जाया करते हैं ॥३२॥ इसके पश्चात् लोको के करने वाले ने फिर लोक की सृष्टि के विषय में चिन्तन किया था । नरगण और देवगणों का पारमेष्ठ्य कर्म द्वारा विन्तन करते हैं । फिर समिञ्जस्य प्रभु देवों के विषय में काव्य का विन्तन करते हुए मत्पुरुषों की गति प्रभु समस्त लोक की उत्पत्ति को किया करते हैं । वह प्रजापति इस जगत के कर्ता विकर्ता और संहार के कर्ता हैं । नारायण परसत्य है—नारायण परम पद है ॥ ३३-३५ ॥

नारायणः परो यज्ञो नारायणः परा गतिः ।
 स स्वयम्भूरिति ज्ञेय स स्रष्टाभुवनाधिपः ॥३६
 स सर्वमिति विज्ञेयो ह्येष यज्ञः प्रजापतिः ।
 यद्वेदितव्यस्त्रिदशैस्तदेष परिकीर्यते ॥३७
 यत्तु वेद्य भगवतो देवा अपि न तद्विदुः ।
 प्रजाना पतय सर्वे ऋषयश्च सहामरैः ॥३८
 नास्यान्तमधिगच्छन्ति विचिन्वन्त इति श्रुतिः ।
 यदस्य परम रूप न तदपश्यन्ति देवताः ॥३९
 प्रादुर्भवे तु यद्गूणन्तदर्चन्ति दिवोकसः ।
 दर्शित यदि तेनैव तदवेक्ष्यन्ति देवताः ॥४०
 मन्न दर्शितवानेष कस्तदन्वेष्टुमीहते ।
 प्राण्याणां सर्वभूतानामग्निमारुतयोर्गतिः ॥४१
 तेजसस्तपसश्चैव निधानममृतस्य च ।
 चतुरामश्रमधर्मसश्चातुर्होत्रफलाशनः ॥४२
 चतुः सागरपर्यन्तश्चतुर्गुणिवर्तकः ।
 तदेष सङ्गत्य जगत्कृत्वा गभेस्थामारुमनः ॥

भूमोत्थाण्डं महायोगी घृतं वर्षमहस्रकम् ॥५३॥

सुरासुरद्विजमुजसाप्सरोगणैर्द्रौपीपथिकितिघरयजगुह्यकं ।

प्रजापतिः श्रुतिभिरसङ्कुलं तदा मधे'सृजजगदिदमात्मना प्रभुः ॥

नारायण पर ब्रह्म हैं—नारायण परागति है—वह स्वयम्भू—यह जानने के योग्य हैं—वह भुवन का स्वामी सृजन करने वाले हैं ? वह सब कुछ है—ऐसा ही ममज्ञता चाहिए । यही यज्ञ और प्रजापति है । जो देवों के द्वारा जानने के योग्य है और वह ऐसा ही कीर्तित किया जाता है । जो कुछ भी भगवान् का वेद्य । जानने कथाम्य हैं । उस देवगण भी नहीं जानते हैं । न प्रजापति जानते हैं और अमरगणों के साथ श्रृष्टिपति लोग ही जानते हैं ॥ ३६ । ३७ । ३८ ॥ विमेष रूप से खोज करते हुए भी इस प्रश्न के उत्तर का ज्ञान कोई भी प्राप्त नहीं किया करते हैं—ऐसी श्रुति है । जो इसका पद रूप होता है उस देवगण भी नहीं देख पाते हैं । जब इनके प्रादुर्भाव का कोई स्वरूप होता है उन्हीं का देवगण सम्यक्चन किया करते हैं । यदि उन्होंने न उस दिग्मय दिशा है तो देवता लोग उसे देख पाते हैं । जो कभी भी उन्होंने नहीं देखनाया है उसकी खोज करने की कोश इच्छा करना है । अथान् उनका प्रवर्णन कोई भी नहीं कर पाता है । पाप्म ममस्त प्रणिपत्य को गति ब्रह्मि और मास्त की होती है । तत्र तप और अमृत का निधान—चारों आश्रमों के धर्म का ईश—वातु देविका फलासन—चार मागरो की सीमा तक रहने वाला—चारों युगों का निर्वर्तिक वह इसका महार करके फिर अपने धर्म में स्थित जगत् की रचना करता हुआ महायोगी एवं सद्गुरु वर्ष तक धारण किये अण्ड को छाड़ देता था । सुर—असुर—द्विज—मुजस और अप्सराओं के गणों से युक्त—ओपथि—भित्तियाँ—मद्य और गुह्यकों से समन्वित—श्रुतियों से अमकूल इस जगत् को उस समय में वह प्रजापति प्रभु आत्मा से ही सृजन किया करता है ॥ ३६—४४ ॥

१११-ब्रह्मवतार चरित्र वर्णन

जगदण्डमिदं पूर्वमासीद्विष्यं हिरण्यमयम् ।
 प्रजापतेरियं मूर्तिरितीयं वतकी श्रुतिः ॥१॥
 तत्तु वर्षसहस्रान्ते विभेदध्वंमुखं विभुः ।
 लोकांसर्जनहेतोस्तु विभेदाधोमुखं नृप ! ॥२॥
 भूयोऽष्टधा विभेदाण्डं विष्णुर्वै लोकजन्मकृत् ।
 चकार जगत्त्रयं विभागसंविभागकृत् ॥३॥
 यच्छिद्रमूर्द्धमाकाशं विवराकृतितं गतम् ।
 विहितं विश्वयोगेन यद्वस्तुद्रसातलम् ॥४॥
 यदण्डमकरोत्पूर्वं देवलोकचिकीपया ।
 तत्र यत्सलिलास्त्रसोऽभवत्काञ्चनोगिरिः ॥५॥
 शैलं महस्रं महती मेदिनी विपमाभवत् ।
 संस्रं पवतजालीर्घं वृष्योजनविस्तृतं ॥६॥
 पीडिता गुरुफिर्देवी व्यथिता मेदिनी तदा ।
 महामते भ्रातृवरा दिव्यं नागायणात्मकम् ॥७॥

महर्षि शौनरु जी ने कहा यह जगत् का अण्ड पहिले परम दिव्य
 हिण्य था । यह जगदण्ड साक्षात् प्रजापति की मूर्ति ही था—ऐसा
 श्रुति का वचन कहता है ॥१॥ वह एक सहस्र वर्ष के अन्त में विभुने
 ऊर्ध्व मुख को विभेदन किया था । हे नृप ! लोक के सर्जन के हेतु से
 अधोमुख का भेदन किया था । लोकों के जन्म के करने वाले भगवान्
 विष्णु ने फिर उस अण्ड को आठ भागों में भेदन किया था । विभाग के
 करने वाले प्रभु ने यहाँ पर जगत् का विभाग किया था । ऊर्ध्व आकाश
 में जो छिद्र था वह विवर की आकृति को प्राप्त हो गया था । विश्व के
 योग से जो अधोभाग था उसे रसातल किया था । देवने जो पहिले जो
 अण्ड किया था वह लोक को रचना करने की इच्छा से ही किया था ।

यहां पर जो सलिल स्फुटन हुआ था वह गुवर्णों गिरि हो गया था । सहस्रों शैलियों के होने में यह मन्ती मेदिनी विषम हो गई थी जो कि बहुत से यौवनो के विस्तार में मुक्त पवती के जालों के ओंषो में युक्त थी । उस समय में इन बड़े भारी पर्वतों में यह दीक्षित एव कथित मेदिनी देखी हो गयी थी हे महामते ! यह अण्ड परम दिव्य—बहुत अधिक बल वाला नारायण के स्वरूप से सम्पन्न था ॥१०—॥

हिरण्य समृत्सृज्य तेजो व जातरुपिणम् ।

अशक्ता वं धारयितुमधस्तात्प्राविशत्तदा । ८

पोटश्चमाना भगवत्स्नेजसा तस्य सा क्षितिः ।

पृथ्वी विशन्ती दृष्ट्वा त् तामधोमधुसूदनः ॥९

उद्धारार्थं मत्पञ्चकं तस्या वं हितकाम्यया ॥१०

मत्तेज एषा वसुधा समामाद्य तपस्विना ।

ग्सातल प्रविशति पङ्क्तौ गोविन्द दुर्वला ॥११

त्रिविक्रमायामितविजसाय महाबराहाम सुरोत्तमाय ।

धीशाङ्ग च शक्तिमदाधराय नमोऽस्तु ते देववर्ग । प्रसीद

तव दहाग्जगज्जान पुष्करन्द्रीपमुत्थिनम् ।

ब्रह्माण्डमिह लान्ता भूताना शास्वर्तावदुः ॥१२

तव प्रसादाद्ब्रह्मोऽय दिक् भ्रुल्ले पुग्न्दरः ।

तव काष्ठाद्ब्रह्मवान् जनदत्तजितोऽवलिः ॥१४

जातरूपो हिरण्यमय तेज का समृत्सृजन करके उसे धारण करने के लिए अशक्त होकर उस समय में नीचे की ओर प्रवेश कर गया था । उस समय में भगवान् के तेज में वह क्षिति पीड़ित माना हो गई थी । भगवान् मधुसूदन ने अधोभाग में प्रवेश कर्त्ती हुई उस पृथ्वी को देखा था और फिर उस पृथ्वी के हित की कामना से उसके उद्धार करने के लिये मत्पंच विचार किया था ॥८, ९, १०॥ श्री भगवान् ने कहा—इस तपस्विनी वसुधा ने मेरे तेज को प्राप्त करके वह दुर्वल गौ पङ्क्त में शिता तरह

विषण्ण होती है उसी भाँति यह मेदिनी रसातल में प्रवेश करती है । ११॥
 पृथिवी ने कहा—हे देव वर ! त्रिविक्रम से आयामित विक्रम वाले मुरो
 में उत्तम—श्री शार्ङ्ग, चक्र, अस्ति और गदा के धारण करने वाले महा-
 वराह के लिये नमस्कार है । आप प्रसन्न होइये ॥१२॥ आपके ही देह से
 यह सम्पूर्ण जगत् समुत्पन्न हुआ है और पुष्कर द्वीप उत्पन्न हुआ है ।
 महा पर ब्रह्मा को लोको के और भूतो का शाश्वत जानना चाहिए । हे देव !
 यह आपका ही प्रसाद है कि इन्द्र देव दिवलोक का उपभोग किया करते
 हैं । आपके ही क्रोध से भगवान् जनार्दन के द्वारा यह महा बलवान् बलि
 जीतमलिया गया है ॥१३, १४॥

घाता विघाता सहर्ता त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
 मनु कृतान्तोऽधिपतिज्वलनः पवनोघनः ॥१५
 वर्णाश्चाश्रमघर्माश्च सागरास्तरवो जलम् ।
 तद्यो धमश्च कामश्च यज्ञायज्ञस्य च क्रियाः ॥१६
 विद्यावेद्यञ्च सत्वञ्च ह्यो श्रोः कीर्तिर्धृति क्षमा ।
 पुराण वेदवेदाङ्ग साख्ययोगो भवाभवौ ॥१७
 जङ्गम स्थावरञ्चैव भविष्यञ्च भवञ्च यत् ।
 सवन्तच्च त्रिलोकेषु प्रभावोपहितन्तव ॥१८
 त्रिदशोदारफलदः स्वर्गस्थीचारूपत्ववः ।
 सर्वलोकमत. कान्तः सर्वसत्वमनोहरः ॥१९
 विमानानेकविटपस्तोयदाम्बुमधुस्रवः ।
 दिव्यलोकमहास्कन्धमत्यलोकप्रशाखवान् ॥२०
 सागराकरनिर्यासो रसातलजलाश्रयः ।
 नागेन्द्रपादपोषेतो जन्तुपक्षिनिषेवितः ॥२१

हे भगवन् ! आपके अन्दर घाता-विघाता और संहार करने वाला,
 इन तीनों कर्मों के करने की शक्ति विद्यमान है । मनु, अधिपति कृतान्त,
 अग्नि, पवन, घन, चारो वर्ण, चरो ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के धर्म, सागर,

तक, जन, नदियाँ, धर्म, काम, यज्ञायज्ञ की क्रियाएँ—विद्या, वैद्य, मन्त्र, ह्यो श्री, कौत्सि, वृत्ति, जमा, पुराण, वेद, वेदों के समस्त अङ्ग साम्य, सादृश्य, योग, भव, अभव, स्थावर, जङ्गम, भविष्य, भवत्, यह सभी कुछ तीनों लोकों में आपका ही प्रभाव है ॥१५-१८॥ देवों के उदार फल के दाता—स्वर्गीय दिव्यों के चाक्षु पतलव—मनु लोको के मन के कान्त—सर्व सत्त्वों के मनोहर—विमानों के अनेक विदध—मंशों के बल का मधु-स्ताव—दिव्य लोक के महा स्वर्ग—मत्स्यलोक के प्रशरणा बालि—मागर के आकार का निर्वास—रमातल के जल का आश्रय—नागेन्द्र पादयो से समुपेत—अन्तु और वक्षिगण में तिरोहित आप ही हैं ॥१६-२१॥

शीलाबारायमन्धस्त्व सर्वलोकमयोद्भुम् ।

द्वादशाकंमयद्वीपो रुद्रं कादशपत्तन ॥२२

वस्वष्टाचलमयुक्तस्त्रीलावज्जाम्भोमहोदधिः

सिद्धसाद्योमिकलिन्मुषणानिलसेवितः ॥२३

दंष्ट्रलोकमहाग्राहो रक्षोरगरुपाकुलः ।

पितृमहसार्धयं स्वर्गस्वीरन्तभूषितः ॥२४

धीश्रीह्यैकान्तिभि नित्य नदीधितः ।

कालयोगमहापर्वप्रयागगतिवेगवान् ॥२५

त्व स्वयागमहावीर्यो नारायणमहागर्भवः ।

कान्तामत्वा प्रमत्ताभिरदिभहर्लाश्यसे पुनः ॥२६

त्वया सृष्टास्त्वया लोकास्त्वयैव प्रतिसंहृताः ।

विशन्ति योगिनः सर्वे त्वामेव प्रतियोजिताः ॥२७

युगे युगे युगान्ताग्नि कालमेघो युगे युगे ।

महाभारादताराय देव । त्व हि युगे युगे ॥२८

आप ही शीलावार के आर्यगन्ध हैं । सर्व लोक यम आप द्रुम हैं । द्वादश सूर्यों में परिपूर्ण द्वीप, एकादश रुद्रों के पत्तन, अष्ट वसुधों के बल से समुक्त त्रिभुवनो के जल के महा समुद्र, सिद्ध और पाद्यों की जमियो

से कलिल, मृपर्णानिल से सेवित, संत्यो के लोको के महान् प्राह, राक्षस और उरगो के रोप से समाकुल, पितामह के महान् धैर्य, स्वर्ग की स्थियो रूपी रत्नो मे भूषित, धी, ह्यो, श्यो और कान्ति इनसे तथा निरय ही नदिधो से उपशोभित, कालयोग महान् पर्व के प्रयाग की गति और वेग वाले आप अपने योग के महान् वीर्य तथा नारायण महार्णव हैं। आप काल होकर परम प्रसन्न जलो से पुनः आह्लादित किया करते हैं। आपने ही इन तीनों लोको का सृजन किया है और आपने ही इनका प्रति संहार भी किया है। सब योगीजन प्रतियोजित होकर आप से ही प्रवेश किया करते हैं। हे देव ! आप ही युग युग मे युगो के अन्त करने वाली अग्नि हैं—युग-युग मे आप ही काल मेघ हैं और इस महाभार के अवतारण करने के लिए आप ही युग-युग मे हुआ करते हैं ॥२९-२८॥

त्व हि शुक्लः कृतयुगे श्रेतायां चम्पकप्रभः ।

द्वापरे रक्तसङ्काशः कृष्णः कलियुगे भवान् ॥२६

वंवर्ण्यमभिधत्से त्व प्राप्तेषु युगसन्धिषु ।

वंवर्ण्यं सवधर्माणामुत्पादयसि वेदवित् ॥३०

भासि चासिप्रतपसित्वञ्च पासिविचेष्टसे ।

क्रुध्यसिच्चान्तिमायासि त्व दीपयसिवपसि ॥३१

त्व हास्यसि न निर्यासि निव पयसि जाप्रसि ।

नि शेषयसि भूतानि कालो भूत्वा युगक्षये ॥३२

शेषमात्मानमालोक्य विशेषयसि त्वे पुनः ।

युगान्ताग्नावलीटेषु सधंभृतेषु किञ्चन ॥३३

यातेषु शेषो भवसि तस्माच्छेषोऽसि कीर्तितः ।

च्यवनोत्पत्तियुक्तेषु ब्रह्मैन्द्रवरुणादिषु ॥३४

यस्मान्न च्यवमे स्थानत्तस्मात्सङ्कीर्त्यसेऽच्युतः ।

ब्रह्माणमिन्द्रश्चयम रुद्रं वरुणमेव च ॥३५

हे देव ! कृतयुग मे आप ही शुक्ल वर्ण वाले होते हैं—श्रेता मे

सृवर्ण के समान प्रभा वाले भी आप ही हैं । द्वापर में रक्त के मटण और फलियुग में आप ही कृष्ण होते हैं ॥२६॥ आप जब युगों की सन्धियाँ होती हैं तो उस समय में विवर्णता धारण किया करते हैं । वेनों के वेत्ता आप समस्त धर्मों के वैदर्भ्य को उत्पादन किया करते हैं । आप ही दीप्त होते हैं, निवाम करते हैं, प्रताप दिया करते हैं, फालन करते हैं, विशेष चेष्टा किया करते हैं, क्रोध भी आप ही करते हैं, शान्ति को प्राप्त होते हैं, आप ही दीपित होते हैं और वर्षा किया करते हैं । आप ही स्वयं हास करते हैं, निर्यासित होते हैं, निर्वाय करते हैं, जाग्रत होते हैं, निःशेषित होते हैं अर्थात् ममस्व भूतों को निःशेष किया करते हैं और युगों के क्षय में आप ही काल का स्वरूप धारण किया करते हैं ॥२६-३२॥ आप ही अपने आपको शेष देकर फिर उसे विशेषित किया करते हैं जब सब भूतों में युगान्त अवलोक हो जाते हैं और कुछ भी शेष नहीं रहता है इसी लिए आपको शेष इस नाम से कीर्तित किया गया है । च्यवनोत्पत्ति से युक्त ब्रह्मा इन्द्र वरुण आदि क होते पर क्योंकि स्थान से च्यवन नहीं हीना है इसीलिये अच्युत नाम से कीर्तित हुए हैं । ब्रह्मा, इन्द्र, यम, रुद्र और वरुण इनका निग्रह करके हरण करते हैं ॥३२-३५॥

निगृह्य हरमे यस्मात्तस्माद्धरिरिहोच्यसे ।

सम्मानयसि भूतानि वपुषा यशना श्रिया ॥३६

परेण वपुषा देव ! तस्मान्चासि सनातनः ।

यस्माद्ब्रह्मादयो देवा मुनयश्चोपस्तेजसः ॥३७

न तेऽत त्वधिगच्छन्ति तेनानन्तस्त्वमुध्यसे ।

न क्षीयसे न क्षुण्णसकलकोटिशतैरपि ॥३८

तस्मात्त्वमक्षरत्वाच्च विष्णुरित्येव कीर्त्यसे ।

विष्टव्य यत्त्वया सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥३९

जगद्विष्टम्भता संव विष्णुरेवेति कीर्त्यसे ।

विष्टम्य तिष्टसे नित्यं शैलीवध सचराचरम् ॥४०

यक्षागन्धर्वनगरं सुमहद्भूतपन्नगम् ।

व्याप्तं त्वयैव विशता दीलौवर्यं सचराचरम् ॥४१

तस्माद्विष्णुरिति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।

नारा इत्युच्यते ह्यापो ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥४२

हे भगवन् ! ब्रह्मादि सबका निग्रह करके आप इनका हरण किया करते हैं इसी कारण मे आपको 'हरि'—इस नाम से बहा जाता है । आप समस्त भूतो का वपु से, पशु से, श्री से सम्मान किया करते है । हे देव ! आप पर वपु से सम्मान किया करते हैं इसी कारण से सनातन हैं । क्यो कि ब्रह्मादि देवगण और उग्र तेज वाले मुनि वृन्द सब आपके अन्त को प्राप्त नही हुआ करते हैं इसीलिये आप अनन्त इस नाम से बहे जाते हैं और सैकड़ो करोड कल्पो मे भी आप न तो क्षरित होते है और न क्षीण ही हुआ करते हैं । इसी अक्षर होने के हेतु से आप अक्षर हैं और विष्णु इसी नाम से कीर्तित किये जाते है । आपने इस स्थावर, जङ्गम जगत् सबको विष्टब्ध कर दिया है ॥३६-३०॥ इस सम्पूर्ण जगत् के विष्टम्भन होने से आपका नाम 'विष्णु'—यह कीर्तित किया जाता है क्योकि इस त्रिलोकी को विष्टब्ध करके जिसमे सभी चर एव अचर विद्यमान हैं निरय स्थित रहा करते हैं ॥४०, ४१॥ इसी लिये स्वयं भगवान् स्वयम्भू ने विष्णु यह नाम कहा है । नारा, इससे जल कहे जाया करते हैं जिसको तत्त्व दर्शी ऋषियो ने कहा है । वेही जल पहिने उनके अयन निवास स्थान हुए थे इसीलिए आपका नारायण यह नाम कहा गया है । हे विष्णो ! आप तो युग-युग मे प्रनष्ट भङ्गो को सात्त्विक रूप से प्राप्त किया करते है ॥४२, ४३॥

अयनन्तस्यताः पूर्वन्तेन नारायण. स्मृतः ।

युगे युगेप्रनष्टाङ्गा विष्णो ! विन्दसितत्वतः ॥४३

गोविन्देति ततो नाम्ना प्रोच्यसेभिस्तथा ।

हृषीकाणीन्द्रियाण्यमाहुस्तत्त्वज्ञानविशारदाः ॥४४

ईशिता च त्वमेतेषां हृषीकेशस्तथोच्यते ।
 वसन्ति त्वयि भूतानि ब्रह्मादीनि युगक्षये ॥४५
 त्वं वा वससि भूतेषु वासुदेवस्तथोच्यसे ।
 सङ्कर्षयसि भूतानि कल्पे कल्पे पुनः पुनः ॥४६
 ततः सङ्कर्षणः प्रोक्तस्तत्त्वज्ञानविशारदः ।
 प्रतिध्युहेन तिष्ठन्ति सदेवासुरराक्षसाः ॥४७
 प्रविद्युः सबधर्माणां प्रद्युम्नस्तेन चाच्यसे ।
 निरोद्धा विद्यते यस्मान्न ते भूतेषु कश्चन ॥४८
 अनिरुद्धस्ततः प्रोक्तः पूर्वमेव महर्षिभिः ।
 यत्त्वया धार्यते विश्वं त्वया सह्यते जगत् ॥४९

क्योंकि आप प्रमथ अङ्गों का लाभ करते हैं इसी लिये आपको "गोविन्द"—इस नाम से पुकारा जाया करता है और ऋषिगण गोविन्द कहा करते हैं । हृषीक विषयेन्द्रियो को कहा जाता है जिनकी कि तत्त्वज्ञान के विशारद कहते हैं । आप इनके ईशिता है इसी कारण से आपको हृषीकेश नाम से कहा जाया करता है । युग के क्षय में ब्रह्मा आदि समस्त भूत आप ही में निवास किया करते हैं अथवा आप सब भूतों में निवास किया करते हैं इसीलिए आपको वासुदेव कहा जाया करता है । बारम्बार आप कल्प कल्प में भूतों का संकर्षण किया करते हैं अतएव तत्त्वज्ञान के विशारदों के द्वारा आपको संकर्षण कहा गया है । समस्त देव असुर और राक्षस प्रतिग्रह में स्थित रहते हैं और सब धर्मों के प्रविद्यु है अतएव आपको प्रद्युम्न, इस शुभ नाम से कहा जाया करता है । आपका भूतों में क्योंकि कोई भी निरोद्धा नहीं है इसीलिए पहिलेही महर्षियों ने आपका नाम अनिरुद्ध कहा गया है । हे भगवन ! आपसे द्वारा इस विश्व को धारण किया जाता है और आपके ही द्वारा इस जगत् का सहार किया जाता है ॥४५-४९॥

त्वं धारयसि भूतानि भवनं त्वं विभर्षि च ।

यत्त्वया धार्यते किञ्चित्तेजसाचबलेन च ॥५०
 मया हि धार्यते पश्चाद्भाघृत धारये त्वया ।
 न हि तद्विद्यते भूतं त्वया रन्तात्र धार्यते ॥५१
 त्वमेव कुरथे । देव ! नारायण युगे युगे ।
 महाभारावतरणं जगतो हितकाम्यया ॥५२
 सर्वेव तेजसाक्रान्तां रसातलतलङ्गताम् ।
 प्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ ! त्वामेव शरणगताम् ॥५३
 दानवंः पीडयमानाहं राक्षसंश्च दुरात्मभिः ।
 त्वामेव शरण नित्यमुपयामि सनातनम् ॥५४
 तावन्मेस्ति भय देव ! यावन्न त्वा ककुक्षितम् ।
 शरण यामि मनसा शतशोऽप्युपलक्ष्ये ॥५५
 उपमान न ते शक्ताः कर्तुं सेन्द्रा दिवोकसः ।
 तत्त्व त्वमेव वद्वंस्ति निरुत्तरमतः परम् ॥५६

हे भगवन् ! आप समस्त भूतो को धारण किया करते हैं और आप भवन का भरण किया करते हैं और आपके द्वारा तेज और बल के द्वारा जो कुछ भी धारण किया जाता है इसके पीछे मेरे द्वारा धारण किया जाता है और जो आपके द्वारा अधृत है उसे मैं धारण करती हूँ । ऐसा कोई भी भूत विद्यमान नहीं है जो आपके द्वारा धारण न किया जाता हो । हे देव ! हे नारायण ! इस जगत् के हित की कामना से युग-युग में आप ही इस महान् भार का अवतरण किया करते हैं । हे सुर-श्रेष्ठ ! आपके ही तेज से आक्रान्त, रसातल में गई हुई और आप ही शरणगति में गई हुई मेरा परित्राण कीजिए । मैं दुरात्मा दानवों तथा राक्षसों के द्वारा पीडयमाना मैं आप ही नित्य एव सनातन प्रभु की शरण में जानी हूँ । हे देव ! मुझे तब तक ही भय होगा है जब तक ककुक्षी आपकी शरण में मन से नहीं जाती हूँ । मैं सँकड़ों का उपलक्षित करती हूँ किन्तु आपकी समानता इन्द्र पादि देवगण करने में समर्थ नहीं

होते हैं । इसके तत्व को आप ही जानते हैं और इसके पर निरुत्तर है

॥ ५० — ५६ ॥

ततः प्रीतः स भगवान् पृथिव्यै शार्ङ्गं चक्रधृक् ।

काभमस्या यथाकाभमभिपूरितवान् हरिः ॥५७

अन्नवीच्य महादेवि ! माघवीय स्तवोत्तमम् ।

धारयिष्यति योमर्त्योनास्तितस्यपराभवः ॥५८

लोकान्निष्कल्मषाश्चैव वैष्णवान्प्रतिपत्स्यत ।

एतदाश्चयसंस्वमाघवीयस्यदोत्तमम् ॥५९

अश्वीनप्रेद, गुरुया मुनि, प्रीतमना भवेत् ॥६०

मा मैधंरणि ! कल्याणि ! शान्ति व्रज भगवत ।

एष त्वामुचितं स्पान प्रापयामि मनोपितम् ॥६१

ततो महात्मा मनसा दिव्य मयमचिन्तयन् ।

तन्नु शमह कृत्वा उद्वेग्य धरामिमायु ॥६२

जलक्रीडाचिस्तस्माद्गमह वदुरास्थित ।

अदृश्य सर्वभूताना वाङ्मय ब्रह्म मस्मितम् ॥६३

महर्षि शीनरु जी ने कहा—इसके पश्चात् भगवान् शार्ङ्ग और चक्र के धारण करने वाले उस पृथिवी देवी पर परम प्रमत्त हो गये थे और उस हीन भगवान् ने इसकी काभम को यथोचित रूप से पूरित कर दिया था ॥५७॥ और भगवान् ने उससे कहा था—हे महादेवि ! आपके द्वारा कहा गया जो यह माघवीय स्तव है वह अश्वीन उत्तम है । जो मनुष्य इस स्तव को धारण करेगा उसका कभी भी पराभव नहीं होता है ॥५८॥ यह शार्ङ्गधरों का सर्वस्व माघवीय उत्तम स्तव है । इसका धारण करने वाले कल्पों में रहित वैष्णव लोकों को प्राप्ति दिया करता है । ॥५९॥ वेदों के अन्वयन करने वाला पुण्य योग से युक्त मन वाला मुनि ही वादा है ॥६०॥ श्री भगवान् ने कहा—हे धरणि ! हे कल्याणि ! उरीमर ! मेरे प्राये शान्ति को धारण करो । मैं तुमको मनो-

पित समुचित स्थान पर प्राप्त कर देता है ॥६१॥ शौनक जी ने कहा—
इस के उपरान्त महान् आत्मा वाले प्रभु ने मन से दिव्य रूप का चिन्तन
किया था कि मैं क्या करूँ ॥६२॥ जल में श्रींहा करने की रवि यी इसी
कारण से वाराह के वपु में समवस्थित हो गये थे । वह स्वरूप समस्त
भूतों का अदृश्य एव वाङ्मय सन्निहित ब्रह्म था ॥६३॥

शतयोजनविस्तीर्णमुच्छ्रितं विगुरां ततः ।
नीलजीमूतसङ्काश मेघस्तनितनिस्वनम् ॥६४॥
गिरिसहननं भीम श्वेततीक्ष्णागदष्टिणम् ।
विद्युदग्निप्रतीकाशमादित्यसमतेजसम् ॥६५॥
पोर्नाभिनतकटीदेशे वृषलक्षणपूजितम् ।
रूपमास्थाय विपुल वाराहभजितोहरिः ॥६६॥
पृथिव्युद्धरणायैव प्रविवेश रसातलम् ।
वेदपादो यूषदष्टः ऋतुदन्तश्चितीमुखः ॥६७॥
अग्निजिह्वो दमलोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः ।
अहोरात्रोक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ॥६८॥
आज्यनासः स्रुवतुण्डःसामघोषस्वनोमहान् ।
सत्यधर्ममयः श्रोमान्कर्मविक्रतसत्त्वमः ॥६९॥
प्रायश्चित्ततलोघोरः पशुजानुमुंराकृतिः ।
उद्गाथा होमलिङ्गोऽथ बीजोपधिमहाफलः ॥७०॥

वह वाराह का स्वरूप ही योजन के विस्तार गुवन, दुगुना इससे
उच्छ्रित, नीलेमेघ के समान तथा मेघों के स्तनित से निस्वन था. गिरि के
तुल्य सहनन वाला, भीम, श्वेत एव तीक्ष्ण आगि की दष्टा धारा, विद्युत्
की अग्नि के तुल्य, सूर्य के सदृश तेज से गुवन, कटि देश में पीनीन्त एव
वृष लक्षण से पूजित विपुल वाराह के रूप में समास्थित श्री अजित हरि
हो गये थे ॥६४, ६५, ६६॥ वेदों के चरणों वाले, यूपों के दंष्ट्राओं से
समुत्पन्न, ऋतुओं के दांतों से समन्वित चिनीगुग्ग वाराह प्रभु ने इस पृथिवी

के उद्धार करने के लिये रसात्रल में अवेश किया था ॥ ६७ ॥ अग्नि की जिह्वा वाले—दर्भों के लोभों से संयुक्त—ब्रह्म के शीर्ष वाले—महान् तप से युक्त—महोरात्र के नेत्रों को धारण करने वाले—वेदाङ्ग एवं श्रुति के भूषण से भूषित—आज्यकी नासिका वाले—स्रुवा के तुण्ड से युक्त—साम वेद के महान् घोष वाले—सत्य और धर्म से परिपूर्ण—कर्म और विघ्न के शत्रु के वाले—श्रीमान्—प्रायश्चित्त के घोर नद्यों से युक्त—वशुजानु तथा मधकी आकृति वाले—उद्घाथा होम के लिङ्ग से सयुक्त—वीज और औषधि के महान् फल वाले वह वाराह भगवान् थे ॥ ६७ ॥ ६८ । ६९ । ७० ॥

वाय्वन्तरात्मा यज्ञस्थिविकृतिः सोमशाणितः ।
 वेदस्कन्धो रविर्गन्धो हव्यकव्यविभागवान् ॥७१
 प्राग्बशकायो ह्युतिमान् नानादीक्षाभिरन्धनः ।
 दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमया महान् ॥७२
 उगाहर्मोष्ठरुचकः प्रवर्धवित्तभूषणः ।
 नाना-छन्दोगतिपथो मुह्यापनिपदाननः ॥७३
 छायापत्नामहाथो वै शाणशृङ्गइवोच्छ्रितः ।
 श्मातलतले मग्ना श्मानलतलङ्गताम् ॥७४
 प्रभूर्लोकहितार्थाय दष्ट्रायेणोज्जहार ताम् ।
 ततः स्वस्थानमानोय वराह पृथिवीधरः ॥७५
 मुमाच पूर्व मनसा धारिताञ्च वसुधराम् ।
 तता जगाम निर्वाण मेदिनी तस्य धारणात् ॥७६
 चकार च नमस्कार तस्मै देवाय शम्भवे ।
 एव यज्ञवराहेण भन्वा भूतहितादिना ॥७७
 उद्घृता पृथिवी देवी तागगम्बुगता पुरा ।
 अयोद्धत्य क्षिति देवोजननः स्वापनच्छया ॥
 पृथिव्याप्रविभागाय मनश्चक्रेऽमुद्वेक्षणः ॥७८

रसाङ्गतामवनिमचिन्तविक्रमः सुरोत्तमः प्रवरवराहरूप धृक् ।
 वृषाकपिः प्रसभमर्थकदष्ट्रया समुद्धरद्वरणिमतुल्यपोरुपः ॥ ७६

वायु के अन्तरात्मा वाले—यज्ञों की अस्थि विकृतियों से संयुक्त—
 सोम के शोणित से समरिवत्—वेदों के स्कन्ध वाले—हवि कौ गन्ध से
 सम्पन्न—हव्य और कव्य के विभाग वाले प्राश्वंश की काया से युक्त—
 द्युतिमान्—अनेक दीक्षाओं से समन्वित—दक्षिण हृदय—महासत्रमय—
 महान् योगी—उषा कर्मोष्ठ रुचक—प्रवर्ग्यावत् भूषण—नाना छन्दोपति
 पथ—गुह्योपनिषद् सन—उच्छ्रित मणिशृङ्ग की भाँति छया परी सहाय
 प्रभु ने रसातल के तल में मग्न और रसानल के तल में गई हुई उस भूमि
 का लोको के हित के लिये दष्ट्रा के अग्रभाग से उद्धार किया था। इसके
 अनन्तर पृथिवी के धारण करने वाले वराह भगवान् ने उसे अपने स्थान
 पर लाकर पहिले मन से धारित वसुधरा को छोड़ दिया था। फिर यह
 मेदिनी उसका धारण करने से निर्वाण को प्राप्त हो गई थी। उस पृथ्वी
 ने उन शम्भु देव के नमस्कार किया था। इस प्रकार से भूतों के हित
 के चाहने वाले यज्ञ वराह भगवान् ने वराह होकर पहिले सागर के जल
 में गयी हुई पृथिवी देवा को उद्धृत किया था। इसके अनन्तर देव ने
 क्षिति को उद्धृत करके इस जगत् की स्थापना करने की इच्छा से भम्बु-
 जेशण ने पृथिवी के प्रविभाग करने के लिये मन में विचार किया था।
 ॥ ७१। ७२। ७३। ७४। ७५। ७६। ७७। ७८ ॥ अचिन्तनीय विक्रम
 वाले सुरों में श्रेष्ठ प्रवर वराह के स्वरूप को धारण करते हुए भगवान् ने
 जो वृषा कपि अतुलित पोरुप से सम्पन्न थे रसातल में गई हुई धरणी को
 बलपूर्वक एक शब्द से समुद्धृत किया था ॥ ७३ ॥

११२— क्षीरोद मथन वर्णन (१)

नारायणस्य माहात्म्य श्रुत्वा सूत ! यथाक्रमम् ।
 न तृप्तिर्जायतेऽस्माकमतः पुनरिहोच्यताम् ॥१
 कथं देवा गताः पूर्वममरत्वं विचक्षणाः ।
 तपसा कर्मणा वापि प्रसादात्कस्य तेजसा ॥२
 यत्र नारायणो देवो महादेवश्च शूलघृक् ।
 तत्रामरत्वे सर्वेषां सहायो तत्र तां स्मृतौ ॥३
 पुरा देवासुरे युद्धे हताश्च शतशः सुरैः ।
 पुनः सञ्जीविनी विद्यां प्रयोज्य भृगुनन्दनः ॥४
 जीवापयति दैत्येन्द्रान् यथा सुप्तोत्थितानिव ।
 तस्य तुष्टेन देवेन शङ्करेण महात्मना ॥५
 मृतसञ्जाविनी नाम विद्या दत्ता महाप्रभा ।
 तां तु माहेश्वरी विद्यां महेश्वरमुखोद्गताम् ॥६
 भागवे सस्थिता दृष्ट्वा मुमुहुः सक्दानवाः ।
 ततोऽमरत्वं दैत्यानां कृतं शुक्रेण धीमता ॥७

श्रुतिगण ने कहा—हे भूजो ! - भगवान् नारायण के यथाक्रम माहात्म्य का श्रवण करके हमारी तृप्ति नहीं होती है अतएव पुनः आप वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ विचक्षण देव किस प्रकार से पहिले अमरत्व को प्राप्त हुए थे । किसी तप के द्वारा अथवा कर्म से या किसी के प्रसाद से या तेज के द्वारा देवों को कायरता प्राप्त हुई थी ? श्री सूतजी ने कहा— जहाँ पर देव नारायण और शूल को धारण करने वाले महादेव विद्यमान थे वे दोनों उन सबके अमरत्व के प्रतिपादन करने में सहायक बहे गये हैं ॥ २। ३ ॥ प्राचीन समय में देवासुर युद्ध में सुरों के द्वारा लकड़ी के दैत्येन्द्र निहृत कर दिये गये थे फिर भृगुनन्दन ने अपनी सञ्जीविनी विद्या का प्रयोग करके सोकर उठे हुएों की भाँति जीवित कर दिया था ।

महात्मा देव शङ्कर ने परम सन्तुष्ट होकर महान् प्रभाव एवं प्रभा वाली रुञ्जीवनी विद्या उसको भ्रदान कर दी थी । महेश्वर के मुख से समुद्रपत उस माहेश्वरी विद्या को भागव महर्षि में सस्यित देखकर समस्त दानव मोह को प्राप्त होगये थे । इसके अनन्तर धीमान् शुक्र ने दैत्यों का अमरत्व कर दिया था ॥ ४-७ ॥

या नास्ति सर्वलोकानां देवानां सर्वरक्षसाम् ।
 न नागानामृषीणाञ्चनच ब्रह्मोन्द्रविष्णुषु ॥८
 ता लब्ध्वा शङ्कराच्छुक्र परा निवृत्तिमागतः ।
 ततो देवासुरोघोरः समरः भूमहानभूत् ॥९
 तत्र देवहंतान् दैत्यान् शुक्रोविद्याबलेन च ।
 उत्थापयति इत्येन्द्रान् लीलयैवविचक्षणः ॥१०
 एवम्विधेन शत्रुस्तु बृहस्पतिरुदारधोः ।
 हन्यमानाम्ततो देवाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥११
 विषण्णवदना सर्वे वभूर्बुविकलेन्द्रियाः ।
 तनस्तेषु विषण्णेषु भगवान् कमलोद्भवः ॥
 मेरुपृष्ठे सुरेन्द्राणामिदमाह जगत्पतिः । १२॥
 देवाः शृणत महावय तत्तथैव निरुच्यताम् ।
 क्षिपता दानधं साढ्यसरयमनप्रवर्तताम् ॥१३
 त्रिधनाममृतोद्योगो मध्यना क्षीरदारिद्र्यः ।
 सहाय धरुणकृत्वाचक्रपाणिर्विक्रोधात्ताम् ॥१४

आ 'बचा नमस्त लोको के पास नहीं थी तथा देवा और राक्षसों के समीप में भी विद्यमान नहीं थी एव नाग, ऋषिगण और ब्रह्मा, इन्द्र तथा विष्णु व पास भी नहीं रही उस महान् प्रभाव वाली इस विद्या को भगवान् शङ्कर से प्राप्त करके शुक्राचार्य परम निवृत्ति को प्राप्त हुए थे । इससे पश्चात् सुबहेश्वर देवासुर चार समर हुआ था ॥ ८ । ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ पर देवा व द्वाग मरे हुए दैत्या को शुक्राचार्य ने विद्या के शक्त के द्वारा

तन दैत्येन्द्रों को लीला ही से विचक्षण ने उठा दिया था । इस प्रकार से इन्द्र और उदार बुद्धि वाले बृहस्पति तथा हन्यभाव सैकड़ों और सहस्रों देवगण सबके सब विषाद युक्त मुखों वाले विकलेन्द्रिय हो गये थे । इसके पश्चात् उनके विषण्ण होने पर भगवान् कमलोद्भव जगत् के स्वामी ने मेघ पर्वत के पृष्ठ भाग पर यह सुरेन्द्रो से कहा था ॥ १० । ११ । १२ ॥
 ग्रहाजी ने कहा—हे देवगणों ! मेरा यह वाक्य सुनो और उसे वैसे ही करो । दानवों के साथ यहाँ पर सख्य भाव कर डालो । प्रमृत की प्राप्ति का उद्योग करो तथा क्षीर सागर का मन्थन करो । वरुण को सहायक बनाकर भगवान् चक्राणि को प्रबुद्ध करना चाहिए ॥ १२, १४ ॥

मन्थान मन्दर कृत्वाशेषनेत्रेण वेष्टितम् ।
 दानवेन्द्रोर्वालस्वामीस्तोक्कालनिवेश्यताम् ॥१५
 प्राप्यता कूर्मरूपश्च पातालं विष्णुरव्ययः ।
 प्रार्थ्यता मन्दरः शंलः मन्थकार्यप्रवर्त्यताम् ॥१६
 तच्छ्रुत्वा वचन देवा जगमुर्दानवमन्दिरम् ।
 अल विराधेनवयामृतं रास्तव वले ! ऽधुना ॥१७
 क्रियताममृतोद्योगा क्रियता शेषनेत्रकम् ।
 त्वया चोत्पादितेदेत्य ! अमृतेऽमृतमन्थने ॥१८
 भविष्यामोऽमरा, सर्वे त्वत्प्रसादान्न सशयः ।
 एवमुक्तस्तदा देवैः परितुष्टः स दानवः ॥१९
 यथा वदत हे देवा ! स्तथाकार्यं मयाऽधुना ।
 शक्तोऽहमेकएवाश्रमधिनुं क्षीरवारिधिम् ॥२०
 आहरिष्येऽमृतं दिव्यममृतत्वाय वोऽधुना ।
 सुदूरादाश्रयं प्राप्तान् प्रणतानपि वैरिणः ॥२१
 यो न पूजयते भवत्या प्रत्य चेह विनश्यति ।
 पालयिष्यामिवःसर्वनिधुनास्मेहमास्थितः ॥२२

मन्दरावल पर्वत को मन्थान बनाकर उसे शेषनाग के नेत्र से

(नेती से) वेष्टित करो । दानवों का इन्द्र स्वामी बलि को थोड़े समय तक निवेशित करो । पाताल मे अविनाशी भगवान् विष्णु जो कूर्म रूप वाले हैं उनकी प्रार्थना करो । शैलगज मन्दराचल की भी प्रार्थना करो और फिर मन्थन का कार्य प्रवृत्त कर दो । इस वचन को देवा ने श्रवण किया था और फिर वे सब दानवों के मन्दिर मे गये थे । हे बले ! अब आप विरोध मत करो हम सब आपके भृत्य हैं । अब तो सब मिलकर अमृत की उपलब्धि का प्रयोग करो और मन्थन कार्य का नेत्र दोषनाश को बना डालो । हे देव ! आपके द्वारा इस अमृत मन्थन मे अमृत के समुत्पादन होने पर सब अमर हो जायेंगे और यह आपके ही प्रसाद से सुसम्पन्न होगा - इसमें तनिक भी सशय नहीं है । इस तरह से उन देवों के द्वारा कहे जाने वाला वह दानव बहुत परितुष्ट हो गया था । हे देवगण ! आप लोग जैसा भी कहते हैं हम भी सब वैसा ही मुझे भी इस समय मे करना ही है । यज्ञ पर मैं अकेला ही इस क्षीर वारिधि को मन्थन करने मे समर्थ हूँ और अब मैं आपको दिव्य अमृत भ्रमृतत्व के लिये लाकर दे दूँगा । मुद्गर से आश्रय को प्राप्त होने वाले वैरियों का जो भक्तिभाव मे पूजन नहीं किया करता है वह यहाँ पर मरकर विनष्ट हो जाया करता है । अब मैं स्नेह मे समस्थित होकर आप सब लोगों का पालन करूँगा ॥ १४-२२ ॥

एवमुक्त्वा स दैत्येन्द्रो देवैः सह ययौ तदा ।
 मन्दर प्राचयामास सहायत्वे घराघरम् ॥२३
 सखा भवत्वमस्माकमधुनाऽमृतमन्थने ।
 सुरासुराणां सर्वेषा महत्कार्यमिदं जगत् ॥२४
 तथेति मन्दरः प्राह यद्याधारो भवेन्मम ।
 यत्र स्थित्वयाभ्रमिष्यामिमधिष्येवरुणालयम् ॥२५
 कल्प्यता नैवकार्यं यः शक्तः स्वाद्वेष्यते मम ।
 तनस्तु निगतो दत्री कर्मशेषी महाबली ॥२६

विष्णोर्भागी चतुर्थांशाद्धरण्या धारणे स्थितौ ।

ऊचतुर्गर्वसंयुक्तं वचनंशेषकच्छपी ॥२७

शैलौवच्यधारणेनापि न ग्लानिमम जायते ।

किमु मन्दारकात्क्षुद्रात्घुटिकासन्निभादिह ॥२८

उसी समय में वह दंतवराज इस प्रकार से देवगण के साथ चला गया था । घराघर मन्दर की सहायता करने के लिये प्रार्थना की थी । उसने कहा था—हे पर्वत वर ! इस समय मे आप हमारे इस अमृत के मन्थन में सहा हो जाइये ! इस जगत् में सब मुर और असुरों का यह एक बहुत बड़ा कार्य है । ऐसा ही हो जायगा—यदि मेरा कोई आधार हो जायगा जिस पर स्थित होकर मैं मन्थन करूँगा और सागर का मन्थन करूँगा ॥ २३, २४, २५ ॥ नेत्र बनने के काय म जो भी ममथ हो और मेरा वेष्टन कर सके उसकी कल्पना करिये । इसके पश्चात् महा बलवान् कूर्म और शेष निर्गत हो गये थे । भगवान् विष्णु के भाग धरणी के चतुर्थ अंश से धारण करने में स्थित हो गये थे । शेष और कच्छप दोनों गर्व म समन्वित वचन कहने लगे थे । इस त्रिलोकी के धारण करने से भी मुझको कोई ग्लानि नहीं होती है कि एक घुटिका क सदृश यही पर इस शूद्र मन्दर स्थल से क्या ग्लानि अर्थात् यकान हो सकती है ॥ २६-२८ ॥

ब्रह्माण्डवेष्टनेनापि ब्रह्माण्डमथनेन वा ।

न मे ग्लानि भवेद्देहे किमु मन्दरवतने ॥२६

तत उत्पाद्यत्तेशलं तत्क्षणात् क्षीरसागरे ।

चिक्षेप लीलया नागः कूर्मश्चाधःस्थितस्तदा ॥३०

निराधारं यदा शैलं नदीकुद्वेदानवाः ।

मन्दरभ्रामणं कर्तुं क्षीरोदमथने तथा ॥३१

नारायणनिवासन्ते जग्मूर्वन्तिसमन्विताः ।

यत्रास्ते देवदेवेशः स्वयमेव जनार्दनः ॥३२

तत्रापश्यन् तन्देव सितपद्मप्रभ शुभम् ।
 योगनिद्रासुनिर्गतं पीतवाससमन्युतम् ॥३३
 हारकेयूरनद्धाङ्गम हिर्यङ्कुसास्थितम् ।
 पादपद्मेन पद्मायाः स्पृशन्त नाभिमण्डलम् ॥३४
 स्वपक्षव्यजनेनाथ वीज्यमानङ्गरुतमता ।
 स्तूयमान समन्ताच्चसिद्धचारणकिष्करैः ॥३५

भगवान् शेष ने कहा—इस पूरे ब्रह्माण्ड के वेष्टन से भी तथा पूर्ण ब्रह्माण्ड के मथन से भी मृत्ते कोई ग्लानि नहीं होती है फिर इस मन्दर के वेष्टन से क्या मृत्ते हानि हो सकती है ॥ ३६ ॥ इसके अनन्तर उसी क्षण में उस मन्दर शैल को उत्पादित करके क्षीर सागर में उस समय में लीला ही से डाल दिया था और कर्म तथा नाग नीचे स्थित हो गये थे ॥ ३७ ॥ जिस समय में देव और दानव क्षीरोत्त के मथन में निराधार शैल को मथन करने में समर्थ न होकर थे तो वे सब बलि के सहित नारायण प्रभु के निवास स्थल पर गये थे, वहाँ पर देवों के भी देवेश्वर भगवान् जनार्दन स्वयं ही विराजमान थे ॥ ३८, ३९ ॥ वहाँ पर उन सबने श्वेत पद्म के समान प्रभा वाले—योग निद्रा में निरत—पीताम्बरधारी अच्युत देव का दर्शन किया था। वह प्रभु हार और केयूर से नद्ध अङ्ग वाले और शेष के पर्यङ्क पर शयन करने वाले—पद्मा के पाद पद्म से नाभि मण्डल का स्पर्श करते हुए विराजमान थे। गरुड़ उस समय में अपने पक्षों से उनका व्यजन कर रहे थे और सिद्ध-चारण तथा गन्धर्वों के द्वारा स्तवन किये जा रहे थे ॥३३-३५॥

आम्नायं मूर्त्तिमद्भिर्द्वय स्यूयमान समन्ततः ।
 सव्यवाहूपधान तन्तुष्टुवु देवदानवा ॥३६
 कृताञ्जलिपुटाः सर्वे प्रणताः सर्वतो दिशम् ।
 नमो लोकत्रयाध्यक्ष ! तेजसामितभास्कर ! ॥३७
 नमो विष्णा ! नमो जिष्णो ! नमस्ते कंटभादन ! ।

नमः सर्गक्रियात्रो जगत्पालयते नमः ॥३८
 रुद्ररूपाय शर्वाय नमः संहारकाग्निने ।
 नमः शूलाबुधाघृष्य नमो दानवघातिने ॥३९
 नमः क्रमलयाक्रान्त शैलोक्यायाभवाय च ।
 नमः प्रचण्डदंत्येन्द्रकुलकाल महानल ! ॥४०
 नमो नामिहृदोद्भूतपद्मगर्भमहाचल ! ।
 पद्मभूत ! महाभूत ! कर्दोहूर्जो जगत्प्रिय ! ॥४१
 जनिता मचंनोकेश ! क्रियाकाग्णकारिणे ।
 अमराग्निनाशाय महासमरशालिने ॥४२

उन नारायण प्रभु के चारों ओर मूर्तिमान् आम्नाय स्थित होकर
 स्तुति कर रहे थे । मध्यवाहु उपघान वाले उन प्रभु नारायण का समस्त
 देवों और दानवों ने वहा पर स्तवन किया था ॥३६॥ सभी दिशाओं में
 वे सब अपनी अञ्जलियाँ बाँधकर तथा प्रणम होने हुए स्थित हो गये थे ।
 देव दानवों ने कहा—हे तीनों लोकों के स्वामिन ! आपकी सेवा में हमारा
 नमस्कार समर्पित है । आपतो अपने तेज के द्वारा अग्नि भास्कर के
 समान हैं हे विष्णो ! हे त्रिष्णो ! हे कर्म देत्य के मर्दन करने वाले !
 आपको हम सदा वारम्बार नमस्कार है । समस्त क्रियाओं के करने
 वाले और इस जगत् तल क परिपालन करने वाले आपकी सेवा में
 हमारा नमस्कार है ॥३७, ३८॥ संहार के करने वाले रुद्र रूप धारी
 भगवान् शर्व के लिए हमारा नमस्कार है । हे शूल के अपने आयुध से
 नधर्षण करने के योग्य ! दानवों के धात करने वाले आपको नमस्कार है
 ॥३९॥ हे क्रम के त्रय से आक्रान्त ! हे प्रचण्ड दंत्येन्द्रों के कुल के लिए
 काल ! हे महानल ! शैलोक्य स्वरूप और अभाव आपकी सेवा में वारम्बार
 प्रणाम समर्पित है । आपतो अपनी नामि रूपी हृद से उत्पन्न पद्म के
 गर्भ से महान् अचन हैं । हे पद्मभूत ! हे महाभूत ! हे जगत् के परम
 प्रिय ! सबके कर्ता और हर्ता आपके लिये नमस्कार है ॥ ४०. ४१ ।

हे सर्व लोकों के ईश ! आर ही मर्कके जनन करने वाले हैं । देवों के शत्रुओं के विनाश करने वाले और महा समरशाली तथा क्रिया और कारण के करने वाले आपकी सेवा में हम सबका प्रणाम उपस्थित है ॥ ४२ ॥

लक्ष्मीमुखाब्जमधुप ! नमः कीर्तिनिवासिने ।
 अस्माकममरत्वाय ध्रियतां ध्रियतामयम् ॥४२
 मन्दरः सर्वशैलानामयुतायुतविस्तृतः ।
 भनन्तवलबाहुभ्यामवष्टभ्यं कपाणिना ॥४३
 मध्यताममृत देव ! स्वधास्वाहार्यकामिनाम् ।
 ततः श्रुत्वा स भगवान् स्तोत्रपूर्वं वचस्तदा ॥
 विहाय योगनिद्रान्तामुवाच मधुसूदनः ॥४४
 स्वागत विबुधा ! सर्वे किमागमनकारणम् ।
 यस्मात्कार्यदिह प्राप्तास्तद् श्रूत विगतज्वराः ॥४५
 नारायणेनैव मुक्ताः प्राचुस्तत्रदिशोकसः ।
 अमरत्वाय देवेश ! मध्यमाने महोदधौ ॥४७
 यथाऽमृतत्व देवेश ! तथा नः कुरु माधव ! ।
 त्वया विना वच्छवयमस्माभिः कंटभार्दन ! ॥४८
 प्राप्तुं तदमृतं नाप ! ततोऽग्रे भव नो विभा ! ।
 इत्युक्तश्च ततोविष्णुरप्रधृष्योऽरिमर्दनः ॥४९

हे लक्ष्मी के मुख रूपी कमल के रत्नास्वादन करने वाले मधुप ! कीर्ति निवासी आपके लिये नमस्कार है । हम सब के अमरत्व प्राप्ति के लिये आप इस समस्त शैली में अयुतायुत विस्तार वाले मन्दराचल को अनन्त बल सम्पन्न बाहुओं से अवष्टम्भ करके एक हाथ से धारण करने की कृपा कीजिए और हमें धारण करिए ॥४३, ४४॥ हे देव ! स्वधा, स्वाहा की कामना करने वालों के अमृत का मध्यम कीजिए । इसके उपरान्त नारायण भगवान् ने स्तवन पूर्वक इस वचन का श्रवण किया था ।

उसी समय में मधु सूदन प्रभु ने उस अपनी परम प्रिय योग निद्रा का त्याग करके उनसे यह वचन बोले थे—श्री भगवान् ने कहा—सब देवगणों ! आपका स्वागत है । हमको आप यह बतलाइये कि यहाँ पर इस समय में आप लोगों के यहाँ आने का क्या कारण है ? जिस कार्य को लेकर इस समय में आप लोग यहाँ प्राप्त हुए हैं उसको अब मैंने सामने बिल्कुल दुःख रहित होकर बतलाये ॥४५, ४६॥ भगवान् नारायण के द्वारा इस तरह से कहे हुए वचन पर देवगण ने कहा—हे देवेश ! अमरत के लिए मध्यमान महोदधि में जिस प्रकार में हमारा अमृतत्व सम्पादित हो सके वैसा ही हे माधव ! आप करिए । हेकैटमादन ! आपके बिना हम लोगों के द्वारा यह नहीं किया जा सकता है ॥४७, ४८॥ हे नाथ ! उस अमृत को प्राप्त करने के लिए हे विभो ! आप हमारे सबके आगे ही जाइए । इस तरह से कहे गये अरियो के मदन करने वाले और अप्रघृष्य विष्णु उनके साथ चल दिये थे ॥४६॥

जगाम देवः सहितो यत्रासी मन्दराचलः ।
 वेष्टितो भोगिभोगेन धृतश्चामरदानर्धः ॥५०
 विपभीतास्ततादेवा यतः पुच्छं ततः स्थिताः ।
 मुखता दंत्यसङ्घास्तु संहिकेयपुरः सराः ॥५१
 सहस्रवदनं चास्य शिरः सर्व्येन पाणिना ।
 दक्षिणेन बलिर्दह नागस्याकृष्टवांस्तथा ॥५२
 दधारामृतमन्यानं मन्दरं चारुकन्दरम् ।
 नारायणः स भगवान् भुजयुग्मद्वयेन तु ॥५३
 ततो देवारुरः सर्वे जयशब्दपुरःसरम् ।
 दिव्यं वर्षशत साग्न मथितः क्षीरसागरः ॥५४
 ततः श्रान्तास्तु ते सर्वे देवादंत्यपुरः सराः ।
 श्रान्तेषु तेषु देवेन्द्रो मेघोभूत्वाम्बुशीकरान् ॥५५

ववर्षामृतकल्पांस्तान् ववौ वायुश्च शीतलः ।

भन्नप्रायेषु देवेषु शान्तोषु कमलासनः ॥५६

भगवान् विष्णु उन सब देवों के ही सहित वहा पर चले गये थे जहा पर यह मन्दराचल विद्यमान था । वह मन्दराचल भोगी शेष के भोग के द्वारा वेष्टित था और अमरो तथा दानवों के द्वारा घृत हो रहा था । ॥५०॥ क्योंकि देवगण विष से भयभीत होकर शेष नाग की पूँछ की ओर स्थित हो रहे थे तथा सँहिक्य जिनके आगे था ऐसे देवों के सङ्घ शेष के मुख की ओर समवस्थित थे । सहस्र मुखों वाला इसके शिर की बलि ने सध्य दक्षिण हाथ से आर्कषित किया था ॥५१, ५२॥ उन भगवान् नारायण न अपनी दोनों भुजाओं से गुन्दर कन्दराओं वाले मन्दराचल को अमृत का मन्थन धारण किया था ॥५३॥ इसके अनन्तर समस्त देवों और असुरों ने जय एवम् के उच्चारण पूर्वक दिव्य डेढ़ सौ वर्ष तक उस क्षीर सागर का मन्थन किया था ॥५४॥ इसके पश्चात् वे सब दैत्य पुरस्तर देवगण अत्यन्त थान्त हो गये थे । उन सबके धकित होने पर देवेन्द्र ने मेघ होकर उन अमृत के समान जल के सीकरो की गर्पा की थी । तथा शीतल वायु बहने लगा । जब देवगण भन्न प्राय होकर शान्त हो गये थे तो उस समय पर कमलासन प्रभु ने उनको प्रोत्साहन दिया था जिससे मन्थन कार्य बराबर चलता रहे ॥५५, ५६॥

मथ्यता मथ्यता सिन्धुरित्युवाच पुनः पुनः ।

अवश्यमुद्योगवर्ता श्रीरारा भवेत्सदा ॥५७

ग्रहप्रोत्साहितादेवा ममन्धुः पुनरम्बुधिम् ।

भ्राम्यमाणे ततः शीले योजनायुतशेखरे ॥५८

निपेतुर्हंस्तिपूथानि वराहशरभादयः ।

स्वापदायुतलक्षणि तथा पुष्पफलाद्रुमाः ॥५९

ततः फलाना वीर्येण पुष्पोपधिरसेन च ।

क्षीरसङ्घपणाञ्चापि दधिरूपमजायत ॥६०

ततस्तु सर्वजीवेषु चूर्णितेषु सहस्रशः
 तदम्बुमेदतोत्सर्गाद्धारुणी समपद्यत ॥६१
 वारुणीगन्धमाघ्राय मुमुदुर्द्वदानवाः ।
 तदास्वादेन बलिनो देवदंत्यादयोऽभवन् ॥६२
 ततोऽविवेगाञ्जगृह्णन्निन्द्र सर्वतोऽसुराः ।
 मन्यान् मन्यमपिष्टस्तु मेरुस्तत्राचलोऽभवत् ॥६३

कमलासन प्रभु ने सिन्धु का मन्थन करो मन्थन करो—यह बार २ कहा था । जो उद्योग में पराण हुआ करते है उनको सदा ही अपार थी हुआ करती है । इस तरह से ब्रह्माजी के द्वारा प्रोत्साहित हुए देवों ने पुनः अम्बुधि का मन्थन किया था । फिर दश हजार मोजन के दोस्तर वाले शंल के ध्राम्यमाण होने पर हस्तियो के पूय, वराह, शरभ आदि, सहस्रों एवं लाखों श्वापद, पुष्प तथा फलों वाले वृक्ष, फलों के बीयों से तथा पुष्पो धोर ओषधियो क रम स एव धीर के सघर्षण से भी वह सागर दधि के रूप वाला हो गया था ॥५७-६०॥ इसके पश्चात् सहस्रों समस्त जीवो के चूर्णित होने पर उस अम्बु मेद के मोत्सर्ग से वारुणी समुत्पन्न हुई थी ॥६१॥ उत वारुणी को गन्ध को मूँघ कर सब देव और दानव बहुत ही अधिक प्रसन्न हुए थे उनक आम्वाद से देवगण और दैत्य आदिक सब बली हो गये थे ॥६२॥ इसके उपरान्त असुरो ने सभी ओर वेग के साथ उस नागेन्द्र को ग्रहण किया था और वह मन्यान् तथा मन्यमपिष्ट मेरु वहां पर अचल हो गया था ॥६३॥

अभदच्चाग्रतोविष्णु भुंजमन्दरवन्धनः ।
 स वासुकिफणालनपाणिः कृष्णो द्यराजत ॥६४
 यथा नीलोत्पलैर्युक्तो ब्रह्मदण्डोऽतिविस्तरः ।
 ध्वनिर्मघसहस्रस्य जलधेरुत्थितस्तदा ॥६५
 भागे द्वितीये मधवानादित्यस्तु ततः परम् ।
 ततो गद्गा महोत्साहा वसवो गुह्यकादयः ॥६६

पुरतो विप्रचत्तिश्च नमुचिवृत्रशम्बरो ।
 द्विमूर्धा वज्रदण्डश्च संहिकेयो बलिस्तथा ॥६७
 एतेचान्ये च बहवो मुखभागमुपस्थिताः ।
 ममन्थुरम्बुधिं दृष्ट्वा बलतेजोविभूयिताः ॥६८
 बभूवाल महाघोषो महामेघरवोपमः ।
 उदधे मध्यमानस्य मन्दरेण सुरासुरैः ॥६९
 तत्र नानाजलचरा विनिर्धूता महाद्रिणा ।
 विलय समुपाजग्मुः शतशोऽथ सहस्रशः ॥७०

आगे की ओर भृजमन्दर बन्धन वाले विष्णु थे और वह वासुकि
 के फणो में सलग्न हाथ वाले कृष्ण शोभा दे रहे थे ॥६४॥ उस समय में
 जिस प्रकार से नीलोत्पलो से युक्त अति विस्तार वाला व्रह्मदण्ड हो ।
 उस समय में सहस्रो मेघों की ध्वनि उस सागर से उठकर सुनाई दे रही
 थी ॥६५॥ द्वितीय भाग में भगवान् और उसके आगे आदित्य थे । इसके
 पश्चात् रुद्रगण और महान् उल्साह वाले वसुगण तथा गुह्यक आदि थे ।
 आगे की ओर विप्रचित्ति, नमुचि तथा वृत्र और शम्बर थे द्विमूर्धा, वज्र
 दण्ड, संहिकेय तथा बलि था ॥६६, ६७॥ ये सब तथा अन्य बहुत-से मुख
 भाग की ओर उपस्थित थे । उन सबने बल एव तेज से विभूयित हाते
 हुए दृष्ट होकर अम्बुधि का मन्यन किया था ॥६८॥ सुरो असुरो क द्वारा
 मन्दराचल से मध्यमान सागर का महान् मेघ की ध्वनि के तुल्य महान्
 घोष हुआ था । उस महाद्रि से वहाँ पर अनेक जलचर विनिर्धूत हो गये थे
 और सँकड़ो तथा सहस्रों तो विलय को प्राप्त हो गये थे ॥६९, ७०॥

वारुणा नि च भूतानि विविधानि महेश्वरः ।
 पातालतलवासानि विलय समुपानयत् ॥७१
 तस्मिंश्च आश्रयमाणेऽद्रौ सघृष्टाश्च परस्परम् ।
 न्यपतन् पतगोपेनाः पवताशान्महाद्रुमाः ॥७२

तेषां सङ्घर्षेणाच्चाग्निरर्चिभिः प्रज्वलन् मुहुः ।
 विद्युद्भिरिव नीलाभ्रमावृणोन्मन्दरं गिरिम् ॥७३
 ददाह कुञ्जरांश्चैव सिहांश्चैव विनिःसृतान् ।
 विगतासूनि सर्वाणिसत्वानिविघ्नानि च ॥७४
 तमग्निममरश्रेष्ठः प्रदहन्तमितस्ततः ।
 वारिणा मेघजेनेन्द्रः शमयामास सर्वतः ॥७५
 ततो नानारसास्तत्र सुस्रुवुः सागराम्भसि ।
 महाद्रुमाणां निर्यासा वहवश्चोपधीरसाः ॥७६
 तेषाममृतवीर्याणां रसानां पयसंव च ।
 अमरत्व सुरा जग्मुः काञ्चनच्छविसन्निभाः ॥७७

महेश्वर भगवान् ने पाताल तल के निवास करने वाले विविध वारुण भूतो को विलय को प्राप्त कर दिया था । उस पर्वत के भ्राम्यमाण होने पर परस्पर में सङ्घर्ष को प्राप्त हुए पर्वत के अग्रभाग से पक्षियों से समुत्त महान् द्रुम नीचे गिर गये थे ॥ ७१ । ७२ ॥ उनके सघर्ष होने से अग्नि अर्चियों के द्वारा वारम्बार जलती हुई ने विद्युतों के द्वारा नाल अन्न की भाँति उस मन्दराचल को समावृत कर लिया था । निकले हुए कुञ्जरो को तथा मिहो को—विगत प्राणी वाले सब अनेक सत्त्वों को दग्ध कर दिया था । अमरो मे श्रेष्ठ ने इधर-उधर जलती हुई उस अग्नि को इन्द्रदेव ने सभी ओर मेघ से समुत्पन्न जल के द्वारा शान्त कर दिया था ॥ ७३ । ७४ । ७५ ॥ इसके अनन्तर वहाँ पर सागर के जल में नाना प्रकार के रसों का स्राव होने लगा था । उसमें महान् वृक्षों के निर्यास थे और बहुत-सी औषधियों के रस थे । उन अमृत वीर्य वाले रसों के पय से ही सुरगण काञ्चन छवि के सदृश होते हुए अमृतत्व को प्राप्त हो गये थे ॥ ७६-७७ ॥

अथ तस्य समुद्रस्य तज्जातमुद्रक पयः ।

रसान्तरैर्विमिश्रञ्च ततः क्षीराद्भृद्घृतम् ॥७८

ततो ब्रह्माणमासीनं देवा वचनमब्रुवन् ।
 श्रान्ताःस्म सुभृशं ब्रह्मज्ञोद्भवत्यमृतञ्च ॥७६
 श्रुते नारायणात्सर्वे दंत्या देवोत्तमास्तथा ।
 चिरायितमिदञ्चापि सागरस्य तु मन्थनम् ॥७७
 ततो नारायण देव ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ।
 विधत्स्वेषा बल विष्णो ! भवानेव परायणम् ॥७८
 बल ददामि सर्वेषा कर्मतद्य समास्थिताः ।
 क्षुभ्यता क्रमशः सर्वमन्दर परिवर्त्यताम् ॥७९

इसके अनन्तर उस समुद्र का जो जल था वह पय हो गया था
 और वह रसान्तरो से विमिश्रित हो गया था । इसके पश्चात् क्षीर से
 वह घृत हो गया था ॥ ७७ ॥ इसके उपरान्त वहाँ पर समासीन ब्रह्माजी
 ने देवगण ने यह वचन कहा था—हे ब्रह्मन् ! हम लोग अत्यधिक श्रान्त
 हो गये हैं और वह अमृत उत्पन्न नहीं हो रहा है । भगवान् नारायण के
 बिना समस्त दंत्य और सब देवोत्तम गण ने इस सागर के मन्थन को
 करते हुए बहुत अधिक समय व्यतीत किया था । इसके पश्चात् ब्रह्माजी
 ने देव नारायण से यह वचन कहा—हे विष्णो ! आप इनको बल का
 प्रदान करें । आप ही परायण हैं । भगवान् विष्णु ने कहा—जो इस
 काम के करने में समास्थित हैं उन सबको मैं बल का प्रदान करता हूँ ।
 सबको क्रम से इसमें क्षोभ कर । चाहिए और मन्दराचल को घुमाना
 चाहिए ॥ ७६-७९ ॥

११३-क्षीरोद मथन वर्णन (२)

नारायणवचः श्रुत्वा वलितस्तेमहोदधिम् ।
 तत्पयः सहिताभूत्वा चक्रिरे भृशमाकुलम् ॥१

ततः शतसहस्रांशुसमान इव सागरान् ।
 प्रसन्नामः समुत्पन्नः सोमः शीतांशुरुज्ज्वलः ॥२
 श्रीरनन्तरमुत्पन्ना घृतात्पाण्डुरवासिनी ।
 मुरादेवीसमुत्पन्ना तुरगः पाण्डुरस्तथा ॥३
 कौस्तुभश्च मणिदिव्यश्चोत्पन्नोऽमृतसम्भवः ।
 मरीचिविकचः श्रीमान् नारायण उरोगतः ॥४
 पारिजातश्च विकचकुसुमस्तवकाञ्चितः ।
 अनन्तरमपश्यंस्ते धूममम्बरसन्निभम् ॥५
 आपूरितदिशाम्भाग दुःसहं सवंदेहिनाम् ।
 तमाघ्राय सुराः सर्वे मूर्च्छितापरिलङ्घिताः ॥६
 उपाविशन्नब्धितटे शिरः सगृह्य पाणिना ।
 ततः क्रमेण दुर्वारः सोऽजलः प्रत्यदृश्यत ॥७

महर्षि सूतजी ने कहा—भगवान् नारायण के वचन का श्रवण करके वे बलवान् सब सहित होकर उस महादधि के मय को अत्यन्त ही अधिक उन्डोने आकुल बन दिया था । इसके पश्चात् उस सागर से एक शत सहस्रांशु के ही समान प्रसन्न आभा वाला उज्वल शीतांशु सोम, समुत्पन्न हुआ था इसके अनन्तर घृत में पाण्डुर वासिनी श्री समुत्पन्न हुई थी फिर मुरा देवी समुत्पन्न हुई तथा पाण्डु तुरङ्ग उत्पन्न हुआ था ॥ १, २ ३ ॥ फिर अमृत से सम्भव होने वाला परम दिव्य कौस्तुभ मणि समुत्पन्न हुई थी जो मरीचियो से विकच एवं श्री सम्पन्न थी और नारायण के उरोग्यल में प्राप्त हो गई थी ॥ ४ ॥ पारिजात की समुत्पत्ति हुई या जो विकसित कुसुमों के स्तवकों से अञ्चित था । इसके अनन्तर उन सबने अम्बर के सहस्र धूम को देखा था ॥ ५ ॥ सब दिशाओं व भागों को समापूर्णित—मय सहस्रांशुओं को दुःसह ऐसे उस धूम को समाधान करके सभी सुरगण मूर्च्छित और परिलङ्घित हो गये थे ॥ ६ ॥ तबसे सब उस समय में अपने हाथ से शिर पकड़ कर सागर

के तट पर बँठ गये थे और इसके उपरान्त वह अनल अग्नन्तही क्रम से दुर्वार होकर दिसाई देने लगा था ॥ ७ ॥

ज्वालामालाकुलाकारः समन्ताद्भीषणोऽर्चिषा ।

तेनाग्निनापरिक्षिप्ताः प्रायशस्तु सुरासुराः ॥८

दग्धाश्चाप्यद्वंदग्धाश्च बभ्रमुः सकला दिशः ।

प्रधाना देवदेव्याश्च भीषिनास्तेन वह्निना ॥९

अनन्तर समुद्भूतास्नस्मात् दुण्डुभजातयः ।

कृष्णासर्पमहादष्टारक्ताश्च पवनाशनाः ११०

श्वेतपीतास्तथाचान्ये तथा गोमसजातयः ।

मशकाभ्रमरादशा मक्षिकाः शलमास्तथा ॥११

कर्णशल्याः कृकलासा अनेकाश्चैव बभ्रमुः ।

प्राणिनो दंष्ट्रिणो रौद्रस्तथा हि विषजातयः ॥१२

शाङ्गं ह्यालाहलामुस्तवत्सकं गुरुभस्मगाः ।

नीलपत्रादयश्चान्ये शतशो बहुभेदिनः ॥

येषां गन्धेन दह्यन्ते गिरिशृङ्गाण्यपि द्रुतम् ॥१३

ज्वालाओं की माला से समाकुल आकार वाला और अर्चि से सभी ओर महान् भीषण वाले उस अग्नि से प्रायः सभी सुर और अमुर परिक्षिप्त हो गये थे । वे कुछ दग्ध और कुछ आधे दग्ध होकर सभी दिशाओं में भ्रमण करने लगे थे । प्रधान देव और देव्य उस वह्नि के द्वारा भीषित हो गये थे । इसके अनन्तर उससे दुण्डुभ जातियों समुद्भूत हो गये थे । कृष्ण सर्प—महान् दाढ़ी वाले—रक्त-पयन का अशन करने वाले—श्वेत-पीत तथा अन्य गोमस जाति वाले—मशक-भ्रमरदश-मक्षिका-शलभ-कर्णशल्य—कृकलास ऐस अनेक वहाँ पर भ्रमण कर रहे थे और वे ऐसे सभी प्राणी थे जो दाढ़ी से शम्पन-रौद्र और विषयुक्त जातियों वाले थे । शाङ्गं ह्यालाहल-मुस्त वत्सक-गुरुभस्मग और अन्य नील पत्र आदि सैकड़ों बहुत से भेद से युक्त थे । त्रिनवी गन्ध ही

ऐसी प्रवल थी कि जिससे गिरियो के शिखर भी बहुत ही शीघ्र दग्ध हो जाते थे ॥ ८-१३ ॥

अनन्तरं नीलरसौघभृङ्गभिन्नाञ्जनाभं विषमं द्दसन्तम् ।

कायेन लोकान्तरपूरकेण केशंश्च वह्निप्रतिमंज्वलद्भिः ॥ १४

सुवर्णमुक्ताफलभूपिताङ्गं किरीटिन पीतदुकूलजुष्टम् ।

नीलोत्पलार्भः कुसुमं कृतार्घं गर्जन्तमम्भोधरभीमवेगम् ॥ १५

अद्राक्षुरम्भोनिधिमध्यसंस्थं सविग्रहं देहि भयाश्रयन्तम् ।

विलोत्रय तं भीषणमुग्रनेत्रं भूताश्च वित्रेमुरथापि सर्वे ॥ १६

केचिद्वलोक्यैव गता ह्यभाव निःसंज्ञतां चाप्यपरे प्रपन्नाः ।

वेमुमुक्षेभ्योऽपि च फेनमन्ये केचित्त्वशाप्ता विषमामवस्थाम् ॥ १७

श्वासेन तस्य निदग्धा ततो विष्ण्वन्द्रदानवाः ।

दग्धाङ्गारनिभाजाता ये भूता दिव्यरूपिणः ॥

ततस्तु सम्भ्रमाद्विष्णुस्तम्वाच सुरात्मकम् ॥ १८

को भवानन्तकप्रख्यः किमिच्छसि कुतोऽपि च ।

किं कृत्वा ते प्रियं जाये देवमाचक्ष्व मेऽखिलम् ॥ १९

तच्च तस्य वचः श्रुत्वा विष्णोः कालाग्निसन्निभः ।

उवाच कालकूटस्तु भिन्न दुन्दुभिनिस्वनः ॥ २०

इसके अनन्तर नील रस के ओष से भिन्न भृङ्ग एवं गञ्जन की आभा वाले, विषम श्वास लेता हुआ, लोकान्तर पूरक काया से युक्त, जनती हुई अग्नि के तुल्य केशों से सयुक्त—सुवर्ण और मुक्ता फलों से विभूषित भृङ्गो वाला, किरीट धारी, पीनत्रण के वस्त्र से वेष्टित, नीलोत्पल के समान आभा वाले पुष्पों से वृत्त अर्घ वाला, अम्भोधर के तुल्य भीम वेग वाला, गर्जन से समन्वित, विग्रहधारी देही जो भय का समाश्रय या समुद्र के मध्य में सम्यित गवने देगा था । ऐसे उस भीषण, उग्र नेत्रों ने सम्पन्न को देखकर नमस्त भूत विप्रस्त हो गये थे । कुछ तो उसे देखने के साथ ही अभाव की प्राप्ति हो गये थे और कुछ हमरे चेहोंवा

को प्राप्त हो गये थे । अन्य लोग अपने मुखों से फेनो का वमन कर रहे थे और कुछ तो विषम दशा को ही प्राप्त हो गये थे । उसके इवास से ही बहुत से निर्दम्य हो गये थे । इसके पश्चात् विष्णु, इन्द्र और दानव सबके सब दग्ध भङ्गार के तुल्य हो गये थे जो भूत परम भव्य दिव्य रूप वाले थे । इसके अनन्तर भगवान् विष्णु सुरात्मक उससे बड़े ही सम्भ्रम से बोले—थो भगवान् ने कहा—आप एक अन्तक की प्राप्ति वाले कौन हैं ? हम सबको आपका परम प्रिय वया कर्म करना चाहिए । जिससे देव को प्रसन्न करे । यह समस्त मम्य हमको बतलाइये ! वह कालाग्नि के सदृश भगवान् विष्णु के इम वचन का ध्वण करके वह कालकूट विष जो मूर्तिमान् या मिन्न डुन्डुभि के समान ध्वनि वाला यह बोला—॥ १४-२० ॥

अह हि कालकूटार्यो विषोऽम्बुधिसमुद्भवः ।

यदा तीव्रतरामर्षैः परस्परवधौर्षाभिः ॥ १

सुरासुर्गैर्विमथितो दुग्धाम्भोर्निधिरद्भुतः ।

सम्भूतोऽह तदा सर्वान् हन्तु देवान् सदानवान् ॥२२

सर्वानिह हनिष्यामि क्षणमादौण देहिनः ।

मा मा असत वै सर्वे यात वा गिरिशान्तिकम् ॥२३

ध्रुत्वैतद्वचन तस्य ततो भीताः सुरासुराः ।

सह्यविष्णुपुरस्कृत्य गतास्ते शङ्करान्तिकम् ॥२४

निवोदतास्ततोद्वास्थेस्ते गणेशः सुरासुराः ।

अनुज्ञाताः शिवेनाथविविशुगिरिशान्तिकम् ॥२५

मन्दरस्यगृहाद्दृष्ट्वा मुत्तामालाविभूषिताम् ।

भुत्स्य=छमगिसोपानावदूयंस्तम्भमण्डिताम् ॥२६

तत्र देवासुरं सर्वे ज्ञानुभिर्धरणीयतेः ।

सह्याणमद्यत कृत्वा इद स्तोत्रमुदाहृतम् ॥२७

कालकूट न तदा-मै वातकूट नाम यत्ना अम्बुधि मे समुत्पन्न होने

वाला विष हूँ जिस समय में तीव्रतर अमर्ष वाले; और परस्पर में वध करने की इच्छा से युक्त गुरों और असुरों के द्वारा यह अद्भुत दुःशाम्भोधि का विमथन किया गया तो मैं उसी समय में इन समस्त दानवों के महित देवों का हनन करने के लिए ही समुत्पन्न हुआ हूँ। अब मैं क्षणभर में यहाँ पर सब देह धारियों को मार डालूँगा। सब लोग मुझको प्रसित मत करो अथवा भगवान् गिरीश के समीप में चले जाओ ॥२१, २२, २३॥ उसके इस वचन को सुनकर सब मुर और असुर भयभीत हो गये थे और उन्होंने ब्रह्मा तथा विष्णु को अपना नेता बनाकर वे सब भगवान् शङ्कर के समीप में जाकर प्राप्त हुए थे। वहाँ पर द्वारपर स्थित गरौणों के द्वारा उन मुरासुरों का आगमन निवेदित किया गया था। इस पर शिव के द्वारा वे आज्ञा को प्राप्त करके फिर भगवान् शिव के समीप में पहुँच गये थे। वहाँ पर मन्दराचल की एक गुहा थी जो मुवर्ण मयी थी और मोतियों की मालाओं से विभूषित थी तथा गसमें अतीव निर्मल मणियों के सोपान बने हुए थे एवं वीदूर्य मणियों के स्तम्भों से वह गुहा मण्डित थी। वहाँ पर सभी देव और असुर अपने घुटने भूमि पर टेककर बैठ गये थे। उन्होंने अपने आगे ब्रह्माजी को सम्स्थित करके इस स्तोत्र का कथन करना आरम्भ कर दिया था ॥२२-२७॥

नमस्तुभ्य विरूपाक्ष ! सर्वतोऽनन्तचक्षुषे ।

नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय घन्विने ॥२८

नमस्त्रिशूलहस्ताय दण्डहस्ताय धूर्जटे ।

नमस्त्रीलौवघनाथाय भूतग्रामशरीरिणे ॥२९

नमः सुरारिहृदौ च सोमान्यकर्ण्यचक्षुषे ।

ब्रह्मणे चैव रुद्राय नमस्ते विष्णुहृदिने ॥३०

ब्रह्मणे वेदरूपाय नमस्ते देवरूपिणे ।

साङ्ख्ययोगाय भूतानां नमस्ते शम्भवाय ते ॥३१

मन्मथाङ्गविनाशाय नमः कालदायङ्कर ।

रहसे देवदेवाय नमस्ते च सुगोत्तम ! ॥३२
 एकवीराय शर्वाय नम. पिङ्गकपर्दिने ।
 उमाभर्त्रे नमस्तुभ्य यज्ञक्षिपूरघातिने ॥३३
 शुद्धबोधप्रबुद्धाय मुक्तकैवल्यरूपिणे ।
 लोकत्रयविधातो च वरुणेन्द्राग्निरूपिणे ॥३४
 ऋग्यजुः सामवेदाय पुरुषायेश्वराय च ।
 अयायचंचोत्राय विप्राय श्रुतिचक्षुषे ॥३५

देवो तथा दानवो न क्वा—हे विरूपाक्ष देव ! सभी ओर से
 अनन्त चक्षु वाले आपके लिए हमारा सबका नमस्कार है । पिनाक को
 हाथ रखने वाले—वज्रहस्त और चम्बी आपकी सेवा में नमस्कार समर्पित
 है ॥३०॥ त्रिशूल हाथ में रखने वाले—दण्ड धारी और घुंजरटि आपको
 प्रणाम है । त्रैलोक्य के नाथ और भूत ग्रामों के शरीर को धारण करने
 वाले आपकी सेवा में नमस्कार है ॥३१॥ सुरों के शत्रुओं का हनन करने
 वाले—सोम, अग्नि, ब्रह्म के उत्तम नेत्रों वाले को प्रणाम है । ब्रह्मा,
 रुद्र और विष्णु के रूप वाले आपको हमारा नमस्कार है । वेदरूप ब्रह्मा
 और देव रूपी आपके लिए नमस्कार है । भूनों के साङ्ख्य योग के लिए
 और शम्भु प्राप्त करने लिए नमस्कार है । कामदेव के अङ्ग का विनाश करने
 वाले आपको हमारा प्रणाम है । हे काल के क्षय करने वाले ! हे सुरों में
 उत्तम ! देवों के देव ! आपकी सेवा में नमस्कार है ॥३२०, ३१, ३२॥
 एक वीर, शर्व और पिङ्ग कपर्दी आपके लिये प्रणाम है । उमा देवी के
 भर्ता और यज्ञ क्षिपूर के घात करने वाले आपके लिए नमस्कार है ।
 ॥३३॥ शुद्ध बोध प्रबोध, मुक्त, कैवल्य रूपी, तीनों लोकों के विधाता
 तथा ब्रह्मण, इन्द्र और अग्नि के रूप वाले आपकी सेवा में नमस्कार है ।
 ॥३४॥ ऋग् यजुः, सामवेद पुरुष, ईश्वर, अग्य, उग्र, विप्र और श्रुति के
 चक्षु वाले आपके लिए हम सबका नमस्कार समर्पित है ॥३५॥

रजसेचंचसत्त्वाय नमस्ते स्तिमितात्मने ।

अनित्यनित्यभावाय नमो नित्यचरात्मने ॥३६
 व्यक्ताय चैवाव्यक्ताय व्यक्ताव्यक्ताय वै नमः ।
 भक्तानामार्तिनाशाय प्रियनारायणाय च ॥३७
 उमाप्रियाय शर्वाय दन्दिवक्त्राञ्चिताय च ।
 श्रुतुमन्वन्तरकल्पाय पक्षमासदिनात्मने ॥३८
 नानारूपाय मुण्डाय बरुथपृथुदण्डिने ।
 नमः कमलहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने ॥३९
 घन्विने रथिने चैव यतते ब्रह्मचारिणे ।
 इत्येवमादिचरितः स्तुतं तुभ्यं नमोनमः ॥४०
 एवं सुरासुरैः स्थाणुः स्तुतस्तोपमृपागतः ।
 उवाच वाक्यभीतानांस्मितान्वितशुभाक्षरम् ॥४१

स्तिमित आत्मा वाले — रजगुण और सत्त्व के लिए नमस्कार है ।
 अनित्य नित्यभाव और नित्य चरात्मा के लिये नमस्कार है । व्यक्त,
 अव्यक्त और व्यक्ताव्यक्त को प्रणाम है । भक्तों की आर्ति के नाश
 करने वाले और नारायण प्रभु के प्रिय, उमा के परम प्रिय, शर्व, नान्दि
 वक्त्राञ्जित श्रुतु मन्वन्तर कल्प, पक्ष मास दिन स्वरूप वाले, नानारूप,
 मुण्ड, बरुथ पृथु दण्डी, कमल हस्त, दिग्दास, शिखण्डी, घन्वी, रथो, यति,
 ब्रह्मचारी, इत्येवमादि चरितों से स्तुत आपके लिए बारम्बार नमस्कार
 है । इस प्रकार से सुर और असुरों के द्वारा स्तुति किये गये भगवान्
 स्थाणु परम तोप को प्राप्त हुए थे । भीतों के स्मित से समन्वित शुभ
 अक्षरों वाला वाक्य उन्होंने कहा था—॥३६-४१॥

किमयंमगता ब्रूत आसंगलानमृखाम्बुजाः ! ।
 किं वाऽभीष्टं ददाम्यद्य कामं प्रब्रूत मा चिरम् ॥
 इत्युक्तास्ते तु देवेन प्रोचुस्तं ससुरासुराः ॥४२॥
 अमृतार्थं महादेव ! मय्यमानेमहोदधौ ।
 विषमद्भुतमुद्भूतंलोकसंशयकारकम् ॥४३

स उवाचाथसर्वेषां देवानां भयकारकः ।
 सर्वान्वा भक्षयिष्यामि अथवा मा पिवस्तथा ॥४४
 तमशक्तावयं प्रस्तु सोऽस्मान् शक्तोब्रलोकटः ।
 एषनिश्वासमात्रेण शत वंसमद्युतिः ॥४५
 विष्णुः कृष्ण कृतस्तेनयमश्च विषमात्मवान् ।
 मन्दिहताः पतिताश्चान्येविप्रणाशङ्गताः परे ॥४६
 अर्थाऽनर्थक्रियायाति दुर्भगाना यथा विभो ! ।
 दुर्बलानाञ्च रामह्नी यथाभवतिचापदि । ४७
 विषमेतत्समुद्भूत तस्माद्द्वामृतकाक्षया ।
 अस्मान्द्रुयान्मोचयत्व गतिस्त्वञ्च परायणम् ॥४८
 भक्तानुकम्पी भावज्ञो भुवनादीश्वरो विभुः ।
 यज्ञाग्रभुक् सर्वहृविः सौम्यः सोमः स्मरान्ततकृत् ॥४९

भगवान् श्री शङ्कर ने कहा—जाग से म्लान मुख कमल वालो ! आप लोग महा किम प्रयोजन के लिए समागत हुए हैं ? आज मैं आपका क्या अभीष्ट प्रदान करू ? आप स्वैच्छया शीघ्र बतलाइये और इसके बताने में विलम्ब न कारये । इस तरह से जब महादेव के द्वारा उनसे कहा गया था तो वे सब गुरु और अगुरु उनसे कहने लगे थे—॥४२॥ गुरु और अगुरु ने कहा—हे महादेव ! हम लोग अमृत के लिये इस महोदधि का मन्थन कर रहे थे उस मध्यमान सागर से अद्भुत और लोको के सहाय को करने वाला विष समुत्पन्न हुआ था । यह हम सब देवों को भय करने वाला बोना था कि मैं आप सबको भक्षण कर जाऊँगा अथवा मेरा पान करूँ ॥४३, ४४॥ उसका प्रसन करने के लिए हम सब प्रसन्न हैं प्रत्युत वयं स उत्तर वही हमको प्रसने में समर्थ है । यह केवल विश्वास मात्र से ही प्राप्त कर सकता है । यह शतपत्र की द्युति के समान द्युति वाला है । उसने विष्णु को कृष्ण कर दिया था और आत्मवान् उसने यम को विष कर दिया था । कुछ लोग उसने मूर्च्छित कर दिये

ये, अन्य गिरा दिये ये तथा दूसरों को प्रतप्त कर दिया था । हे विमो ! जैसे धुरे भाग्यों वालों को हुआ करता है वैसे ही सब धर्म अनर्थ क्रिया प्राप्त हुआ करते हैं जिस तरह से आपत्ति काल में दुर्बलों का सकल्प हुआ करता है । यह विप उससे समुद्भूत हुआ है शायद यह अमृत को आकाङ्क्षा से ही हुआ है । अब आप इस भय से हमारा मोचन करिये । आप ही हमारी अब गति हैं और आप ही परायण हैं । आप अपने भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले, भावों के ज्ञाता, भुवनादीश्वर, विष्णु हैं तथा यज्ञों में सबसे आगे भोग करने वाले, सर्व हवि, सोम, सौम्य और आप कामदेव को अन्न कर देने वाले हैं ॥४५-४६॥

लभेको नो गतिदेव गोर्वाणगणशमंकृत् ।

रक्षास्मान् भक्षमंकल्पाद्विरूपाक्ष ! विपज्वरान् ॥५०

तच्छ्रुत्वा भगवान्नाह गगनेष्वान्तकृद्भवः ।

भक्षयिष्याम्यह घोर कालकूटं महाविषम् ॥५१

तथान्यदपि यत्कृत्य कृच्छ्रसाध्य सुरामुराः । ।

तन्त्रापि सार्धयिष्यामि तिष्ठथ्व विगतज्वरा ॥५२

इत्पुक्त्वाहृष्टगोमाणो वाष्पगदगदकण्ठिनः ।

आनन्दाधुपरीनाक्षाः मनाथाइव मेनिरै ॥

सुरा ब्रह्मादयः सर्वे समाश्वस्ता सुमानसाः ॥५३

ततोऽब्रजद् द्रुतगतिना ककुचिना हरोऽम्बरे पवनगतिजगत्पतिः ।

प्रधाकितरसुःसुरेन्द्रनायकं स्ववाहने विगृहीतशुभ्रचामरैः ॥

पुरःमरेः स तु शुशुभे शुभाश्रयैः ।

शिवो वशी शिखिकपिशोर्ध्वजूटकः ॥ ५४

आसाद्य दुग्धसिन्धु तं कालकूट विप यतः ।

ततो देवोमहादेवो विलोक्यविषमविषम् ॥५५

च्छायास्यानकमस्थाय सोऽपिबद्धान्पाणिना ।

पौममानेविपेतस्मिस्ततो देवाः महामुराः ॥५६

हे देव ! आप ही एक हमारी गति है और देवों के समुदाय के कल्याण करने वाले हैं । हे विरूपाक्ष ! भक्षण करने के संकल्प वाले इस महाविष के ज र से हमारी आप रक्षा कीजिए ॥५०॥ यह श्रवण करके भग वं नेत्रों के अन्त कर देने वाले भव प्रभु ने कहा—मैं इस घोर महा-विष कालभूट का भक्षण कर जाऊँगा । हे सुरासरो ! इसके अतिरिक्त अन्य भी जो कृच्छ्रसाध्य कृत्य होगा उसको भी साध्य कर दूँगा । आप लोग सब विगत श्वर होकर स्थित रहिए ॥५१, ५२॥ इतना कह कर वह शान्त हो गये । किन्तु देवगण प्रहृष्ट रोमो वाले, वाष्प से गद्गद् बठो वाले आनन्द के अश्रुओं से परीत नेत्रो वाले सबन अपने आप सनाथ की तरह से मान लिया था । ब्रह्मा आदि समस्त देवगण सुमानस एवं समा-श्वस्त हुए थे । इसके उपरान्त मे पवन के समान गति वाले जगत् के स्वामी हर ने आकाश मे द्रुत गति वाले ककुद्गी के द्वारा चले गये थे । ग्रहण किये हैं शुभ चामर जिन्होंने ऐसे वाहनो से समन्वित और प्रघावित अमर और सुरेन्द्रनायकी को आगे करके वह शिखी क समान कविष और ऊर्ध्व जूट वाले वशी भगवान् शिव इन शुभ आश्रमो वालो के सहित परम सुन्दर दोमा को प्राप्त हुए थे ॥५३-५६॥

जगुश्च ननुतुश्चापि सिंहनादाश्च पुष्कलान् ।

चक्रुः शक्रमुखाद्याश्च हिरण्याक्षादयस्तथा ॥५७

स्तुवन्तश्चैव देवेश प्रसन्नाश्चाभवस्तदा ।

कण्ठदेशे ततः प्राप्ते विपेदेवमद्याद्भुवन् ॥५८

विरिञ्चिप्रमुखा देवा बलिप्रमुखतोऽसुराः ।

शोभन्ते देव ! कण्ठस्ते गात्रे कुन्दनिभप्रभे ॥५९

भृङ्गमालोनिभंकण्ठेऽप्यशैवास्तु विष तव ।

इत्युक्तः शङ्करोदेवस्तथा प्राह पुरान्तकृत् ॥६०

पीते विपे देवगणान् विमुच्य गतो हरो मन्दरशीलमेव ।

तस्मिन् गते देवगणाः पुनस्त ममभ्युरिधि विविधप्रकारैः ॥६१

उस समय में इन्द्र आदि जिनमें प्रमुख थे ऐसे समस्त देवगण तथा हिरण्याक्ष प्रभृति दानव गण सभी गान करने लगे थे एवं नृत्य कर रहे थे और पुष्कल सिंह के समान नाद काते थे । देवेश्वर का स्तवन करते हुए वे सब उस अवसर पर परम प्रसन्न हो गये थे । जब वह महा कालकूट द्विप उनके कण्ठ देश में प्राप्त हो गया था तो वे सब इसके अनन्तर देव से कहने लगे थे । ब्रह्मा हैं प्रधान जिनमें ऐसे सब सुरगण और वनि जिनमें प्रमुख थे वे सब असुरगण महादेव जी से बोले—हे देव ! कुन्द के पुष्प के तुल्य परम स्वच्छ श्वेत प्रभा वाले आपके गाय में आपका यह कण्ठ माग शोभा युक्त हो रहा है । सीरी की माला के तुल्य यह महा-द्विप आपके इस कण्ठ में ही यहीं पर स्थित रहे । इस तरह से उनके द्वारा कहे हुए देव त्रिपुर के विनाशक शक्र ने उनमें कहा था और द्विप के पान कर लेने पर भगवान् हर उन देवगणों को छोड़ कर मन्दर शैल के ही समीप में चले गए थे । उनके वहा पर पहुँच जाने पर उन देव गणों ने फिर अनेक प्रकारों से उस सागर का मन्थन करना शुरु कर दिया था ॥३७-६१॥

११४—क्षीरोद मथन वर्णन (३)

मथ्यमाने पुनस्तन्मिन् जलधौ समहृष्यत ।
 धृत्वन्तरि. स भगवान् आमुर्वेदप्रजापतिः ॥१
 मदिरा चायताक्षी सा लोभचित्तप्रमाथिनी ।
 ततोऽमृतञ्च सुरभिः सर्वभूतमथापहा ॥२
 जग्राह कमला विष्णुः कौस्तुभश्च महामणिम् ।
 गजेन्द्रञ्चसहस्राक्षो ह्यरत्नञ्च भास्करः ॥३
 धन्वन्तरिञ्च जग्राह लोकार्णवप्रवतकम् ।
 ऋष्य जग्राह वरुणः कुण्डले च दाचीपतिः ॥४

पारिजाततमं वायुर्जग्राह मुदितस्तथा ।
 धन्वन्तरिस्ततो देवो वपुष्मानुदतिष्ठत ॥५॥
 श्वेतकमण्डलुं विभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति ।
 एतदत्यद्भुतं दृष्ट्वा दानवानां समुत्थितः ॥६॥
 अमृतार्थं महानादो ममेदमिति जल्पताम् ।
 ततो नाययणो मायामास्थितो मोहिनी प्रभुः ॥७॥

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—पुनः उस जलधि के मध्यमान होने पर वह भगवान् आयुर्वेद के प्रजापति श्री धन्वन्तरि दिखलाई दिये थे । समस्त लोको के चित्तो को प्रमथन करने वाली और आयत नेत्रो से समन्वित वह मूर्तिमती मदिरा दिखलाई दी थी और इसके अनन्तर अमृत तथा सब लोको के भय का अपहरण करने वाली सुरभि तथा कमला प्रकट हुई । भगवान् विष्णु ने उस कमला को और क्रोस्तुभ मणि को ग्रहण कर लिया था । सहस्राभ ने गजेन्द्र को और भास्कर देव ने ह्यरत्न का ग्रहण किया था एवं लोको के आरोग्य के प्रवर्त्तिक भगवान् धन्वन्तरि का भी ग्रहण किया था । छत्र को वरुण ने और शची के स्वामी ने कुण्डलो को ग्रहण किया कर लिया था । पारिजात नाम वाले तप को वायु देव ने ग्रहण किया था और वह परम मुदित हुए थे । फिर देव वपुष्मान् धन्वन्तरि उत्थिता हुए थे । उनके हाथ में एक श्वेत वर्ण का कमण्डलु था जिसमें अमृत स्थित था । इस परम अद्भुत दृश्य को देखकर दानवो का महान् नाद समुत्थित हो गया था । उस अमृत के लिए यह मेरा है—ऐसा ही सब कह रहे थे । इसके उपरान्त नारायण प्रभु मोहिनी माया में आस्थित हुए थे ॥१-७॥

स्त्रीरूपमनुलकृत्वा दानवानभिससृतः ।
 ततस्तदमृतं तस्यै ददुस्ते मूढचेतनाः ॥
 स्त्रियै दानवदैतेयाः सर्वे तद्गतमानसाः ॥८॥
 अथास्त्राणि च मुख्यानि महाप्रहरणानि च ।

प्रगृह्याभ्यद्रवन्देवान् सहितादेत्यदानवाः ॥६
 ततस्तदमृतं देवो विष्णुरादाय वीर्यवान् ।
 जहार दानवेन्द्रेभ्यो नरेण सहितः प्रभुः ॥१०
 ततो देवगणाः सर्वे पपुस्तदमृतं तदा ।
 विष्णोः सकानात् अप्राप्य सगामे तुमुलेतति ॥११
 ततः पितृत् तत्कालं देवेष्वमृतमीप्सितम् ।
 राहुचिबुधरूपेण दानवोऽप्यापित्तदा ॥१२
 तरय कण्ठमनुप्राप्ते दानवस्यामते तदा ।
 आरुघात चन्द्रमूय भ्या सुराणां हितकाम्यया ॥१३
 ततो भगवता तस्य शिरश्छिन्नलकृतम् ।
 चक्रयुधैल चक्रेण पितृतोऽमृतमोजसा ॥१४

श्री नागयण प्रभु ने अनूपम स्त्री का स्वरूप धारण किया था और फिर वे उन दानवों के समुच्चय में समागत हुए थे। इसके अनन्तर उन मूढ बुद्धि वाले दानवों ने वह अमृत का कलश उस मोहिनी को समर्पित कर दिया था ॥६॥ दानव और देवगण सभी उस स्त्री में समानरक्त मन वाले हो गये थे क्योंकि उस मोहिनी का रूप लावण्य ही अद्भुत आकर्षण करने वाला था। इसके उपरान्त मे राव दैत्य और दानव एकत्रित होकर अनेक अस्त्र तथा मुख्य महान प्रहरणों को ग्रहण करके सब देवगणों पर आक्रमण करी हा गये थे। इसके पश्चात् वीर्यवान् भगवान् विष्णु ने उस अमृत को लेकर नर का महान प्रभु न दानवों से हरण कर लिया था। इसके उपरान्त सभी समय में उन देवगणों ने उस अमृत का पान कर डाला था। उस समय में तुमुल मद्यम उपस्थित हो गया था तो भी देवगण ने विष्णु न उस अमृत का प्राप्न कर लिया था ॥६, १०, १॥ उस अमृत का द्रव्य क द्वारा पान करने पर जो कि उनका परम अभीष्ट था। उन देवगणों में राहु दैत्य भी दानवों का स्वरूप धारण कर बैठ गया था और उस समय में उसने भी उस अमृत को पी लिया था। उस दानव

के कण्ठ देश में ही वह अमृत प्राप्त हुआ था उसी समय में चन्द्र सूर्यो ने देवों के हित की कामना से इस तथ्य को बतला दिया था कि यह दानव ऋषट वेश में यहाँ पर अमृत पान कर रहा है। इसके पश्चात् भगवान् ने उसके अलकृत शिर को सुदर्शन चक्र के द्वारा काट डाला था जिस समय में वह अमृत का पान ओज से कर ही रहा था ॥६-१४॥

तच्छैलशृङ्गप्रतिमं दानवस्य शिरोमहत् ।

चक्रोणोत्कृतमपतच्चालयन् वसुधातलम् ॥१५॥

ततो वैरविनिबन्धः कृतो राहुमुखेन वं ।

शाश्वतश्चन्द्रसूर्याभ्या प्रसह्याद्यापि बाधते ॥१६॥

विहाय भगवाश्चापि स्त्रीरूपमत्तुल हरिः ।

नानाप्रहरणैर्भीमैर्दानवान् ममकम्पयत् ॥१७॥

प्रासाः सुविपुलास्तीक्ष्णाः पतन्तश्च सहस्रशः ।

ते सुराश्चक्रनिभिन्ना वमन्तोर्षाधर बहु ॥१८॥

असिशक्तिगदाभिन्ना निपेतुर्धरणीतले ।

भिन्नानिषट्शिश्वापि शिरासि युधि दारुणः ॥१९॥

तप्तकाञ्चनमाल्यानि निपेतुर्निशन्तदा ।

रुधिरेणावलिस्ताङ्गा निहताश्च महासुराः ॥२०॥

अद्रिणामिव कूटानि घातुरक्तानि शेरते ।

ततो हलाहलाशब्दः सम्बभूव समन्ततः ॥२१॥

उस दानव का वह शैल के शिखर के समान महान् शिर चक्र के द्वारा उत्कृत होकर वसुधातल को चालित कर करते हुए गिर गया था। ॥१५॥ इसके पश्चात् राहु के मुख के द्वारा वैर का विनिबन्ध किया गया था और वह चन्द्र एवं सूर्य के साथ शाश्वत है जो कि बल पूर्वक प्राण भी वाप्य दिया करता है ॥१६॥ हरि भगवान् ने भी उस मोहिनी स्त्री के अतुल रूप का त्याग करके बड़े भयानक अनेक प्रहरणों के द्वारा दानव गणों को बधित कर दिया था ॥१७॥ प्रास, सुविपुल, तीक्ष्ण और सहस्रों

श्री सस्या में गिर रहे थे । वे अमुर गण भगवान् के चक्र के द्वारा निर्मित
 होकर बहुत से रुधिर का समन कर रहे थे ॥१८॥ अग्नि, शक्ति और
 मदा से भिन्न होकर वे घरणी तल में निपतित हो गये थे । मुद्ग स्थल में
 दारुण प्रहरणों के द्वारा भिन्न हुए शिर और पट्टिश भी भूमि पर गिर
 गये थे ॥१९॥ उस समय में निरन्तर तप्त सुवर्ण क, मूल्य घरणी तल
 में गिर गईं थीं । महामुर हाँधर से अवलिप्त अङ्ग वाले निहत हो गये थे
 जो कि पर्वतों के शिखरों की भाँति घातुओं में रक्त होकर भूमि पर सो
 रहे थे । इसके पश्चात् सभी ओर से हलहला शब्द सम्भूत हो गया था ।
 ॥ २०, २१ ॥

अन्योन्य च्छिन्दता शस्त्रोऽदित्ये लाङ्घितायति ।
 परिघट्टवायसं पीतं मन्त्रिकर्षेण मुष्टिभिः ॥२२
 विघ्नता समरेऽन्योन्य नर्श्री दिवामिवास्पृशन् ।
 च्छिन्धि भन्धि प्रधावेति पातयेभिसरेतिव ॥२३
 विश्रुगन्ते महाबाग शब्दास्तत्र समन्ततः ।
 एव मुत्तुमुलेपुद्धं वर्त्तमाने महाभये ॥२४
 तरनारायणा देवी समाजग्मनुगाह्वयम् ।
 तत्र दिव्य धनुर्घृष्ट्वा नरस्य भगवानपि ॥
 चिन्तयामास वै चक्र विष्णुर्दानवमत्तमान् ॥२५
 ततोऽम्बराच्चिन्तितमात्रमागत महाप्रभ चक्रस्य मित्रनाशनम् ।
 विभावसास्तुल्यमकुण्ठमण्डल मुद्गान भोमसह्यमुत्तमम् ॥२६
 तदागत ज्वालितहृताशनम्भ भयङ्कर कर्गकरवाहुरन्युतः ।
 महाप्रभ दनुमुलदत्यदाऽप नथोज्ज्वलज्ज्वलनसमानाविग्रहम् ॥२७
 गुमाच वै तपनमुदप्रवगवान् महाप्रभ रिपुतगरावदारणम् ।
 मन्त्रीः ज्वलन समानश्चस पुनः पुनन्यपतत वेगवत्तदा ॥२८

इसके पश्चात् परस्पर में छुदन करने वाली के शस्त्रों से आदित्य
 के मोहों का जान पर भावन पारधा मु पीत नलिकर्षों से—मुष्टियों से

समर मे अन्योऽन्य का निहनन करने वालों का शब्द दिवलोक को मानो स्पर्श कर रहा था । काटो, भेदन करदो, दौडो, गिरादो, ढोड़कर घावा कर घेरलो, दत्त्वादि शब्द जो कि महान् धीर थे वहा पर सभी धीर मुनाई दे रहे थे । इस तरह से महान् भय देने वाले तुमुल युद्ध के वर्त्तमान होने पर नर और नारायण दोनो देव उस समर स्थल मे समागत हो गये थे । वहा पर भगवान् ने भी नर के दिव्य धनुष को देखकर भगवान् विष्णु ने शानव श्रेष्ठो के हनन करने के लिये चक्र का चिन्तन किया था । उसी समय मे जैसे ही चक्र का चिन्तन किया था अश्वर तल से बहै मुदर्शन चक्र आ गया था जो महती प्रभा से युक्त और शत्रुओ के नाश करने वाला था । उस चक्र की दीर्घ सूर्य के तुल्य थी—उसका मण्डल कुण्डल से रहित था—बहु सुन्दर दर्शन वाला—भीम—असह्य और उत्तम था ॥२२-०६॥ उस समागत हुए, जलती हुई अग्नि के समान प्रभा वाले, भयकर, महा प्रभा से युक्त, दगुवृत्त के दीप्तो का दारण करने वाले तथा जलती हुई अग्नि के समान बिगह वाले उस चक्र को करिष्यं करके सदृश बाहु वाले अच्युत भू ने छोड दिया था । उस समय मे अति प्रवेगवान्, तपन महाप्रभा मे युक्त, शत्रुओ के नगरो का शवदारण करने वाला, सम्बर्त्तिक (प्रलय कालीन अग्नि) कृत्न के तुल्य वर्चस वाला और वेग युक्त वह चक्र बारम्बार गिरा करता था ॥२७, २८॥

व्यक्षारयद्दितितनयान् सहस्रशः करेरित पुरुषवरेण मयूगे ।

दहत् क्वचिज्ज्वलन इवानिलेरित प्रसह्य तानसुरगणान्नकृन्तत । रक्ष प्रवेरित वियति मृहुः क्षितो तदा पथो रणे रुधिरगमः पिशानवध् ।

अथासुरा गिरिभिरद्वीपमानसा मूहुमूहु भूरगणमदंयस्तथा ॥३०

महाचला विगलितमेघवर्चसः सहस्रशो गगनमहाप्रपातिनः ।

अथान्तराभरजननाः प्रपेदिरे स्यादपा वहुविधमेघरूपिणः ॥३१

महाद्रयः प्रविगलिताग्रमानवः परस्पर द्रुतमभिपत्य भास्वराः ।

ततो मही प्रचलितमाद्रिकानना महौघरा पवनहताः समन्ततः ॥३२

परस्परं भृशमभिगणितं मुहूर्त्तं रणजिरे भृशमभि सम्प्रतन्ते ।
 नरस्ततो वरकनकाग्रभूपर्णे महेपुभिः पवनपथं समावृणोत् ॥२३
 विदारयन् गिरशिखराणि पत्रिभिर्महाभये सुरगणावग्रहे तदा ।
 ततो महीं तवणजलञ्च सागरं महामुराः प्रविविशुरदिताः सुरैः ॥२४
 वियद्गतं ज्वलितदृताशनप्रभं सुदर्शनं परिकुपित निशाम्य च ।
 ततः सुरैर्विजयमवाप्य मन्दरः स्वमेव देशं गमित सुर्वाजितः ॥२५
 गवाियन् स्वदिशमुपेत्य सर्वशस्ततोमताः सन्निलधरा यथा गतम् ।
 ततोऽमृतं सूनहितमेव चक्रिरे सुराः परां मृदमभिगम्य पुष्कलाम् ।
 ददुश्च तन्नियिममृतम्य रक्षितुं किगीटिने वलिभिरथमारः सह ॥२६

वस समय में पृथ्वी के हाथों से ईश्वर उस चक्र ने सहस्रों की सख्या में दिशि के पुत्रों को विदीर्ण कर दिया था ॥२६॥ किसी स्थान पर अग्नि की भाँति जो कि वायु में सम्प्रेरित होता है बल पूर्वक उन असुर गणों को दास्य करता हुआ काट रहा था । आकाश में प्रवेरित, पुनः भिति में उस समय में अधिर भय पिशाच की भाँति रण स्थल में रक्षत था वह चक्र पान कर रहा था । समुत्तम अर्धेन मन वाले होकर पर्वतों से पुनः पुनः सुरगणों को अदित कर रहे थे ॥२७॥ सहस्रों की सख्या में न्यून महान् अन्त विगलित मेघों के वचन वाले गगन में महान् प्रपात करते हुए, पादपी के सहित बहुत प्रकार के मेघों के स्वरूप वाले अन्तरा-धरजनन वाले हो गये थे ॥२८॥ अग्ने के सिधरों के प्रविलित हो जाने वाले महान् पर्वत परस्पर से मील हो अभिपन्नित होकर भास्वर हो रहे थे । इसके अनन्तर मही जलमे जाः और कानन चनाय मान हो रहे थे ऐसी ही गई थी और मभी ओर महीधर पवन के द्वारा आहत हो र थे ॥२९॥ उस रण के अंगन में आपस में अत्यन्त अधिक अभिगणित धारस्वार अधिकाधिक रूप में सम्प्रावृत्त हो रहा था । इसके अनन्तर नर ने श्रेष्ठ कनक क अभ्रभूपणों वाले महान् वाणों से उस पवन के मार्ग की समावृत्त कर दिया था ॥३०॥ उस समय में महान् भयानक उस सुरगणों

के युद्ध में पत्रियो के द्वारा पर्वतो के पिण्डों को विदीर्ण करते हुए सुरों के द्वारा अदित हुए महासुर मही—लवण जल वाले सागर में प्रवेश कर गये थे ॥३४॥ आकाश में गये हुए जलती हुई अग्नि के समान प्रभा वाले परिकुपित मुद्रर्शन का श्रवण कराकर सुरगणों के द्वारा विजय प्राप्त करके वह मन्दराचन सुपूजित होता हुआ अपने ही देश को भेज दिया गया था ॥३५॥ अपनी दिशा में प्राप्त होकर विनाद करता हुआ वह चला गया था । इसके अनन्तर सलिलधर सभी ओर वहाँ से जैसे समागत हुए थे वैसे ही चले गये थे । इसके उपरान्त सुरों ने अत्यधिक परम आनन्द की प्राप्ति कर उस अमृत को सुनिहित ही कर दिया था फिर बलशाली अमरों के सहित उस अमृत की निधि की रक्षा करने के लिए इस किरीट धारी प्रभु को दे दिया था ॥३६॥

११५—प्रासाद, भवन आदि निर्माण

प्रासादभवनदीना निवेश विस्तराद्दद ।
 कुर्यात्किं विधानेन कश्च वास्तुरुदाहृतः । १
 भृगुरभिवंशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा ।
 नारदो नग्नजिञ्चं व विशालाक्षः पुरन्दरः ॥ २
 ब्रह्माकुमारौ नन्दोश्च शीतको गर्ग एव च ।
 वासुदेवाऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रवृहस्पती ॥ ३
 सप्तदशैते विख्याता वान्तुशास्त्रोपदेशकाः ।
 सद्गुरुपणोपदिष्टन्तु मनचे मत्स्यरूपिणा ॥ ४
 तादिदानीं प्रवक्ष्यामि वास्तुशास्त्रमनुत्तमम् ।
 पुरान्धवमधेधोरे धोरूपस्य शूलिनः ॥ ५
 तस्यारवेदसलिलमपतद् भुवि भीषणम् ।

करालददनं तस्मात् भूतमुद्भूतमुत्त्वणम् ॥ ६

प्रसमानमिवाकाश सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ।

ततोऽन्धकानां रुधिरमपिवत्पतितं क्षितौ ॥ ७

श्रुतिगण ने कहा—हे भगवन् ! अब कृपा करके आप प्रासाद—
भवन आदि के निवेश को विस्तार पूर्वक बतलाइये । किस विधान से इसे
करना चाहिए और कौन सी वस्तु वास्तु, इस नाम से कही जाती है ?
॥१॥ श्री सूतजी ने कहा भृगु, अत्रि, बशिष्ठ, विश्व रमा, मय, नारद,
नानजित्, विद्यालाभ, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, शर्ग,
वामुदेव, अनिरुद्ध, युक्त, और बृहस्पति ये अठारह वास्तु शास्त्र के उप-
देशक विख्यात हुए हैं । मत्स्य के स्वरूप को धारण करने वाले भगवान्
ने भी मनु के लिए मङ्क्षेप से इसका उपदेश दिया है ॥२, ३, ४॥ सो
अब मैं इस वास्तु क उत्तम शास्त्र का वर्णन करूँगा । प्राचीन समय में
घोर रूप वाले भगवान् घूनी के घोर अन्धक के वध होने पर शिव के
ललाट से भीषण स्वेद का सतिल भूमि पर गिर गया था । उसम कगल
पदन वाला एक अत्यन्त उल्वण भूत उद्भूत हुआ था ॥५, ६॥ वह
आकाश को प्रसन्न हुआ था और सात द्वीपो वाली इस सम्पूर्ण वसुन्धरा
को प्रसित्त-सा करता हुआ प्रतीत हो रहा था । इस भूमि पर अन्धको का
जो भी जितना रुधिर पतित होना था उसको वह तुरन्त ही पी जाया
करता था ॥७॥

तेन तत्समरे सर्वं पतितं यन्महीतले ।

तथापि तृप्तिमगमन्न तद्भूता यदा तदा ॥८

सदाशिवस्य पुरनल्पश्चक्रं सुदाहणम् ।

क्षुधाविष्टन्तु तद्भूतमाहर्तुं जगतीश्वरम् ॥९

ततः कालेन मन्तुष्टो भैरवस्तस्य चाहवे ।

वरं वृणीष्व भद्रन्ते ! यदमीष्टन्तवानघ ! ॥१०

तमुवाच ततोभूत औत्तोक्थयसन्नभमम् ।

भवामि देवदेवेश तथेत्युक्तञ्च शूलिना ॥११॥

ततस्तत्त्रिदिवं सर्वं भूमण्डलमशेषतः ।

स्वदेहेनान्तरिक्षञ्च रुन्धानं प्रपतद्भुवि ॥१२॥

भीतभीर्तस्ततोदेवैर्ब्रह्मणा चाथ शूलिना ।

दानवासुरक्षोभप्टब्ध समन्ततः ॥१३॥

येन यज्ञोवचाक्रान्त स तद्रीवावसत्पुनः ।

निवासात्सर्वदेवानां वास्तुरित्यभिधीयते ॥१४॥

एसने उस युद्ध में महीतल पर जो भी जितना रक्षिण पतित हुआ था उसने उस सबका पान कर लिया था । तो भी वह भूत जद्य तक तृप्ति को प्राप्त नहीं हुआ था । वह भगवान् सदाशिव के भागे बड़ा ही दारुण तप किया करता था और धृगा से आविष्ट वह भूत इस जगती त्रय का आहरण करने को समुद्यत हो रहा था । कुछ समय में उसकी उस महा दारुण तपस्या से उस युद्ध में भैरव उससे अत्यन्त मन्तुष्ट हो गये थे । शैव ने उससे कहा—हे अनघ ! तुमका जो भी अभीष्ट हो वह वर मुझ से माँग लो तेरा कल्याण हो । इसके अनन्तर उस भूत ने भैरव से कहा—हे देव देवेश ! मैं इस जलोक्य के प्रसन करने की सामर्थ्य वाला हो जाऊँ । इस पर शूली ने 'ऐसा ही होगा'—यह कह दिया था ॥८-११॥ हमके उपरान्त वह सम्पूर्ण त्रिदिव समग्र भूमण्डल और अपने देह से रुन्धान् अन्तरिक्ष भूमि पर गिर पड़ा था । १२॥ इसके पश्चात् डरे-डगये हुए देवो-ब्रह्मा-शूची और दानव, असुर तथा राक्षसों के द्वारा सभी ओर अप्टब्ध हो गया ॥१३॥ जिसके द्वारा जहा पर ही आक्रमण किया गया था वह फिर वही पर निवास करने लगा था । समस्त देवों के निवास से "वास्तु"—इस नाम से कहा जाता है ॥१४॥

अप्टब्धाश्च तेनापि विजृम्भाः सर्वदेवताः ।

प्रमोदध्व सृग्ग सर्वे यत्प्रमाभिनिसचलीवृतः ॥१५॥

स्वारथामहृ किमाकारा ह्यवपटब्धो ह्यवामुप ।

ततो ब्रह्मादिभिः प्रोक्तं वास्तुमध्ये तृ यां बलिः ॥१६

आहारो वंश्रदेवान्ते नूनमस्मिन्भविष्यति ।

वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यति ॥१७

अज्ञानात् कृतो यज्ञस्तवाहारो भविष्यति ।

यज्ञोत्सवादी च बलिस्तवाहारो भविष्यति ॥१८

एव मुक्तस्ततोहृष्टः सवास्तुरभवत्तदा ।

वास्तुयज्ञः स्मृतस्तस्मात्ततः प्रभृतिदान्तये ॥१९

उसके द्वारा अवष्टब्ध सब देवगण विज्ञप्त हो गये थे कि हे
मस्त सुग्णो ! आप प्रसन्न हो जाइये आपने मृके निश्चयीभूत बना
देया है । अब मैं नीचे की ओर मुख वाला अवष्टब्ध हुआ किस आकार
शला होकर स्थित रहूंगा ? इसका उत्तर ब्रह्मादि सयने यही दिया था
कि वास्तु के मध्य में जो बलि है इसमें निश्चय ही वंश्र देवान्त में आहार
हो जायगा ॥१५, १६ १७॥ जो यज्ञ अज्ञान से किया गया है वह भी
तेरा आहार होगा । यज्ञोत्सव आदि में जो बलि है वह तेरा आहार
होगा । इस प्रकार से कहे जाने पर वह परम प्रसन्न होकर उस समय में
वास्तु हो गया था । इसी कारण से सभी से लेकर शान्ति के लिए वास्तु
यज्ञ यह कहा गया है ॥१८, १९॥

११६-गृह निर्माण काल वर्णन

अथातः सम्प्रवहामि गृहकालविनिर्णयम् ।

यथा काल शुभं ज्ञात्वा सदा मवनमारभेत् ॥१

चैत्रेऽध्याधिसवाप्नोति यो गृह कारयेन्नरः ।

वैशाखे धेनुरत्नानि ज्येष्ठे मृत्यु तथैव च ॥२

आषाढे मृत्परत्नानि पशुवर्गमवाप्नुयात् ।

श्रावणे भद्रलाभन्तु हानि भाद्रपदे तथा ॥३॥
 पत्नीनाशोऽश्विने विन्धात्कार्तिके धनधान्यकम् ।
 मार्गशीर्षे तथा भक्तं पीपे तस्करतो भयम् ॥४॥
 लाभञ्च बहुशो विन्धात् अग्नि माघे विनिदिशेत् ।
 फाल्गुने काञ्चनं पुत्रानिति कालबल स्मृतम् ॥५॥
 अश्विनीरोहिणीमूलं उत्तराश्रयमैन्दवम् ।
 स्वातीहस्तोऽनुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते ॥६॥
 आदित्यभौमवज्यास्तु सर्वेवारा. शुभावहाः ।
 वज्यं व्याघातशूलेचव्यतीपातातिगण्डयोः ॥७॥

श्री सूत्रजी ने कहा — इसके अनन्तर गृहकाल का विशेष निर्णय मैं बतलाता हूँ । जिस प्रकार से शुभ काल को जानकर सदा भवन के निर्माण का आरम्भ करना चाहिए ॥ १ ॥ जो मनुष्य चैत्र मास में गृह का निर्माण कराता है तो व्याघ्र की प्राप्ति किया करता है । वैशाख मास में धेनु और रत्नो का लाभ होता है तथा ज्येष्ठ मास में गृह के निर्माण का कार्य आरम्भ कराने से मृत्यु हो जाया करती है । आषाढ़ मास में भृगु और रत्न तथा पशु वर्ग का लाभ होता है । श्रावण मास में भृत्यो का लाभ होता है तथा भाद्रपद मास में गृह निर्माण कराने से हानि हुआ करती है । आश्विन मास में पत्नी का विनाश जानना चाहिए । कार्तिक के महीने में गृह के निर्माण कराने से धन-धान्य का लाभ होता है । मार्गशीर्ष में भक्त का लाभ तथा पीप में तस्करो से भय उत्पन्न होता है एवं बहुत सा लाभ भी होता है । माघ में अग्नि का भय होता है । फाल्गुन मास में काञ्चन और पुत्रो की प्राप्ति होती है यह काल का बल बतला दिया गया है ॥ ३, ४, ५ ॥ अब नक्षत्रों के विषय में विचार प्रकट किया जाना है—आश्विनी, रोहिणी, मूल, तीनों उत्तरा, ऐन्दव, स्वाती, हस्त, अनुराधा ये नक्षत्र गृह निर्माण के कार्य में परम प्रशस्त माने गये हैं । आदित्य, भौम इन दो चारों को वज्रित करके गृह निर्माण

में अन्य सभी चार शुभावह हुआ करते हैं : व्याघात, शून, श्वतीपात, अनिगण्ड ये वक्रित करने के योग्य होते हैं ॥ ६, ७ ॥

विष्कम्भगण्डपरिधवज्रयोगेषु कारमेत् ।

श्वेते मंत्रेऽथ माहेन्द्रे गान्धर्वाभिजिति रोहिणे ॥८

तथा वैराजसावित्रो मूहूर्ते गृहमारभेत् ।

चन्द्रादित्यवत्त लब्ध्वा शुभलग्नं निरीक्षयेत् ॥९

स्तम्भोच्छ्रायादिकर्तव्यमयन्तु परिवर्जयेत् ।

प्रासादेष्वेवमेवं स्यात् कूपवापीपुर्चव हि ॥१०

पूर्वं भूमिं परीक्षेत पश्चाद्वास्तु प्रकल्पयेत् ।

श्वेतारक्ता तथापीता कृष्णाचीवानुपूर्वशः ॥११

विप्रादे शस्यते भूमिरतः कार्यं परीक्षणम् ।

विप्राणामधुरास्वादाकटुकाक्षत्रियस्य तु ॥१२

त्रिकताकषाया च तथा वश्यशूद्रेषु शस्यते ।

अरस्त्रिमात्रोर्वगतं स्वनुलिप्ते च सर्वशः ॥१३

धृतमामशरावस्थ कृत्वावनिचतुष्टयम् ।

ज्वालयेद्भूपरोक्षार्यं तत्पर्णमर्बदिङ्मुत्सम् ॥१४

विष्कम्भ, गण्ड, परिध और वज्र ये योग श्रेष्ठ होते हैं— इनमें गृह का निर्माण कराना चाहिये। श्वेत, मंत्र, माहेन्द्र, गान्धर्व, अभिजित, रोहिण, वैराज, सावित्र— इन मूहूर्तों में गृह के निर्माण का आरम्भ कराना चाहिए। चन्द्र और सूर्य के बल को प्राप्त कर शुभ लग्न को प्राप्त करना चाहिए। अन्य स्तम्भोच्छ्राय आदि कर्तव्य को परिवर्जित करने का चाहिए। जो प्रासादों का निर्माण कराया जावे तबमें इसी प्रकार का विचार करना निजान्त आवश्यक है तथा कूप और बावड़ी आदि के विषय में भी यही विचार करे। सबसे पहिले भूमि को परीक्षा करने का चाहिए इसके पश्चात् धनु को प्रकल्पना करे। कृष्ण, रक्ता, श्वेत तथा पीला सर्पात् सफेद, लाल, पीला और काला इनकी आनुपूर्वी

कल्पना करे । विप्रो आदि की भूमि प्रशस्त कही जाती है । अतएव परीक्षण करना ही चाहिए । विप्रो का मधुर आस्वाद-क्षत्रिय का कटु का और द्रव्य तथा शुद्रो में तक्त एव कषाय आस्वाद प्रशस्त होता है । एक अग्नि मात्र गर्त में जो कि सभी ओर से भली भाँति लिप्त कर दिया गया हो, उममें एक कच्चे सकोरा में घृत् भर कर चार बत्तियों उममें डाले और उनकी जलाकर उस पूर्ण दीपक को सभी दिशाओं की ओर मुख करके भूमि की परीक्षा के लिये रखना चाहिए ॥ ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४ ॥

दीप्तो पूर्वादिगृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः ।

वास्तुः सामूहिकोनाम दीप्यते सवतस्तुयः ॥१५

शुभद. सववर्णाना प्रासादेषु गृहेषु च ।

अरत्निमात्रमघागर्ते परीक्ष्य स्नातपूरणे ॥१६

अधिकेश्रियमाप्नाति न्यनेहानि समे समम् ।

फालकृष्टेऽथवादेशे सर्वबीजानि वापयेत् ॥१७

त्रिपञ्चसप्तरात्रे च यत्रारोहन्ति तान्यपि ।

ज्येष्ठात्तमाकृतिष्ठाभूर्वजंनोयतरा सदा ॥१८

पञ्चगव्योपविजल. परादित्वा च सेचयेत् ।

एकादीति पद कृत्वा रेखाभिः कनकं च ॥१९

पश्चात्पिष्टेनचालिप्य सृष्टेणालोड्य सर्वतः ।

दशपूर्वायतालेसा दशचंबोत्तरायताः ॥२०

सववास्तुविभागेषु विज्ञेया नयका नय ।

एकादीति पद कृत्वा वास्तुवित्सर्ववास्तुषु ॥२१

उत्तरी दीप्ति में पूर्वादि को आनुपूर्वशः गणी का ग्रहण करना चाहिए वास्तु—यह सामूहिक नाम है जो सभी ओर दीप्त होता है ॥ १५ ॥ पह प्रासादों में और गृहों में सब वर्णों का शुभ देने वाला होता है । अरत्नि मात्र स्नातपूरण नीचे के गर्त में परीक्षण करने के योग्य है ॥ १६ ॥ अधिक

होने पर धी की प्राप्ति करता है और न्यून होने पर हानि करता है तथा सम होने पर सम ही फल देता है । हल की फाल के द्वारा जुते हुए अथवा देश में सब बीजों का वपन करना चाहिए । तीन-पाँच और सात रात्रि में वे बीज जहाँ पर अंकुरित होते हैं वह भूमि ज्येष्ठ—उत्तम और कनिष्ठ होती है तथा सदा वर्णनीयनरा हुआ करती है ॥ १७। १८ ॥ पञ्चगव्य और औषधि के जलों के द्वारा परीक्षा करके सेवन करे । इक्यासी रेखाओं से और कनक से पद करके फिर पिष्ट के द्वारा अनुलेपन करे और सब ओर सूत्र से आलोडन करे । दश तो पूर्व की ओर आयत लेखा हो और दश ही उत्तरायन होवें । सब वास्तु विभागों में नवकानय जाननी चाहिए वास्तु के वेत्ता पुरुष को सब वास्तुओं में इक्यासी पद करना आवश्यक है ॥ १६, २०, २१ ॥

पदस्थान् पूजयेद्देवा स्थिशतपञ्चदशैव तु ।
 द्वाविंशद्वाह्यतः पूज्याः पूज्याश्चान्तस्त्रयोदशः । २२
 नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि स्थानानि च निबोधत ।
 ईशानकोणादिषु तान् पूजसेद्धविद्या नरः ॥ २३
 शिखीवैवायपजंयो जयन्तः कुत्तिसायुधः ।
 सूर्यसत्यो भृशश्चैव आकाशो वायुरेव च ॥ २४
 पूषा च वितथश्चैव गृहक्षतयमावुमी ।
 गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगः पितृगणस्तथा ॥ २५
 दीवारिकाऽथ मृग्रीवः पृष्पदन्तो जलाधिपः ।
 अमुरः शोषपापी चरोगोहिमुं ह्यएव च ॥ २६
 भल्लाटः सोमसर्पो च अदितिश्च दितिस्तथा ।
 बहिर्द्वाविंशदेते तु तदन्तस्तु ततः ऋणु ॥ २७
 ईशानादिचतुःकोणसत्थितान् पूजयेद्बुधः ।
 आपश्चैवायसावित्री जयोरुद्रस्तर्धेव च ॥ २८

पक्षों में स्थित देवों का अभ्यर्चन करें जो तीस और पञ्चदश

होवे । बत्तीस बाह्य भाग में पूजने चाहिए और अन्दर में तेरह की पूजा करनी चाहिए ॥ २२ ॥ अब हम नामों का उल्लेख करके उनको बनलाये में उनके स्थानों को जानलो । उस मनुष्य को चाहिए कि ईशान आदि चारों कोणों में सस्थितों का पूजन करे और उस हवि के द्वारा ही करना चाहिए । २३ ॥ शिखी—पर्जन्य—जयन्त—कुलिगायुध—सूर्या—साय—भृश—आकाश—वायु—पूषा—वितथ—गृहक्षत—यम—पद्मवं—भृङ्गाज—मृग—पितृगण—दीवारिक—भुग्रीव—पृथ्वन्त—जलाधिर—असुर—शोष—पाप—चरोग—आदि—मुख्य—भल्लाट—सोम—सर्प—अदिति—दिति—बाहिर ये बत्तीस होते हैं । उसके अन्त में जो होते हैं उनका श्रवण करो । ईशान आदि चतुष्कोणों में सस्थितों का बुध पुरुष की पूजन करना चाहिए । आप—सावित्र—जय—रुद्र ॥ २३, २४, २५, २६, २७, २८ ॥

मध्ये नवपदे ब्रह्मायस्थाष्टौचसमीपगान् ।

साध्यानेकान्तरान्विद्यात्पूर्वाद्यान्नामत. शृणुः ॥२६

अथ्यमासविताओषविवस्थान्विबुधाधिपः ।

मित्रोऽथराजयक्ष्माचतथापृथ्वीधरः स्मृतः ॥३०

अष्टमश्चापवत्सस्तु परितो ब्रह्मणः स्मृतः ।

आपश्नीवापवत्सदच पर्यग्नीऽग्निदितिस्तथा ॥३१

पदिकानान्तु बर्गोऽयमेव कोणेऽशेषतः ।

तन्मध्ये तु बहिर्विंश द्विपदास्ते तु सर्वशः ॥३२

अथ्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पृथ्वीधरस्तथा ।

ब्रह्मणः परितो दिक्षु त्रिपदास्ते तु सर्वशः ॥३३

वशानिदानी वक्ष्यामि ऋजूनपि पृथक् पृथक् ।

वायुं यावत्स्यारोगात् पितृभ्यः शिखिनं पुनः ॥३४

मुख्यात्भृशं तथा शोपाद्वितथ यावदेव तु ।

सुग्रीवाददिति यावन् मृगात्पर्जन्यमेव च ॥३५

मध्य नवपद में दक्षिण और उसके बाठ समीप में गमन करने वाले—एक के अन्तर से युक्त भागों को जान लो अब पूर्वार्धों के नामों का श्रवण करो ॥ २६ ॥ अर्धमा-सविता-द्विजन्ताम्-बमुधाधिप-मित्र-राजपद्मा—पृथ्वीधर-आठना आपद्मम्—परित ब्रह्मगु-आप-अपवत्स-पर्यन्त-अभिदिनि—इस प्रकार से यह पदिकों का यह वर्ण है इसी तरह से कोणों में पूर्ण स्थिति से हैं । उसके मध्य में सब लोग वै बाहिर बीस द्विपद हैं ॥ ३०, ३१, ३२ ॥ अर्धमा-विजन्ताम्-मित्र-पृथ्वीधर-दिशाओं में वे सब और ब्रह्मा के दोनों ओर त्रिपदा हैं ॥ ३३ ॥ अब मैं सरलों को भी पृथक् २ बतलाऊंगा । तथा रोग में जहाँ तक वायु को फिर पित्तगण से लिख को बतलाना है ॥ ३४ ॥ मुख्य में शक तथा क्षीप से विशय पर्यन्त—मुषीव से जहाँ तक अदिनि है और मृष से पर्यन्त है ॥ ३५ ॥

एतेवंशा समाख्याता. क्वचिच्च जयमेव तु ।
 एतेषा यस्तुमम्पात पद मध्य समं तथा । २६
 ममंचैतत्समाख्यात त्रिभूल रोगगन्ध यत् ।
 स्तम्भ न्यासेषुवर्जानितुलाविधिपुमधंदा ॥२७
 को रोच्छिष्टोपधातादि वजयेद् यत्सतो जनः ।
 सर्वत्र वास्तुनिदिष्टो पितृवंशवानराधनः ॥२८
 मूर्द्धन्यग्नि समादिष्टो मुक्तेचापः समाश्रितः ।
 पृथ्वीधरोऽयमाचोवस्तनयोस्तावधिष्ठितौ ॥२९
 वक्षस्यते चापवत्सः पूजनीयः सदा बुधैः ।
 नेत्रयोदितिपुज्यौ श्रोत्रोऽदितिजयन्तकौ ॥३०
 सर्वेन्द्रावससस्थौ तु पूजनीयो प्रयत्नत ।
 सूर्यसोमादपस्तद्वत् वाह्वोः पञ्च च पञ्च च ॥३१
 रुद्रश्च राजपद्मा च चापहस्ते समास्थितौ ।
 सावित्रः सविता तद्वद्वस्त दक्षिणमार्गितौ ॥३२

ये वक्ष समाख्यात किये गये हैं और वही पर तो जय ही है । इनका जो सम्पात है मध्य पद तथा सम है । यह मर्म कह दिया गया है जो त्रिशूल कोण गत है । सब ओर न्यासो मे स्तम्भ है और तुला विधियो मे वर्ज्य हैं । मनुष्य को कीलोच्छिष्ट उपपात आदि को यत्न से बजित कर देना चाहिए । सब जगह पर वास्तु का पितृवैश्वानरायत निर्दिष्ट है । मूर्द्धा मे अग्नि का निर्देश किया गया है—मुख में चाप समाश्रित है । पृष्ठीधर और अयंमा ये दोनो स्तनो में अधिष्ठित हैं । वक्ष स्थल मे आपवत्स का बुध ुरुषो को सदा पूजन करना चाहिए । नेत्रो मे दिति और पर्जन्य, श्रोत्र मे अदिति जयन्तक, दो सर्वेन्द्र अंस मे संस्थित प्रयत्न पूर्वक पूजन करने के योग्य होते हैं । उसी तरह से बाहुभ्रौ मे पाँच-पाँच सूय सोमादिक पूजनीय हैं । रुद्र और राजयक्षमा धामहस्त मे दोनो समास्थित हैं । इसो प्रकार से सावित्र-सविता दक्षिण हाथ मे आस्थित हैं ॥ ३६-४२ ॥

विश्वस्वानथ मित्रश्च जठरे संख्यवस्थितौ ।

पूपाच पापयक्ष्मा च हस्तयोर्मणिग्रन्धने ॥४३

तथैवासुरशोपी च वामपार्श्वे समाश्रितौ ।

पार्श्वे तु दक्षिणे तद्वत् वितथः सगृहक्षतः ॥४४

ऊर्वोयमाबुषी ज्ञेयो जान्वीगन्धवपुष्पकी ।

जङ्घयो भृंगसुग्रीवोस्फिकस्थो दीवारिको मृगः ॥४५

जयशक्ती तथा मेढ्रे पादयोः पितरस्तथा ।

मध्ये नव पदे ब्रह्मा हृदये स तु पूज्यते ॥४६

चतुः पट्टि पदो वास्तुः प्रासादे ब्रह्मणास्मृतः ।

ब्रह्मा चतुष्पदस्तत्र कोणेऽर्धपदास्तथा ॥४७

वहिः कोणेषु वास्तो तु सार्धाश्वोभयसंस्थिताः ।

विशति द्विपदाश्चैव चतुः पट्टि पदे स्मृताः ॥४८

गृहारम्भेषु वण्डतिः स्वाभ्यङ्ग यत्र जायते ।

शत्य त्वपनयेत्तत्र प्रासादे भवने तथा ॥४६

सशत्य भयद यस्मादशत्यं शुभदायकम् ।

हीनाधिकां गतावास्तोसर्वथातु विवजयेत् ॥५०

नगरग्रामदेशेषु सर्वेणैव विवजयेत् ।

चतुः शाल त्रिशालञ्च द्विशाल चौकशालकम् ॥

नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि स्वरूपेण द्विजोत्तमा ॥५१॥

इसके अनन्तर विवस्वान् और मित्र जठर में भली भाँति व्यवस्थित हैं। पूवा और पाप यक्ष्मा हाथों के मणिबन्धन में हैं। उसी प्रकार से अमुर और शोष वाम पार्श्व में समाश्रित हैं। दक्षिण पार्श्व में उसी भाँति वितथ और सगृहृत हैं। दोनों ऊरुओं में यम और अम्बुय जान लेने के योग्य हैं। दोनों जानुओं में गन्धर्व और पुष्पक हैं। दोनों जङ्घाओं में भृगु और सुधोत्र सम्बन्धित हैं और रिकक सागो म दोवारिक और मृग स्थित होत हैं ॥ ४२, ४४, ४५ ॥ जप और शक्र मेढू में सम्स्थित हैं और दोनो पादों में पितर सम्बन्धित रहा करते हैं। मध्य नव पद में ब्रह्मा है और वह हृदय में पूजित होता है। ब्रह्माजी के द्वारा यह वास्तु चौमठ पद वाला बना गया है। वहाँ पर ब्रह्मा चतुष्पद है तथा कोणों में अर्ध रद हैं। बाहिर कोणों में वास्तु में साध उमय सम्स्थित होते हैं। चौमठ द्विपद है और चौमठ पद में वताये गये हैं ॥ ४६, ४७, ४८ ॥ गृहों के शान्भ्र काली में स्वामी क अङ्गी में जहाँ पर कर्कशति होती है वहाँ पर प्रासाद तथा भवन में शत्य का उपनयन करना चाहिए। शत्य के सहित मययद हुआ करता है और यशस्य शुभदायक होता है। हीनाधिक को मन वास्तु के सर्वथा विवजित कर देना चाहिए। इसी प्रकार से नगर और ग्राम देशों में भी विशेष रूप में विजित कर देवे। चतुःशाल-त्रिशाल-द्विशाल और एक शाल है द्विजोत्तमा ! नाम निर्देशपूर्वक बनाता बननाशेण और स्वरूप के द्वारा भी रहेंगे ॥ ४६-५१ ॥

११७-भवन निर्माण वर्णन

चतुः शालं प्रवक्ष्यामि स्वरूपन्नामतस्तथा ।
 चतुः शालञ्चतुर्द्वारैरलिन्दैः सर्वतोमुखम् ॥१॥
 नाम्ना तत् सर्वतोभद्र शुभ देवनृपालये ।
 पश्चिमद्वारहीनञ्च नन्द्यावर्तः प्रचक्षते ॥२॥
 दक्षिणद्वारहीनस्तु वद्धमानमुपाहृतम् ।
 पूर्वद्वारविहीन तत्स्वस्तिक नाम विश्रुतम् ॥३॥
 रुचकचोत्तरद्वारविहीन तत्प्रचक्षते ।
 सौम्यशालाविहीन यत्त्रिशाल धान्यकञ्च तत् ॥४॥
 क्षेमवृद्धिकरं नृणा बहुपुत्रफलप्रदम् ।
 शालया पूर्वया हीनं मुशेत्रमिति विश्रुतम् ॥५॥
 धन्य यशस्यमायुष्य शोकमोह विनाशम् ।
 शालया याम्ययाहीनयद्विशालतुशालया ॥६॥
 कुलक्षयकरनृणा सर्वव्याधिविनाशनम् ।
 हीन पश्चिमया यत्तु पक्षध्न नाम तत्पुनः ॥७॥

महामहर्षि श्री सूतजी ने कहा—अब मैं चतुःशाला का नाम और स्वरूप से वर्णन करता हूँ । चतुःशाला चार द्वारों और सर्वतोमुख अलिन्दों से युक्त हुआ करता है ॥१॥ देव और नृप के आलय में वह नाम से सर्वतोभद्र परम शुभ होता है । पश्चिम द्वार से हीन नन्द्यावर्त कहा जाता है ॥२॥ जो दक्षिण द्वार से हीन होता है वह वद्धमान उपाहृत होता है । पूर्व द्वार से रहित वह स्वस्तिक इस नाम से प्रसिद्ध है ॥३॥ उत्तर द्वार से जो विहीन होता है वह रुचक नाम वाला होता है । जो सौम्यशाला से रहित होता है वह त्रिशाल और धान्यक होता है ॥४॥ यह मनुष्यों को बहुत से पुत्रों की प्राप्ति के फल को प्रदान करने वाला तथा क्षेम और वृद्धि के करने वाला होता है । पूर्व शाला से हीन

'सुक्षेत्रम्' इस नाम से विद्युत् होता है ॥५॥ यह परम घण्ट, वायुव्य (आयुकी वृद्धि करने वाला)—शोक और मोह का विनाश करने वाला होता है । साम्य (दक्षिण) भाग से हीन और शला से विशाल होता है वह मनुष्यों के कूल का क्षय करने वाला और समस्त प्रकार की व्याधियों का नाश करने वाला हुआ करता है । जो पश्चिम दिशा में होने वाले द्वार से रहित होता है उसका नाम "पक्षघ्न"—हुआ करता है ॥ ५, ७ ॥

मित्र बन्धून् सुतान् हन्त तथा सर्वमयापहम् ।
 याम्बापराभ्यां शालाम्य धनधान्यफलप्रदम् ॥८
 क्षेमवृद्धिकरं नृणां तथापुत्र फलप्रदम् ।
 यम सूर्यज्ज्वलित्तमं पश्चिमोत्तरशालिकम् ॥९
 राजग्निसमद नृणां कुलक्षयकर च यत् ।
 उदकपूर्वं तु शालेह् दण्डारुणे यत्र तद्भूमेत् ॥१०
 अकालमृत्युभयद परवक्रमयावहम् ।
 धनान्य सर्वप्राप्त्याभ्यां शान्ताभ्यायद्विशात्कम् ॥११
 तच्छत्रभयदन्ना परामवभयावहम् ।
 चतुर्लीपूर्वा पराभ्यां तु सामवेगमृत्युमूवती ॥१२
 वेद्यव्यदायक रत्रौणामनेकमयकारकम् ।
 कार्यन्तरयाम्बाभ्यांशालाम्बाभयदन्नाम् ॥१३
 मिद्धायवचत्रज्याणि विशालानि सदाशुद्धि ।
 अघात सप्रवक्ष्यामि भवनपृथिवीपतेः ॥१४

याम्बा पर शान्ताओं से मित्र-बन्धु-और सुतों की प्राप्ति होती है तथा सर्वप्रकार के भयों का अपहरण एवं धन और धान्य के फल का प्रदान करने वाला पक्षघ्न हुआ करता है । पश्चिमोत्तर शालिक मनुष्यों के क्षेम एवं वृद्धि का करने वाला है और पुत्र की प्राप्ति का फल प्रदान करने वाला है । इसका नाम यम सूर्य जानना चाहिए ॥८, ९॥ उत्तर और पूर्व

की शालाएँ जहाँ पर होती हैं उनका नाम दण्ड होता है। यह मनुष्यों को राजा, अग्नि, और मृत्यु का भय देने वाली हैं तथा कुल का क्षय करने वाली हैं ॥१०॥ पूर्व और याम्य शालाओं से जो विशालक होता है उसका नाम धन है। यह अकाल मृत्यु और भय का प्रदान करने वाला तथा परचक्र के भय देने वाला होता है। पराओं से जो चूल्ही पूर्वा शाला होती है वह मृत्यु की सूचना देने वाली हुआ करती है ॥११, १२॥ स्त्रियों को वैधव्य के देने वाला—अनेक भयों का करने वाला होता है। उत्तर और याम्य की शाला से मनुष्यों को भय दान होता है। अतएव बुध पुरुषों को सदा सिद्धार्थ वज्र वज्र्य विशाल ही करनी चाहिए। इसके अनन्तर अब मैं पृथिवी पति के भवन का वर्णन करूँगा ॥१३, १४॥

पञ्चप्रकार तत्प्रोक्तमुत्तमादि विभेदतः ।

अष्टोत्तरहस्तशत विस्तरश्चोत्तमोमतः ॥१५

चतुर्ष्वन्येषु विस्तारो हीयतेचाष्टभिः करैः ।

चतुर्था चाधिक दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते ॥१६

युवराजस्य वक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम् ।

पङ्क्ति पङ्क्ति भिस्तथाशीतिहीयतेतत्रविस्तरात् ॥१७

त्र्यशेन चाधिकदैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते ।

सेनापतेः प्रवक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम् ॥१८

चतुर्ष्वपि पञ्चस्वविस्तारात्पङ्क्तिः पङ्क्तिस्तुहीयते ।

पञ्चस्वतेपुदैर्घ्यञ्चपङ्क्तिभागेनाधिकभवेत् ॥१९

मन्त्रिणामथ वक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम् ।

चतुश्चतुर्भिर्हीनास्यात् करपष्टिः प्रविस्तरे ॥२०

अष्टाशेनाधिक दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते ।

सामन्तामात्यलोकानां वक्ष्ये भवनपञ्चकम् ॥ १

यह नृप का भवन उत्तम आदि भेदों से पाँच प्रकार का बताया गया है। जो एक गौ आठ हाथ के विस्तार वाला होता है वह ही उत्तम

माना गया है ॥१५॥ अग्य जो चार प्रकार के भवन कहे गये हैं उनमें जो विस्तार होता है वह आठ हाथों का कम ही हुआ करता है । इन पाँचों में लम्बाई से चतुर्थांश से अधिक दीर्घता बताई गयी है । अब मैं युवराज के पाँच प्रकार के भवनों के विषय में कहता हूँ वहाँ पर अस्सी के विस्तार से छँ-छँ हाथ कम होता जाया करता है । इन पाँचों में भी तीन वर्ग से अधिक दीर्घता कही जाती है । अब सेनापति के पाँच प्रकार के भवनों के विषय में वर्णन किया जाता है ॥१६, १७, १८॥ ये भवन चौसठ के विस्तार से छँ-छँ हाथ प्रत्येक में कम होता जाया करता है । इन पाँचों में चौड़ाई षड्भाग से अधिक ही हुआ करती है ॥१६॥ अब राजा के मन्त्रियों के भी भवन पाँच प्रकार के ही हुआ करते हैं उनका वर्णन किया जाता है । इनका विस्तार साठ हाथ का होता है और ये भी क्रम से चार-चार हाथ कम होते हैं ॥-०॥ इन पाँचों में भी आठ अंग से अधिक दीर्घता हुआ करती है । अब इसके उपरान्त राजा के सामन्त—आमात्य और लारों के भी पाँच प्रकार के भवनों का वर्णन यहाँ पर किया जाता है ॥-१॥

चत्वारिंशत्तथाष्टौ च चतुर्भिर्हीयते क्रमात् ।
 चतुर्थी शार्धक दृष्ये पञ्चस्वतेषुशस्यते ॥२०
 शिन्धिना कञ्चकीनाञ्च वेश्याना गृहपञ्चकम् ।
 अष्टाविंशत् काराणात्तु दिहीन विस्तरे क्रमात् ॥२३
 द्विगुण दृष्यमेवान्त मध्यमेष्वेवमेव तत् ।
 दूनाकर्मान्तिरादीना वक्ष्ये भवनपञ्चकम् ॥२४
 चतुर्थांशार्धकदृष्ये त्रिस्तारोद्वादशत्वं तु ।
 अर्धार्धकरहानि स्याद्विस्तारात्पञ्चगः क्रमात् ॥२५
 दं वज्रगुर्वेद्याना नभास्नारपुरोधमाम् ।
 तेषामपि प्रदक्ष्यामि तथा भवन पञ्चकम् ॥२६
 चत्वारिंशत्तथाष्टौ च चतुर्भिर्हीयते क्रमात् ।

पञ्चस्वेतेषु दैर्घ्यञ्च षड्भागे नाधिकभवेत् ॥२७

चतुर्वर्णस्य वक्ष्यामि सामान्यं गृहपञ्चकम् ।

द्वात्रिंशत्किरणान्तु चतुर्भिर्हीयते क्रमात् ॥२८

ये भवन चालीस और आठ अडनालीस हाथ के विस्तार वाले हुआ करते हैं और क्रम से चार-चार हाथ न्यून हो जाया करते हैं । इनमे भी चौथाई अंश से अधिक दीर्घता (चौडाई) इन पाँचो मे प्रपस्त हुआ करती है ॥२२॥ नृप के यह पर जो शिल्पी-कञ्चुकी और वेश्याएँ होते हैं उनके भी भवन पाँच तरह के उत्तम आदि भेदो वाले हुआ करते हैं । षट्ठाईस हाथ के विस्तार वाले होने हैं और क्रम से प्रत्येक मे हीनता भी होनी चली जाया करती है ॥२३॥ दुगुनी दीर्घता भी बताई गयी है । इसी प्रकार से मध्यमो भी होनी है । अब दूनीक्रम करने वाले और बन्तिकादि के पाँचो भवनो को बतलाने हैं । चतुर्षास से अधिक दीर्घता होनी है और विम्नार बारह का हुआ करता है । आधे-आधे हाथ की न्यूनता विम्नार से क्रम से पाँचो मे हो जाती है ॥२४, २५॥ राजा के यहा रहने वाल दैदज (ज्योतिषी) — गुरु, बंध, सभास्तार, पुरोहित, इनके भी पाँच-पाँच प्रकार क उलमादि भेद से भवन हुआ करते हैं । इनको बतलाते हैं—चालीस हाथ के विस्तार से युक्त ये होते हैं और चार-चार हाथ क्रम से हीन होते हैं । इन पाँचो मे दीर्घता षड्भाग से अधिक हुआ करती है । अब ब्राह्मणादि चार वर्णों के सामान्य पाँचो गृहो के विषय मे कहते है । ये बत्तीस हाथ के विस्तार से समुत हुआ करते है और क्रम से चार-चार को हीनता हुआ करती है ॥२६, २७, २८॥

आषोडशादितिपर नूतमत्तेवसायिनाम् ।

दशाशेनाष्टभागेन विभागेनाथ पादिकम् ॥२९

अधिकदैर्घ्यमित्याहु ब्राह्मणादेः प्रशस्यते ।

ननापनेन पथ्यापि गृहगारन्तरेण तु ॥३०

नृपवासगृहकाव्य शाण्डागार तर्श्वे च ।

सेनापतेर्गृहस्यापि चातुर्वर्ण्यस्य चान्तरे ॥
 वासाय च गृहं कार्यं राजपूज्येषु सर्वदा ॥३१॥
 अन्तरप्रभवानाञ्च स्व पितु गृहमिष्यते ।
 तथा हस्तशतादद्धं गदित वनवासिनाम् ॥३२॥
 सेनापतेन परस्यापि सप्तत्यासहितेऽन्विते ।
 चतुर्दश हृतेव्यासे शालान्यासः प्रकीर्तित ॥३३॥
 पञ्चत्रिंशान्विते तस्मिन्नलिन्दः समुदाहृतः ।
 तथा षट्त्रिंशद्वस्ता तु समाङ्गुलसमन्विता ॥३४॥
 विप्रस्य महतीशाला न दैर्घ्यं परतोभवेत् ।
 दशाङ्गुलाधिका तद्वन् क्षत्रियस्य न विद्यते ॥३५॥

षोडश से नहर इति पर निश्चय हो अन्तेव क्षत्रियो का भवन होता है । दशाण से—अष्ट भाग से और त्रिभाग से पादिक होता है । ब्राह्मणादि की दीर्घता अधिक प्रक्षम्न होती है—ऐसा कहते हैं । सेनापति और नृप के भी गृहो मे अन्तर होता है ॥३१, ३०॥ नृप के निवास का गृह तथा भण्डागार दोनों का निर्माण करना चाहिए । सेनापति का गृह और चारों वर्णों वालों का गृह अन्तर मे ही होना आवश्यक है । निवास के सर्वश राज पूज्यों से गृहा करना चाहिए ॥३१॥ त्रिनका अन्तर मे प्रभव हो उनको अपने पिता का ही गृह अभीष्ट होना चाहिए । वनवासियों का गृह ती हाथ का आधा भाग बड़ा गया है ॥३२॥ सेनापति का भी जो कि राजा का होना है, सप्तान (सत्तर) के सहित एक अन्वित तथा चतुर्दश्यास के हुन होना पर शाला का कीर्तित किया गया है । उमक पञ्च त्रिंशान्वित होने पर षट् आन्वित कहा गया है । तथा छत्तीस हाथ वाली और मान शगुलो मे समन्वित विप्र की महती शाला होती है पर मे उमको दैर्घ्यता नहीं होनी चाहिए । उसी भाँति दश शगुल से अधिक क्षत्रिय की नदी होती है ॥३३, ३४, ३५॥

पञ्चत्रिंशत्करावैश्ये अङ्गुलानि त्रयोदश ।
 तावत्करं च शूद्रस्य युतापञ्च दशाङ्गुलैः ॥३६॥
 शालायास्तु त्रिभागेन यस्याग्रे वीथिका भवेत् ।
 सोष्णीपं नाम तद्वास्तु पश्चाच्छ्रेयोच्छ्रयं भवेत् ॥३७॥
 पाषवंयोर्वीथिका यत्र सावष्टम्भन्तदुच्यते ।
 समन्ताद्वीथिकायत्र सुस्थितं तदिहोच्यते ॥३८॥
 शुभदसर्वमेतस्याश्चातुर्वर्णं चतुर्विधम् ।
 विस्तरात् षोडशो भागस्तथाहस्तचतुष्टयम् ॥३९॥
 प्रथमो भूमिकोच्छ्राय उपरिष्ठात्प्रहीतते ।
 द्वादशांशेन सर्वासु भूमिकासु तथोच्छ्रयः ॥४०॥
 पञ्चोष्णकामवेद्भित्तिः षोडशांशेन विस्तरात् ।
 दारवैरपिकल्पास्यात्तथा मृन्मयभित्तिका ॥४१॥
 गभंमानेन मानन्तु सर्ववास्तुषु शस्यते ।
 गृह्ण्यासस्य पञ्चाशदष्टादशभिरङ्गुलैः ॥४२॥
 सधृतो द्वारविष्कम्भो द्विगुणश्चोच्छ्रया भवेत् ।
 द्वारशाखा सुवाहस्यमुच्छ्राय करसाम्मतैः ॥४३॥
 अङ्गुला सद्वारस्तूना पृथुत्व शस्यते बुधैः ।
 उदुम्बरोत्तमागञ्च तदर्धघ्नं प्रविस्तरात् ॥४४॥

वैश्य की शान्ना पञ्चास कर विस्तृत तथा त्रयोदश अंगुल होनी चाहिए । उनमें ही हाथों के विस्तार से युक्त पन्द्रह-अंगुल सहित शूद्र की शान्ना होनी चाहिए ॥३६॥ शाला के त्रिभाग में जिसके आगे एक वीथिका या होना आवश्यक है । जिसका पीछा उच्छ्रय वाला हो वह श्रेय और सोष्णीप नाम वाला वास्तु होता है । जिसके पाषवों में वीथिका ही उसका नाम सावष्टम्भ कहा जाता है । जिसके सब ओर वीथिका ही उसका नाम यत्र स्थित कहा जाता करना है । चातुर्वर्णों में यह चारों प्रकार की नव शुभ देने वाला होता है । विस्तार से यह पाञ्च भाग

होना है तथा चार हाथ हुआ करता है ॥३७, ३८, ३९॥ प्रथम भूमिको-
च्छ्राय ऊपर से हीन होता है । द्वादश अंश से सब भूमिकाओं में उसी
प्रकार का उच्छ्राय होता है ॥४०॥ पंद्रह अंश से विस्तार युक्त पकी हुई
ईंटों की भित्ति होनी चाहिए । दारक अर्थात् काण्डों में भी निर्मित होवे या
मृगमय भित्ति होवे ॥४१॥ गर्भमास में मान सब वास्तुओं में पशुस्त होता
है । उस गृह मान बनाए और आटादण्ड अगुलों में मंचुत द्वार विष्कम्भ
होता है और त्रिगुण उच्छ्राय होता है । द्वादशांश सुवाहुत्वे वर सम्मित
में उच्छ्राय होता है । सब वास्तुओं का अगुना से पृथक्त्व बुधों के द्वारा
प्रशान्त माना जाता है । उद्वृत्तरीतम और ज्ञान उसके अर्ध का अर्ध
विस्तार में होता है ॥४२-४४॥

११८-स्तम्भमान निर्णय वर्णन

अथात् सप्रवक्ष्यामि स्तम्भमान विनिर्णयम् ।
वृत्तवास्वभुवनोच्छ्राय सदामप्रगणबुधैः ॥१॥
अर्शात्थश पृथुत्व स्याद्रेणावगुणं सह ।
रुचकश्चत्तरः स्यात् अष्टास्या वज्र उच्यते ॥२॥
द्विवया पौडशास्त्रस्त्वात्रिंशाम् प्रलीनकः ।
मध्यप्रदेशे यस्तम्भो वृत्तोवृत्तइति स्मृतः ॥३॥
एतेष्वेव महास्तम्भाः प्रशस्ताः सर्ववस्तुषु ।
पञ्चवलीनताबुम्भपल्लदपेणदपिताः ॥४॥
स्तम्भस्य नवभागेन पञ्चकुम्भान्तगणितु ।
स्तम्भतुल्या तला प्रोक्ता हीना चोपतुला ततः ॥५॥
त्रिभागेनेह सर्वत्र चतुर्भागेन वा पूतः ।
हीन हीन चतुर्थांशात् तथा सर्वासु भूमिषु ॥६॥

वासगेहानि सर्वेषां प्रवेशो दक्षिणेन तु ।

द्वाराणि तु प्रवक्ष्यामि प्रशस्तानीह यानि तु ॥७

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर अब मैं स्तम्भों के मान का विशेष निर्णय किया जाना है । अपने भुवन का उच्छ्राय करके बुधो के द्वारा सद सप्त गुण होता चाहिए ॥१॥ अस्सी अश स्तम्भ का पृथुत्व होना चाहिए । अग्रभाग से अवगुणो के साथ चार वाला रुचक होता है । आठ अशो वाला वज्र—इस नाम से कहा जाया करता है । षोडश अश वाला द्विवज्र और बत्तीस से संयुक्त प्रलीनक कहा जाता है मध्य भाग में जो स्तम्भ हुआ करता है उसको वृत्तोवृत्त इस नाम से पुकारा जाया करता है ॥२, ३॥ इस तरह से रुचक—वज्र—द्विवज्र—प्रलीनक और वृत्तोवृत्त ये पाँच महान् स्तम्भ सर्व वास्तुओं में परम प्रशस्त कहे जाते हैं । पद्मवत् लीलता कुम्भ पत्र दर्पण से रूपित हुआ करते हैं । ॥४॥ स्तम्भ का नक्षत्र अश जो हा रगी से पद्म कुम्भ के अन्तर होने हैं । स्तम्भ के तुल्य ही तुला कही गयी है और जो हीन होती है वह उप-तना होती है ॥५॥ यहाँ पर सभी जगह त्रिभाग से अथवा चतुर्भाग से उसी भाँति सर्व भूमियो में चतुर्थ अश से हीन—हीन होती है । सबके निवास करने योग्य गेहो में दक्षिण भाग से प्रवेश करने में जो द्वार हुआ करत है जो कि परम प्रशस्त होते हैं उन्ही के त्रिपथ में अब मैं वर्णन करता हूँ ॥६, ७॥

पूर्वणेन्द्र जयन्तञ्चद्वार सर्वत्रशस्यते ।

याम्यञ्च वितथञ्चैव दक्षिणेन विदुर्बुधाः ॥८

पश्चिमे पुण्ड्रन्त च वासुणञ्च प्रशस्यते ।

उत्तरेण तु भल्लाट सोम्य त् शुभदम्भवेत् ॥९

तथावास्तुपु सर्वत्र वेष्टा द्वारस्य वजयेत् ।

द्वारे तु रथापारिद्धे भवेत् सवकुलक्षयः ॥ ०

तस्मिन् द्वेषवाहुत्य शोकः पङ्कत जायते ।

अपस्मारो भवेन्नूनं कूपवेधेन सर्वदा ॥११
व्यथाप्रस्रवणेन स्यात्कीलेनाग्नि भयं भवेत् ।
विनाशो देवताविद्धे स्तम्भेन स्त्रीकृत भवेत् ॥१२
गृहभर्तुर्विनाशः स्यात् गृहेण च गृहे कृते ।
अमेघ्यावस्करो विद्धे गृहिणी बन्धको भवेत् ॥१३
तथा शस्त्रमय विन्ध्यादन्त्यजस्य गृहेण तु ।
उच्छ्रया द्विगुणा भूमि त्यक्त्वा वेधो न जायते ॥१४

पूर्व दिशा में होने वाले इन्द्र और जयन्त द्वार सर्वत्र बहुत ही प्रशस्त होते हैं । युष् लोम जो दक्षिण भाग में द्वार होता है उसे याम्य और वितथ कहा करते हैं ॥८॥ पश्चिम दिशा में होने वाले द्वार को पुष्प दन्त और वाष्ण कहा जाता है जो कि प्रशस्त होता है । उत्तर में होने वाला द्वार भस्नाट और सौम्य कहलाता है यह भी युष् के प्रदान करने वाला होता है ॥९॥ उसी प्रकार में सभी जाह पर द्वार का वेध वर्जित होना चाहिए । रघ्या में जो विद्ध द्वार होता है उसमें तो सम्पूर्ण कुल का क्षय हो जाया करना है अर्थात् ऐसा द्वार तो कभी भी कराना ही नहीं चाहिए ॥१०॥ तरुण से वेध का बाहुल्य होता है और पद्ध से शोक हुआ करता है । सर्वदा कूप वेध में निश्चय रूप से अपस्मार हुआ करता है । ॥११॥ प्रस्रवण से व्यथा होती है और कील से अग्नि का मय हुआ करता है । देवता के विद्ध द्वार में विनाश होता है । स्तम्भ के द्वारा स्त्रीकृत होता है ॥१२॥ गृह के द्वारा गृह के करने पर गृह का जो भर्ता होता है उस गृह के स्वामी का विनाश हो जाया करता करता है । अमेघ्य (अपवित्र) अवस्करों के द्वारा विद्ध द्वार के होने पर गृहिणी बन्धकी हो जाया करती है । किसी अन्त्यज के गृह के द्वारा वेध होने पर शास्त्रमय जानना चाहिए या प्राप्त करे । उच्छ्रय में द्विगुणित भूमि का त्याग करके वेध नहीं हुआ करता है ॥१३, १४॥

स्वयमुत्पादिते द्वारे उन्मादो गृहवासिनाम् ।

स्वयवापिहितेविद्यात् कुलनाशविचक्षणः ॥१५

मानाधिके राजभयं न्यूने तस्करतो भवेत् ।

द्वारोपरि च गद्द्वार तदन्तकमुखं स्मृतम् ॥१६

अध्वनो मध्यदेशे तु अधिको यस्य विस्तरः ।

वञ्चन्तु सङ्कट मध्ये सद्योभतुं विनाशनम् ॥१७

तथान्यपीडित द्वार बहुशोपकरं भवेत् ।

मूलद्वारातथान्यत् नाधिक शोभन भवेत् ॥१८

कुम्भश्रीपणिबल्लीभि मूलद्वारन्तु शोभयेत् ।

पूजयेच्चापि तन्नित्य वलिनाचाक्षतोदकः ॥१९

भवनस्य वटः पूर्वे दिग्भागे सर्वकामिकः ।

उदुम्बरस्तथा याम्ये वारुण्या पिप्पलः शुभः ॥२०

स्वय द्वार के उत्पादिन होने पर जो गृह में निवास करने वाले होते हैं उनको उन्माद हो आया करता है । अथवा स्वय ही पिहित करने पर विचक्षण पुरुष को अपने कुल का नाश समझ लेना चाहिए ॥१५॥ यदि द्वार जो भी उमका मान स्वीकृत किया गया है उससे अधिक हो तो राज से होने वाला भय होना है और यदि अभीष्टित मान से न्यून हो तो तस्करों में भय रहा करता है । द्वार के ऊपर जो द्वार होता है उसको अन्तक मुख नाम वाला कहा गया है ॥१६॥ मध्य देश में जिसका अधिक विस्तार हो वह अध्वन कहलाता है । मध्य में सङ्कट वञ्च होता है और वह तुरंत ही स्वामी का विनाश करने वाला हुआ करता है । तथा अन्य से पीडित द्वार बहुत-से दोषों के करने वाला होता है । जो मूल द्वार होता है उससे अन्य द्वार अधिक शोभन नहीं हुआ करता ॥१७, १८॥ कुम्भ, श्रीपणि और वल्लियों के द्वारा मूल-द्वार को शोभित करना चाहिए । उस द्वार की निरत्य ही पूजा करे तथा अक्षतोदक से अर्चन एवं बलिदान करना चाहिए । भवन के पूर्व दिशा के भाग में सब कामनाओं के पूर्ण करने वाले वट वृक्ष का समारोपण करना चाहिए—दक्षिण दिशा

के भाग में उदुम्बर (गूलर) का वृक्ष और बाहणी दिशा में परम शुभ
पीपल का वृक्ष समारोपित करना चाहिए ॥१२८, २०॥

प्लक्षश्चोत्तरतोश्चन्यो विपरीतास्त्वसिन्धुये ।

कण्टकीक्षीरवृक्षश्च आसनः सफलो द्रुमः ॥२१

भार्थाहानो प्रजाहानो भवेतां क्रमशस्तदा ।

न चिह्नन्त्यात् यदि तानन्यानन्तरे स्यात्स्येच्छुभान् ॥२२

पुन्नागशोकवक्रुलशमीतिलकचम्पकान् ।

दाडिमोपिप्पलीद्राक्षा तथा कुसुममण्डपान् ॥२३

जम्बीरपूगपनसद्रमकेतकीभिर्जातीसरोजगतपर्षिकमहिलकार्पाभः ।

यन्नालिकेरकदलीदलपाटभियुक्त तद्वच भवन् श्रियमातनोति ॥२४

भवन के उत्तर दिग्भाग में प्लक्ष (पाखर) के वृक्ष का समारोपण
करे । इस तरह से गृह को इन चारों दिशाओं में उपयुक्त चार प्रकार के
वृक्षों का समारोपण सिद्धिदायक हुआ करता है । इनके विपरीत आरो-
पण से अतिद्धि होती है । काटिदार क्षीर देने वाला वृक्ष और आसन सफल
द्रुम हीन है । उस समय में क्रम में भार्धा की हानि और प्रजा की हानि
हुआ करती है । यदि उनको दूमरों के अन्तर में शुभ वृक्षों को स्थापित
करे तो फिर इनका क्षेपण कभी भी नहीं करता चाहिए ॥२१, २२॥

पुन्नाग-मसोक-वक्रुल-शमी-तिलक-चम्पक-दाडिम-पिप्पली-द्राक्षा-
कुसुम मण्डप-जम्बीर-पूग-पनसद्रुम-केतकी-जाती-सरोज-
गत पनक-मलिनका-नालिकेर-कदली दल-पाटल इन समस्त वृक्षों
के समारोहण से सम्भवित होता है वह श्री का विस्तार किया करता
॥२३, २४॥

११६-भवन निर्माण वर्णन

उदगादिप्लव वास्तु ममानशिखरंतथा ।
 परीक्ष्य पूर्ववत्कुट्यात्स्तम्भोच्छ्रायंविचक्षणः ॥१॥
 न देवधूत सचिवचत्वराणा समन्ततः ।
 कारयेद्भूवन प्राज्ञो दुःखशोकभय ततः ॥२॥
 तस्य प्रदेशाश्चत्वारस्तथोत्सर्गोऽग्रतः शुभः ।
 पृष्ठत पृष्ठभागस्तु सव्यावत् प्रशस्यते ॥३॥
 अपसव्यो विनाशाय दक्षिणे शीर्षकस्तथा ।
 सर्वकामफलोन्नां सम्पूर्णो नाम वामतः ॥४॥
 एवं प्रदेशमालोक्य यत्नेन गृहमारभेत् ।
 अथ सांवत्सरेप्रोक्ते मुहूर्ते शुभलक्षणे ॥५॥
 रत्नोपरि शिला कृत्वा सर्वबीजसमन्विताम् ।
 चतुर्भिर्ब्राह्मणं स्तम्भ कारयित्वा सुपूजितम् ॥६॥
 शुक्लाम्बरधरः शिल्पिसहितो वेदपारगः ।
 स्नापित विन्यमेत्तद्वत्सर्वोपधिसर्मान्वितम् ॥७॥
 नाताक्षतसर्मापेत वस्त्रालङ्कारसयुतम् ।
 ब्रह्मघोषेण वाद्यन गीतमङ्गलनिः स्वनः ॥८॥

महर्षिवर श्री सूतजी ने कहा—विचक्षण पुरुष को चाहिए कि उदगादि प्लव तथा समान शिखर वाले वास्तु की परीक्षा करके पूर्व की भाँति स्तम्भों की ऊँचाई करनी चाहिए ॥ १ ॥ प्राज्ञ पुरुष का कर्तव्य है कि अपने भवन के चारों ओर देव—धूर्त—सचिव और चत्वरों का भवन नहीं बनवाना चाहिए क्योंकि इससे फिर दुःख और शोक तथा भय होता है ॥ २ ॥ उसके चार प्रदेश होते हैं तथा आगे की ओर उत्सर्ग परम शुभ हुआ करता है । पीछे की ओर उसका पृष्ठ भाग सव्यावर्त प्रशस्त होता है ॥ ३ ॥ जो अपसव्य होता है वह विनाश के लिये ही हुआ

करता है। दक्षिण में शीर्षक मनुष्यों के सब कामनाओं के फल वाला हुआ करता है और वाम भाग में सम्पूर्ण होता है। इस प्रकार प्रदेश का समालोकन करके ही घ-नपूर्वक गृह के निर्माण का आरम्भ करना चाहिए और वह भी साम्बत्सर प्रोक्त किसी शुभ लक्षणा वाले मृहूर्त में करे ॥ ४ ॥ ५ ॥ समस्त बीजों से समुत्त शिला को रत्नों के ऊपर करके चार ब्राह्मणों के द्वारा भवीभौति अर्चित स्तम्भ का निर्माण करावे ॥ ६ ॥ वेदों के पारगापी विद्वान् ब्राह्मणों के द्वारा शिल्पियों के सहित शुल्क अम्बरो के धारों को स्थापित करके विन्यस्त करना चाहिए। उन्हीं के समान सर्वोपधियों से समन्वित - नाना अक्षतों से समुपेत - वस्त्र एव आभूषणों से युक्त [करके ही विन्यास करना चाहिए। ब्रह्मघोष (वेदध्वनि) वाद्य और गीत एव माङ्गलिक ध्वनियों के द्वारा विन्यस्त करे।

॥ ७, ८ ॥

पायस भोजयेद्विप्रान् होमन्तु मधुसविषा ।
 वास्तोष्पतिप्रतिजानीहि मन्त्रेणानेन सर्वदा ॥६
 सूत्रपाते तथा काय्यमेव स्तम्भोदये पुनः ।
 द्वारवशो-च्छये तद्वत्प्रवेशसमये तथा ॥१०
 वास्तूपशमने तद्वद्वास्तुयज्ञस्तु पञ्चधा ।
 ईशाने सूत्रपातः स्यादाग्नेयेस्तम्भरोपणम् ॥११
 प्रदक्षिणञ्च कुर्वीत वास्तोः पदविलेखनम् ।
 तर्जनी मध्यमा चैव तथाङ्गुष्ठस्तु दक्षिणे ॥ १२
 प्रवालरत्नकनकफल पिष्ट्वा कृतोदकम् ।
 सर्ववास्तुविभागेषु शस्तं पदविलेदने ॥१३
 न भस्माङ्गारकाष्ठेन नखशस्त्रेण चर्मभिः ।
 न शृङ्गास्थिकपालंदच ववचिद्वास्तु विलेपयेत् ॥१४

फिर विप्रों को पायस का भोजन करावे और मधु और घृत के द्वारा होम करे। सर्वदा वास्तोष्पति से इन मन्त्र के द्वारा प्रतिज्ञा करे।

उस प्रकार से सूत्रपात में करे और पुनः स्तम्भोदय के समय में भी करना चाहिए । द्वार वश के उच्छ्रय में तथा उसी भाँति से प्रवेश के समय में करना चाहिये । उसी तरह से वास्तु के उपशमन के अक्षर पर उसी तरह से वास्तु यज्ञ पाँच प्रकार का होता है । ईशान में सूत्रपात होता है—आग्नेय में स्तम्भ का रोपण होता है और वास्तु के पदविलेखन का प्रदर्शक करना चाहिए । तर्जनी, मध्यमा तथा दक्षिण में अंगुष्ठ रखे । प्रवाल, रत्न, वनक फल (घट्टरे का फल) को जल के साथ पीस कर सम्पूर्ण वास्तु के विभागों में पदविलेखन करे । पद विलेखन करने में यह परम प्रशस्त कहा गया है । वास्तु का विलेखन कहीं पर भी भस्म-अङ्गार और काष्ठ से भी नहीं करे तथा सींग, अस्थि और कपालों के द्वारा भी पद विलेखन नहीं करे ॥६-१४॥

एभिविलिखित कुय्यदिदुः खशोकभयादिकम् ।
यदा गृहप्रवेशः स्याच्छिल्पी तत्रापि लक्षयेत् ॥१५
स्तम्भसूत्रादिकं तद्वच्छ्माशुभफलप्रदम् ।
आदित्याभिमुखं रीतिं शकुनिः पुरुष यदि ॥१६
तुल्यकालं स्पृशेदङ्गं गृहभतुर्यदात्मनः ।
वास्त्वङ्गे तद्विजानीयान्तशल्य भयप्रदम् ॥१७
अङ्कनान्तरं यत्र हस्त्यश्वश्वापद भवेत् ।
तदङ्गसम्भव विन्द्यात्तत्र शल्य विचक्षणः ॥१८
प्रसायमाणे सूत्रे तु श्वागोमायुर्विलङ्घिते ।
तत्तु शल्य विजानीयात् खरशब्देति भैरवे ॥१९
यदीशाने तु दिग्भागे मधुरं रीतिं वायसः ।
घनं तत्र विजनीयाद्भागे वास्वाम्यधिष्ठिते ॥२०
सूत्रच्छेभवेन्मृग्याधिः कीले त्वधोमुसे ।
अङ्गारेपुतधोन्मादं कपालेषु च सम्भ्रमम् ॥२१

यदि उपर्युक्त साधनों में से किसी भी एक के द्वारा पदविलोचन किया जाता है तो इसका परिणाम बुरा हुआ करता है । और दुःख—शोक और भय आदि हुआ करते हैं । जिस समय में गृह प्रवेश होवे वहाँ पर भी शिल्पी को लक्षित करना चाहिये ॥ १५ ॥ स्तम्भ सूत्रादिक भी उसी भाँति शुभ और अनुभ फल के प्रदान करने वाले होते हैं । यदि सकुनि सूर्य के सम्मुख पुरुष के प्रति ध्वनि करता है और तुल्यकाल ही में गृह के स्वामी के अङ्ग का स्पर्श करता है और अपने अङ्ग को छूता है तो उसको भय प्रदान करने वाला नरकस्थ जान लेना चाहिए ॥ १६, १७ ॥ अङ्गन क अनन्तर जिसमें हर्मी—अश्व और श्वापद होवे तो उसको वहाँ पर विचक्षण पुरुष अङ्ग में होने वाला शल्य समझ लेवे ॥ १८ ॥ भुज के फैलाये जाने पर वह ध्वान और गानाय के द्वारा विनाशित हो जावे तो उसको भी शल्य ही जान लेना चाहिए तथा भेरेव में खर शब्द हो उसको भी शल्य समझ लेवे ॥ १९ ॥ जो ईशान कोण के दिग्भाग में वायव्य (कोश) मधुर ध्वनि करता हो तो वहाँ पर उस भाग में धन का होना समझ लेना चाहिए अथवा स्वामी के द्वारा अधिष्ठित भाग में धन जानना ॥ २० ॥ सूत्र का जो हि प्रमादित क्रिय गया है किसी भी तरह से छेदन हो जावे तो मृत्यु जान लेवे तथा कील के नीचे की ओर मुग्र वाली हो जाने पर व्याधि होने का जान कर लेवे । अङ्गारों के होन पर उन्माद और कपालों के हो जाने पर मध्मम होना समझ लेना चाहिए ॥ २१ ॥

कम्बुशल्येषु जानायात् पौश्वन्थं श्रोतु वास्तुवित् ।
 गृहभतु गृह्मर्षाणि विनाशः शिाल्पसम्भ्रमे ॥२२
 स्तम्भे स्तम्भे न्यते कुम्भे शिरोभाग विनिदिशेत् ।
 कुम्भापहारे मवस्य कुलम्यापि क्षयो भवत् ॥२३
 मृत्युः स्थान-युनेकुम्भे भग्नश्च विदुषुधाः ।
 करद्वारविनाश तु नाशगृहपतीवदुः ॥२४

वि जीपधिविहीनेतुभूतेभ्योभयमादिशेत् ।

ततः प्रदक्षिणेनान्यान्यकेत्स्तम्भान्विचक्षणः ॥२५

यस्माद्भयकरं नृणां योजिताह्यप्रदक्षिणम् ।

रक्षाकुर्वीत यत्नेन स्तम्भोपद्रवनाशिनीम् ॥२६

तथा फलवती शाखां स्तम्भोपरि निवेशयेत् ।

प्रागुदक्प्रवण कुर्व्याद्दिङ्मूढन्तु न कारयेत् ॥२७

स्तम्भ वा भवनंवापिद्वार वासगृह तथा ।

दिङ्मूढे कुलनाश स्यान्नच संवर्द्धयेद् गृहम् ॥२८

कम्बुणाल्यो मे वास्तु के क्षेत्रा की स्त्रियो के विषय मे पौश्रत्य का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये । मिल्पी के सम्भ्रम हो जाने पर गृह के स्वामी का और गृह का भी विनाश हो जाता है । स्तम्भ मे कुम्भ क स्वन्ध से च्युत हो जाने पर शिरोरोग वा होना जान लेवे । कुम्भ का याद अपहरण ही हो जावे तो समझ लेना चाहिए कि सम्पूर्ण ही कुल का धय हो जायेगा ॥ २२, २३ ॥ कुम्भ के निटिष्ट स्थान से च्युत हो जाने पर मृत्यु की सूचना होती है—ऐसा जान लेवे । यदि कुम्भ का भग हो जावे तो बुध रोग उसको बन्धन वा सूचक बतलाया करते है । कर्ग की सध्या के विनाश हो जाने पर गृहपत का नाश कहा करते हैं । बीजो और औषधियो के विहीन होने पर भूतो से भय प्राप्त होने की सूचना हुआ करता है । इसीलिये विचक्षण पुरुष का कर्त्तव्य है कि उसे प्रदक्षिण मे अन्य स्तम्भो वा न्यास करे । जिससे मनुष्यो को भय करने वाला कुष्ठ हो उसे अप्रदक्षिण मे योजित करे और स्तम्भो को होने वाले जो उपद्रव होवे उनके विनाश करने वाली को प्रबल प्रयत्नो के साथ रक्षा करनी चाहिए ॥ २४, २५, २६ ॥ उभी प्रकार से फलो से युक्त एर शाखा को स्तम्भ के ऊपर निवेशित कर देना चाहिए । उसे पूर्व और उत्तर की ओर मुण्य वाली हो । निवेशित करनी चाहिए तथा दिक् समूह उसे नही कराना चाहिए ॥ २७ । स्तम्भ हो या भवन हो तथा

द्वार ही धधवा निवास करने का गृह ही इसमें दिङ्, मूढ़ता कभी भूल कर भी नहीं करे क्योंकि दिङ्, मूढ़ होने पर कुल का नाम ही हो जाया करता है और गृह को फिर वह कभी भी संवर्द्धित नहीं किया करता है ॥ २८ ॥

यदिसवद्धं यैद्गोहं सर्वदिक्षु विवद्धं येत् ।
 पूर्वेण वद्धित वास्तु कुर्याद्वैराणि सर्वदा ॥२६
 दक्षिणे वद्धित वास्तु मृत्यवे स्यान्न सगयः ।
 पश्चाद्विवृद्ध यद्वास्तु तदर्षक्षयकारक ॥ २७
 वर्द्धापित तथा सौम्ये बहुसन्तापकारकम् ।
 आग्नेये यत्र वृद्धिः स्यात् तदग्निभयद भवेत् ॥३१
 वद्धित राक्षसकोणे शिशुन्मयकर भवेत् ।
 वद्धवापि तन्तु वायव्ये वातव्याधिप्रकोपकृत् ॥३२
 ईशान्या अन्नहानिः स्यात् वास्तोसवद्धिं तेसदा ।
 ईशानेदेवतागार तथा शान्तिगृहभवेत् ॥३३
 महानमन्तयाग्नेये तत्पाश्वेचाक्षरंजलम् ।
 गृहस्योपस्कर सर्वं नैऋत्येऽथवापयेद्बुधः ॥३४
 वधस्थान वहि कुर्यात् स्नानमण्डपमेव च ।
 धनधान्यञ्च वायव्ये कर्मशालान्ततो वहि ॥
 एव वास्तु विशेषः स्यात् गृहभर्तुः शुभानहः ॥३५

यदि गृह को संवर्द्धित करे तो सभी दिशाओं में उसे विवर्द्धित करना चाहिए । पूर्व दिशा में यदि वास्तु वद्धित होवे तो सर्वदा वैरी को किया करता है ॥ २६ ॥ दक्षिण दिशा में वास्तु का वर्द्धन होवे तो वह निम्नन्देह मृत्यु के ही लिये हुआ करता है । पीछे अर्थात् पश्चिम की ओर वास्तु विवर्द्धित होवे तो वह अर्थ व क्षय करने वाला होता है । सौम्य दिशा में वद्धित वास्तु बहुत अधिक सन्ताप का कारक हुआ करता है । जहाँ पर आग्नेय बाण में इसका वृद्धि होती है तो वह अग्नि से

होने वाले भय को प्रदान करने वाला हुआ करता है । राक्षस कोण में वृद्धित वास्तु शिशुओं के क्षय का करने वाला हुआ करता है । वायव्य कोण की दिशा में तस्तु को बद्ध करके भी वातजन्य व्याधि के प्रकोप को करने वाला हुआ करता है । ईशान दिशा में अन्न को हानि सदा होती है जब कि उस ओर वास्तु सवृद्धित होता है । ईशान में देवता का आभार तथा शान्ति गृह होना चाहिये ॥ ३०, ३१, ३२, ३३ ॥ आग्नेय कोण में महानस (रसोई घर) और उसके पार्श्व में उत्तर दिशा में जल के रहने का स्थान और बुध पुरुष को नैऋत्य कोण में गृह के सभी उगकर स्थापित करने चाहिए अर्थात् भण्डार गृह बनाना चाहिए । बाहिरी भाग में बध का स्थान बनाना चाहिए तथा स्नान मण्डप भी बाह्य ही बनाना चाहिये । वायव्य कोण में धन-धान्य का स्थान बनावे और इससे आगे बाह्य कमण्डाला का निर्माण कराना उचित है । इस प्रकार से विशेष रूप वाला वास्तु गृह के स्वामी के लिए परम शुभ के प्रदान करने वाला हुआ करता है ॥ ३४, ३५ ॥

१२०-दावाहरण वर्णन

अथातः संप्रवक्ष्यामि दावाहरणमुत्तमम् ।
 धनिष्ठापञ्चके भुवत्त्वा विष्ट्यादिवमतः परम् ॥१
 तत सावत्सरादिष्टे दिने यायाद्वन बुधः ।
 प्रथम वलिपूजाञ्च कुर्याद्दृक्षस्य सवदा ॥२
 पूर्वोत्तरेण पतितं गृहदाम् प्रणश्यते ।
 अन्यथा न शुभ विन्द्यात् याम्योपरि निपातनम् ॥३
 क्षीण्यक्षोद्भव दारु न गृहे विनिवेशयेत् ।
 घृताघिवास वि० गर्गनागानरापीडितम् ॥ ४

गजावश्रमञ्च तथा विद्युन्निघातपीडितम् ।
 अहं शुष्क तथा दानुभस्मशुष्क-तर्पणम् ॥५॥
 चैत्यदेवालयोत्पत्तौ नदीसङ्गगजन्तथा ।
 इमं शान्तकूपतिलय तटागादिसमुद्भवम् ॥६॥
 वर्जयेत्सवथादाश्रयदीच्छेद्विपुलाश्रयम् ।
 तथा कष्टकिनोद्युक्तान् नीपनिम्बविभीतकान् ॥७॥
 श्लेष्मातकानाम्नासन् वर्जयेद् गृहकमणि ।
 असनाशोरुमधुवामर्जशानाः शुभावहा ॥८॥
 चन्दन पतसन्धय मुरदारहरिद्रवः ।
 द्वाभ्यामेकन वा कुर्यात् त्रिभिर्वाभवत जनम् ॥९॥

महा महर्षि श्री गुरुजी ने कहा — इसके अन्तर्गत उत्तम दार्दीहरण के विषय में कहता हूँ । घनिष्ठ्यादि पानि नक्षत्रों को छोड़कर और इसके साथ शिष्ट्यादि (मन्त्र) को त्याग करके यम पुरुष को सम्बन्ध-सार में इष्ट दिन में वन में गमन करना चाहिए । यवया प्रथम वृक्ष की जान पूजा करनी चाहिए ॥१॥ नदी पूर्वोत्तर दिशा में पतित गुरु का दाह (घाट) प्रशस्त होता है । अथवा याम्य दिशा में ऊपर दिशातन शुभ का लाभ नहीं किया करता है । और वृक्ष में समुन्मत्त हानि वाला काष्ठ सभी भी वृक्ष में अतिवर्जित न करावे । पक्षियों के द्वारा श्रद्धावस विद्या हुआ — अग्नि और अतल में पीडित — गज में अश्रमञ्च — विद्युत् के निघात से पीडित — अहं शुष्क — दानु भस्म होने में शुष्क — चैत्य और देवालय में समुन्मत्त — नाश्या व सङ्गम में । वजन वाला — श्लेष्मान शर वृक्ष के तिलय वाला — तटाग आदि में समुन्मत्त हानि वाला ऐस काष्ठ का सर्वथा वर्जित कर देना चाहिए । यदि विपुल धन के प्राप्ति करने की इच्छा हृदय में होये । यदि वृक्षी वृक्षा को — नाप, निम्ब विभत्तनी का श्लेष्मानवा को, आश्र तदसो को गुरु के नियोग व कम में वर्जित करना चाहिए । अतन-अशोर-मधुव और सज्जाल ये सब शुभाचष्ट होत है । चन्दन-

पनम परम धन्य हैं। सुरदारु और हरिद्रव इन दोनों में से एक के द्वारा अथवा तीनों के द्वारा शुभ भवन का निर्माण करना चाहिए।

॥ ३-६ ॥

बहुभिः कारित यस्मादनेकभयदं भवेत् ।
एकैव शिशपा धन्या श्रीपर्णी तिन्दुकीतथा ॥१०

एता नान्यसमायुक्ताः कदाचिच्छुभकारकाः ।

स्यन्दनः पनसस्तद्वत्सरलाजुंनपद्मकाः ॥११

एते नान्यसमायुक्ता वास्तुकार्यफलप्रदाः ।

तरुच्छेदे महापीतेगोधा विन्द्याद्विचक्षणः ॥१२

माञ्जिष्ठवर्णे भेक स्यान्नीले सर्पादि निदिशेत् ।

अरुणे सगृठ विद्यान्मुक्ताभे शुक्रमादिशेत् ॥१३

कपिले मूपकान्विद्यात् खड्गाभे जलमादिशेत् ।

एवविध सगर्भन्तु वज्रयेद्वास्तु कर्मणि ॥१४

यद्येक बहूतो के द्वारा जो कराया जाता है वह अनेक भयों के प्रदान करने वाला होता है। एक ही शिशपा का वृक्ष परम धन्य होता है और श्रीपर्णी तथा तिन्दुकी भी उसी प्रकार से परम धन्य हैं। ये अग्न्य से समायुक्त न होकर किसी समय में शुभ कारक होते हैं। उसी तरह में स्यन्दन—पनस—सरल—अर्जुन और पद्मक भी हैं। ये अग्न्य से समा युक्त न होते हुए वास्तु कार्य के फल के प्रदान करने वाले हैं। विचक्षण पुरुष महापीन तरु के छेदन होने पर गोधा की प्राप्ति करे। माञ्जिष्ठा के वर्ण में भेक होवे तथा नीले में सर्पादि का विनिर्देश करना चाहिए। अरण्य वण में सगृठ को जानना चाहिए। मुक्ता की आभा वाले में शुक्र का समावेश करे ॥१०-१३॥ कपिल वर्ण में मूपको को जानना चाहिए। खड्ग की आभा वाले में जल का समावेश करे। इन प्रकार के सगर्भ को वास्तु कर्म में वज्रित कर देना चाहिए ॥१४॥

पूर्वच्छिन्नन्तु गृहणीयात्तिसित्तशकुनैः शुभं ।
 व्यामेत गुणिते दैर्घ्यजप्टाभिर्विहते तथा ॥१५
 यच्छेपमायतं विद्यादष्टभेद वदामि वः ।
 ध्वजो धूमश्च सिंहश्च वृषभः खर एव च ॥१६
 हस्तीश्चाक्षरश्च पूर्वाद्याः करशेषाभवन्त्वमी ।
 ध्वजः सर्वमुखोऽध्वजः पत्यगृह्णागोविदापत ॥१७
 उदङ्मुखो भवेत्सिंहः प्राङ्मुखो वृषमा भवेत् ।
 दक्षिणाभिमुखो हस्ती सर्पसि समुदाहृत ॥१८
 एकैज ध्वज उद्विष्टश्चिन्तसिंह पशोत्तित ॥
 पश्चिमिर्गृपभ प्राक्तोविशोणस्थाध्ववजयन् ॥१९
 तमेवाष्टगुणकृत्वा करगर्गण विचक्षण ।
 सप्तविंशहतेनागि श्छन्न विद्याद्विचक्षण ॥२०

शुभ तिसित्त शकुनो के द्वारा पूर्व छिन्न का ग्रहण करना चाहिए । व्यास के द्वारा सुश्रुत ज्ञान पर आश्रित न बर्द्धन होने पर दीर्घता होती है । उसने जो शेष है—वह पश्यत जानना चाहिए । मैं आदमी आठ भेद बतलाता हूँ—ध्वज, धम, सिंह, वृषभ, खर, हस्ती और ध्वङ्क में पूर्वाद्या कर शेष होने है । ध्वज सर्वमुख अर्थ होता है और विशेष रूप में पत्यगु द्वार होता है ॥१५, १६, १७॥ उत्तर की ओर पश्यत या सिंह होता है और पूर्व की ओर मुख से युक्त वृषभ होता है । दक्षिण दिशा क अभिमुख होने वाला हस्ती है तथा इसी प्रकार न वह मात्र प्रकार वाला उदाहृत किया गया है ॥१८॥ एक के द्वारा ध्वज कर गया है—नील के द्वारा सिंह कीर्तित किया गया है—पशुओं में वृषभ उत्तम हुआ है । जो विशेष में स्थित ज्ञान हैं वे सब ब्रह्मिण मान गये हैं अतः उनकी विधि मानना चाहिए । विचक्षण शुभ का चाहिए उता कर गर्गण को अटगुना करने अर्थात् आठ से गुना करने मतलब से भरण समझन करे और उमी श्छन्न (सः३३) का ज्ञान लभ्य चाहिए ॥२०, -२५॥

अष्टभिर्भाजितेऽक्षेयः शेषः सद्यस्यो मतः ।
 व्यायाधिकं न कुर्वीत यतोदोषकरम्भवेत् ॥
 आयाधिके भेदेच्छान्तिरित्याह भगवान् हरिः ॥२१
 कृत्वाप्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुम्भ ,
 दध्यक्षताम्रदलपुष्पफलोपशोभम् ।
 कृत्वा हिरण्यवसनानि तदा द्विजेभ्यो ,
 मङ्गल्यशान्तिनिलयाय गृह्विवोत्तु ॥२२
 गृह्णात्तहोमाविधिना बलिकर्मं कुर्यात्-
 प्रासादवास्तुशमने च विधियंउक्त ।
 सन्तर्पयेद्द्विजवरानथ भक्ष्यभोज्यैः ,
 शुक्लाम्बरः स्वभवन प्रविशेत्सधूपम् ॥२३

अठ से भाजित करने पर जो नष्ट हो जाता है वह समय
 माना गया है । दध्य से अधिक नहीं करना चाहिए क्योंकि वह दोषकर
 होता है । भगवान् श्री हरि ने यही कहा है कि आयाधिक मे शान्ति होती
 है ॥२१॥ इस क अनन्तर द्विज श्रेष्ठो को आगे करके दधि, अदत, आदल,
 पुष्प, फल इनसे उपशोभित पूर्ण कुम्भ को करके द्विज गणो के लिए
 उस समय में सुवर्ण तथा वस्त्रादि देकर मङ्गल्य शान्ति निलय के लिये
 गृह में प्रवेश करना चाहिए । फिर गृह्य मे वर्णित होम क. विधि के
 साथ बलि बर्म करना चाहिए । यही प्रासाद क वास्तु का शयन करने
 मे विधान बतलाया गया है । इसके उपरान्त भक्ष्य भोज्यो के द्वारा
 श्रेष्ठ द्विज गणो को सन्तुष्ट करना चाहिए और स्वयं शुक्ल वस्त्रो को
 धारण करन वाला धूप के दात के सहित अपने भवन मे प्रवेश करे
 ॥२२, २३॥

१२१—प्रतिष्ठा निर्माण वर्णन

क्रियायोग- कथं सिद्धं वेदं गृहस्थादिषु सर्वदा ।

ज्ञानयोगसहस्रादि कर्मयोगो विनिष्यते ॥१

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

प्रतिष्ठायां सुराणां तु देवातामोक्तुकात्मनम् ।

देव्यं श्रोतसबन्ध्यापि ब्रह्मनाद्ये न मुच्यते ॥२

विष्णोन्तावत्प्रनष्टयामि यादृशेष प्रशस्यते ।

शङ्खचक्रशंशान्त पद्महस्तगदाधरम् ॥४

च्छत्राकारशिखरमस्तस्य कम्बुभीव शुभेक्षणम् ।

तुङ्गनासं मुक्तिकर्णं प्रशान्ताठभुजक्रमम् ॥५

ववचिदम्ष्टभुजं त्रिधास्त्रतुभुं जमयापरम् ।

द्विभुजञ्चापि कतव्या भवन्तं पूजयेत् ॥६

देवस्यान्तभुजगाम्यं यथाम्बानं निवाधनम् ।

खड्गोत्तहाशरं पद्मं दिव्यं दर्शयन्तो हरेः ॥७

अपि चन्द ने कहा—गृहस्थ आदि में किये का योग किस प्रकार से सर्वश सिद्ध होता है यह कृपया धननाइये क्योंकि महर्षी ज्ञान योग से कर्म योग विनिष्ट हुआ करता है ॥१॥ महा महर्षि श्री नृत्तजी ने कहा— मैं अब उस किये योग को बतलाता हूँ जिससे देवगण के सर्वना का अनुकीर्तन किया जाता है क्योंकि उससे अग्रे लोको में मुक्ति और मुक्ति का प्रदान करने वाला कोई भी नहीं होता है ॥२॥ सुराणों की प्रतिष्ठायें देवताओं के अम्बुचक्र का अनुकीर्तन और देवमनों का उल्लास भी होता है । जो ऐसे नहीं करते हैं वे वर्धन से मुक्त नहीं होते हैं । आश्वान् विष्णु के विषय में मैं वर्णन करता हूँ जैसा कि उनका रूप प्रशान्त कहा जाया करता है । शंख-चक्र और मदा के धारण करने वाला—परम प्रशान्त

हाथ में पद्म तथा गदा को धारण किए हुए—उनका शिर छत्र के आकार से समुत है—कान्धु के समान शीवा वाला—शुभ नेत्रों से पुरत—तुङ्ग (ऊँची) नासिका से सम्पन्न—सुवित्र के तुल्य कानों वाला—परम प्रसन्न ऊरुयुग और भुजाओं के क्रम से समन्वित—कहीं पर आठ भुजाओं से युक्त और दूसरा चार भुजाओं से युक्त एवं दो भुजाओं से भी सम्पन्न उनका स्वरूप होता है। भक्तों में पुण्योद्दिष्ट के द्वारा ऐसा ही उपयुक्त स्वरूप से समन्वित उनका स्वरूप करना चाहिए। आठ भुजाधारी इस देव को यथा स्थान समर्पण देना चाहिए। पद्म—गदा—द्वार—दिव्य पद्म—ये सब आयुध भगवान् विष्णु के दक्षिण भाग में होने चाहिए ॥ ३-७ ॥

धनुश्च शेटकञ्चैव शङ्खचक्रं च वामतः ।
 चतुर्भुजस्य वक्ष्यामि यथैवायुधसंस्थितिं ॥८
 दक्षिणेन गदापञ्च वामुदेवस्य कारयेत् ।
 वामतः शङ्खचक्रं च वर्तव्ये भूतिमिच्छता ॥९
 कृष्णावतारे तु गदा वामहस्ते प्रशस्यते ।
 यथेच्छया शङ्खचक्रं चोपरिष्ठात् प्रकल्पयेत् ॥१०
 अधस्तात् पृथिवी तस्य कर्तव्या पादमध्यतः ।
 दक्षिणे प्रणत तद्वद् गरुत्मन्तनिवेशयेत् ॥११
 वामतस्तु भवेल्लक्ष्मीः पद्महस्ता शुभानना ।
 गरुत्मानग्रतो वापि सस्थाप्यो भूतिमिच्छता ॥१२
 श्रीश्वपुष्पिश्च कर्तव्ये पाश्वयोः पद्मयुते ।
 तोरणञ्चोपरिष्ठात् विद्याधरसमन्वितम् ॥१३
 देवदुन्दुभिसंयुक्तं गन्धर्वमिथुनान्वितम् ।
 पद्मवल्लोसमोपेतं सिंहध्याघ्नसमन्वितम् ॥१४

धनुष—शेटक—शख—चक्र ये चार आयुध उनके वाम भाग में रहने चाहिए। यह आठ भुजाओं के आयुधों के धारण करने का नाम होता है।

नव चतुर्भुज भगवान् त्रिष्णु के आयुधों को धारण करने के क्रम एवं स्थिति का वर्णन दिया जाता है । भगवान् दामुदेव के दक्षिण भाग में गदा और पद्म इन दो आयुधों को धारण करना चाहिए । बायं भाग में जो प्रति के प्राप्त करने की इच्छा रखता है उस भक्त को चाहिए कि बायं भाग में शस्त्र और चक्र इन दो आयुधों को धारण करना चाहिए । भगवान् के कृष्णवस्त्र में गदा बायें हाथ में ही प्रशस्त्य मानी गयी है । अपनी इच्छा के अनुसार ही ऊपर से शस्त्र तथा चक्र इन दो आयुधों की कल्पना करनी चाहिए । उनके नीचे की ओर पाद के मध्य भाग में पृथिवी की कल्पना करनी चाहिए और दक्षिण भाग में उसी प्रकार से प्रणति करते हुए गरुड का निवेदन करना चाहिए ॥८-११॥ भगवान् के बायं भाग में यद्म हाथों में धारण करने वाली तथा परम गुण भूष वाली लक्ष्मी देवी विराजमान होनी चाहिए । विभूति की इच्छा रखने वाले पुरुष को चाहिए कि भगवान् के भागे मरुद की भी स्थापना करनी चाहिए । दोनों पादों भागों में गद्यों में मयुत श्री और बुष्टि इन दोनों की स्थापना करे । विद्याघर में मयुत ऊपर के भाग में नागण बनाये ॥९२ ॥१३॥ देवों की दुन्दुभि नः वा ॥ वाश म युवन रगावर्षा ॥ जाडे ते मम-
न्वित—प्रचलनी ममोपेत—मिद श्रीर व्याघ्र म युक्त भगवान् को स्थापना
बहु पर करनी चाहिए ॥१४॥

तथाकल्पलतोपेत स्तुवद्भिर्गमरेश्वरैः ।

एवंविधोभवेद्विष्णो स्त्रिभामगेनास्य पीटिकाः ॥१५॥

नवतालप्रमाणान्तु देवदानवकिन्नरा ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि मानोन्मान विशेषतः ॥१६॥

बालान्तरप्रविष्टानां भानूना यद्रजः स्फुटम् ।

प्रसरैणुः सविज्ञेयो बालाग्रन्तीरथाष्टभिः ॥१७॥

तदप्येकेन लिङ्गा तु युक्तलिङ्गाष्टकैर्मता ।

यवो युक्ताष्टक तद्वदप्येकेस्तदगुणम् ॥१८॥

स्वकीयांगुलिमानेन मुखं स्याद्द्वादशांगुलम् ।
 मुखमानेन कर्तव्या सर्वाविवकल्पना ॥१९६
 सोवर्णीराजतीवापि ताम्नी रत्नमयी तथा ।
 शैलीदारुमयीचापि लोहसधमयी तथा ॥२०
 रीतिकाघातुयुक्तावा ताम्रकास्यमयी तथा ।
 शुभदारुमयीवापि देवतार्चा प्रशस्यते ॥२१

कल्पलता से संयुक्त तथा देवगणों के द्वारा स्तुति किये जाने वाले भगवान् विष्णु को स्थापित करे । इन विष्णु की तीन भाग से बहा पर पीठिका होनी चाहिए ॥१५॥ यह पीठिका जो है इसके समीप में नवताल प्रमाण वाले देव 'गन्धर्व' और किन्नर स्थापित करे । अब इसके आगे विशेष रूप से मानो-मान के विषय में वर्णन करता है ॥१६॥ जाल के अन्तर में प्रविष्ट मानु की किरणों के द्वारा जो स्फुट रूप में रज के कण दिखलाई दिया करते हैं उनको तप्त रेणु जानना चाहिए । वे बाल के अग्र भाग के समान होते हैं । उन आठों की एक तिशा होती है । आठ निशाओं की एक युका मानी गयी है । आठ युकाओं का एक यत्र होता है और आठ यत्रों का एक अंगुल हुआ करता है ॥१७, १८॥ अपने अंगुल के मान से द्वादश अंगुली का मुख होता है । इस मुख के मान के द्वारा ही समस्त ध्वजवक्रों की कल्पना करनी चाहिए ॥१९॥ भगवान् की प्रतिमाएँ सुवर्ण से—रजत (चादी) से निर्मित होती हैं तथा ताम्र, और रत्नों के द्वारा निर्मित की हुई हुआ करती हैं । शैली अर्थात् पाषाण से—दारुमयी अर्थात् विद्युत् काष्ठ से भी निर्माण की हुई प्रतिमाएँ होती हैं और लोह सध से पूर्ण होती हैं । रीति का अपवा घातु से युक्त—ताम्र और कांस्य के मिश्रण से निर्मित या शुभ काष्ठ के निग्रह वाली देवता की प्रतिमा की अर्चा प्रशस्त होती है ॥२०, २१॥

अमुष्टपर्वदारभ्य वितस्तिर्यावदेव तु ।

गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः ॥२२

आषोडशा तु श्रमस्ये कर्तव्या नाधिका ततः ।
 मत्प्रीतिमकतिष्ठा तु कार्या विज्ञानुसारतः ॥ ३
 द्वारोच्छ्रयस्य यन्मातमष्टधा तत्तु कारयेत् ।
 भाग्येकं ततस्त्यक्त्वा परिशिष्टान्तु यद्भवत् ॥१४
 भागद्वयेन प्रतिमा त्रिभागीकृत्य तामृतः ।
 पीठिका भवत्त. कार्या नाहिलीचा नकोच्छ्रिता ॥१५
 प्रतिमामुखमानेन नवभागान् प्रकल्पयेत् ।
 चतुरश्रुणा भवेद्वीचामागेन हृदययुता ॥१६
 नाविस्तस्मात्सहः कार्या भागैरेकेन जीमना ।
 निम्नत्वेविस्तरत्वं च अंगुलपरिकीर्तितम् ॥१७
 तामोरधम्वतपामिद् भागैरेकेन कल्पयेत् ।
 द्विभागैतायतावूरु जातुनी चतुरंगुले ॥१८

अपने अंगुठे के पंख से आरम्भ करके एक विलम्बित (विलंब या
 क्विन्दन) पश्चात् सभी ओर बड़ी देव प्रतिमा निर्मित करनी चाहिए ।
 बुद्ध पुरुषों के द्वारा इस प्रमथा से अधिक बड़ी प्रतिमा को प्रथम नहीं
 बनना था तथा है ॥१२॥ जो श्रमस्य ही रूप में पीठन से अधिक बड़ी
 प्रतिमा कभी नहीं करनी चाहिए । अपने चित्त के अनुसार वक्ष्य-मध्यम
 और कतिपय प्रतिमा का निर्माण करना आवश्यक है ॥१३॥ द्वार के
 चन्द्राव का जो मान है उसको लाल माल्य करे । उनमें से एक भाग का
 प्यास चक्के जो परिशिष्ट होंगे ॥१४॥ चर्म से ही भागों के प्रमाण से
 प्रतिमा की रचना करनी चाहिए । फिर उसके तीन भाग करके भाग से
 पीठिका की रचना करे । वह पीठिका व तीव्र अत्यन्त लचीली होनी चाहिए
 और न पीठिक टूटित ही होनी चाहिए ॥१५॥ प्रतिमा के मुख माल से
 भी मालो को प्रकल्पना करनी चाहिए । चार अंगुल लंबी बीजा होने
 और फिर भाग के द्वारा हृदय की रचना होनी चाहिए ॥१६॥ चक्के
 कर्णों पर अक्षर के नीचे एक भाग से परम पीठन नाम का निर्माण

करावे । उस नाभि की भिन्नता और विस्तार में अगुल ही कीर्तित किया गया है । नाभि के नीचे एक भाग में मेरु की रचना की कल्पना करे और दो भागों के द्वारा अत्यंत अरुओ एष चार अगुल के प्रमाण वाले जानुओं की रचना करानी चाहिए ॥ ७, २८॥

जङ्घेद्विभागो विख्याते पादौ च चतुरंगुलौ !

चतुर्दशागुलस्तद्वन्मौलिरस्य प्रकीर्तितः ॥ ६

ऊर्ध्वं नासा मध्यात् प्रोक्तं पृथुत्वञ्च निबोधत ।

सर्वावयवमानेषु विस्तारं शृणुत द्विजानः ॥ ३०

चतुरंगुललाटं स्यादूर्ध्वं नासा तथैव च ।

द्वयंगुलान्तु हनुर्ज्ञेयमोष्ठः स्वागुलसंमितः ॥ ३१

अष्टागुले ललाटे च तावन्मादो भ्रुवो मते ।

अर्द्धांगुलाभ्रुवोर्लेखा मध्ये धनुरिवानता ॥ ३२

उन्नताग्रा भवेत्पाद्वे श्लक्षणा तीक्ष्णा प्रशस्यते ।

अक्षिणा द्वयंगुला यामे तदर्धं चैव विस्तरे ॥ ३३

उन्नतोदरमध्ये तु रक्तान्ते शुभलक्षणे ।

तारकार्धविभागेन दृष्टिः स्यात्पञ्चभागिका ॥ ३४

द्वयंगुलान्तु भ्रुवोमध्ये नासामूला मथागुलम् ।

नासाप्रविस्तरं तद्वत् पुटद्वयमथानतम् ॥ ३५

दो भागों वाले जघन विख्यात हैं और दोनों पाद चार अगुल के मान वाले होने चाहिए । उसी भाँति चौदह अगुल का उस प्रतिमा का मौलि कीर्तित किया गया है । यह इसका ऊर्ध्वं मान बताया गया है अब उसके पृथुत्व को भी समझ लेना चाहिए । हे द्विजगण ! समस्त अवयवों के मानों में जो भी विस्तार होता है उसका भी श्रवण कर लो ॥ २६॥ ॥ ३०॥ चार अगुल का ललाट होता है उसी भाँति से ऊर्ध्वं भाग में नासिका हुआ करती है । दो अगुल का धनु (ठोड़ी) जानना चाहिए और ओष्ठ अपने अगुल के संमित होते हैं ? आठ अगुल के ललाट में उतनी

मात्रा वाली ही भीहे माली ययी हैं । अ ओ के लेखा आधे अगुल की हीनी है जो अूओं के मध्य में घनुष की भीति आनन हुआ करती है । पार्श्व भाग में वह उन्नत अथ भाग वाली होती है तथा श्लक्ष्णा और तीक्ष्ण प्रशस्त कही जाया करती है । दो अगुल की साम वाली दो मक्षियां होनी चाहिए और विस्तार में इससे आधी होवें ॥ ३१, ३२, ३३ ॥ उन्नत उदर के मध्य भाग वाली और अन्त में रक्त वर्ण में युक्त अक्षि शुभ लक्षण से सम्पन्न हुआ करती है । तारक के अर्धे विभाग में दृष्टि पंच भाग वाली होती है ॥ ३० ॥ भीहों के मध्य में दो अगुल के प्रमाण वाला नासिका का मूल होता है और एक अगुल नासिका के अग्रभाग का विस्तार हुआ करता है । दर्शों भीति से आनन नासिका के दो पुर हुआ करते हैं ॥ ३५ ॥

नामापुटविलतद्वर्धा ग्लमुदाहृतम् ।

कर्णो द्वे द्व्यगुले नद्वत् कर्णमूलाद्विन्निगते ॥ ३६

हन्वप्रमगुल तर्द्धाद्वस्तारो द्व्यगुलो भवेत् ।

अर्द्धांगुलाञ्जुवोराजी प्रणानसदृशी समा ॥ ३७

अर्द्धा ग्लसमस्तद्वदुत्तरोष्ठस्तु विस्तरे ।

निष्पावमदृशन्तद्वन्तामापुटदल भवेत् ॥ ३८

सृक्किणी ज्योतिस्तुल्ये तु कर्णमूलात् पङ्गुने ।

कर्णौ तु अूमसौ ज्ञयो ऊर्द्धवन्तु चतुरगुणौ ॥ ३९

द्व्यगुलौ कर्णपाद्वौ तु माथामेकान्तु विस्तृती ।

कर्णयोहरिष्याच्चमस्तक द्वादशागुलम् ॥ ४०

तलाटात्पृष्ठतोऽर्धेन प्रोक्तमष्टादशागुलम् ।

पट्टिशदाङ्गुलश्चास्य परिणाहः शिरोगतः ॥ ४१

सकेशनिचयो यस्य द्विचत्वारिंशदंगुलः ।

केशान्तात्हनुका तद्वदंगुलानि तु पांडसा ॥ ४२

नासिका के पुट का बिल उसी भाँति से आधे अंगुल का कहा गया है । दो अंगुल के प्रमाण से भुवन दोनो कपोल होने चाहिए जो कर्ण-मूल से विनिर्गत हुआ करते हैं ॥२६॥ दनु के अग्रभाग का विस्तार दो अंगुल और वह एक अंगुल होता है । भ्रूओं की राजी आधी अंगुल वाली होती है जो प्रणाल के सदृश एवं सम हुआ करती है ॥ ३७ ॥ विस्तार में उसी की भाँति उत्तरोष्ठ अर्द्ध अंगुल के समान होना चाहिए । उसी तरह से निष्पात्र के समान नासापुटी का दल होता है ॥३८॥ कर्णों के मूल से छँ अंगुल परिमाण वाली ज्योति के तुल्य सृविकणी होनी चाहिए । और दोनो कान ध्रुवों के समान जानने चाहिए जो ऊर्ध्व भाग में चार अंगुल प्रमाण वाले हों ॥३९॥ कर्णों के पार्श्व भाग दोनो दो अंगुल के होने चाहिए और एक मात्रा विस्तृत होये । दोनो कानों के ऊपर मस्तक बारह अंगुल का होना चाहिए । ललाट से पृष्ठ भाग में इसके आधे भाग से युक्त कहा गया है जो अठारह अंगुल होना चाहिए । इसके शिर में होने वाला परिणाह छत्तीस अंगुल का होता है । जिसके केशों के निचय के साथ परिमाण बयासीस अंगुल का होता है । केशान्त उसी भाँति दनु का सोलह अंगुल की होती है ॥४०-४॥

ग्रीवा मध्यपरोणाहश्चतुर्विंशतिकागुलः ।

अष्टांगुला भवेद्ग्रीवा पृथ्वेन प्रशस्यते ॥४३

स्तनग्रीवान्तरं प्रोक्तमेकताल स्वयम्भुवा ।

स्तनयारन्तरं तद्वद् द्वादशागुलमिष्यते ॥४४

स्तनयोर्मण्डलतद्वद्व्यङ्गुलं परिकीर्तितम् ।

ध्रुचुको मण्डलस्यान्तर्ध्वमात्रायुभौस्मृतौ ॥४५

द्वितालञ्चापि विस्तराद्वक्षन्यलमुदाहृतम् ।

कथं पडंगुले प्रोचते बाहुमूलस्तनान्तरे ॥४६

धनुर्दशागुलीपादावद्गुण्ठी तु त्रियंगुली ।

पञ्चागुलपरोणाहमङ्गुण्ठीय तथोन्नतम् ॥४७

अंगुष्ठकसमा तद्वदायामा स्यात्प्रदेशिनी ।
 तस्याः षोडशभागेन हीयते मध्यमांगुली ॥४८॥
 अनामिकाष्टभागेन कनिष्ठा चापि हीयते ।
 पर्वत्रयेण चांगुल्यांगुल्फौ द्व्यंगुलकौ भवतौ ॥४९॥

श्रीवा के मध्य का परीणाह चौबीस अंगुल का होना चाहिए ।
 साठ अंगुल की श्रीवा जो होनी है पृथक्त्व से प्रघ्नत मानी गयी है ॥४३॥
 स्वयम्भू ने स्तनों और श्रीवा का अन्तर एक ताल कहा है । दोनों स्तनों
 का अन्तर उसी भाँति से वारह अंगुल का होना चाहिए जो कि अभीष्ट
 है ॥४४॥ स्तनों का मण्डल भी उसी प्रकार से दो अंगुल का परिकीर्तित
 किया गया है । स्तनों के चूचुक (धुण्ड) उम मण्डल के अन्दर दोनों मध
 माय होनी चाहिए—तेमा कहा गया है ॥४५॥ विस्तार से बधा, स्थल
 भी द्विताल बताया गया है । बाहुओं के मूल में स्तनों के बीच में दोनों
 कक्षों का परिमाण छे अंगुल का कटा गया है ॥४६॥ चौदह अंगुल के
 दोनों पैर और तीन अंगुल के परिमाण से युक्त दोनों अंगुष्ठ होते हैं ।
 पाँच अंगुल के परीणाह से युक्त एक उन्नत अंगुष्ठ का अग्र भाग होता
 है । अंगुष्ठ के हों समान उसी के समान आसाम वाली प्रदेशिनी होती है ।
 उसके सोहलवें भाग से मध्यागलि हीन होती है ॥४७, ४८॥ अनामिका
 आठ भाग में और कनिष्ठा भी हीन हुआ करती है । तीन पर्व से अंगुलिर्वा
 और दोनों गुल्फ दो अंगुल के माने गये हैं ॥ ४९ ॥

पाणिद्व्यंगुलमात्रम् कल्पान् च प्रकीर्तितः ।
 द्विपर्वंगुलकः प्रोक्तः परीणाहश्च द्व्यंगुलः ॥५०॥
 प्रदेशिनी परीणाहश्च्यंगुलः समुदाहृतः ।
 कत्यसा चाष्टभागेन हीयते क्रमशोद्विजाः ॥५१॥
 अंगुलेनोच्छ्रयः तयोः ह्यंगुलस्य त्रिदशतः ।
 तदर्थेन न शीघ्रानामगुला चान्तरो ह्यर ॥५२॥
 जङ्घास्ये परीणाहस्तु जगुलान् चतस्रः ॥

जङ्घामध्ये परीणाहस्तर्धवाष्टादशांगुलः ॥५३
 जानुमध्ये परीणाह एकविशतिरंगुलः ।
 जानुच्छ्रयोऽङ्गुलप्रोवतो मण्डलन्तु त्रिरंगुलम् ॥५४
 उरुमध्ये परीणाहो ह्यष्टाविशतिकांगुलः ।
 एकत्रिंशोपरिष्टान्च वृषणौ तु त्रिरंगुलौ ॥५५
 द्वयगुश्च तथामेढं परीणाहः पङ्गुलम् ।
 मणिबन्धादधोविद्यात् केशरेखास्तर्धव ॥५६

पाष्णि दो अंगुल परिमाण वाला कला से उच्च कीर्तित किया गया है । अगुष्ठ दो पर्वों वाला कहा गया है और परीणाह भी दो अंगुल वाला होता है । प्रदेशिका का परीणाह तीन अंगुल वाला कहा गया है । हे द्विजगण ! कन्यसा आठ भाग से क्रम से हीन होती है । एक अंगुल का उच्छ्रय अंगुष्ठ का विशेष रूप से करना चाहिए । उसके माधे भाग से शेष अंगुलियों का उसी भाँति उच्छ्रय होना चाहिए ॥५०, ५१, ५२॥ जङ्घाओं के ग्रथ भाग में चौदह अंगुलों का परीणाह होता है । जाँघों के मध्य में परीणाह उसी भाँति अठारह अंगुल का होता है ॥५३॥ जानुओं के मध्य में जो परीणाह है वह इक्कीस अंगुल के परिमाण वाला है । जानुओं का उच्छ्रय एक अंगुल बढ़ा गया है और मण्डल तीन अंगुल का होता है ॥५४॥ अरुओं के मध्य में अट्ठाईस अंगुल के परिमाण से युक्त परीणाह होता है । और ऊपर इक्कीस अंगुल का होता है । दोनों वृषण तीन अंगुल वाले हैं । दो अंगुल का मेढ्र है तथा इसका परीणाह छे अंगुल का होता है । उसी भाँति से मणिबन्ध से नीचे केश रेखाएँ जाननी चाहिए ॥५५ ५६॥

मणिकोशपरिणाहश्चतुरंगुल इष्यते ।

विस्तरेण भवेत्तद्वत्काटरष्टादशांगुला । ५७

द्वाविशति तथा स्त्रीणास्तनौ च द्वाशशागुचौ ।

नाभिमध्ये परीणाहो दिवचत्वारिंशद्गुल ॥५८

पुरुषे पञ्चपञ्चाशत् कट्याञ्चैव तु वेष्टनम् ।
 कक्षयोःपरिष्टत्तु स्कन्धोप्रोक्तो पङ्गुली ॥५६
 अष्टांगुलान्तु विस्तारे ग्रीवाञ्चैव विनिदिशेत् ।
 परीणाहे तथा ग्रीवां कला द्वादश निदिशेत् ॥ ६०
 आयामो भ्रुजयोस्तद्वत् द्विचत्वारिंशद्गुलः ।
 कार्यन्तु बाहुशिखर प्रमाणेऽष्टागुलम् ॥६१
 ऊर्ध्वं यद्बाहुपर्यन्त विन्धादष्टागुल शतम् ।
 तथैकंगुलहीनन्तु द्वितीय पदं उच्यते ॥६२
 बाहुमध्ये परीणाहो भवेदष्टादशंगुलः ।
 षोडशावतः प्रबाहुस्तु पट्कोप्रकरोमतः ॥६३

मणि कोश का परीणाह चार अंगुल का अभीष्ट होता है । उसी
 भाँति विस्तार से कटि अठारह अंगुल की होनी चाहिए ॥५७॥ स्त्रियों की
 कटि द्वादश अंगुल की होती है और दोनों स्तन बारह अंगुल के होते हैं ।
 नाभिके मध्य का परीणाह द्वात्रिंशत् अंगुल वाला अभीष्ट होता है ।
 ॥५८॥ पुरुष में पंचपन और कटि में वेष्टन तथा दोनों कक्षों के ऊपर छे
 अंगुल के स्कन्ध बताये गये हैं । विस्तार में ग्रीवा को आठ अंगुल की
 विनिदिष्ट करनी चाहिए और परीणाह में ग्रीवा को बारह कला निदिष्ट
 करना चाहिए ॥५६, ६०॥ दोनों भ्रुजाओं का आयाम उसी भाँति से
 द्वात्रिंशत् अंगुल का होना है । बाहुशिखर को प्रमाण में सोलह अंगुल
 का करना चाहिए ॥६१॥ ऊर्ध्वं भाग में बाहुपर्यन्त एक सौ आठ अंगुल
 का लाभ करना चाहिए । उसी प्रकार से एक अंगुल हीन दूसरा पद
 कहा जाता है । बाहुओं के मध्य में अठारह अंगुल का परीणाह होना
 चाहिए । प्रबाहु षोडश कहा गया है और अष्ट कर पट्कना वाला माना
 गया है ॥६२, ६३॥

सप्तगुल कर्तल पञ्चमध्यागुलीमता ।

अनार्मिकः मध्यमायाः ममभागेन हीमन ॥६४

तस्यास्तु पञ्चभागेन कनिष्ठा परिहीयते ।
 मध्यमायास्तु हीना वै पञ्चभागेन तर्जनी ॥६५
 अगुष्ठस्तजनीमूतादधः प्रोवतस्तु तत्समः ।
 अगुष्टपरिणाहस्तु विज्ञेयश्चतुरगुलः ॥६६
 शेषाणामगुलीनान्तु भागो भागेन हीयते ।
 मध्यमामध्यभागन्तु अंगुलद्वयमायतम् ॥६७
 यवो यवेन सर्वासान्तस्यास्तस्याः प्रहीयते ।
 अंगुष्ठपर्वमभ्यन्तु तर्जन्या सदृश भवेत् ॥६८
 यवद्वयाधिक तद्वदग्रपव उदाहृतम् ।
 पर्वार्धो तु नखान्विद्यादंगुलीषु समन्तम् ॥६९
 स्निग्ध श्लक्ष्ण प्रकुर्वीत ईषद्वयत तथाग्रतः ।
 निम्नेपृष्ठ भवेन्मध्ये पार्श्वतः कलयोच्छ्रितम् ॥७०

सात अंगुल का करतल होता है और पांच मध्यागुली मानी गयी है । अनामिका, मध्यमा अगुलि से सात भाग से हीन हुआ करती है ॥ ६५ ॥ उसके पांच भाग से हीन कनिष्ठा कही जाया करती है । मध्यमा से हीन तर्जनी पांच भाग से हुआ करती है । तर्जनी के मूल से नीचे उसी के समान अगुष्ठ कहा गया है । इस अगुष्ठ का परीणाह तो चार अगुल का जानना चाहिए ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ शेष अगुलियों का भाग से हीन होना है । मध्यमा के मध्य भाग दो अगुल आयत वाला होता है ॥ ६७ ॥ सबका यव यव से उम-उमका प्रहयित हुआ करता है । अगुष्ठ के पर्व का मध्य तर्जनी के ही सदृश हुआ करता है । उसी भाँति अग्रपर्व दो यव से अधिक उदाहृत किया गया है । अंगुलियों को सभी ओर पर्वट्ट में नटो को जानना चाहिए ॥ ६८, ६९ ॥ अग्रभाग में थोड़ा रबन-स्निग्ध और श्लक्ष्ण करना चाहिए । मध्य में भिन्न पृष्ठ और पार्श्व में बला से उच्छ्रित होना चाहिए ॥ ७० ॥

तत्रैव केशवल्लीयं स्कन्धोपरि दशाङ्गुला ।
 स्त्रियः कार्यास्तु तन्वद्भ्यः स्तनोद्वेगनाधिकाः ॥७१
 चतुर्दशांगुलायाममुदरं नाम निर्दिशेत् ।
 नानाभरणसम्पन्नाः किञ्चित्फलक्षणभुजास्ततः ॥७२
 किञ्चिद्दीर्घं भवेद्वक्त्रमलकावलिरुत्तमा ।
 नासाग्रीवा ललाटञ्च सार्द्धं मात्रं त्रिरंगुलम् ॥७३
 अध्यर्द्धांगुलविस्तारः शस्यतेऽधरपल्लवः ।
 अधिकनेत्रयुग्मन्तु चतुर्भागेन निर्दिशेत् । ७४
 ग्रीवाश्चानिश्च कर्तव्या किञ्चिदधर्मांगुलाच्छ्रया ।
 एव नागपु सर्वासिद्धेवाना प्रतिमासु च ॥
 तव चानामिदं प्रोक्तं लक्षणं पापनाशनम् ॥७५

वही पर केशो की बल्की स्कन्धो के ऊपर दश अंगुल परिमाण वाली होनी चाहिए। स्त्रियों का विग्रह तनु अर्थात् कुश अङ्गो वाला करना चाहिये। इनके ही केवल स्तन ऊँच और जह्वाएँ ही अधिक परिपुष्ट होने चाहिए ॥७१॥ चौदह अंगुल के आयतन वाला उदर निर्दिष्ट करना चाहिये। नाना आभरणो व सम्पन्न और कुछ श्लक्ष्ण भुजाओं से युक्त स्त्रियों विग्रह होना चाहिए। कुछ दीर्घ वक्त्र होवे और उस पर उत्तम अलकों की अवली होनी चाहिए। नासा—ग्रीवा और ललाट साढ़े तीन अंगुल का होवे। अधर पल्लव स्त्रियों का अध्यर्द्धांगुल विस्तार से समन्वित प्रगस्त हुआ करता है। अधिक दोनो भँवों का मुग्ध चतुर्भाग से चिनिदिष्ट करना चाहिए। अर्द्धांगुल दृच्छ्रय वाली ग्रीवा की अवली करनी चाहिए। इसी प्रकार से समस्त नारियों में और देवों की सब प्रतिमाओं में रचना करनी चाहिए। आपको यह अत्यधिक लक्षण बतना दिया है। यह पापों का नाश करने वाला है ॥७२-७५॥

१२२—देवाकार प्रमाण वर्णन (१)

अतः परं प्रवक्ष्यामि देवाकारान् विशेषतः ।
 दशतालः स्मृतो रामो बलिर्वैरोचनिस्तथा ॥१
 वराहो नारसिंहश्च पद्मतालस्त वामनः ।
 मत्स्यकूर्मो च निर्दिष्टो यथाशोभं स्वयम्भुवा ॥२
 अतः परं प्रवक्ष्यामि रुद्राद्याकारमुत्तमम् ।
 स पीनोरुभुजस्कन्धस्तप्तकाञ्चनसप्रभः ॥३
 शुक्लोऽकराश्मसघातश्चन्द्राङ्घ्रितजटोविभुः ।
 जटामुकुटधारी च द्व्यष्टवर्षाकृतिश्च सः ॥४
 बाहुवारणहस्ताभो वृत्तजङ्घोरुमण्डलः ।
 ऊर्ध्वकेशश्च कर्तव्यो दीर्घायतविलोचनः ॥५
 व्याघ्रचर्मपरीधानः कटिसूत्रत्रयान्वितः ।
 हारकेयूरसम्पन्नो भुजङ्गाभरणस्तथा । ६
 बाहवश्चापि कर्तव्या नानाभरणभूषिताः ।
 पीनोरुगण्डफलक कुण्डलाभ्यामलवृतः ॥७

महामहर्षि वर धी सूत्रज्ञी ने कहा — इससे आगे मैं विशेष रूप से देवों के आकार का वर्णन करूँगा । राम दशताल तथा बलि और वैरोचनि कहा गया है ॥ १ ॥ वाराह और नारसिंह और वामन सप्त ताल बताये गये हैं । स्वयम्भू ने मत्स्य और कूर्म इन दोनों को शोभा के अनुसार ही निर्दिष्ट किया है । इससे आगे रुद्रादि के उत्तम आकार को मैं बतलाऊँगा । यह पीन कुरु एव भुजाओ वाले हैं तथा उनका स्कन्ध भी पीन है एव तथाये हुए मुञ्जर्ण के तुल्य प्रभा से यह सुमम्पन्न हैं ॥ २, ३ ॥ शुक्ल वर्ण वाले — अर्क (सूर्य) रश्मियों का सघन — चन्द्र से अङ्घ्रित जटा वाला — विभु — जटा एव मुकुट के धारण करने वाले और सोनह वर्ष की अवस्था में युक्त पुरुष का आकृति के सघन संपूर्ण वाले हैं हाथी की सूँड की आभा वाली बाहुओं वाले — लम्ब जटायु

एव ऊरुओं के मण्डल से युक्त—ऊर्ध्व भाग की ओर केशों वाले तथा दीर्घ
एव आयत नेत्रों वाला स्वरूप करना चाहिए । व्याघ्र के चर्म से परीघान
करने वाले—कटि में तीन सूत्रों से संयुत हार, केयूर और अन्य सुन्दर
आभरणों से सम्पन्न—सर्पों के आभूषणों से शोभित करे । और ऐसे
बहुत—से अनेक आभरणों से विभूषित विरचित करे । पीत ऊरु मण्ड
फलक वाला तथा कुण्डलों से समनकृत बनावे ॥ ४-७ ॥

आजानुत्तम्ववाहुश्च सौम्यमूर्ति सुशोभनः ।
सैटक वामहस्ते तु शङ्खञ्चैव तु दक्षिणे ॥८
शक्ति दण्ड त्रिशूलञ्च दक्षिणेपु निवेशयेत् ।
कपाल वामपार्श्वे त नाम खट्वाङ्गमेव च ॥९
एकश्च वरदो हस्तस्तथाक्षवलेधोऽपरः ।
वैशाखस्थानक कृत्वा नृत्या मनयसस्थितः ॥१०
नृत्यन्दशभुज कार्यो गजचर्मधरस्तथा ।
तथा त्रिपुरटाहे च वाहवः षोडशौव तु ॥११
शङ्ख चक्रं गदाशाङ्गं घण्टातत्रार्घिकाभवेत् ।
तथाधनुः विनाशञ्च शरो विष्णुमयस्तथा ॥१२
चतुर्भुजोऽष्टवाहुर्वा ज्ञानयोगेश्वरो मतः ।
तीक्ष्णनामाश्रदक्षत करालवदना महान् ॥१३
भैरवः शस्यते लोके प्रत्यायतनेसस्थितः ।
न मूलायतने कार्ये भैरवस्तु भयङ्कर ॥१४

जानु पर्यन्त लम्बी बाहुओं से युक्त—सौम्य मूर्ति सुन्दर शोभा से
संयुक्त-वाम हस्त में सैटक धारण करने वाले तथा दाहिने हाथ में शंख को
धारण किये हुए एव दक्षिणों में शक्ति—दण्ड और त्रिशूल को निवेशित
करना चाहिए । एक हाथ तो वर प्रदान करने वालों मुद्रा में होना
चाहिए और दूसरा धरो के दलय वाला होवे । वैशाख स्थानक करके
नृत्यों के अभिनय करने से सस्थित होना चाहिए । नृत्य करते हुए
दश भुजाओं वाला एव गज के चर्म का धारा छद्मदेव का स्वरूप निमित्त

करे तथा त्रिपुरामुर के दाह करने में सोलहों बाहुएँ व्यस्त हो । वहाँ पर शख—चक्र—गदा—शाङ्ग हो और अधि का पण्डा होना चाहिये । तथा पिनाक धनु और विष्णुमय शर होना चाहिए । चतुर्भुज अथवा आठ बाहुओं वाला ज्ञान योग के ईश्वर को माना गया है । तीक्ष्ण नासा तथा अष्ट दशन वाले—कराल बदन से युक्त—महान् और प्रत्यायतन में भे सस्यित भैरव लोक में परम प्रशस्त कहे गये हैं । मूलायतन में भैरव भगवान् कभी भी भयङ्कर नहीं निर्मित करना चाहिये ॥ ८-१४ ॥

नारसिंह वराहोवा तथागोऽपि भयङ्कराः ।
 नाधिकाङ्गा न हीनाङ्गा कतंव्या देवताः ववचित् ॥१५
 स्वामिन घातयेन्न्यूना करालवदना तथा ।
 अधिका शिल्पिन हन्यात् कृशा चंवाथनाशिनी ॥१६
 कृशोदरी तु दुर्भिक्ष निमासाधननाशिनी ।
 वक्रनासा तु दुःखाय सङ्क्षिप्ताङ्गी भयङ्करी ॥ ७
 त्रिपिटा दुःखशोकाय अनेत्रा नेत्रनाशिनी ।
 दुःखदा हीनवक्त्रा तु पाणिपादकृशा तथा ॥१८
 हानाङ्गा हीनजङ्घा च भ्रमोन्मादकरी नृणाम् ।
 शुभ्रवक्त्रा तु राजान कटिहीना च या भवेत् ॥१९
 पाणिपादविहीना योजायते मारकोमहान् ।
 जङ्घानुविहीना च शत्रुकल्याणकारिणी ॥२०
 पुत्रामत्रावनाशाय हीनवक्षस्थला तु या ।
 सम्पूर्णवियवा या तु आयुलक्ष्मीप्रदा सदा ॥२१

नारसिंह अथवा वराह तथा अन्य भी भयङ्कर होते हैं किन्तु कभी भी और वही पर भी देवों की प्रतिमाओं को अधिक अङ्गों वाली नहीं बनानी चाहिये ॥ १५ ॥ जो कोई देवमूर्ति न्यून अङ्गों वाली होती है अथवा कराल मुख से युक्त होनी है वह स्वामी का घात किया करती है । जो अधिका अङ्गा वाली अथवा कृशा होती है वह उसके निर्माण

करने वाले शिल्पकार का हनन किया करती है और तथ्य का विनाश करने वाली होती है ॥ १५, १६ ॥ जो कोई देवता की प्रतिमा कृष्ण उदर से युक्त निमित्त कराई जावे तो वह दुर्भिक्ष करने वाली हुआ करती है तथा मास से होन यदि देव प्रतिमा की निमित्त कराई जावे तो उसका यह दुःख फल होता है कि वह धन का विनाश किया करती है । बरु नासिका वाली देव प्रतिमा दुःख के ही लिये हुआ करती है । जिस प्रतिमा के अङ्ग मच्छिन्नही तो वह मय करने वाली हुआ करती है । जो मूर्ति विपिटा होती है वह दुःख और शोक के लिये ही हुआ करती है । जिसके नेत्र नहीं होते हैं अर्थात् नेत्रों की रचना न की गई हो वह देव प्रतिमा नेत्रों के विनाश करने वाली हुआ करती है । हीन मुख वाली प्रतिमा की रचना का यह दुष्परिणाम होता है कि वह सर्वदा दुःख प्रदान किया करती है तथा हाथ और चरणों से कृष्ण प्रतिमा ही—हीनाङ्गा—हीनजया हो यह मनुष्यों को भ्रम एवं उध्वार करने वाली हुआ करती है । शुष्क मुख वाली और काट में होना जो हाती है वह राजा की किया करती है । पाणि और पाद में जो अङ्गील हाकर समुत्पन्न होता है वह महान् मारक हुआ करता है । जो जया और जालु में विहीन होती है तो वह शत्रु के कल्याण करने वाली होती है । जो हीन चक्षुःस्थल वाली होती है वह पुत्र और निज के विनाश के लिये हुआ करती है । जो मधूर्ण अवधवी में युक्त होती है वह सदा आयु और लक्ष्मी के प्रदान करने वाली होती है ॥ १७-२१ ॥

एव लक्षणमासाद्य कर्तव्यं परमेश्वरः ।

स्तूपमानः सुरैः सर्वे समन्ताद्दर्शयेद्भवम् ॥२२

शक्रेण नन्दिना चैव महाकालेन शङ्करम् ।

प्रणता लीकपालास्त पाश्वरे तु गणनायकाः ॥२३

नृत्यद्भृङ्गारिदिर्चय भूतवेतलसंब्रुताः ।

सर्वेहृष्टस्तु कर्तव्याः स्तुवन्तः परमेश्वरम् ॥२४

गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणामथाप्सरो गुह्यकनायकानाम् ।
 गणरनेकैः शतशो महेन्द्रैर्मुनिप्रवीरैरपि नम्यमानम् ॥ २५
 धृताक्षसूतैः शतशः प्रवालपुष्पोपहारप्रचयन्ददद्भिः ।
 मस्तूपमान भगवन्तमीड्य नेत्रत्रयेणामरमर्यंपूज्यम् ॥ २६

इस प्रकार से लक्षणों की प्राप्ति करके परमेश्वर की प्रतिमा को रचना करानी चाहिये । भगवान् भव को इस प्रकार से दर्शित कराना चाहिए कि वह सब ओर से समस्त सुरगणों के द्वारा स्तूपमान हो रहे हैं ॥ २२ ॥ इन्द्र के द्वारा—नन्दी और महाकान के द्वारा शङ्कर की स्तुति की जा रही हो । भगवान् के पार्श्व में सब गण नायक और लोकोपाल प्रणत हो रहे हों । भगवान् की प्रतिमा को इस प्रकार सन्निहित कराना चाहिए कि उनके समक्ष में झुकी और रिटि नृत्य कर रहे हो तथा भूतो और वेतालो से संवृत हों । सब परम प्रसन्न होते हुए परमेश्वर की स्तुति करने वाले हो । गन्धर्व—विद्याधर—किन्नर—अप्सराये—गुह्यक—नायक इनके अनेक सैकड़ों गणों के द्वारा—महेन्द्रों के द्वारा—और मुनि प्रवीरों के द्वारा नम्यमान होवे । सैकड़ों अक्ष सूत्रों के धारण करने वाले प्रवाल—पुष्पों के उपहार के प्रचयों के समर्पित करने वालों के द्वारा स्तूपमान—तीन नेत्रों से युक्त देवगण और मनुष्यों के परम पूज्य—ईड्य भगवान् की प्रतिमा का निर्माण कराना चाहिए । ॥ २३-२६ ॥

१२३—देवाकार प्रमाण वर्णन (२)

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि अर्धनारीश्वरं परम् ।
 अर्धेन देवदेवस्य नारीरूपं सुशोभनम् ॥ १
 ईशाधो तु जटाभागी बालेन्दुकुलयायुतः ।

उमाधर्मो चापि दातव्यो सीमन्ततिलकावृधौ ॥२
 वामुकिर्दक्षिणे कर्णे वामे कुण्डलमादिभूत् ।
 वालिका चोपरिष्ठात् कपाल दक्षिणेकरे ॥
 त्रिशूलं चापि कर्तव्यं देवदेवस्य शूलिनः ॥३
 वामतो दर्पणं दद्याद्दुत्पलन्तु विशेषतः ॥४
 वामबाहुश्च कर्तव्यः केयूरवलयान्वितः ।
 उपवीञ्च कर्तव्यं मणिमुक्तामयन्तथा ॥५
 स्तनभार तथाघृतं वामेपीन प्रकल्पयेत् ।
 परार्ध्यंमुज्ज्वलकुर्व्यन्निष्प्रोष्यर्धेतु तथैव च ॥६
 लिङ्गाद्धर्मूख्यं वृद्धानि व्यालाजिनकृताम्बरम् ।
 वामेत्सम्परीधानं कटिसूत्रयमान्वितम् ॥७

महामहर्षि प्रवर श्रीमूत जो ने कहा—मय परम अर्धं नारीश्वर भगवान् के विषय मे कहते हैं । देवो के देव के अर्धं भाग से मुत्तोमन नारी का रूप है ॥ १ ॥ ईग के अर्धं भाग मे जटा का भाग है और वात्-चन्द्र की कला से पुवन है तथा उमादेवी की जो अर्धं भाग है उसमे सीमन्त और तिलक य दोनों देने के योग्य हैं । भगवान् शिव के दक्षिण कर्ण मे वामुकि सप शोभित हो रहें हैं और वाम कर्ण मे कुण्डल धारण किया हुआ है । ऊपर मे वालिका है दक्षिण कर मे कपाल धारण किये हुए हैं । देवो के देव भगवान् शूली के कर मे त्रिशूल धारण कराना चाहिये । वाम भाग मे दर्पण और विशेष रूप से उत्पल धारण करावे । ॥ १, २, ३, ४ ॥ वामबाहु को केयूर और वलय से समन्वित करे । तथा मणि मुक्ताओ से परिपूर्ण उपवीत भी धारण कराना चाहिए ॥ ५ ॥ वाम अर्धं भाग में पीन स्तन का भार प्रकल्पित करे तथा श्रोण्यर्धं मे उमी भान्नि उज्ज्वल परार्ध्य की कला चाहिए । व्याल और जिन से अम्बर करने ऊर्ध्वेद्ग लिङ्गाधर्म करे तथा वाम भाग मे कटि सूत्र यय से समन्वित लम्बे परीधान की धारण कराना चाहिए ॥२—७॥

नानारत्नसमोपेतं दक्षिणेभुजगान्वितम् ।
 देवस्य दक्षिणं पादपद्मोपरिमुसस्थितम् ॥८॥
 कञ्चिदर्थं तथा वाम भूपित नूपुरेण तु ।
 रत्नविभूषितान् कुड्यर्थाद् गुलीष्णगुलीयकान् ॥९॥
 सालवनक तथायादं पार्वत्या दशयेदसदा ।
 अर्धनारीश्वरस्येदं रूपमस्मिन्नुदाहृतम् ॥१०॥
 उमामहेश्वरस्यापि लक्षण शृणुतद्विजाः ।
 संस्थानन्तु तयोर्वक्ष्ये लीलाललितविभ्रमम् ॥११॥
 चतुर्भुज द्विबाहुं वा जटाभारेन्दुभूषणम् ।
 लौचनत्रयसमुक्तमुमैकस्कन्धपाणिनम् ॥१२॥
 दक्षिणेनोत्पल शूल वामेकुचभरेकरम् ।
 द्वीपिचर्मपरीधान नानारत्नोपशोभितम् ॥१३॥
 सुप्रतिष्ठ सुवेषञ्च तथाधेन्दुकृताननम् ।
 वामे तु सस्थिता देवी तस्मिन् वाहुगूहिता ॥१४॥

दक्षिण भाग में अनेक प्रकार के रत्नों से समुपेत एव भुजगो से युक्त शोभा को सम्पादित करे और देवों के देव का दक्षिण चरण पद्म के ऊपर सस्थित करे ॥ ८ ॥ अर्ध भाग में वाम को अर्थात् बायें चरण को नूपुर से समलकृत करे रत्नों से विभूषित अगुलीयको को अगुलीयों धारण कराना चाहिए ॥ ९ ॥ सदा पार्वती देवी उस पाद को लवनक के सहित दक्षित कराना चाहिए । जिसमें अर्ध नारीश्वर प्रभु का यह रूप उदाहृत किया गया होवे ॥ १० ॥ हे द्विजगण ! अब आप उमा महेश्वर प्रभु का भी स्वरूप एव लक्षण का श्रवण कीजिए । उनके लीला से ललित विभ्रम वाले संस्थान को मैं सम्यक प्रकार से वर्णित करूँगा । चार भुजाओं से संयुक्त अथवा दो बाहु वाले रूप से समन्वित हो—जटा-पूट के भार और चन्द्रमा के भूषण के सहित—तीन लोचन वाले तथा उमा के कंधे पर एक हाथ रखते भगवान् शिव का वह रूप है जो एक

ही में तथा महेश्वर दोनों का होता है ॥ ११, २२ ॥ दक्षिण कर से उत्पल को ग्रहण करने वाले तथा मूल को लिये हुए धीरे धीरे वाम कर से स्तन के भार को भ्रंशित हुए—द्वीपों के चर्म का परीक्षण धारण करने वाले एवं अनेक रत्नों से समुप शोभित—सुन्दर प्रतिष्ठा से युक्त—सुन्दर वेष व लेश तथा शर्षा चन्द्र से मुख को करने वाले रूप से युक्त भगवान् भव का स्वरूप है । उनके ऊपर वाम भाग में वाहुओ ने गूहित उपादेवी विराजमान हैं ॥ १३, १४ ॥

शिरोभूषणस्युक्तरत्नकलिलताननना ।

सवालिका कर्णवती ललाटतिलकोज्वला ॥ १५

मणिकुण्डलसयुक्ता कर्णिकाभरणा बर्वाचत् ।

हारकंयुग्मवह्वला हरयवत्रावलोकिनी ॥ १६

वामासन्देवदेवस्य स्पृशन्ती लीलया ततः ।

दक्षिणन्तु बहिः कृत्वा दाहृं दक्षिणतस्तथा । १७

स्कन्धे वा दक्षिणे कृक्षी स्पृशन्त्यङ्ग सज्जः क्वचित् ।

वामे तु दपण दद्यादुत्पल वा मुशोभनम् ॥ १८

कटिमूत्रक्षयचैव नितम्बे स्यादप्रलम्बकम् ;

जया च विजयाचैव कांति व्यविनायकी ॥ १९

पार्श्वयादृशयेत्तत्र तोरणे गणगुह्यकान् ।

माना विद्याधरास्तद्वद्वीणावानप्सरोगणः । २०

एतद्रूपमुपेक्षस्य कर्तव्यं भूतिमिच्छता ।

शिवनारायण वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २१

वह देवी शिरोभूषणों से समन्वित अलंकारों के द्वारा अत्यन्त सज्जित आनन्द वाली हैं । बालिका (वाली) के सहित कानों से शोभित—ललाट पर तिलक धारण करने से परमोज्वल—मणियों से जटित कुण्डलों वाली—किसी समय में कर्णिका के आभरण से भूषित—हार तथा नेपथ्य के धारण करने से बहुल—भगवान् हर के मुख का अवलोकन करने वाली—

लोला से देवों के भी देव भगवान् शिव के वाम अंश का स्पर्श करने वाली—दक्षिण बाहु को बाहिर करके दक्षिण की ओर से दक्षिण कुक्षि में त्रिगुलियो से स्कन्ध का स्पर्श करती हुई श्री उमादेवी विराजमान हैं । इनके वाम हस्त में दर्पण समर्पित करना चाहिए अथवा परम शोभा से सुसम्पन्न उत्पल देना चाहिए ॥ १५, १६, १७, १८ ॥ उन देवों के त्रिभुज भाग में कटि का सूत्र ग्रथ होना चाहिए तथा प्रलम्बक का होना भी अत्यावश्यक है । अया और विजया तथा स्वामी कार्तिकेय और विघ्न विनाशक विनायक ये सब उन महादेवी के दोनों पार्श्व भागों में वहाँ पर तोरण में गणेश और गुरुदेवों को दिखलावे—इसी प्रकार से माला—विद्याधरो को तथा अप्सराओं के समुदाय को दिखलाने प्रदर्शित करने चाहिये ॥ १९, २० ॥ जो मनुष्य दौर्भव की इच्छा रखने वाला है उसको चाहिए कि इस तरह का उपरिबर्णित महेश्वर भगवान् का स्वरूप बनावे । अब मैं इस प्रकार से शिव नारायण के मिश्रित स्वरूप का वर्णन करूँगा जो समस्त प्रकार के महापापों का विनाश करने वाला है ॥ २१ ॥

वामार्धे माघवं विद्याद् दक्षिणे शूलपाणितम् ।
 बाहुद्वयञ्च कृपणस्य मणिकेयूरभूषितम् ॥२२
 शङ्खचक्रधर शान्तमारवतांगुलिविभ्रमम् ।
 शक्रस्थाने गदां वापि पाणी दद्याद्गदाभृत्ः ॥२३
 शङ्खञ्चैतेरे दद्यात् कट्यधं भूपणोज्वलम् ।
 पीतवस्त्रपरीधानं चरणं मणिभूषणम् । २४
 दक्षिणाधे जटाभारमधेन्दुकृतभूषणम् ।
 भुजङ्गहारवलय वरदं दक्षिण करम् ॥२५
 द्वितीयञ्चापि कुर्वीत त्रिशूलवरधारिणम् ।
 व्यालोपरीतसंयुक्त कट्यधं कृत्तिवातसम् ॥२६
 मणिरत्नैश्च समुवर्तं पाद नागविभूषितम् ।

शिवनारायणस्यैव कल्पयेद्रूपमुत्तमम् ॥२७

महावराह वक्ष्यामि पद्महस्तं गदाधरम् ।

तीक्ष्णदंष्ट्राग्रघोणास्यं मेदिनीवामकूर्पणम् ॥२८

श्री शिवनारायणारामक स्वरूप में वाम भाग में भगवान् माधव को जानना चाहिए और दक्षिण भाग में शूल हथ में धारण करने वाले शिव का स्वरूप समझ लेवे । भगवान् श्रीकृष्ण के दोनों बाहुओं को मणियो जटित केयूरो से समनकृत करे ॥२७॥ भगवान् माधव का स्वरूप शंख और चक्र को धारण करने वाला हो—परम शान्त—मारुत अगुनी के विभ्रम से सयुक्त हो—अथवा भगवान् गदाधर के कर से चक्र के स्थान में गदा को ही धारण करा देवे । दूसरे कर में शंख को धारण कराना चाहिए । भगवान् के कटि का अर्ध भाग भूषण से समुज्ज्वल बनावे । पीतवर्ण वाले वस्त्र का उनका परिधान करावे और मणियो से जटित मृगण से युक्त करण प्रदर्शित करे । इस तरह में वाम भाग में रमा क ईश्वर भगवान् का स्वरूप प्रदर्शित कराना चाहिये । अब दक्षिण अर्ध भाग में भगवान् शिव के स्वरूप का प्रदर्शन होना चाहिये । वह शिव का स्वरूप जराओं के भार से युक्त है और अर्ध चन्द्र के द्वारा भूषण किये हुए है—भुजङ्गो व हार एव वलय वाला है और जिस शिव स्वरूप का दक्षिण कर वर के प्रदान करने वाला है । दूसरे स्वरूप को भी करना चाहिये जो त्रिशूल वर का धारण करने वाला—ध्यालो के उप-बोध से समन्वित है तथा कटि का अर्धभाग कृत्ति (शंख चर्म) के वस्त्र से समावृत है । मणि रत्नों के द्वारा पाद संयुक्त है तथा नागों से विभूषित है । इस प्रकार में शिव और नारायण के निश्चित उत्तम स्वरूप की कल्पना करनी चाहिए । अब मैं महा वराह के स्वरूप का वर्णन कहूँगा । महा वराह का स्वरूप पद्म हाथ में धारण करने वाला है—गदा के धारण करने वाला—तीक्ष्ण दंष्ट्रा से युक्त अग्र घोणा (नासिका) और आस्य (मुख) वाला है जिसके वाम कूर्पर पर मेदिनी है ॥२७-२८॥

दष्ट्राग्नेणोद्धृतां दान्तां धरणीमुत्पलान्निताम् ।
 विस्मयोत्फुल्लवदनामुपरिष्ठात्प्रकल्पयेत् ॥२६
 दक्षिण कटिसस्थन्तु करं तस्याः प्रकल्पयेत् ।
 कूर्मोपरि तथा पादमेक नागेन्द्रमूर्धानि ॥२७
 संस्तूयमान लोकेशः समन्तात्परिकल्पयेत् ।
 नारसिहन्तुः संव्य भुजाष्टकसमन्वितम् ॥२८
 रोद्र सिंहासन तद्वत् विदारितमुखेक्षणम् ।
 स्तब्धपीनसटाकर्णं दारयन्तन्दिशेः सुतम् ॥२९
 विनिगंतान्त्रजालञ्च दानव परिकल्पयेत् ।
 चमत् रुधिर घोर भ्रुकुटीवदनेक्षणम् ॥३०
 युध्यमानश्च कर्तव्यः क्वचित्करणवन्धनैः ।
 परिश्रान्तेन दंत्येन तज्यमानो मुहुर्मुहुः ॥३१
 दंत्य प्रदर्शयेत्तत्र खड्गखेटकधारिणम् ।
 स्तूयमानं तथा विष्णुं दर्शयेदमराधिपैः ॥३२

उस महा वराह के स्वरूप में धरणी का कल्पना भी करनी चाहिये जो दाढ़ के अग्रभाग से उद्भूत हो—उत्पलो से समन्वित हो—विस्मय से उत्फुल्ल वदन वाली हो—ऐसी धरणी की ऊपर के भाग में रचना करावे उस महा वराह की प्रतिमा का दक्षिण कर कटि पर स्थित हो—ऐसी कल्पना करे । उस महा वराह का एक धरणी कूर्म के ऊपर और एक पाद नागेन्द्र के मस्तक पर स्थित होने की कल्पना करनी चाहिए ॥३०॥ सब ओर से लोकपालों के द्वारा संस्तूयमान होने वाले स्वरूप को परिकल्पित करे । नरसिंह भगवान् के शरीर को आठ भुजाओं से समन्वित कल्पित करना चाहिये ॥३१॥ उनका महान् रोद्र स्वरूप वाला सिंहासन होता है और उसी तरह से विदारित मुख एवं नेत्र होते हैं । स्तब्ध पुष्ट सराओं से युक्त कर्णों वाला वह स्वरूप होता है जो दिशि के पुत्र हिरण्य कशिपु के हृदय के विदीर्ण करना हुआ विद्यमान है

वामन देव की कमण्डलु के सहित वर्त्तमान होने की कल्पना करनी च 'हिए । उन वामन देव प्रभु के दाहिने हाथ में एक छोटा सा छत्र देवे और उनका मुख दीनता से परिदग्ध हो कल्पित करे । उनके पार्श्व भाग में भृङ्गार के धारण करने वाले राजा बलि को प्रदर्शित करना चाहिए । वामन देव को इस दैत्यो के राजा बलि का बन्धन करते हुए ही दर्शित करना चाहिए तथा उनके समीप में ही गहड को भी दिखलावे ॥३६, ३७, ३८॥ वही पर भक्त्य रूपी मात्स्य एव कूर्म की आकृति से युक्त कूर्म का भी न्यास करना चाहिए । इस प्रकार के स्वरूप से सुसम्पन्न भगवान् नागवण हरि का स्वरूप वहा पर करना आवश्यक है ॥३९॥ चारो मुखो स युक्त कमण्डलु के धारण करने वाले ब्रह्मा जी को वहा पर दिखलाना चाहिये । किसी स्थल पर उन ब्रह्मा को हस पर सम हृद और वही पर कमन के घ सन पर विराजमान दिखलावे ॥४०॥ ब्रह्मा का वण कमल की आभा के सहज—चार भुजाओ से युक्त—शुभ नखो वाला—बाँये हाथ में कमण्डलु लिये हुए तथा दाहिने हाथ में सब धारण करने वाला दिखलाना चाहिये ॥४१॥ उसी भाँति वाम हस्त में दण्ड को धारण करने वाला और स्तुव का धारी प्रदर्शित करे । सभी ओर मुनिगण—देवगण और गन्धर्वों के द्वारा स्तूपमान होने वाला थी वामन देव को दिखलाना चाहिये ॥४२॥

सुवर्णमिव लांकास्तोन् सुवलाम्बरधर विशुम् ।
 मृगचमधरञ्चापि दिध्ययज्ञापवोत्तिनम् ॥४३
 आज्यस्थालि न्यसेत्पाश्वे वेदाश्च चतुरः पुनः ।
 वामपाश्वेऽस्य सावित्रो दक्षिणे च सरस्वतीम् ॥४४
 अग्रे च ऋषयस्तद्भक्त्याऽर्चिः पंतागहेपदे ।
 कार्तिकेय प्रवक्ष्यामि तर्जुणादित्यसप्रभम् ॥४५
 कमलोदरवर्णाभि कुमार सुकुमारकम् ।
 दण्डवंशनीरकीर्त्त मयूरवरवाहनम् ॥४६

स्थापयेत्स्वेष्टनगरंभुजान्द्वादश कारयेत् ।
 चतुर्भुजः खवंटे स्याद्द्वैशामै द्विवाहुकः ॥४७॥
 शशितः पाशस्तथा खड्गः शूलं तथैव च ।
 वरदश्चैकहस्तः स्यादथचाभयदो भवेत् ॥४८॥
 एतेदक्षिणतोर्जयाः केयूरकटकोज्वलाः ।
 धनुः पताकामुष्टिश्च तर्जना तु प्रसारिता ॥४९॥

श्री वामन देव का स्वरूप बड़ा पर ऐसा प्रदर्शित करे मानो वे तीनों लोको की रचना कर रहे हा । सुबल वर्ण वाले वस्त्रो के घागी-विभु-मृग के चर्म के धारण करने वाले—दिव्य यज्ञोपवीत में सम्पन्न वामन देव के स्वरूप को दिखाना आवश्यक है । उनके समीप में आज्य की स्थाली रखे और चारो वेदों को भी स्थापित करे । इनके वाम पार्श्व में सावित्री देवी और दक्षिण पार्श्व में सरस्वती देवी की उपस्थिति दिखानी चाहिए ॥४३॥ ४४॥ आगे की ओर उन पितृमह के पद में उत्ती तरह से श्रृंगारण की रचना करनी चाहिये “अथ हम स्वामि कार्तिकेय के तरुण आदित्य के समान प्रभा वाले स्वरूप का वर्णन करने हैं ॥४५॥ कार्तिकेय प्रभु का वर्ण कमल के उदर वी प्रभा के तुरप है । और वह कुमार अत्यन्त ही सुकुमार हैं कुमार का स्वरूप दण्डक एव कीर्को से समायुक्त है एव श्रेष्ठ मयूर के वाहन वाला है ॥४६॥ अपने अभीप्सित नगर में उनकी स्थापना करे तथा द्वादश भुजाओ की कल्पना करे । सर्वट में चार भुजाओ वाला स्वरूप—वत तथा प्राप्त में ही बाहुओ वाला स्वरूप—प्रदर्शित करना चाहिये । शशित—पाश—खड्ग—शर—शूल—ये आयुध हाथों में धारण करने वाला स्वरूप ही और एक हाथ वरदान देने वाला एवं एक हाथ अभय के देने वाला होना चाहिये । ये सब दक्षिण भाग में जानने चाहिये—केयूर, कटकोज्वल, धनुष, पताका, मुष्टि तथा तर्जनी प्रसारित हौनी चाहिये ॥४७—४९॥

सोचक तास्रचूडञ्च वामहरत्तेतु भस्यते ।

द्विभुजस्य करे शक्तिवामि स्यात् कुक्कुटोपरि ॥५०

चतुर्भुजे शक्तिपाशो वामतो दक्षिणे त्वसिः ।

वरदोभयदोवापि दक्षिणः स्यात्तुरीयकः ॥५१

विनायकं प्रवक्ष्यामि गजवक्त्रं त्रिलोचनम् ।

लम्बोदरं शूर्पं कर्णं व्यालयज्ञोपवीतिनम् ॥५२

ध्वस्तकर्णं बृहत्तुण्डमेकदंष्ट्रं पृथुदरम् ।

स्वदन्त दक्षिणकरे उत्पलञ्चापरे तथा ॥५३

मोदकं परशुञ्चैव वामतः परिकल्पयेत् ।

बृहत्वात् क्षिप्तवदनं पीनस्कत्थाङ्घ्रिपाणिकम् ॥५४

युक्नन्तु ऋद्धिबुद्धिभ्यामधस्तान्मूपकान्वितम् ।

कात्यायन्या प्रवक्ष्यामि रूपं दशभुजं तथा ॥५५

त्रयाणामपि देवानामनुकारानुकारिणीम् ।

जटाजूटसमायुक्तामङ्गन्दुकुत्तलक्षणाम् ॥५६

येटक-ताम्रबुड ये दोनों वाम हस्त में प्रशस्त होने हैं । जो दो भुजाओ वाले स्वरूप के वाम हस्त में कुक्कुट के ऊपर में शक्ति धारण करावे । चतुर्भुज स्वरूप में वाम भाग में शक्ति और पाश तथा दक्षिण हाथ में शक्ति धारण करावे वर देने वाला और अभय का दान करने वाला भी दक्षिण हाथ ही तुरीयक (चतुर्थ) होना चाहिये ॥५०, ५१॥ अब श्री विनायक के स्वरूप का वर्णन मैं करता हूँ जिनका गज के समान मुख है और तीन लोचन है । भगवान् विनायक लम्बे उदर वाले-शूर्प के सदृश कर्णों में युक्न और व्यालयो के यज्ञोपवीत को धारण करने वाले हैं, ध्वस्त कर्णों वाले—बृहत् तुण्ड से युक्त—एक दाँत में समुत्-पृथु (विशाल) उदर वाले हैं । यह अपने दाहिने हाथ में अस्वाद लेने वाले और दूसरे हाथ में उत्पल रखने वाले हैं ॥५२, ५३॥ मोदक और परशु का ग्रहण करना वाम हस्त में कल्पित करना चाहिये वृद्ध होने के कारण में क्षिप्त वदन वाले और पीन (परिपुष्ट) स्वयं-चरण और पाणि (हाथ) वाले

हैं तथा श्रद्धि और बुद्धि दोनों से युक्त है। इनके नीचे मूषक वाहन के रूप में स्थित है अतः उससे समन्वित है। इसके उपरान्त मैं भगवती का वात्स्यायनी देवी के विषय में वर्णन करता हूँ—इनका स्वरूप दो भुजाओं वाला है ॥५१, ५५॥ यह देवी तीनों बड़े देवों के अनुकार का अनुकरण करने वाली है। इनकी भी आकृति जटा जुटे से समायुक्त है तथा अर्धचन्द्र के द्वारा किये हुए लक्षण में युक्त है ॥५६॥

लोचनत्रयसम्भ्रता पद्मन्दुमदृशाननाम् ।
 अतसीपुष्पसङ्काशा सृप्रतिष्ठा सुलोचनाम् ॥५७
 तव्योवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम् ।
 सूचारुदतनात्मद्वत्पीनोन्नतपयोधराम् ॥५८
 त्रिसङ्गस्थानसस्थाना महिषामुग्मदिनीम् ।
 त्रिशूला दक्षिणे दद्यात् खड्गं चक्रं तथैव च ॥५९
 तीक्ष्णं बाणं तथा शक्तिं वामतार्जपि निबोधत ।
 शेटकं पूर्णचापञ्च पाशमङ्कूशमेव च ॥६०
 घण्टावा परशुञ्चापि वामतः सन्निवेशयेत् ।
 अधस्तान्महिषन्तद्विदिशि स्क प्रदर्शयेत् ॥६१
 शिरच्छेदोद्भव तद्वददानय खड्गपाजितम् ।
 रक्तरक्तीकृताङ्गं च रक्ताविस्फारतेक्षणम् ॥६२
 वेष्टितं नागपाशेन भ्रुकुटीभीषणाननम् ।
 वमद्रुधिरवक्त्रञ्च देव्या सिंह प्रदर्शयेत् ॥६३

वा-वायनी देवी तीनों लोचनों से सुसम्पन्न—पद्म तथा चन्द्रमा के समान मुख वाली—भगवती के पुष्प के तुल्य स्वरूप से युक्त—सुन्दर प्रतिष्ठा में समन्वित एवं शक्ति लोचनों वाली हैं। नूतन योवन से युक्त—सम्पूर्ण आभरणों में विभूषित—सुन्दर दाँतों वाली और उसी तरह पीन एवं उन्नत पयोधरों से युक्त है ॥५७, ५८॥ तीनों भङ्गों से युक्त स्थानों का संस्थान वाली और माहृषामुर के मर्दन करने वाली हैं। इनके दक्षिण

कर में त्रिशूल धारण करावे और छद्म एवं चक्र भी देवे । तीक्ष्ण वक्र तथा शक्ति को वाम वर में धारण कराना चाहिए । इनके प्रतिरिक्त वाम भाग में ऐदर-पूर्णनाप-नाश-अवुश-घण्ट-परशु ये भी सब निवेशित करने चाहिए । इन देवी के चरणों के नीचे के भाग में दो शिरो वाले महिषासुर को भी प्रदर्शित करे ॥५६, ६०, ६१॥ शिर के छेदन होने से ममुत्पन्न रक्त से स्वीकृत अङ्गो वाला—रक्त से विस्फारित नेत्री से सयुत—छद्म हाथ में धारण किये हुये उस दानव का स्वरूप दिखाना चाहिये ॥६०॥ नाग नाश से वेष्टित—घ्र कुटी से मयुत भीषण आनन वाता—घटते हुए रुधिर से युवन मुख वाला देवी का वाहन सिंह भी देवी की प्रतिमा के साथ ही समीप में प्रदर्शित करना आवश्यक है ॥ ६३ ।

देव्यास्तु दक्षिण पाद सम सिद्धोपरि स्थितम् ।

किञ्चिद्दूर्ध्वं तथा वाममगुष्ठ महिषोपरि ॥६४

स्तूयगानक्षु तद्रूपममरे सन्निधेशयेत् ।

इशानी मुरराजस्य रूप वक्ष्ये विशेषतः ॥६५

महस्वनघन देव मत्तवारणसस्थितम् ।

पृथूरुदधोवदन सिंहस्कन्ध महाभुजम् ॥६६

त्रिगीटवृण्डलधर पीवरोः भुजेक्षणम् ।

वज्रात्पलधर नङ्गनानाभरणभूषितम् । ६७

पूजित वेवगन्धर्वरसरागणसहितम् ।

रुद्रनागरधारिण्यः सिन्धु पाश्वे प्रदशयेत् ॥६८

सिंहासनगतश्चापि गन्धर्वगणमयुतम् ।

दन्द्राणी वामतश्चास्य वृष्टर्पादुनानधारिणीम् ॥६९

देवी का दक्षिण पाद निः के ऊपर स्थित होना है उसके कुछ ऊपर वाम पाद का म गुष्ठ महिषासुर के ऊपर समवस्थित होना चाहिए । ॥६४॥ ऐसा देवी का स्वरूप अमर शशो के द्वारा सम्बुधमान हाता हुआ

सन्निवेशित करना चाहिये । अब इसके उपरान्त मैं मुरराज महेन्द्र देव के स्वरूप का वर्णन करता हूँ—इन्द्रदेव का स्वरूप सहस्र नयनों वाला है तथा मत्त गजेन्द्र पर समारूढ़-पृथु (विशाल) ऊँह, भुज और वक्षस्थल से समन्वित है । सिंह के समान म्कन्धो वाला—महान् भुजाओं से युक्त, शिरोट एव कुण्डनों के धारण करने वाला—पीवर क्रूर, भुजा एव ईक्षणो वाला है । वषट् एवं उत्पन्न का धारी तथा उसी भाँति अनक प्रकार के आभरणों से विभूषित—देवों और गन्धर्वों से पूजित—अपनरा गणों के द्वारा सेवित इन्द्र का स्वहृष करके उनके पार्श्व में छत्र एवं चमरो के धारण करने वाली स्त्रियों को प्रदर्शित करना चाहिए ॥६४-६५॥ इन्द्र देव को तिहामन पर मस्थित—गन्धर्व गण के द्वारा सेवित निदेशित करे और इनके दाम भाग से उत्पन्नो के धारण करने वाली इन्द्राणी को कल्पित करना चाहिए ॥६६॥

१२४—नानादेव प्रतिमा प्रमाण वर्णन

प्रभाकरस्य प्रतिमामिदानीं शृणुत द्विजाः ! ।
 रथस्थ कारयेद्देव पद्महस्त सुलोचनम् ॥१
 सप्ताश्वञ्चैकचक्रञ्च रथ तस्य प्रकल्पयेत् ।
 मुकुटेन विचित्रेण पद्मगभसमप्रभम् ॥२
 नानाभरणभूषाभ्या भुजाभ्या घृतपुष्करम् ।
 सन्ध्रस्थे पुष्करे ते तु लीलयेव धृतेसदा ॥३
 चालकञ्छन्नवपुष वर्वाचाच्चद्रायु दशयत् ।
 वस्त्रभुग्मसमोपेत चरणी तेजसावृती ॥४
 प्रतिहारो च कतव्यो पार्श्वयोर्दण्डपिङ्गलो ।
 कतव्यो यद्गहस्तौ तौ पार्श्वयोः पुष्पावुभौ ॥५
 लेपनीकृतहस्तञ्च पार्श्वे दातारमव्ययम् ।

नानादेवगणैर्युत्तमेव कुर्याद्विदवाकरम् ॥६
 अरुणः सारथिश्चास्य पिचिनीपत्रसाल्मभः ।
 अश्वौ सुवलयग्रीवावन्तस्थौतस्य पाश्वर्योः ॥७

महर्षि प्रवर सूत्रज्ञो ने कहा—हे द्विजगणो ! अब आप लोग प्रभा-
 कर की प्रतिमा के स्वरूपादि के विषय का श्रवण करिए । सूर्यदेव को रथ
 में विराजमान—पद्म हाथ में धारण किये हुए एव सुन्दर लोचनो वाला
 प्रदर्शित करना चाहिए । १॥ सूर्य का रथ सात अश्वो से समन्वित एव
 एक चक्र वाला पारकल्पित करे । शिखर एक विन्निभ मुकुट से समन्वित
 और पद्म के मध्य भाग के समान प्रभा वाला करे ॥२॥ अनेक आभरण
 और भूषणों से युक्त भुजाओं के द्वारा पुष्करों को धारण करने वाले और
 सदा लीला से ही स्वर्गो पर पुष्करों को धारण किये हुए इन्द्र देव का
 स्वरूप है । कर्णों पर चित्रों में चोलक से सवृत इन्द्र का स्वरूप दर्शित
 करना चाहिए । दोनों चरण तेज से गमावृत होवें और दोनों पार्श्व-
 भागों में दण्डा और पिङ्गल ये दोनों प्रतिहारी करने चाहिए । ये दोनों
 पुरुष हाथों में खड्गधारा नियोजित करने चाहिए । पार्श्व में ही हाथ से
 सेखनी धारण करने वाले अश्वय धाता को दर्शित करावे । इस प्रकार से
 नाना प्रकार के देवगणों में युक्त भगवान् स्वर्ग भास्कर को प्रदर्शित
 करना चाहिये ॥ २, ४, ५, ६ ॥ इस दिवाकर सारथि अरुण है जो
 पिचिनी पत्र से सदृश है । इसका पार्श्वों में सुवलय ग्रीवा वाले अन्तस्थ दो
 अश्व हाथ चाहिए ॥३॥

भुजङ्गरज्जुभिवद्धाः सप्तधावा गश्मसप्तगुताः ।
 पद्मस्थ वाहनस्थ वा पद्महरत प्रकल्पयेत् ॥८
 बहनेस्तु लक्षण वक्ष्ये सवरात्मफलप्रदम् ।
 दीप्तं सुवर्णवपुषमधंचन्द्रानने स्थितम् ॥९
 यातार्कमदृष्टा तस्य वदनं चापि दर्शयेत् ।
 शनीपवीतित देव लम्बपूचधर तथा ॥१०

कमण्डलु वामकरे दक्षिणे त्वक्षसूत्रकम् ।
 ज्वालावितानसयुक्तभजवाहन मुञ्जलम् ॥११
 पुण्डस्थ चाग्नि कुर्वीत म्छिन सप्तशिस्तान्वितम् ।
 तथ यमं प्रवक्ष्यामि दण्डपाशधर विभुम् ॥१२
 महासहिषमारुह कृष्णाञ्जनचयोपमम् ।
 सिंहासनगतञ्चापि दीप्ताग्निममलोचनम् ॥१३
 महिषद्वित्रगुमश्च कराला किङ्कुराश्नया ।
 समस्ताद्दशयत्तस्वसौम्यामोम्यान्मुरामुरान् ॥१४

शशियो से (वागडोगे म) सयुक्त मान उनके अश्व हैं जो कि मुञ्जहो की रज्जुओ म बद्ध है । अश्व देव का पदम पर स्थित—वाहन के ऊपर समाहृद् और पदम हाथ में दण्ड कर्म वाले पारकल्पित करना चाहिए ॥ ८ ॥ अब अग्निदेव के च-ग का वर्णन करेगा जो सम्पूर्ण कामनाओ क फल को देने कर्म करने हैं । इनका स्वस्व परम दीप्ति में युक्त—मुक्तां च त्वा दपु यता जयं त-द क आसन पर सम्बस्थित है ॥ ९ ॥ वाग मूर्धे च मदन इनका मुख प्रदक्षिण करे । इन देव को यज्ञोपवीत गारी तथा लम्बी दाड़ी म गतुन दिखाना चाहिए ॥ १० ॥ इनके वाम कर में कमण्डलु—दक्षिण हस्त म अक्षसूत्र—जब लासो क दिवान में मयुक्त और उज्ज्वल एव अज के बाहन वाला कल्पित करना चाहिए ॥ ११ ॥ मस्तक पर मान शिखाओ म युक्त इन अग्निदेव को पुण्ड में सम्बस्थित करे । इनके अतन्तर दण्ड और पाश के धारण करने वाले त्रिषु यमदेव के स्वस्व का वर्णन करेगा । १२ ॥ महान् विशाल महिष के रूप समाहृद्—कृष्ण अञ्जन क समुदाय के समाप्त काले वर्ण वाला—विहासन पर स्थित—दीप्त अग्नि के तुला लोचनो वाला यमराज का स्वस्व है ऐसा ही दर्शित करना चाहिए । महिष और चित्र गुप्त ये इन देव के परम उराल किङ्कुर है त्रिनको कि इनक चारो धोर दिगावे ।

और अन्य तीसरे स्वरूप वाले अमुरों को ममराज के सब ओर दितलाना चाहिए ॥१३॥१४॥

राक्षसेन्द्र तथा वक्ष्ये लोकपालञ्च संशृतम् ।
 नरारूढ महामाय रक्षोभिवंहुभिवृतम् ॥१५
 खड्गहस्त महानोल कज्जनाचलसन्निभम् ।
 नरयुक्तविमानस्थ पीताभरणभूषितम् ॥१६
 वरुणञ्च प्रवक्ष्यामि पाशहस्त महाबलम् ।
 शङ्खस्फटिकवर्णाभ सितहाराम्बरावृतम् ॥१७
 भूपासनगतं शान्त किरीटाङ्गदधारणम् ।
 वायुरूप प्रवक्ष्यामि धूमन्तु मृगवाहनम् ॥१८
 चित्राम्बुधर शान्त युवान कुञ्चितभ्रुवम् ।
 मृगाधिरूढ वरद पनाकाध्वजसयतम् ॥१९
 कुक्षेञ्च प्रवक्ष्यामि तुण्डलाभ्यामलकृतम् ।
 महोदर महाराय निष्पष्टकममन्वितम् ॥२०
 गुह्यकेवहुभियुक्त धनव्यङ्करस्तथा ।
 हारकेयूररचित सिताम्बरं सदा ॥२१
 गदाधरञ्च पतैव्य वरदं मुकुटान्वितम् ।
 नरयुक्तविमानस्थ एव रीत्या च कारयेत् ॥२२

अब उसी तरह से राक्षसों के स्वामी और लोकपाल संशृत के विषय में वर्णन करेगा । यह तर पर समाखड-महती भाषा से सम्मान बहुत से राक्षसों से सबूत-भयान नील वर्ण वाले-हाथ में खड्ग को धारण किय हुए-काजल के पवत के समान म्पित-नर स युवन विम न में स्थित है तथा पीत वर्ण के आभरणों से समन्वित इनका स्वरूप होता है ॥१५॥१६॥ अब वरुण देव के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—यह हाथ में पाश को धारण करने वाले-महान् बलवान्—शर घोर स्फटिक मणि के वर्ण के तुण्ड वर्ण वाले युवन हुए एव वस्त्रों से समावृत-क्षण

(मत्स्य) के आसन पर स्थित—परम शान्त और किरीट तथा अङ्गदो के धारण करने वाले हैं । प्रथम वायुदेव के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—वायु की वथा धूम्र होता है तथा मृग के वाहन पर बिराजमान रहा करते हैं । इनका स्वरूप विचित्र वस्त्रों के धारण करने वाला—परम शान्त—युवावस्था में युवन कुण्डल भ्रूवी वाला—मृग पर समाधिस्थ—वन्दन प्रदान करने वाला—गन्धार्वा तथा प्रदत्ता से युक्त होता है—ऐसा ही इनका स्वरूप प्रदर्शित करना चाहिए इसके अन्तर्गत कुम्भ के स्वरूप का वर्णन करता है—यह पुण्ड्रों से अलंकृत हुआ है—इनका स्वरूप महात् उदर वाला—महात् वक्रा वाला—आठ निधियों में समन्वित—बहुत—में युवाकों से युक्त जो कि धन क स्थय करने वाले हैं—यदा के धारण करने वाला—बन्धने वाला—मुकुट में मयूत और जगो से युक्त विमान में समन्वित होता है । इसी भाग में कुम्भ के स्वरूप को प्रदर्शित करता चाहिये ॥१७-२० ॥

तथैवेश प्रवश्यामि ध्रुवत ध्रुवनेशमम् ।
 त्रिधानः पितृन्व पक्ष दृपणन प्रभूम् । ३
 मातृणा त्वजग वक्ष्ये यथावत्पुणवश
 प्रहाराणी वक्ष्यामशो चतुर्वक्त्रा चतुर्भुजा ॥२४
 हुमाभिस्तदा कतंदा मासमूनकमण्डलु ।
 महेश्वरस्य रूपेण तथा माहेश्वरी मता ॥२५
 जटा मृन्दुसपुत्रता वृषस्था चन्द्रशेखरा ।
 कपालस्य वपट्वाङ्गवपदादद्या चतुर्भुजा ॥२६
 कुमाररूपा कौमारी मयुस्वरयाहता ।
 रक्तवस्त्रधरा त्र्यम्बकविनयरा मता ॥२७
 द्वारकेयूरसम्पन्ना कृकवाकुधरा तथा ।
 वृणवी विष्णुसदृशा गरुडे समुपस्थिता ॥२८
 चतुर्बहिश्च धरता शङ्खचक्रगदाधरा ।

सिंहासनगता वापि बालकेन समन्विता ॥२४
 चाराहीञ्ज प्रवक्ष्यामि महिषोपरि सस्थिताम् ।
 यराहसदृशी देवी णिरश्चामरधारिणी ॥३०

इसी प्रकार से भगवान् ईश के स्वरूप का मैं अब वर्णन करता हूँ—शिव का स्वरूप एकदम धवल होता है तथा इनके नेत्र भी प्रवेत हुआ करते हैं । शिव के हाथ में त्रिशूल होता है—तान नेत्रों से मुक्त—धूपवाहन पर स्थित—ऐंग मह प्रभुदेव होते हैं—ऐसा ही इनका स्वरूप शक्ति करावे । अब इसके अनन्तर मातागण के स्वरूप का वर्णन किया जाता है और इनके स्वरूप को यथा रीति से अनुपूर्वांश बतलाया जाता है—यह प्रह्लाणी-दह्या के महज-चार मुण्डो वाली-चार भुजाओं से युक्त इन पर समधिकुब्-अक्षमूय एवं कमण्डलु से युक्त ही इनका स्वरूप बतलाना चाहिए । भगवान् महेश्वर के रूप के साथ उसी भाँति माहेश्वरों को भी माना गया है । यह भी जटा और मुकुट से समुत्-वृष पर विराजमान-मस्तक पर चन्द्र को धारण करने वाली-चारो भुजाओं में प्रथमः कपाल—सूल—स्रद्धाङ्ग और धरवान रक्षा करते हैं—ऐसी ही चार भुजाओं वाली है ॥ २३, २४, २५, २६ ॥ मयूर के श्रेष्ठ वाहन कीमारी कुमार के स्वरूप में सुमम्पन्न है—रक्त वस्त्रों को धारण करती हुई सूल और शोषण का धारण करने वाली इसकी माना गया है ॥ २७ ॥ हार तथा केयूरा क धारण करती हुई कृकान्तु धारिणी है—सिंहासन पर स्थित रहती हुई बालक से समन्वित है । चार बाहुओं वाली-वरदान प्रदान करती हुई शम्भु, चक्र और महाधारिणी है । महिष पर समारूढ़—यराह के महज यह देवी शिवगण सह महेश्वर पर चायरी को धारण करती है ॥ २८-३० ॥

गङ्गानक्षधरा तद्वद्वानवैन्द्रविनाशिनी ।

इन्द्राणीमिन्द्रगहदी वज्रशालगदाधराम ॥३१

गजासनमना देवी लीननवैदुमिधृताम् ।

तप्तकाञ्चनरणीया दिग्गामण्यविताम् ॥३२

तीक्ष्णखड्गधरो तद्वद् वदये योगेश्वरीमिमाम् ।
 दीर्घाजिह्वानुर्व्यकेलीमस्त्रिखण्डेष्व मण्डिताम् ॥२३
 दष्टाकटाक्षनदना कुट्याञ्चैव कृशांदरीम् ।
 कपालमालिनीं देवीं मुण्डमालाविभूषिताम् ॥२४
 कपाल वामहस्ते तु सासगोणितप्रितम् ।
 मस्त्रिष्कावतञ्चविभ्राणा शवितका दक्षिणेकरे ॥२५
 गृध्रस्था वामनस्था वा नियामा विनतीदरी ।
 करालनदनातद्वत्कलाभ्या म। त्रिलोचना ॥२६

यह महिा के ऊपर विराजमाना वराह के ही तुल्य स्वरूप वाली देवराहो महा पीर वक्र के धारण करने वाली है और दानवेन्द्रो को उसी तरह से विनाश करती है । इन्द्र के महण वर्य शत्रु और महा की धारण करने वाली इन्द्र की है । २१ । वक्र के आसन पर स्थित—बहुत से लोचनों में युक्त यह देवी डोरी है—एक मृषण के समान वर्ण की आभा में युक्त - दिग्ध शायकी म मण्डित एव विभूषित—तीक्ष्ण खड्ग की धारण करने वाली यह इन गौड़ियों का ही वर्णन करूँगा । यह योगेश्वरी देवी मन्वी जिह्वा वाली—उर्ध्व की ओर जाने वाले केशों से युक्त और अश्वि खण्डों से मण्डित है । २२, २३ । दष्टाओं के द्वारा कपाल वदन वाली इन कुल उदर में मग्न देवों को दक्षित करनी चाहिए । कपाल मालिनी देवी मुण्डो की मालाओं से घोषित है । यह सास और गोणित से परिपूर्ण कपाल की अपने बाँधे हाथ में महण किया करती है तथा वह मस्त्रिष्क से अस्त्र होता है एव दक्षिण कर से शक्ति का धारण करने वाली है । गृध्र पर स्थित—वामन पर मण्डित—विनाशक वाली—त्रिलोचन म नर उदर में युक्त—कराल मुख वाली और उसी भाँति दमक स्वरूप को तीन नरेशों वाला करना चाहिए । २४ । २५ । २६ ।

चामुण्डा वद्धघण्टा वा द्वीत्रिचमधरा शुभा ।
 दिग्वासाः कालिका तद्द्रासभस्था कपालिनी ॥३७
 सुरक्तपुष्पाभरणा वर्धनी ध्वजसयुता ।
 विनायकञ्च कुर्वीत मातृणामन्तिके सदा ॥३८
 वीरेश्वरश्च भगवान् वृषारूढो जटाधरः ।
 योणाहस्तत्रिशूली च मातृणामग्रतो भवेत् ॥३९
 त्रिय देवी प्रवक्ष्यामि नवे वयसि सस्थिताम् ।
 सुषोवना पीतगण्डा रक्तोष्ठी कुञ्चितभ्रुवम् ॥४०
 पीनोन्नतस्ततटा मणिकुण्डलधारिणीम् ।
 गुण्डलमुख तस्या शिरसो मीमन्तभूषणम् ॥४१
 पद्मस्वस्तिकशङ्खैर्वा भूषिता कुण्डलालकः ।
 कञ्चुकावद्गमाशौ च हारभूषो पयोधरो ॥४२

चामुण्डा—वद्धघण्टा—द्वीत्रि (गज के) चम को धारण करने वाली
 अर्थात् नग्न—कालिका—रासभ गधा पर मंस्थित—कपाली के धारण
 करने वाली—सुन्दर रक्त वर्ण वाले पुष्पों के आभरणों से समलकृत—
 वर्धनी—और ध्वज से समुत कपाल मालिनी आदि का स्वरूप हाता है ।
 मातृ गणों व समोप मे सदा भगवान् विन यरु को अवश्य ही समवस्थित
 करना चाहिए । और वीरेश्वर भगवान्—वृष पर समाहूढ—जटा जूट के
 धारण कराने वाले—हाथ मे बीणा रखने वाले—त्रिशूल धारी उन मातृ-
 गणों के आगे विराजमान होना चाहिए ॥३७, ३८, ३९॥ अब हम श्री
 देवी के स्वरूप के विषय मे वर्णन करेगे जो कि नूतन वय मे सस्थित
 है—सुन्दर योवन मे सम्पन्न—पीतगण्डो वाली—रक्त आँठों से समुत—
 कुञ्चित भौंहो वाली—पीत एवं उन्नत स्तननट से युक्त—मणि जटित
 कुण्डलों के धारण करने वाली है । उन श्री देवी का मुख सुन्दर मण्डल
 वाला है तथा शिरसो मीमन्त भूषण युक्त है ॥४०, ४१॥ पद्म, स्वस्तिक,
 शंखों के द्वारा अथवा कुण्डल आर अलकों के द्वारा भूषित है । कञ्चुकी

से आवद्ध यात्रो बाने—हार की भूषा में भूषित श्री देवी के दोनों पयोधर हैं ॥ १२ ॥

नामहस्तोपमौ बाहू केयूरकटकोज्ज्वनौ ।
 पद्म हस्ते प्रदात य श्याफला दक्षिणे भुजे ॥१३
 मैखनाभरणा तद्वत्तप्तकाञ्चनसप्रभाम् ।
 नानाभरणसम्पन्ना शोभतःस्वरधारिणीम् ॥१४
 पाश्वतस्था- स्त्रियः काट्यर्वाश्चामरव्यप्रपाणयः ।
 पद्मामनापावष्टा तु पद्मसिंहासनस्थिता ॥१५
 करिष्वास्ताप्यमानागौभृङ्गाराभ्यःसप्तकशः ।
 प्रक्षालयन्ती करिणीभङ्गानाभ्यातथापरी ॥१६
 स्तूपमाना च लोकेशस्तथा गन्धबगुह्यन् ॥
 तथैव दक्षिणी कार्या सिद्धामुग्निदेविता ॥१७
 पाश्चया, कलशा तस्यास्तोरणे देवदानवाः ।
 नागाःशेव तु रत्नव्याः खड्गस्रोटकधरिण्यः ॥१८
 अधस्तात्प्रकृतिस्तेषा नाभेरु वन्तु पीरुषी ।
 फणाञ्च मर्दिने कलत्र द्विजिह्वावहव, ममा, ॥१९

नाग (गज) के हस्त (मू ड) न मद्य दोनो बाहुरे हैं जो केयूर और कटक आभूषणों से समुज्ज्वल हैं । इनके हाथ में पद्म अर्पित करे तथा दांश्रण कर में श्री फल देना चाहिए तप्त काञ्च के प्रमा वाली मेखला के आभरण से युक्त—अनेक भूषणों से समुत्-परम शोभन अम्बरों के धारण करने वाली अगदनी श्री देवी का स्वरूप होता चाहिए । उनके पार्श्व म म में चामरों से युक्त इन्द्रो वाली शिखरों का नियोजन आवश्यक है । वह देवी पद्म के आसन पर उपविष्ट होवें तथा पद्मों के द्वारा निमित्त सिंहासन पर समवस्थित है । वह देवी कारियों के द्वारा स्नायमाना होनी है । अनेक बार भृङ्गारों के द्वारा शालन करने हुए दोनों करी हैं तथा हमरे भृङ्गारों में क्षालन करन बाने है । लोकपालों के द्वारा

एव गन्धर्व और गुह्यको के द्वारा यह देवी स्तूपमान होनी हुई प्रदर्शित करे । इसी भाँति से सिद्धो और अमुरो के द्वारा निषेवित यक्षिणी को भी दिखलाना उचित होता है । उसके दोनो पार्श्व भागो मे दो कलश सस्थापित होने चाहिए तथा तोरण मे देव और दानवो को स्थित करे । खड्ग और खेटक के धारण करने वाले नागो की भी स्थिति करनी चाहिए । उनके नीचे के भाग मे प्रकृति होवे तथा नाभि के ऊर्ध्व भाग मे पौरुषी होनी चाहिए मूर्द्धा मे फणा दर्शित करे और सम द्वि जिह्व (सर्प) प्रदर्शित करने चाहिये ॥४२-४६॥

पिशाचा राक्षसाश्चैव भूतवेतालजातयः ।
निर्मासाश्चैव ते सर्वे रौद्रा विकृतरूपिणः ॥४०
क्षेत्रपालश्च कर्तव्यो जटिलो विकृताननः ।
द्विवासा जटिलश्च द्व्यंशगोमायनिषेवितः ॥४१
कपाल वामहस्ते तु धार वैशो समावृतम् ।
दक्षिणे शक्तिं का दद्यात्सुक्ष्मकारिणाम् ॥४२
अथात् सम्प्रवक्ष्यामि द्विभज वसुमायधम् ।
पार्श्वे चाश्वमुख तस्य मकरध्वजसदुतम् ॥४३
दक्षिणे पुष्पद्राणञ्च वामे पुष्पमय धनु ।
प्रीतिः स्याद्दक्षिणे तस्य भोजनापस्करान्विता ॥४४
रतिश्च वामपार्श्वे नु शयन मारसान्वितम् ।
पटश्च पटहश्चैव खरः कामानुरस्तथा ॥४५
पार्श्वतो जलरापी च वन नन्दनमेव च ।
मुशाभनश्च तस्यो भगवान् कसुमायुध ॥
गस्थानमोषद्वनत्रं स्याद्द्विष्मास्मितवधशकम् ॥४६॥
एतद्गुह्यं शतः प्रोचन प्रतिमालक्षण मया ।
विस्तरेण न शक्नोति बृहस्पतिर्ग द्विजा ॥४७

विशाच-रोधस-भूत-वेताल जाति वाले—ये छय निर्मा स, रौद्र धी, विकृत रूप वाले होने चाहिये । जटाधारी तथा विकृत आसन बान्ना क्षेत्रपाल भी यहाँ पर स्थापित करके दक्षित करे जो दिशाओं के चमन वाला (नग्न) जटिन कुत्ते और गौमायु (गीदड़) आदि में ऐसा निषेधित हो कि उनके साथ रुला रहे हो । उनके बाय हस्त में कपाल हो तथा उस का द्वार कंधो स समावृत हावे । दाहिने हाथ में क्रमुरो वं क्षत्र के करने वाली शक्ति का की दवे—एसा हो उनका स्वरूप दिखलावे । इसके अन्तर कर दो मुजाओ वाले कुमुमायुध कामदेव को दर्शित विय जाना है । उसके पाश्व में महाध्वज में मयुत अश्व मुख को मस्थित बन्ता चाहिए ॥५०-१३॥ उसके दाहिने हाथ में पूषो का बाण और बाय हस्त पुष्यमय धनुष होता चाहिये । उसके दक्षिण हस्त में सोम के उपकरणों से समन्वित प्रीति होना चाहिये । बाय पाश्व में रति और सार सम्बित शयन-गट-पटह-खर जो काम में अनुर हो दिखाना चाहिये । उसके पाश्व में जल की वापी और नन्दन वन दिखावे । इस प्रकार से भगवान् कुमुमायुध को सुन्दर शोभा से समन्वित प्रदर्शित करना चाहिये । कुमुमायुध क सम्मान में ईषद वक्त्र होना चाहिये और वह रिमल से युवक मूत्र कारपन कर । यह मैं उद्देश त कुमुमायुध आदि समस्त देवों की प्रतिमाओं का लक्षण बतला दिशा है । इन प्रतिमाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन करने की सामर्थ्य तो है द्विजगण । देवों क आचार्य वृत्स्वति में भी नहीं है ॥५१-२७॥

१०५-पीठिका लक्षण वर्णन

पीठिकालक्षण वक्ष्ये यथावदनुपूर्वंगः ।

पीठीच्छ्रय यथश्चच आगान् पाङ्का कायेत् ॥१

भूमद्विक प्रविष्टः स्याच्चतुर्भिर्जर्गामता ।

वृत्तोभागस्तथैतः स्याद्वृत्तः पटलभागतः ॥२
 भागैस्त्रिभिस्तथा कण्ठः कण्ठपट्टस्त्रिभागतः ।
 भागाभ्यामूर्ध्वपट्टश्च शेषभागेन पट्टिका ॥३
 प्रविष्ट भूमिकेक जगतीयावदेवतु ।
 निगमस्तु पुनस्तस्य यावद्वे शेषपट्टिका ॥४
 वारिनिगमनार्थं तु तत्रकार्य प्रणालकः ।
 पीठिकानान्तुसर्वासामेतत्सामान्यलक्षणम् ॥५
 विशेषान् देवताभेदान् शृणुष्व द्विजसत्तमाः ! ।
 स्थण्डिलं वाथ वापी वा यक्षी वेदी च मण्डला ॥६
 पूणचन्द्रा च यज्रा च पद्मावार्धशशिस्तथा ।
 त्रिकोणादशमोतासासस्थान वा नबोधत ॥७

महर्षि प्रवर श्री मृत जी ने कहा—अब मैं यथावत् आनुपूर्वी से पीठिका का लक्षण बतलाऊंगा । पीठिका की यथावत् ऊचाई और इसमें मीलक भागों को कराना चाहिए ॥१॥ उनमें एक भाग भूमि में प्रविष्ट होवे और चार भागों के द्वारा यह जगतीतल माना गया है तथा एक भाग वृत्त होना चाहिए और वृत्त पटल ये समागत होवे ॥२॥ तीन भागों के द्वारा कण्ठ—तीन भाग से कण्ठ पट्ट—दो भागों से ऊर्ध्व यह और शेष भाग से पट्टिका करे ॥३॥ जितनी भी जगती है उसमें एक-एक भाग प्रविष्ट है । फिर उसका जितना निगम है वह शेष पट्टिका है ॥४॥ जल के निगमन के लिये वह पर प्रणालक बनना आवश्यक है । समस्त पीठिकाओं का यह सामान्य लक्षण है ॥५॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! अब विशेष देवताओं के भेदों का श्रवण कर लो । स्थण्डिला—वापी—यक्षी—देवी—मण्डल—पूर्व चन्द्रा—यज्रा—पद्मा—अर्ध शशि—त्रिकोणा—दशमी है । अब उनका स्थान को समझ लेना चाहिए ॥६, ७॥

स्थण्डिला चतुर्भ्यामुदजिता मेटलादिभिः ।

वापीद्विमेगना जेया यक्षीची निमेष्वना ॥८

चतुस्त्रयायता वेदी न तां लिङ्गेषु योजयेत् ।
 मण्डलावर्तुलायात् मेखलागिर्मणप्रिया ॥६
 रक्ता द्विमेखलामये पूणचन्द्रा तु सा भवेत् ।
 मेखलानयसयुक्ता पदमावच्छिन्ना भवेत् ॥१०
 पोटशाखा भवेत्पद्मा किञ्चिद्ध्रुवा तु मूलतः ।
 तथैव धनुषाकरा साह चन्द्रा प्रशस्यते ॥११
 त्रिकूलसदृशीतद्वत् त्रिकाणाह्य ऊर्ध्वतोमता ।
 प्रागुदकप्रवणा तद्वत्प्रशस्तालक्षणा न्विता ॥१२
 परिवेषन्निभागेन त्रिगम तत्र कारयेत् ;
 विस्तार तत्प्रमाणञ्च मूलचाम्रे तताद्वतः ॥१३
 जलम य च कतव्यस्त्रिभागेन मुशोभनः ।
 लिङ्गस्याद्ध विभागेन स्त्रीत्येन समष्टिष्ठिता । १४
 मेखला ताल्यभागेन खानञ्चैत्र प्रमाणात् ।
 अथवा पादहान्तु गोभन कारयेत्सदा ॥१५

मण्डला चोत्तर द्वीपों है और वह मेखला आदि से रहित ही
 हुआ करती है । वाया की दो मेखलाएँ द्वीपों हैं तथा यक्षी की तीन मेख-
 लाएँ बनाई गयी हैं । येही चतुस्त्रयायता द्वीपों है और लिङ्गों से योजित
 नहीं करनी चाहिये । मण्डला जो द्वीपों है वह वर्तुला द्वीपों है मेखलाओं
 से मणप्रिया है ॥६, ६॥ जो दो मेखलाओं के मध्य में रखता है वह ही
 पूण चन्द्रा द्वीपों है । तीन मेखलाओं से मयुक्ता छँ काणों वाली वक्षिका
 द्वीपों है । पोटशाखा वाली पद्मा वहीं जाती है । जो मूल से कुछ
 ऊर्ध्व जाती है तथा धनुष का आकार वाला द्वीपों है वह साधं चन्द्रा
 प्रशस्त कही जाती है । इसी तरह से त्रिकूल के सदृश त्रिकोणा ऊर्ध्व
 भाग से मानो गयी है । इसी भाँति में प्राग् और उदक् की ओर जो
 प्रवणा द्वीपों है वह लक्षणा से अन्वित प्रशस्त कही जाती है । वहा पर
 परिवार निर्णय तीन भागों से करना चाहिए । विस्तार और उसका

प्रमाण मूत्र मे—अग्रभाग मे और ऊर्ध्व मे होता है ॥१७०—१७१॥ जल का म ग तीन भाग से परम शोभन करना चाहिए । लिङ्ग के अर्ध विभाग से मूत्रना से समधिष्ठित उसके तीन भाग से और उसकी खुदाई के प्रमाण स अथवा सदा एक पाद से तीन शोभा से युक्त मेखना करानी चाहिए । ॥१४, १५॥

उत्तरस्थ प्रणालञ्च प्रमाणादधिकारयेत् ।
 स्थण्डिनायामधारोग्य धन धान्यञ्च पुष्कलम् ॥१६
 गोप्रदा च भवेद्यक्षी वेदी सप्तप्रदामवेत् ।
 मण्डलाया भवेत्कीर्तिर्वन्दापूर्णाचन्द्रीका ॥१७
 अयु प्रदा भवेद्वज्रा पद्मा सोमाग्यदा भवेत् ।
 पुत्रप्रदाधचन्द्रा स्यात् त्रिकोणशत्रुनाशिनी ॥१८
 देवस्य यजनार्थन्तु पीठिवादश कीर्तितः ।
 शीले शीलमयीदद्यात् पार्थिवे पार्थिवी तथा ॥१९
 दारजे दाहजा कुर्यात् मिथ्रामभ्रातथोयच ।
 नान्ययोनिस्तत्र तंया सदा शुभकलेप्सुभिः ॥२०
 अर्चयामाममन्दैर्धर्म लिङ्गायामसमन्तथा ।
 यस्य देवस्य या पत्नी ता पीठे परिवर्त्तयेत् ॥
 एतत्सर्वं समाख्यात समासात्पीठलक्षणम् ॥२१

उत्तरकी ओर स्थित प्रणाल प्रमाण से अधिक कराना आवश्यक होता चाहिए । स्थण्डिला मे आरोग्य धन तथा धान्य पुष्कल होता है ॥१६॥ यक्षी गोप्रो के प्रदान कराने वाली हुआ करती है और वेदी सप्तप्रति के देने वाली होती है । मण्डला मे कीर्ति का विस्तार होता है तथा पूर्ण चन्द्रिका वरदान का प्रदान कराने वाली हुषा करती है ॥१७॥ वज्रा नाम वाली का फल आयु की वृद्धि होता है और पद्मा परम सोमाग्य के प्रदान करने वाली हुआ करती है । जो अर्ध चन्द्रा है वह पुत्र देने वाली हुआ करती है और त्रिकोण से शत्रुनाश का फल प्राप्त करने का विनाश करना

होता है ॥१८॥ इस प्रकार से देवों के यजन करने के लिए पीठिका दश तरह की कीर्तित की गयी है । शैल में शैलमयी ही पीठिका देनी चाहिये और पार्थिव में पार्थिवी देवे । जो दाह (काष्ठ) से जात हो वहाँ पर दाहना करे तथा मिश्रित होवे तो पीठिका भी मिश्रा ही करनी चाहिये । जो शुभ फल की इच्छा रखने वाले पुंस्य हैं उनको चाहिये कि पीठिका अन्य योनि की कभी भी न करे और जैसी होवे वैसी ही सदा पीठिका की रचना करावे ॥१९॥ अर्थात् आत्म दैर्घ्य तथा लिङ्गा में अमम करे । जिस देव की जो पत्नी होवे उसको पीठ पर परिकल्पित करना ही चाहिए । यह सब शेष से हमने पीठिका लक्षण बतला दिया है ॥ २० ॥

१२६ — लिङ्ग लक्षण वर्णन

अघातः सप्रवश्यामि लिङ्गलक्षणमुत्तमम् ।
 मुस्तिरधश्च सुवणश्च लिङ्गं कुर्याद्विचक्षणं ॥१
 प्रासादस्य प्रमाणेन लिङ्गमानं विधोयते ।
 लिङ्गमानेन वा विद्यात् प्रासादं शुभलक्षणम् ॥२
 चतुरस्रं समैर्गर्भं ब्रह्ममूत्रं निपातयेत् ।
 वामेन ब्रह्ममूलस्य अर्च्चा वा लिङ्गमेव च ॥३
 प्रागुत्तरेण लीनस्तु दक्षिणा परयाधितम् ।
 पुरस्यापरदिग्भागे पूवद्वारं प्रकल्पयेत् ॥४
 पूर्वेषाञ्चापर द्वारं माहेन्द्र दक्षिणोत्तरम् ।
 द्वारं विभज्य पूर्वन्तु एकविंशतिभागिकम् ॥५
 तत्रा मध्यगतज्ञात्वा ब्रह्ममूलं प्रकल्पयेत् ।
 तस्यार्द्धं तु त्रिधाकृत्वा भागश्चोत्तरतस्त्यजेत् ॥६
 एव दक्षिणतस्त्यक्त्वा ब्रह्मस्थानं प्रकल्पयेत् ।
 भागाद्धं न तु यत्किञ्चिद् कायन्तदिह शस्यते ॥७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा— अब इसके अनन्तर मैं लिङ्ग का उत्तम लक्षण बतलाना हूँ । विचक्षण पुरुष को मुस्निग्ध और सुवर्ण लिङ्ग करना चाहिए ॥१॥ प्रासाद के प्रमाण से ही लिङ्ग के मान का विधान किया जाता है अथवा लिङ्ग के मान से ही प्रासाद शुभ लक्षण से सुवर्ण माना जाया करता है ॥ २ ॥ चतुरस्र (चौकोर) समर्गा में ब्रह्ममूत्र का निपात करना चाहिए । ब्रह्ममूत्र के वाम भाग से अर्घ्या प्रथवा लिङ्ग होता है ॥३॥ पूर्व और उत्तर में सौन दक्षिणा पर्याधिन पुर के अमर दिग्भाष में पूर्व द्वार को परिवर्तित करना चाहिये ॥४॥ पूर्व से अपर द्वार माहेन्द्र दक्षिणोत्तर द्वार का विभाजन करके पूर्व को एक विंशति भागित करे । फिर मध्यगत का ज्ञान प्राप्त करके ब्रह्म सूत्र को प्रकल्पित करना चाहिए । भाग के अर्ध से जो लिङ्ग हो वह ही यहा पर करना चाहिए और यही प्रकृत कहा जाता है ॥५, ६, ७॥

पञ्च भागविभक्त वा त्रिभागे ज्येष्ठश्चतुर्थे ।

भाजिते नवधागर्भे माध्यम पाञ्चभागिकम् ॥८

एकस्मिन्नेव नवधा गर्भे लिङ्गानि कारयेत् ।

सप्तसूत्रं विभज्याथ नवधा गभभाजितम् ॥९

ज्येष्ठमर्धकनीयोऽर्धं तथा मध्यममध्यमम् ।

एवगर्भः समख्यातस्त्रिभिर्भागैर्विभाजयेत् ॥१०

ज्येष्ठस्तु त्रिविधा ज्ञेय मध्यमन्त्रिदघन्तथा ।

वन्यम त्रिविधा तद्वत् लिङ्गभेदा नवैव तु ॥११

नाभ्यर्धमष्टभागेन विभज्याथ समं बुधैः ।

भागवयं परित्यज्य विष्कम्भञ्चतुरस्रम् ॥१२

अष्टास्रं मध्यम ज्ञेय भाग लिङ्गस्य वै श्रुवम् ।

विकीर्णं चैततो गृह्य कोणाभ्या नाञ्छयेद् बुधः ॥१३

अष्टास्रं कारयेत्तद्बुधैर्वमप्येवमेव तु ।

षोडशास्त्रीकृत पञ्चाङ्गनुल कारयेत्ततः ॥१४

पाँच भाग में विभक्त में अथवा त्रिभाग में जीद्युध कहा जाता है । गर्भ में नौ प्रकार से भाजित करने पर पाञ्च भागिक माध्यम होता है । एक ही में ती प्रकार से गर्भ में लिङ्गो को कदाना चाहिये । सम मूत्र का विभाजन करके इसके अनन्तर नौ प्रकार से गर्भ भाजित करे ॥८, ९॥ अर्ध ज्येष्ठ-अर्धकतीय तथा माध्यम होता है । इस प्रकार से गर्भ का समा-स्यान किया गया है । तीन भागों में विभाजन करना चाहिए । लिङ्ग के भेद नौ हुआ करते हैं— तीन प्रकार का ज्येष्ठ जानना चाहिये इसी तरह से मध्यम भी तीन प्रकार का है और तद्वत् कव्यस तीन तरह का होता है । लिङ्ग के नौ प्रकार के भेद हुआ करते हैं ॥१०, ११॥ नाभिके अर्ध भाग को अष्ट भाग से विभाजित करके इसके अनन्तर बुध पुरुषो को चाहिए कि सम तीन भागों का परिष्कार कर देवे । यह चतुर्धक विष्कम्भ होता है । आठ प्रसूत वाला मध्यम जानना चाहिये जो कि लिङ्ग का निश्चित भाग होता है । यदि विकीर्ण हो तो उससे ग्रहण करके बुध पुरुष को बीजों से नाञ्छित करना चाहिए ॥१२, १३॥ अष्टाक्षर करना चाहिये । सभी भाति तर्ध्व को भी करावे । पीछे पोटका स्त्रीकृत को वस्तुल कराना चाहिये । १४ ।

आयाम, तस्य देवस्य नाभ्या वै कुण्डलीकृतम् ।
 माहेश्वर त्रिभागन्तु ऊर्ध्ववृत्त त्ववस्थितम् ॥१५
 अद्यस्ताद्ब्रह्मभागस्तु चतुःस्रोविधीयते ।
 अष्टान्तोर्वेष्णवीभागो मध्यस्तस्यजटाहृतः ॥१६
 एव प्रमाणसयुक्तं लिङ्गवृद्धिप्रदम्भवेत् ।
 तथा-यद्रापि वक्ष्यामि गभमान प्रमाणतः ॥१७
 गभमानप्रमाणेन यल्लिङ्गमुचित भवेत् ।
 चतुर्धातद्विभज्याथ विष्वम्भन्तु प्ररल्पयेत् ॥१८
 देवतायतने मृषां भागत्रयविकल्पितम् ।
 अद्यस्तान्वतुरभन्तु अष्टाग्र मध्यभागतः ॥१९

पूज्यभागस्ततोऽर्द्धन्तु नाभिभागस्तथोच्यते ।
 आयामे यद्भुवेत्सूत्रं नाहस्य चतुरस्रके ॥२०॥
 चतुरस्राद्धं परित्यज्य अष्टास्रस्यतु यद्भुवेत् ।
 तस्याप्यर्द्धं परित्यज्य ततोवृत्तन्तु कारयेत् ॥२१॥

उस देव के आयाम नाभि में बुण्डली कृत है । माहेश्वर तीन भाग ऊर्द्धवृत्त अवस्थित है ॥ २० ॥ नीचे की ओर ब्रह्मभाग चतुस्र (चौकोर) विहित किया जाता है । अष्टास्र वैष्णव भाग उदाहृत कर दिया गया है । इस प्रकार से प्रमाण से तयुवन लिङ्ग वृद्धि का प्रदान करने वाला होता है । उसी तरह तो और भी गर्भमान प्रमाण से बतलाऊंगा ॥ १६ ॥ १७ ॥ गर्भमान के प्रमाण से जो लिङ्ग उचित होवे उसको चार भागों में विभक्त करके विष्कम्भ को प्रवर्त्तित करे ॥१॥ देवता के आयाम में सूत्र को तीन भागों में विशेष रूप से वर्त्तित करे । नीचे की ओर चतुरस्र-मध्यभाग में अष्टास्र इससे आधा पूज्य भाग है तथा वह नाभिभाग कहा जाया करता है । आयाम में नाह के चतुरस्रक में आयाम में जो सूत्र होता है उस चतुरस्राद्यं का परित्याग कर देवे और जो अष्टास्र होता है उसके भी अर्धभाग का परित्याग करके इसक पश्चान् फिर वृत्त को कराना चाहिये ॥१६॥२०॥२१॥

शिर प्रदादिण तस्य सक्षिप्त मूलतोऽन्यसेत् ।
 ज्येष्ठपूज्य भवेत्त्रिजङ्गमधस्ताद्विपुत्रञ्च यत् ॥२२॥
 शिरसा च सदानिम्नमनोज्ञ लक्षणान्वितम् ।
 सौम्यन्तु दृश्यते लिङ्गन्तद्वेष्टद्विप्रद भवेत् ॥२३॥
 अथ मूले च मध्ये तु प्रमाणेऽथत् । समम् ।
 एवम्विधन्तु यत्त्रिजङ्गं भवेत्तत्सावकार्मिकम् ॥२४॥
 अन्यथा यद्भुवेत्त्रिजङ्गं तदमत्सप्रचक्षते ।
 एवमन्मयधुर्यान् स्फाटिकं च यिव तथा ॥२५॥
 शुभं दारुमयञ्चापि यद्वा मनसि रोचते ॥ २६ ॥

उसका संक्षिप्त प्रदर्शित शिर मूनसे व्यास करना चाहिए । जो जोने को ओर विपुल है वह ज्येष्ठ पूज्य लिङ्ग होना चाहिये ॥२२॥ मदा शिर से विम्ब एव मणोज लक्षणान्वित होता है । जो मीष्य लिङ्ग दिखलाई देता है वह निम्बित रूप से वृद्धि के प्रदान करने वाला होता है । इसके अनन्तर मूल में—मध्य में और प्रमाण में सभी ओर से सम है । इस प्रकार का लिङ्ग है वह सर्वकारिक होता है अर्थात् सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है । इसके विपरीत शय्य प्रकार का जो निग होता है वह असत् ही कहा जाता है । इस रीति से इसको रत्नों से परिपूर्ण—स्फटिक मणि के द्वारा रचित तथा पार्श्विक करना चाहिये अथवा मन को रचिकर ही तो दाहमय भी परम शुभ होता है ।

॥ २३—२६ ॥

१२७—देव प्रतिष्ठा विधि वर्णन (१)

देवतानामर्धतासां प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम् ।
 वद भूत ! यथान्याय सर्वेषामप्यशेषतः ॥१
 अथात् मंत्रवक्ष्याम प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम् ।
 कुण्डमण्डपवेदीनां प्रमाणञ्च यथाक्रमम् ॥२
 चद्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माघवे तथा ।
 माघेवामवेदेवानां प्रतिष्ठाशुभदाभवेत् ॥३
 प्राप्यपक्ष शुभशुक्लमतीते दक्षिणायने ।
 पञ्चमा च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा ॥४
 दशमी पौर्णमासी च तथा श्रेष्ठा त्रयोदशी ।
 आसु प्रतिष्ठा विधिं वत् कृत्वा बहुफला लभेत् ॥५
 आपाडे द्वे तथा मूलमुत्तराद्वयमेव च ।
 ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदा तथा ॥६

हस्ताश्विनीरेवती च पुष्योमृगशिरस्तथा ।

अनुराधा तथा स्वाती प्रतिष्ठाविपु शस्यते ॥७

श्रुतिगण ने कहा—हे श्री गुरुजी ! अब इस सबके कथन के अनन्तर आप जो भी उचन हो पूर्ण रूप से इन समस्त देवों की प्रतिष्ठा की विधि का वर्णन करिये ॥ १ ॥ श्री गुरुजी ने कहा—इसके अनन्तर उत्तम प्रतिष्ठा की विधि के विषय में मैं वर्णन करता हूँ और कुण्ड—मण्डप तथा वेदियों का भी यथा क्रम प्रमाण बतलाऊँगा ॥ २ ॥ चैत्र में, फाल्गुन में, ज्येष्ठ में)श्रवण माघ में या माघ मास में सब देवों की प्रतिष्ठा शुभ देने वाली होती है ॥ ३ ॥ दक्षिणाघन के समाप्त होने पर परम शुभ शुक्लपक्ष को प्राप्त करके पञ्चमी, द्वितीया, तृतीय, सप्तमी, दशमी, योगमासी और त्रयोदशी ये तिथियाँ परम श्रेष्ठ होती हैं । इन तिथियों में विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करने पर वह बहुत अधिक फल का लाभ किया करता है । अब नक्षत्रों के विषय में बतलाया जाना है—दोनों आषाढा—मूल, दोनों उत्तरा, ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी, पू ३ माघश्रद्धा, हस्त, अश्विनी, रेवती, पुष्य, मृगशिरा, अनुराधा, स्वाती ये नक्षत्र प्रतिष्ठा आदि कावों में प्रशस्त माने जाया करते हैं ॥४—७॥

बुधशुक्रहस्तपति शुक्रश्रयाऽप्येते शुभग्रहाः ।

एभिर्निरीक्षितं लग्न नक्षत्रञ्च प्रशस्यते ॥८

प्रहृताश्वल लब्ध्या ग्रहपूजा विधाय च ।

निमित्तं शकुन लब्ध्या वजयिरयाद्भुताविहम् ॥९

शुभयोगे शुभस्थाने क्रूरग्रह विवर्जिते ।

लग्नेऽशुभेऽप्रकुर्यात् प्रतिष्ठाविकमुत्तमम् ॥१०

अयने विपुले तद्वन् पदशीतिमुने तथा ।

एतेषु स्थापनकार्यं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥११

प्राजापत्ये तु शयन श्वेते तूत्थापन तथा ।

गृहर्तृस्थापनकुर्यात् पुनर्वाह्ये विचक्षणः ॥१२

प्राग्वादस्योत्तरेवापि पूर्वैवा मण्डपो भवेत् ।
हस्तान् पौडगकुर्वीतदशद्व्यदश वा पुनः ॥१०३॥
मध्येवेदिकयायुक्तः परिशिष्टः समन्ततः ।
पञ्चसप्ततपि चतुरः करान् कुर्वीतवेदिकाम् ॥१०४॥

बुध, बृहस्पति और शुक ये तीनों ग्रह परम शुभ होते हैं । इ
ग्रहों के द्वारा देखी गई लग्न और नक्षत्र प्रशस्त कहे जाया करते हैं ॥२३॥
ग्रह और ताराओं का बल प्राप्त करके तथा ग्रहों की पूजा करके एक
निमित्त और शकुन पाकर तथा अद्भुत आदि को वर्जित करके शुभ राग
में—शुभ स्थान में कर ग्रहों पे विवर्जित लग्न में तथा नक्षत्र में प्रतिष्ठा
आदि उत्तम कर्म को करना चाहिए ॥ ८, १० ॥ विषुव अयन में उसी
भांति षड्नीति मुख में विशि क द्वारा इष्ट कर्म से इनमें ही स्थापना
करनी चाहिए ॥ ११ ॥ प्रजापत्य में क्षयन तथा श्वेत में उत्थापन विच-
क्षण पुरुष को पुनर्वाह्य मुहूर्त में स्थापन करना चाहिए ॥ १२ ॥
प्रामाद के उत्तर भाग में अथवा पूर्व अथ में गण्डा होना चाहिए । वह
भी दश हाथ या द्वादश हाथ अथवा सोलह हाथ का विस्तृत बनाना
चाहिए ॥ १३ ॥ मध्य में वेदी से छुन्न लपट चारों ओर से परिशिष्ट
होना चाहिए । वेदी भी पश्चिमात् और चार हाथ विस्तार वाली निमित्त
करावे ॥ १४ ॥

चतुर्भिस्तोरण्यैर्मुक्तो मण्डपः स्याच्चतुर्मुखः ।
पश्चादक्षद्वारं भवेत्पूर्वं माय्येचौदुम्बर भवेत् ॥११॥
पश्चादक्षद्वारं भवेत्पूर्वं माय्येचौदुम्बर भवेत् ॥११॥
भूमौ हस्तप्रविष्टानि चतुर्हस्तानि चोच्छ्रये ॥१६॥
सूपलिप्तं तथा रलक्षणं भूतलं स्यात् भुशोभनम् ।
वस्त्रं नानाविधं स्तद्वत् पुष्पपल्लवशोभितम् ॥१७॥
कृत्वा च मण्डपं पूर्वं चतुर्द्वारेषु विन्यसेत् ।
अन्नपानं कलशान्पटौ ज्वलत्काञ्चनगभितान् ॥१८॥

सूतपल्लवतच्छन्नान् सितवस्त्रपुगान्दितान् ।
 सर्वापधिपलोपेताश्चन्दनोदनपूरितान् ॥१६
 एवं निवेश्य तद्गर्भं गन्धधूपार्चनान्दिभिः ।
 ध्वजादिरोहणं कार्यं मण्डपस्य समन्ततः ॥२०
 ध्वजाश्च लोकपालानां सर्वदिक्षु निवेशयेत् ।
 पताकाजडाकारामध्येत्यान्मण्डपस्यनु ॥२१

मण्डप चार नुबो वाता चार तोरपो ने युक्त होना चाहिये ।
 पूर्व द्वार में प्लक्ष (पाखर) वृक्ष वाता होना चाहिए । दक्षिण द्वार में
 उदुम्बर का वृक्ष होना चाहिए । पश्चिम दिशा में जो द्वार हो वह अश्व-
 त्थ (पीपल) से युक्त एक पटित होना चाहिए तथा उत्तर दिशा में
 मन्मथ (बट) का वृक्ष होना चाहिए भूमि में एक राय प्रविष्ट और
 ऊँचाई में चार हाथ होना आवश्यक है । भूमि का माप अच्छी तरह
 से उपलिप्त-धनसा एव शोभन होना आवश्यक है । नाना प्रकार के
 वस्त्रों के द्वारा भूषित-पुष्प और पल्लवों से शोभित पहिले मण्डप की
 रचना कराकर फिर इन प्रकार से चारो द्वारों में विन्यास करना चाहिए
 अर्थात् इन से रहित-ज्वलन्काञ्चव अर्थात् देदीप्यमान नुवर्ण बिनके
 मध्य में प्रक्षिप्त किया गया हो ऐसे आठ कलशों का प्रत्येक द्वार पर टी-
 शी विन्यस्त करे ॥ १६, १७, १८, १९ ॥ प्राङ्ग के पल्लवों से सच्छन्न-
 श्वेत दो वस्त्रों से समन्वित—सर्वापधि एव फलो से उपेत—चन्दन के
 जल से पूरित आठ कलशों को वहाँ पर निवेशन करके उनके मध्य में
 गन्ध—धूप और अर्चन आदि से संपुन करके मण्डप के चागे और एवा
 आदि से उने नुनोभिन करना चाहिए ॥ १६, २० ॥ समस्त दिशाओं में
 लोकपालों की ध्वजाओं को निवेशित करना चाहिए । मण्डप के मध्य
 भाग में अक्षर के आकार वाली पताकाएँ होनी चाहिए ॥२१॥

गन्धधूपार्चिकुर्यात् स्वैस्वमेन्तं रञ्जमात् ।

बलिञ्चलोकपालेभ्यः स्वमन्त्रेण निवेदयेत् ॥२२

ऊर्ध्वन्तु ब्रह्मणे देवं त्वधस्ताच्छेषवागुकेः ।
 सहितायान्तु ये मन्वा तद्वैवत्याः श्रुतौ स्मृताः ॥२३॥
 तैः पूजा लोकपालानां कर्तव्या च समन्ततः ।
 त्रिरात्रमेकरात्र वा पञ्चरात्रमथापि वा ॥२४॥
 अथवा सप्तरात्रन्तु कार्यं स्यादधिवासनम् ।
 एवं सतोरणकृत्वा अधिवासनमुत्तमम् ॥२५॥
 तस्याप्युत्तरतः कुर्यात् स्नानमण्डपमुत्तमम् ।
 तदर्धेन त्रिभागेन चतुर्भागेन वा पुनः ॥२६॥
 आनीय लिङ्गमर्च्यौ वा शिल्पिनः पूजयेद्बुधः ।
 वस्त्राभरणरत्नैश्च यैऽपि तत्परिचारकाः ॥२७॥
 क्षमध्वामितितान् ब्रूयाद्यजमानाऽप्यस्तः परम् ।
 देव प्रस्तरणे कृत्वा नेत्रज्योतिः प्रकल्पयेत् ॥२८॥

श्रुतकाम से अपने २ मन्त्रों के द्वारा गन्ध—धूप आदि सज्ज करना चाहिये । अपने मन्त्रों से लोकपालों के लिये बलि निवेदित करे ॥ २२ ॥ ऊपर की ओर ब्रह्माजी को दक्षिण समर्पित करे और नीचे की ओर शेष तथा वागुकि को बलि देनी चाहिए । जो मन्त्र सहिता में हैं वह शिवजी की श्रुति में दहे गये हैं ॥ २३ ॥ उनसे ही सभी ओर लोकपालों की पूजा करनी चाहिए । तीन रात्रि तक—एक रात्रि पञ्च रात्रि अथवा सप्त रात्रि पर्यन्त अधिवासन करना चाहिए । इस प्रकार से सतोरण उत्तम अधिवासन करके उसके भी उत्तर में उत्तम स्नान मण्डप की रचना करनी चाहिए । उनके अर्धभाग से—तीन भाग में अथवा चार भाग में लिङ्ग को लाकर अथवा अर्चा को लाकर बुध पुरुष को शिल्पी की पूजा करनी चाहिए । जो भी उनके परिचारक हों उनकी भी वस्त्र—आभरण और रत्नों से पूजा करे । उसके आगे देव के समक्ष में यजमान को 'क्षमा कीजिए'—ऐसा बोलना चाहिये और फिर देव को प्रस्तरण पर करके नेत्रों की ज्योति को परिकल्पना करे ॥२४—२॥

अक्षणोरुद्धरणं वक्ष्ये लिङ्गस्यापि समामतः ।
 सर्वतस्तु बलि दद्यात्सिद्धार्थघृतपायसं ॥२६
 शुक्लपुष्पैरलङ्कृत्य घृतगुग्गुलघूपितम् ।
 विप्राणाञ्चार्चनं कुट्याद्दद्यात्तवत्या च दक्षिणाम् ॥३०
 गा मही कनकञ्जैव स्थापकाय निवेदयेत् ।
 लक्षणं कारयेद्भवत्या मन्त्रोणानेन च द्विजः ॥३१
 ॐ नमो भगवते तभ्यं शिवाय परमात्मने ।
 हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः ॥३२
 मन्त्रोऽयं सर्वदेवानां नेत्रज्योतिषापि स्मृतः ।
 एवमामन्त्र्य देवेश काञ्चनेन विलेखयेत् ॥३३
 मङ्गल्यानि च वाद्यानि ब्रह्मघोषसंगीतकम् ।
 वृद्ध्यर्घ्यं कारयेद् विद्वान् अमङ्गल्यविनाशनम् ॥३४
 लक्षणोद्धरणं वक्ष्ये लिङ्गस्य सुसमाहितः ।
 त्रिधा विभज्य पूज्याया लक्षणं स्याद् विभाजकम् ॥ ३५

प्रथम में नेत्रों का और सक्षेप से लिंग का भी उद्धरण
 बनल ऊँगा । सभी ओर सिद्धार्थघृत और पायसों से बलि होनी चाहिए ।
 शुक्ल वर्ण वाले पुष्पों से अलङ्कृत करके घृत और गुग्गुलु से घूपित करना
 चाहिये । फिर वहाँ पर जो भी विप्रगण हो उनका भी अभ्यर्चन करे तथा
 शक्ति के अनुसार दक्षिणा देनी चाहिये ॥ २६ ॥ ३० ॥ जो स्थापक हो
 उमकी गौ—भूमि और सुवर्ण को निवेदिन करे । द्विज को चाहिये कि
 भक्ति की भावना से निम्न मन्त्र के द्वारा लक्षण कराना चाहिये ।
 "ओ नमः" इत्यादि मन्त्र है जिस का अर्थ है परमात्मा हिरण्यरेता हे
 विष्णो ! आपके लिये नमस्कार है भगवान् शिव आपके लिये नमस्कार
 है । यह मन्त्र समस्त देवों को नेत्र ज्योति में भी ब्रह्म घोषा है । इस
 प्रकार से देव को आमंत्रित करके काञ्चन से विलेखन करना चाहिये ।
 ॥३१॥३२॥३३॥ विद्वान् पुरुष का कर्तव्य है कि अमङ्गल का विनाश

करने वाले मङ्गल वाद्य—गीतों के सहित ब्रह्म षोडश वृत्ति के लिये कराने चाहिये ॥ ४१॥ अब मैं सुसमाहित होकर लिङ्ग के लक्षण का उद्गम फहूंगा पूजा में तीन प्रकार से विभाग करके लक्षण विभाजक होता है ॥३५॥

लेखानयन्तु कर्तव्य यथाष्टान्तरसयुतम् ।

न स्थूलं न कृश तद्वन्न वक्त्रं छेदवर्जितम् ॥३६॥

निम्न सवप्रमाणेन ज्येष्ठलिङ्गस्य कारयेत् ।

सृक्षमास्ततस्तु कर्तव्या यथामध्यमकेपमेत् ॥३७॥

अष्टभक्तं ततः कृत्वा त्यक्त्वा भगवत्रय युधः ।

तन्मध्यतमपतरेखास्तु पाञ्चम्योऽभयोः समा ॥३८॥

तावत् प्रलम्बप्रेङ्खिहान् यावद्भागचतुष्टयम् ।

भ्राम्यते पञ्चभागोर्ध्वं कारयेत्सङ्गमन्ततः ॥३९॥

रेखयोः सङ्गमे तद्वत् पृष्ठे भागद्वय भवेत् ।

एकमेतत्समाख्यात समानाल्लक्षण मया ॥४०॥

अष्टयवो के अन्तर से समुत्त तीन लेखायें करना चाहिए । न तो अति स्थूल हो और न अत्यन्त कृश ही हो और उसी भाँति वक्त्र छेद वर्जित नहीं होना चाहिये ॥ ३६ ॥ ज्येष्ठ लिङ्ग का यत्र के प्रमाण से निम्न कराना चाहिये । इसके उपरान्त सूक्ष्म करने चाहिये और पदा मध्यमक में म्यास करे । बुध पुरुष को चाहिये फिर अष्ट भक्त करके भाग त्रय को त्याग देवे और दोनो प ईशों से ममसप्त रेखाओ को लम्बमान करे । विद्वान को तब तक प्रलम्बित करना चाहिये जब तक चार भाग होवे । पाँच भाग ऊपर की ओर भ्रामित किये जाते हैं और अन्ततः सङ्ग कराना चाहिये दोनों रेखाओ के सङ्गम में उसी तरह से पृष्ठ से दो भाग होने चाहिये । इन प्रकार से मैंने अनेक से लक्षण को बतला दिया है ॥३७ - ४०॥

१२८—देवप्रतिष्ठा विधि वर्णन (२)

अतः पर प्रवक्ष्यामि मूर्तिपानान्तु लक्षणम् ।
 स्थापकस्य समामेन लक्षण शृणुत द्विजा । ॥१॥
 सर्वावयवसम्पूर्णो वेदमन्त्रविशारदः ।
 पुराणवेत्ता तत्त्वज्ञा दम्भलोप्रविवर्जितः ॥२॥
 कृष्णवारमयेदेशे उत्पन्नश्च शुभाकृतिः ।
 शीचाचारपरो नित्यं पापण्डकुलनिस्पृहः ॥३॥
 समः शत्रो च मित्रो च ब्रह्मोपेन्द्रैर्हरप्रियः ।
 ऊहापोहार्थतत्त्वज्ञो वास्तुशास्त्रस्यपारगः ॥४॥
 आचार्यंस्तु भवेद्भित्तस्य सर्वदोषविवर्जितः ।
 मूर्तिपास्तु द्विजाश्चैव कुलीनाऋजवस्तथा ॥५॥
 द्वात्रिंशत् षोडशाथापि अष्टौ वा श्रुतिपारगाः ।
 ज्येष्ठमध्यकनिष्ठेषु मूर्तिपावः प्रकीर्तिता ॥६॥
 ततो तिङ्गमथार्चा वा नीत्वा स्नपनमण्डपम् ।
 गीतमद्गलशब्देन स्नपन तत्र कारयेत् ॥७॥

महर्षि प्रवर मूनजी ने कहा—इसमे आगे मैं मूर्तियों के लक्षण बतलाता हूँ । हे द्विजगण ! जो मूर्तियों की स्थापना करने वाले पुरुष हैं उनके लक्षणों को आप लोग श्रवण करें ॥१॥ स्थापक को किन २ गुणों से सुसम्पन्न होना आवश्यक है—यह बतलाते हुए कहते हैं जो पुरुष देवों की प्रतिमा की स्थापना करता है वह अपने शरीर के सम्पूर्ण अवयवों से सयुक्त होना चाहिये—वेदों के मन्त्रों का पण्डित पुराणों का ज्ञाता—तत्त्वों का जानकार—दम्भ, लोभ से रहित भी होना उसका आवश्यक है । सब के कथन का निचोड़ यही है कि उपर्युक्त गुणों से हीन पुरुष मूर्ति स्थापक होने का पात्र ही नहीं होता है ॥२॥ मूर्ति स्थापक कृष्णसारी से परिपूर्ण देशों में समुत्पन्न हो और शुभ साकृति वाला होना चाहिए । वह

शौच के आचार में परायण तथा नित्य ही पापण के कुल में स्पृहा न रखने वाला भी होना आवश्यक है ॥३॥ देवमूर्ति का स्थापक पुरुष शत्रु और मित्र दोनों में समान व्यवहार रखन वाला होवे - ब्रह्मा-विष्णु और शिव का श्रिय हो - ऊहा और अपोह में के तत्त्वों का ज्ञाता तथा वास्तु शास्त्र का पारगामी विद्वान् होना चाहिए ॥४॥ स्थापना कराने वाला आचार्य नित्य ही सभी दोषों से विनैप रूप में रहित होना चाहिए । जो भी द्विजगण मूर्तिप हो वे सभी अच्छे शुद्ध कुलों में समुत्पन्न और सरल स्वभाव एक व्यवहार वाले होवे ॥५॥ वतीस-सोसह-आठ ऐसी ही सख्या उन द्विजों की होनी चाहिए जो देव प्रतिमा की स्थापना के कर्म कराने में सम्मिलित हो तथा ये सभी श्रुति के पारगामी पण्डित भी होने चाहिये । ये बरेष्ठ-मन्वय और कनिष्ठ-इन तीन श्रेणियों में विभक्त हुआ करते हैं जो भी मूर्तिप कहे गये हैं । ६॥ इसके अनन्तर वे सब लिङ्ग प्रथवा अर्चा को लेकर स्नपन मण्डप में प्राप्त होकर ब्रह्मा पर गीत मङ्गल की छत्रियों से स्नपन करावे ॥७॥

पञ्चगव्यकपायेण मुद्भिर्भस्मोदकेन वा ।
 शौचं तत्र प्रकुर्वीति वेदमन्त्रचतुष्टयात् ॥८॥
 समुद्रज्येष्ठमन्त्रेण आपोदिव्यंति चानरः ।
 भाना राजेतिमन्त्रस्तु आपोहिष्ठेतिचापरः ॥९॥
 एव स्नाप्य ततो देव पूज्य गन्धानुलेपनैः ।
 प्रच्छाद्य वस्त्रभूमेन अभिवन्द्योत्पुदाह्वनम् ॥१०॥
 उत्थापयेत्ततो देवमुत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते ! ।
 अमरजेति च तथाभ्ये तिष्ठेति चापरः ॥११॥
 रथे प्रह्वारयेवापि घृता शिल्पिगणेन तु ।
 आरोप्य च ततो विद्वानाकृष्णेन प्रवेशयत् ॥१२॥
 ततः प्राप्तीर्थ्यां शय्यायां स्थापयेत्तनकैर्बुधः ।
 कुशानास्तीर्थ्यां पुष्पाणि स्थापयेत् प्राङ्मुखं तत ॥१३॥

ततस्तु निद्राकलशं वस्त्रवाञ्छिनसंयुतम् ।

निगोभागेत्तु देवस्य जपन्नेव निधापयेत् ॥१४

वहा पर प्राप्त होकर उन सबका कर्त्तव्य होना है कि वे सब पञ्च गन्ध (गोमूत्र, गोबर, गो दुग्ध, गोघृत, गोदधि) कषय के द्वारा—मृत्तिकाओं में अथवा मम्म एव उदक में चारों दिग्ग निद्रिष्ट वेद के मन्त्रों के द्वारा जीव नवं प्रथम करावें । वे चारों मन्त्रों की प्रतीकें ये हैं— 'ममुद्र ज्येष्ठ' मन्त्र—दूमरा 'आपोदिव्य'—मन्त्र—तृतीय 'माली राजा'—मन्त्र और चतुर्थ 'आपोदिव्य' इत्यादि मन्त्र हीन हैं ॥८, ९॥ इस विधि में देव प्रतिमा का स्नान कर गन्धानुलेपन आदि से पूजा करे और फिर दो दम्बों में प्रच्छादन करे एवं 'अभिवस्त्र'—इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये ॥१०॥ इसरु अनन्तर 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा देव का उत्थापन कराना चाहिये । फिर 'अमूर्ज'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा और 'रथेतिष्ठ'—इत्यादि मन्त्र से रथ में अथवा ब्रह्मण्य में जो कि शिल्पिण्य के द्वारा वहा पर निमित्त कर प्रस्तुत किया गया है उसमें समागोपित कर विद्वान् पुरुष को चाहिये कि 'आकृत्तेन' इत्यादि मन्त्र के द्वारा उसमें प्रतिमा का प्रवेग करावे ॥११, १२, १३॥ इनके पश्चात् इत्या में प्रारतरण करके दृष्ट पुरुष को चाहिये कि धीरे से देव प्रतिमा को वहा पर स्थापित करे । कुशाओं का आस्तरण करके प्राङ्मुख होकर फिर पुष्पो की स्थापना करनी चाहिये ॥१३॥ इसके उपरान्त वस्त्र और मुदणं में समन्वित निद्रा कलश को दिग्ग निद्रिष्ट मन्त्र का जाप करते हुए देव प्रतिमा के निगो भाग में निधापित करना चाहिये ॥१४॥

आपोदेवीति मन्त्रेण आपोऽस्मान् मानरोऽपि च ।

ततो दुक्त्वमद्वैतश्चा छद्य मेत्रापधानकम् ॥१५

दद्याच्छिरसि देवरय दीशेय वा विचक्षणः ।

मधुनामपिपाप्यज्य पूजयन्निध्य र्थकृत्तन ॥१६

आप्यायस्वेति मन्त्रेण यातेरुद्रशिवेति च ।
 उपविश्यार्चयेद्देवं गन्धपुष्पैः समन्ततः ॥१७
 सित प्रतिसर दद्यात् वाहंस्पत्योति मन्त्रतः ।
 दुकूलपट्टैः कार्पासैर्नाचिद्वैरथापिवा ॥१८
 आच्छाद्य देव सर्वत्र छत्रचामरदपणम् ।
 पादवंतः स्थापयेत्तत्र वितानपुष्पसद्युतम् ॥१९
 रत्नान्योपधयस्तत्र गृहोपकरणानि च ।
 भाजनानि विचित्राणि शयनासान्यनानि च ॥२०
 अभित्वा शूरमन्दोण यथा विभवतो न्ययेत् ।
 क्षीर क्षौद्र घृत तद्वत् भक्ष्यभोज्यान्(त्र) पादसैः ॥२१
 पङ्क्तिर्घृश्च रसेस्तद्वत् समन्तात् परिपूजयेत् ।
 वलि दद्यान् प्रयत्नेन मन्त्रेणानेन भूरिशः ॥२२

“आपो देवी” — इत्यादि मन्त्र से तथा “आपोऽम्भान् मातरो-
 ऽपिच” — इत्यादि मन्त्र के द्वारा दुकूल पट्टो से समाच्छादन करके देव
 प्रतिमा के शिरो भाग में नेत्रोपघानक अथवा कौशेय देना चाहिये — यह
 विषयण पुष्प का परम वर्त्तव्य है । फिर इसके उपरान्त में मधु और
 सर्पि से (घृत से) अन्यजन करके सिद्धार्थको के द्वारा पूजा करे । आप्या-
 रास्व’ इत्यादि मन्त्र से ‘यातेरुद्रशिव’ इत्यादि मन्त्र के द्वारा वहाँ पर
 उपविष्ट होकर सब ओर से गन्धाद्यत पुष्पो से देव का अर्घ्यर्चन करना
 चाहिये ॥ १५, १६, १७ ॥ ‘वाहंस्पत्य’ — इत्यादि मन्त्र के द्वारा देव
 को सित प्रतिसर समर्पित करना चाहिए । दुकूल पट्टो के द्वारा अथवा
 अनेक प्रकार के वस्त्रों से मूर्ती वस्त्रों से सर्वत्र देव प्रतिमा का मूर्ती
 भाति समाच्छादन करे और वहाँ पर पादवंत भाग में छत्र-चामर और
 दपण स्थापित करना चाहिए । वहाँ पर पुष्पो से संयुक्त एक वितान
 निर्मित करावे । रत्न-ओपधिर्पा-गृह के अन्य समस्त उपकरण-भाजन—
 विचित्र शयन-आसन शूर मन्त्र के द्वारा अभित् करके अपने विभव के

अनुसार इन सभी का न्यास करना चाहिये धीरे, क्षीर घृत, भक्ष्य, भोज्य, अन्न, पायस, छिं प्रकार के रस इन सबसे सभी ओर से देव प्रतिमा का पूजन करना चाहिये । फिर निम्न निदिष्ट मन्त्र के द्वारा अच्छी तरह से प्रयत्न पूर्वक बलि देना चाहिये ॥१८-२२॥

द्व्यम्बक यजामहे इति सर्वतः क्षनकंभुं च ।

मूर्तिपान्स्थापयेत्पश्चात्सर्वदिक्षु विचक्षणः ॥२३

चतुर्गो द्वारपालाश्च द्वारेषु विनिवेशयेत् ।

श्रीसूक्त पावमानञ्च सोमसूक्तं सुमङ्गलम् ॥२४

तथाच शान्तिकाध्यायमिन्द्रसूक्तं तथैव च ।

रक्षोघ्नञ्च तथा सूक्तं पूर्वतो वहेवृचो जपेत् ॥२५

रीद्रं पुरुषसूक्तञ्च श्लोकाध्यायं सशुक्रियम् ।

तथैव मण्डलाध्यायमध्यायमध्वयुर्दक्षिणे जपेत् ॥२६

वामदेवं वृहत्साम ज्येष्ठसाम रथन्तरम् ।

तथा पुरुषसूक्तञ्च रुद्रसूक्तं शान्तिराम् ॥२७

भारुण्डानि च सामानि च्छन्दोगः पश्चिमे जपेत् ।

अथर्वोऽङ्गिरसं तद्वन्नीलं रीद्रं तथैव च ॥२८

“द्व्यम्बक यजामहे” — इत्यादि मन्त्र के द्वारा रुच और धीरे से भूमि पर मूर्तियों को स्थापित करे । इसके पश्चात् विचक्षण पुरुष को सभी दिशाओं में द्वागों में चार द्वारपालों को विनिवेशित करना चाहिये । इसके अनन्तर श्रीसूक्त, पावमान सोमसूक्त, सुमङ्गल, शान्ति का ध्याय, इन्द्रसूक्त, रक्षोघ्न सूक्त और पहिले वहेवृचो का जाप करना चाहिये । रीद्र, पुरुषसूक्त, श्लोकाध्याय, सशुक्रिय, माला ध्याय इनका जाप अध्वयुर्दक्षिण दिशा में करना चाहिए ॥२३-२६॥ छन्दो के ज्ञाता को वाम देव, वृहत्साम, ज्येष्ठसाम, रथन्तर, पुरुषसूक्त, रुद्रसूक्त, शान्तिराम, भारुण्डसाम ऋचाणि—इन सबका जाप पश्चिम दिशा में करना चाहिए । जो अथर्व वेद का ज्ञाता ऋत्विज है उसको अङ्गिरस, नील, रीद्र का जाप करना चाहिए ॥२७, -२८॥

तथा पराजिता देवी समसूक्तं सरोद्रकम् ।
 तथैव शान्तिकाध्यायमथर्वा चोत्तरं जपेत् ॥२६॥
 शिरः स्थाने तु देवस्य स्थापको होममाचरेत् ।
 शान्तिकः पौष्टिकंस्तद्वत् मन्दौष्यहृतिपूर्वकः ॥३०॥
 पलाशोदुम्बराश्वत्थअपामार्गः शमी तथा ।
 हुत्वा सहस्रमेकैक देवं पादे तु संस्पृशेत् ॥३१॥
 ततो होमसहस्रेण हुत्वा हुत्वा तनस्तनः ।
 नाभिमध्य तथावक्षः शिरश्चाप्यालभेत् पुनः ॥३२॥
 हस्तमात्रेषु कुण्डेषु मूर्तिपाः सर्वतोदिशम् ।
 समेखलेषुते कुर्युर्योनिववत्क्षेत्रे चादरात् ॥३३॥
 वितस्तिमात्रायानिः स्यद्गजोष्ठसदृशी तथा ।
 आयताच्छिद्रमयुक्तापादर्धत कलयोच्छ्रिता ॥३४॥
 कुण्डात् कलानुसारेण सर्वतश्चतुरङ्गुला ।
 विस्तारेणोच्छ्रयात्तद्वच्चतुरस्रा समाभवेत् ॥३५॥

अथर्वा मनीषी को पराजिता देवी—मस्त मूवत, रोद्रक और शान्ति का ध्याय का पाठ तथा जाय उत्तर दिशा में करना चाहिए ॥२६॥ देव प्रतिष्ठा के शिर के भाग की ओर स्थापक को होम का समाचरण करना चाहिए और वह होम शान्तिक पौष्टिक व्याहृतियों से युक्त मन्त्रों के द्वारा उमी भक्ति करे ॥३०॥ पलाश— हाक) उदुम्बर (गूलर)— अश्वत्थ (पीपल) —अपामार्ग (श्रीघा) —शमी (छौंकर) इनकी समिधाओं से एक-एक सहस्र आहुतियों लेकर देव के चरण में स्पर्श करे ॥३१॥ एक-एकसहस्र आहुतियों से होम करके फिर नाभि के मध्य भाग का—वक्षःस्थल का और शिरका आनभन करना चाहिए ॥३२॥ मत्र दिशाओं में एक हाथके विस्तार वाले कुण्डोंमें जोनि में—साओं में युक्तहोने चाहिए और योनिवका-वाले ही उनमें रहे ही आदर के साथ उन मूर्तिपाओं को करना चाहिए । ॥३३॥ उनकी योनि एक वितस्ति (वानिष्ण) भर विस्तार वाली यत्र के

ओष्ठ के तुल्य होनी चाहिए । वह आयत—छिद्र संयुक्त—पार्श्व भाग में कला से उच्छिन्न—कला के अनुसार कुण्ड से सब ओर चार अंगुल वाली—विस्तार उच्छ्रय—चतुरस्र और सम होनी चाहिये ॥३४, ३५॥

वेदीभित्ति परित्यज्य त्रयोदशभिरंगुलः ।

एव नवसु कुण्डेषु लक्षणञ्चैव दृश्यते ॥३६

आग्नेयशाक्रयाम्येषु हीतव्यमुदगाननः ।

शान्तयोलोकपालेभ्यो मूर्तिभ्यः क्रमशस्तथा ॥३७

तथा मह्यधिदेवानां होमं कुर्यात्समाहितः ।

वसुधा वसुरेता च यजमानो दिवाकरः ॥३८

जल वायुस्तथासाम अ काशश्चाष्टमः स्मृतः ।

देवस्य मृतयस्त्वष्टावेताः कृण्डेषु सस्मरेत् ॥३९

एतासामधिपान्त्रक्ष्ये पवित्रान्मूर्तिनामतः ।

पृथ्वी पाति शर्वश्च पशुपश्चाग्निमेव च ॥४०

यजमान तथेवोग्रो रुद्रश्चादित्यमेव च ।

भ्रवोजलं सदा पाति वायुमीशान एव च ॥४१

महादेवस्तथा चन्द्र भीमश्चाकाशमेव च ।

शर्वदेवप्रतिष्ठासु मूर्तिषा ह्येत एव च ॥४२

तेरह अंगुनी से वेदी की भित्ति का परित्याग करके इस प्रकार से नौ कुण्डों में लक्षण विखलाई देता है ॥३६॥ उत्तर की ओर मुख करने वाली को आग्नेय—शाक्र और सामा दिशाओं में हवन करना चाहिये तथा क्रम से लोकपालों के लिये एव मूर्तियों के लिये शान्ति करे तथा मूर्ति के अधिदेवों का होम परम सावधान होकर करे । देव की आठ मूर्तियों का नामोन्लेख किया जाता है । वसुधा, वसुरेता, यजमान, दिवाकर, जल, वायु, सोम और आठवाँ आकाश बताया गया है । छे देव की आठ मूर्तियाँ होती हैं उनको कुण्डों में सस्मृत करना चाहिये ॥३७, ३८, ३९॥ अब इनके पवित्र अधिदेवों को बतलाता है । उनके नाम और मूर्ति दोनों ही बतलाते हैं । शर्मा पृथिवी की रक्षा करते हैं—पशुप अग्नि का रक्षण

करता है। उग्र यजमान की रक्षा करता है—रुद्र आदित्य का—भव
जल का और ईशान वायु का संरक्षण किया करता है ॥४०, ४१॥ महा
देव चन्द्र का रक्षक है तो भीम आकाश की रक्षा किया करता है। सब
देवों की प्रतिष्ठाओं में ये ही मूर्तिप हूआ करते हैं ॥४२॥

एतेभ्यो वैदिकैर्मन्त्रै यथास्वं होममाचरेत् ।
तथा शान्तिघटं कुर्व्यात् प्रतिकृण्डेषु सन्न्यसेत् ॥४३॥
शतान्ते वा सहस्रान्ते सम्पूर्णहृतिरिष्यते ।
समपादः पृथिव्यान्तु प्रशान्तात्मा विनिक्षिपेत् ॥४४॥
आहूतोनान्तु सम्पात पूर्णकुम्भेषु वै न्यसेत् ।
मूलमध्योत्तमाङ्गेषु देवं तेनावसेचयेत् ॥४५॥
स्थितश्च स्नापयेत्तेन सम्पाताहृतिवारिणा ।
प्रतियामेषु धूपन्तु नवद्यञ्चदनोदकम् ॥४६॥
पुनः पुनः प्रकूर्वात होमः कार्यः पुनः पुनः ।
पुनः पुनश्च दातव्या यजमानेन दक्षिणा ॥४७॥
सितवस्त्रंश्च ते सर्वे पूजनीयाः समन्ततः ।
विचित्रं ह्येककटकं ह्येकसूत्रांगुलीयकं ॥४८॥

इनके लिये वैदिक मन्त्रों के द्वारा यथास्व अर्थात् अपने वैभव के
और वित्त के अनुसार होम करने का समाचरण करना चाहिए। प्रत्येक
कुण्ड में शान्ति घट करे और वहाँ पर उनका न्याम सभी भाँति करना
चाहिये ॥४३॥ एक सौ आहूतियों के अवसान में या एक सहस्र आहूतियों
सम्पत्त होने पर अन्त में सम्पूर्ण हृति देना अभीप्सित होता है। प्रशान्त
आत्मा वाले को सम्पाद होते हुए विशेष रूप से निक्षेप करना चाहिए।
॥४४॥ आहूतियों का जो सम्पात है उसको पूर्ण कुम्भों में न्यास करे जो
कि मूल-मध्यम और उत्तमाङ्ग होते हैं। उससे देवका अवसेचन करना
चाहिये। उस सम्पाताहूतियों के जल से स्थित होते हुए स्नापन कराना
चाहिये। प्रत्येक घामों में धूप-नैवेद्य-चन्दनोदक समर्पित करे। ऐसा पुनः

१२६-कलियुगीन भावी राजा

शिशुको घ्नः सजातीयः प्राप्स्यतीमां वसुन्धराम् ॥१
 त्रयाविंशत् समाराजा शिशुकस्तु भविष्यति ॥२
 श्रीमल्लकर्णभविता तस्य पुत्रस्तु वै दश ।
 पूर्णोत्सुगस्ततो राजा वर्षाण्यष्टादशैव तु ॥३
 पञ्चाशत्तं समाः पट्च शान्तकर्णभविष्यति ।
 दशचाष्टौ च वर्षाणि तस्य लम्बोदरःसुतः ॥४
 आपीतकाशद्वेच तस्य पदो भविष्यति ।
 दशचाष्टौ च वर्षाणि मेघस्वाति भविष्यति ॥५
 स्वातिश्च भविता राजा समास्त्वष्टादशैव तु !
 स्कन्दरत्नातिस्तथा राजा सप्तैव तु भविष्यति ॥६
 मृगेन्द्रस्वानिर्गणस्तु भविष्यतिसमास्त्रयः ।
 कुन्तल स्वान्तिकणंस्तु भवित्वाष्टौसमानपः ॥७

महर्षि प्रवर गृन्जी ने कहा— शिशुकोन्ध इस वसुन्धरा को प्राप्त कर लेगा । वह शिशुक सेईम वयं पर्यन्त राजा रहेगा । १,२॥ फिर उसका पुत्र श्री मल्ल णि दश वर्ष राजा होगा । इसके पश्चात् अट्ठारह वर्ष तक पूर्णोत्सुग इस भूमि पर शासन करेगा ॥३॥ पञ्चाशत् और छे वय तक शान्तकर्ण राजा होगा । उसका पुत्र लम्बोदर अट्ठारह वर्ष तक राजा होगा । फिर आपीतक उसका पुत्र दश और दो वर्ष तक राजा होगा । अट्ठारह वय तक मेघस्वाति राजा इस मही मण्डल पर राज्य करेगा । इसके अनन्तर अष्टादश वर्ष तक स्वाति इस मही का राजा होगा फिर सात वर्ष यम्पन्त स्कन्दर स्वाति राजा होगा । तीन वर्ष तक महेन्द्र स्वाति कर्ण इस वसुन्धरा पर राज्य करेगा । कुन्तल और स्वाति कर्ण आठ वर्ष तक इस पृथ्वी पर नृप होगा ॥७-७॥

एकसवत्सर राजा स्वातिवर्णो भविष्यति ॥८
 भवितारित्कवणस्तु वर्षाणि पञ्चविंशति ।

ततः संवत्सरान् पञ्च हालोराजा भविष्यति ॥६
 पञ्चमन्दुलकोराजा भविष्यति समा नृप ।
 पुरीन्द्रसेतो भविता तस्मात्सौम्यो भविष्यति ॥१०
 सुन्दरः शान्तिकणस्तु अब्दमेक भविष्यति ।
 चकोरः स्वार्तिकणस्तु पण्मासान् वै भविष्यति ॥११
 अष्टाविंशतिवर्षीण शिवस्वातिर्भविष्यति ।
 राजा च गौतमी पुत्रो ह्यर्कविणत्यतो नृपः ॥१२
 अष्टाविंशतिपुत्रस्तस्य सुलोमा वै भविष्यति ।
 शिवश्रीर्वै सुलोमत्तु सप्तैव भवितानपः ॥१३
 शिवस्कन्धशान्तिकर्णदिभविता ह्यात्मजः समाः ।
 मर्वविंशतिवर्षीण यज्ञ श्री शान्तिकर्णिकः ॥१४

एक वर्ष तक स्वानिवर्ण इस पृथ्वी का राजा होगा ॥ ८ ॥
 षष्ठीस वर्ष तक रिक्तवर्ण शासन करेगा । फिर इसके पश्चात् पाँच वर्ष
 तक हाल राजा होगा । हे नृप ! फिर पञ्च मन्दुलक राजा होगा—
 पुरीन्द्रसेन और इससे सौम्य नृपात्त होगा । सुन्दर शान्तिकर्ण एक वर्ष
 पर्यन्त इस वसुन्धरा का राजा होगा । चकार स्वतिकर्ण छँ मास तक
 नृप होगा ॥६, १०, ११॥ अठ्ठाईस वर्ष पर्यन्त शिव स्वाति इस मही
 मण्डल का नृपति बनेगा । गौतमी का पुत्र राजा इक्कीस वष तक रहेगा ।
 उसका पुत्र सुलोगा अठ्ठाईस वर्ष पर्यन्त राजा होगा । उस सुलोम से
 समुत्पन्न शिवश्री सात वष पर्यन्त नृप रहेगा । शान्तिकर्ण से शिव
 स्कन्ध आत्मज होगा । उन्नीस वर्ष तक यज्ञ, श्री, शान्तिकर्णिक राजा
 होंगे ॥१२, १३, १४॥

पङ्केन भवितास्थाद्विजयस्तुसमास्ततः ।

चण्डश्रीः शान्तिकर्णस्तु तस्य पुत्रः समादश ॥१५

सुलोमा सप्तवर्षीणि अन्यस्तेषा भविष्यति ।

.. एकोनविंशतह्येते आन्ध्रा भोक्षयन्ति वै महीम् ॥१६
 तेषां वपशतानि स्पृशचत्वारिधष्टिरेव च ।

आन्ध्राणां सस्यिताराज्येतेषांभृत्यान्वियेनृपाः ॥१७

सप्तवान्धा भविष्यन्ति दशाभोरास्तथा नृपाः ।

सप्तगर्दंभिलाश्चापि शकाश्चाष्टादशैव तु ॥१८

यवनाष्टौ भविष्यन्ति तुषाराश्च चतुर्दश ।

त्रयोदश गु(मु) रुंडाश्च हूणाह्ये कोर्नविंशतिः ॥१९

यवनाष्टौ भविष्यन्ति सप्ताशोतिमहोर्मिमाम् ।

सप्तगर्दंभिलाभूयो मोक्ष्यन्तीमां वसुन्धराम् ॥२०

सप्तवपसहस्राणि तुषाराणा महो स्मृता ।

शतानि त्रीण्यशीतिञ्च शतान्यष्टादशैव तु ॥२१

हे द्विज ! इसके पश्चात् केवल छे वर्ष ही इसका राजा हुआ था । चण्डश्री और शान्तिकर्ण उसका पुत्र दश वर्ष तक शासक रहा था । सुतांभा सप्त वर्ष तक होगा फिर उनका अन्य हीरा इस तरह से ये इक्कीस आन्ध्र राजा इस मही का भोग करेंगे ॥१५, १६॥ उनके शासन का काल एक सौ वर्ष और चौमठ होगा आन्ध्रों के राज्य में उनके मृत्यों के वश में नृप मरिष्ठ होगे । सात ही आन्ध्र तथा दश आभीर नृप हीगे । सात गर्दंभिल भी हीगे तथा श्टारह शक हीगे । आठ यवन राजा ह्ये और चौदह तुषार नृपति हीगे । तेरह गुण्ड राजा हीगे तथा उन्नीस हूण राजा इस मही का शासन करेंगे । इस मही को सत्तासी वर्ष तक घाठ यवन भोगेंगे तथा सात गर्दंभिल फिर इस वसुन्धरा का उपभोग करेंगे । यह मही सात हजार वर्ष तक तुषारों की बतलाई गई है । तीन सौ अस्सी और श्टारह सौ वर्ष तक का समय बताया गया है ॥१७-२१॥

शतान्यष्टञ्चतुष्काणि भवितव्यास्त्रयोदश ।

गु(मु) रुण्डा वृपलंः सार्धं मोक्ष्यन्ते म्लेच्छसम्भवाः ॥२२

शतानित्रीणिमोक्ष्यन्ते वर्षाण्येकादशैव तु ।

आन्ध्राः श्रीपाव्वंतीयाश्चतेद्विपञ्चान्तममाः ॥२३

सप्तपष्टिस्तुवर्षाणि दशाभोरान्तर्धैव च ।

तेपूस्सन्नेषु कालेन ततः किलकिलानृपाः । २४

भविष्यन्तीह यवनाधर्मतः कामतोऽर्थतः ।

सैविमित्रा जनपदाद्याम्लेच्छाश्च सर्वशः ॥२५

विपर्ययेण वर्तन्ते क्षयमेष्यन्ति वै प्रजाः ।

सुब्धान्तस्रवाश्चैव भवितागो नृपास्तथा ॥२६

कल्किनानिहताः सर्वे आद्याम्लेच्छाश्चसर्वतः ।

अधामिकाश्चयेऽत्यथं पापण्डाश्चैवसर्वशः ॥२७

प्रणष्टे नृपवंशे तु सन्ध्याशिष्टे कलौ युगे ।

किञ्चिच्छष्टा. प्रजास्तावै धर्मं नष्टेऽपरिग्रहाः ॥२८

डेढ सो और चार वर्ष तक तेरह होंगे । कृपलो के साथ म्लेच्छों से समुत्पन्न गुण्ड इस भूमि का उपभोग करेंगे ॥-२॥ तीन सो ग्यारह वर्ष तक आन्ध्र नृप इस मूमण्डल का उपभोग करेंगे और श्री पार्वतीय द्विपञ्चाशत् वर्ष पर्यन्त इस वसुधरा पर शासन करेंगे । उसी भीति दश आभीर सइसठ वर्ष तक इसका उपभोग करेंगे । समय आने पर उन सबके उत्पन्न हो जाने पर फिर इस मही मण्डल पर किलकिस्ता नृप होंगे जो यहाँ पर काम से—अर्थ से और अधर्म से यवन होंगे । उन से मिले हुए जनपद सब और आर्य और म्लेच्छ हो जायेंगे । सब विपर्यय स धरताव करेंगे और प्रजा क्षय को प्राप्त हो जायेंगे । राजा लोग आम तौर पर बडे ही लालची तथा मिथ्या भाषण करने वाले हो जायेंगे । फिर ये सब आर्य तथा म्लेच्छ सब ओर मे कल्कि के द्वारा निहत होंगे । जो भी उस समय मे अधामिक और अत्यन्त ही पापण्डी होंगे वे सब निहन हो जायेंगे । इस तरह से नृपों के वंश के प्रणष्ट हो जाने पर और कलि-युग के सन्ध्या भाग के बाकी रहने पर कुछ छोडी सी प्रजा के जन शिष्ट रहेंगे और वे भी धर्म के नष्ट होजाने पर परिग्रह दून्य होंगे ॥२३-२८॥

असाधवो ह्यसत्त्वाश्च व्याधशोकेन पीडिताः ।

अनावृष्टिहताश्चैव परस्परवधेःसवः ॥२९

अशरण्याः परित्रस्ताः सङ्घट्ट घोरमाश्रिताः ।

सरित्सर्वतवासिण्यो भविष्यन्त्यलिलाः प्रजाः ॥३०

पत्रमलफलाहाराश्चौरपत्राजिनाम्बराः ।

वृत्त्यर्थमभिलिप्सन्त्यश्चरिष्यन्ति वसुन्धराम् ॥३१
एवं कष्टमनुप्राप्ताः प्रजाकाले युगान्तके ।

निःशेषास्तु भविष्यन्ति साद्यं कलियुगेन तु ॥३२

क्षीणे कलियुगे तस्मिन् दिव्ये वपंसहस्रके ।

ससन्ध्यांशे मुनिः शेषे कृत तु प्रतिपत्स्यते ॥३३

एव वशक्रमः क्रत्स्न कीर्तितो या मया क्रमात् ।

असीता वर्षमानाश्च तर्धवानागनाश्च ये ॥३४

महापद्माभिषेकात्तु यावज्जन्मपरीक्षितः ।

एवं वपसहस्रन्तु ज्ञेय पञ्चाशदुत्तरम् ॥३५

प्रजाजनों में सभी अमायु वृत्ति वाले—परत्र से हीन तथा व्याधियों एवं शोकी से उत्पीड़ित होंगे । अनावृष्टि में अर्थात् वर्षों के पूर्ण तथा अभाव होने में सब लोग हत होंगे और सब लोग परस्पर में वध करने की इच्छा रखने वाले हो जायेंगे । सब रक्षक से रहित—भयभीत तथा परम धीर सङ्कट को प्राप्त करने वाले—मही, तरु और पर्वतों में निवास करने वाले सभी प्रजाजन उस भीषण एवं महान् दारुण समय में ही जायेंगे । प्रजाजनों के अभाव में सब लोग पत्त-मूल और फलों के आहार करने वाले होंगे तथा चीर पत्र-चर्म के वस्त्र धारण किया करेंगे । सब लोग अपनी वृत्ति के प्राप्त करने की इच्छा से सम्पूर्ण पृथ्वी पर इधर-उधर घूमते फिरेंगे । इस प्रकार में युग के अन्त करने वाले प्रजा के समय में सभी इस कलियुग के साथ ही निःशेष हो जायेंगे । उस कलियुग के क्षीण हो जाने पर दिव्य पर्व सहस्र वाले सन्ध्यांश के समय में जो कि उस समय ये मुनिःशेष हैं कृत्युन ही प्राप्त हो जायेंगे ॥३६, ०॥ ॥३१, ३२, ३३॥ इस गीति से मैंने यह वश का क्रम पूर्ण रूप से तथा क्रम से आप सब लोगों के सामने कह दिया है । इस वश क्रम में जो राजा लोग पहिले हो चुके हैं वे सब, वर्तमान काल में जितने भी विद्यमान हैं वे सब तथा जो भविष्य में होंगे वे सभी कीर्तित कर दिये गये

हैं। महा पद्म के अभिषेक से जय तक परीक्षित राजा का जन्म या एक सङ्कल और आगे पञ्चाशत् वर्ष समझने चाहिए ॥३४, ३५॥

पीलोमास्तु तथान्धास्तु महामघान्तरे पुनः ।
 अनन्तरघातान्यष्टौ पट्टत्रिंशत्तु समास्तथा ॥३६
 तावत्कालान्तरं भाव्यमान्घान्तादापरीक्षितः ।
 भविष्येते प्रसङ्ख्याताः पुराणज्ञः श्रुत्वापिभिः ॥३७
 सप्तर्षयस्तदाप्राशु प्रदीप्तेनाग्निना समाः ।
 सप्तविंशतिभाव्याना आन्घ्रान्तुयदापनः ॥३८
 सप्तर्षयस्तु वर्तन्ते यत्र नक्षत्रमण्डले ।
 सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्यायेण शत शतम् ॥३९
 सप्तर्षीणामुपर्ये तत् स्मृतं वे दिव्यसङ्गया ।
 समादिभ्याः स्मृताः पट्टिर्दिश्याद्भान तु सप्तभिः ॥४०
 एभिः प्रवर्तते कालो दिव्यः सप्तर्षिभस्तुवः ।
 सप्तर्षीणाञ्च यो पूर्वोद्दिश्येते ह्युदितो निशि ॥४१
 तयामध्ये तु नक्षत्रं दृश्यते यस्सम दिवि ।
 तेन सप्तर्षयोज्ञेया युक्ताव्याम्नि शत समाः ॥४२

फिर पीलोम और आन्ध्र उस महा पद्मात्तर में अनन्तर आठ सौ छत्तीस वर्ष पर्यन्त समय था। तब तक परीक्षित नून से लेकर आन्धो के अन्त तक होगा। श्रुत्वापि पुराणो के ज्ञानाभो ने वे सब भविष्य में समाख्यात किये हैं ॥३६, ३७॥ उस समय में प्राशु प्रदीप्त अग्नि के समान सप्तर्षिगण ये होने वाले सत्ताईस आन्ध्रों के जब फिर सप्तर्षिगण हैं जिस नक्षत्र मण्डल में पर्याय (पारी) से सौ-सौ सप्तर्षिगण स्थित रहा करते हैं। सप्तर्षियों के ऊपर में जो बताया गये हैं वे दिव्य सज्ञा से दिव्य वर्ष ही कहे गये हैं। वे दिव्य वर्ष साठ और सात के साथ हैं ॥३८, ३९, ४०॥ इनसे सप्तर्षियों से दिव्य काल प्रवर्त होना है। सप्तर्षियों के जो द्ये पूर्व में होने वाले निशा में उदित दिखलाई देते हैं उन दोनों के मध्य में जो

नक्षत्र सम विचलोक में दिखलाई देता है उससे ध्योम में सो वर्ष तक युक्त सप्तर्षिगण जानन के योग्य है ॥८१, ४ ॥

नक्षत्राणामुषीणाञ्च योगस्यतन्निदशनम् ।

सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारिक्षिते शतम् ॥४३

ब्राह्मणस्तु चतुर्विंशो भविष्यति शतसमाः ।

ततः प्रभृत्यय सर्वालोकोव्यापदस्यतेभूरात् ॥४४

अनृतोपहत, लुब्धा धर्मत कामताऽथतः ।

श्रीतस्मार्त्तंति शिथिले नष्टवर्णाश्रमे तथा ॥४५

सङ्कर दुबलात्मान, प्रतिपत्स्यान्त मोहिताः ।

ब्राह्मणाः शूद्रयोनिस्था शूद्रा वै मन्त्रयोनय, ॥४६

उपस्थास्यन्ति तानि वप्रास्तदद्यमभिलिङ्गवः ।

क्रमेणैव च दृश्यन्ते स्ववर्णान्तरदायकम् ॥४७

क्षयमेव गमिष्यन्ति क्षाणशेषा युगक्षये ।

यस्मिन्कृष्णादिव यातस्तस्मिन्न व तदाहृति ॥४८

प्रतिपन्न कलियुग प्रमाण तस्य मे शृणु ।

चतु शतसहस्रन्तु वर्षाणां वै स्मृत युघैः ॥४९

नक्षत्रों के और ऋषियों के याग का यह निदर्शन है । पारीक्षित काल में सो मघा से युक्त सप्तर्षि गण हैं । सो वर्ष तक चौबीस ब्राह्मण होंगे । तब से लेकर यह सब लोक मत्स्यत हूँ अर्थात् आर्यात् की प्राप्ति होगी । धर्म से और काम से हीन-अनृत से उपहत-लुब्ध लोग होंगे । श्रीत और स्मार्त्त धर्म एक ही शिथिल हा जाने पर वर्णों और वर्णों के नष्ट होने पर दुबल आत्मा वाले परम मोह के प्राप्त हुए लोग सकरता की प्राप्ति हो जायेंगे ब्राह्मण लोग शूद्र योनियों में स्थित हो जायेंगे और जो शूद्र होते वे मन्त्रयोनि वाले हो जायेंगे ॥४३-४६॥ उसके अर्थ के जानने की इच्छा वाले विप्र गण उन शूद्रों के समीप में समुपस्थित हुमा करेगे । इसी क्रम से दिखलाई देगे । अपने वर्णों के अन्तर को देने वाले युग के क्षय में क्षीण शेष सब क्षय को ही प्राप्त हो जायेंगे । जिस दिन

में भगवान् श्री कृष्ण दिवलोक में अन्तर्दित होकर चले गये थे उसी समय में और उस ही दिन में यह कलियुग प्रतिपन्न हो गया था । उसका प्रमाण अब आप मुझसे थप करिये । बुध जनों के द्वारा चार सौ सहस्र वर्ष अर्थात् चार लाख बताया गया है ॥७, ४८, - ६॥

चत्वार्यष्टसहस्राणि सङ्ख्यात मानुषेण तु ।
 दिव्य वषसहस्रन्तु तदासङ्ख्या प्रवर्तते ॥५०
 नि शेषे तु तदा तस्मिन् कृत वै प्रतिपत्स्यते ।
 ऐलश्चेक्ष्वाकुवंशश्च सहदेव प्रकीर्त्तिता ॥५१
 इक्ष्वाको स्मृत क्षत्र सुमिश्रान्तर्भव्यति ।
 ऐल क्षत्र समाक्रान्त सोमवशाविदोविदुः ॥५२
 एते विवस्वत पुत्रा कीर्त्तिताः कीर्त्तिवर्धनाः ।
 अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ॥५३
 ब्राह्मणा क्षत्रिया वंश्यास्तथा शूद्राश्च वं स्मृताः ।
 वंस्वस्वतेऽन्तरे तस्मिन्नि त वंशः समाप्यते ॥५४
 देवापि पौत्रो गजा ऐक्ष्वाकोयश्च ते मत ।
 महायोगश्लोपेनी कलापयाममाश्रितौ ॥५५
 एतौ क्षत्रप्रणेतारी नववशे चतुयुगे
 सुवर्चा मनपुत्रस्तु ऐक्ष्वाकाद्यो भविष्यति ॥५६

मानुष ने उतीस हजार वर्ष सङ्ख्यात किया है । उस समय में दिव्य सहस्र वर्ष की सङ्ख्या प्रवृत्त होती है ॥५०॥ उस समय में उस कलियुग के नि शेष हो जाने पर ही कृतयुग प्राप्त हो जायगा । ऐल और सहदेव इक्ष्वाकु वंश प्रकीर्त्तित किये गये हैं । इक्ष्वाकु का स्मृत क्षत्र सुमिश्र के अन्त तक होगा । ऐल क्षत्र समाक्रान्त की सोम वंश के वेत्ता लाग जानने हैं । ये सब विषयान् के कीर्त्ति के वर्धन करने वाले पुत्र कीर्त्तित किये गये हैं जो व्यतीत हो चुके हैं — वर्त्तमान काल में विद्यमान हैं तथा जो अब तक अनगन हैं अर्थात् भविष्य में होने वाले हैं ॥५॥ ॥५०, ५३॥ ब्राह्मण-क्षत्रिय-वंश्य और शूद्र ये चार वर्ण कहे गये हैं ।

उस वैश्वत मन्वन्तर में यह यंश समाप्त हो जाया करता है ॥ २४ ॥
 देवापि और पीरव राजा जो आप ऐश्वक मानते हैं । ये दोनों महान्
 योग बल से समुपेत थे तथा कलाप ग्राम में आश्रय ग्रहण करने वाले थे ।
 ये दोनों ही नवविंश चतुर्गुण में क्षत्र के प्रणयन करने वाले थे । मनु का
 पुत्र सुवर्चा ऐश्वक को से सब से आदि में होने वाला होगा । ५५, ५६ ॥

नवविंश युगेऽपि वै वशस्यादिर्भविष्यति ।
 देवापिपुत्र. सत्यस्तु ऐशानां भविता नृपः ॥५७
 क्षत्रप्रयत्तंकावेतो भविष्यंतु चतुर्गुणे ।
 एव सर्वेषु विज्ञेय सन्तानार्थंस्तु लक्षणम् ॥५८
 क्षीणे कलियुगेचैव तिष्ठन्तीनि कृते युगे ।
 समर्षयस्तु तं. सार्धं मध्ये कालायुगे पुनः ॥५९
 ब्रीजार्थं वै भविष्यन्ति ब्रह्मक्षत्रस्तु वै पुनः ।
 एवमेवतु सर्वेषु तिष्ठ्यान्तेष्वन्तरेषु च ॥६०
 समर्षयो नृपै. सादृ सन्तानार्थं युगे युगे ।
 एव क्षत्रस्य चोत्मेध. सम्बन्धोर्वादिज स्मृतः ॥६१
 मन्वन्तराणा सन्ताने सन्तानादच्युतीस्मृताः ।
 अतिक्रान्तप्रायश्चैव ब्रह्मक्षत्रम्यमभवाः ॥६२
 यथा प्रशान्तिस्तेषा च प्रकृतीना यथाक्षयः ।
 सप्तपदी विदुस्तेषा दीर्घायुस्व क्षयोदयो ॥६३

नवविंश युग में वह यंश का आदि होगा । देवापि का पुत्र सत्य
 ऐनो का नृप होगा । भविष्य चतुर्गुण में ये दोनों क्षत्र के प्रवर्तक होंगे ।
 इसी प्रकार से सब में समान तथा जान लेना चाहिए । सबका समान अर्थ
 वाला लक्षण है ॥५७, ५८ ॥ कलियुग के क्षीण हो जाने पर कृत युग में
 सप्तविंश स्थित रहता करते हैं । मध्य में ब्रह्म युग में पुनः उनके साथ
 रहते हैं ॥५९ ॥ पुनः क्षत्र के लिये वे होंगे । पुनः ब्रह्म और क्षत्र होंगे ।
 इस प्रकार में सब निश्चयन अन्तर्ग में युग युग में सन्तान के लिये नृपों
 के साथ में सप्तविंश होंगे । इस तरह में क्षत्र का उत्मेध विज्ञो के साथ
 सम्बन्ध रहता गया है । मन्वन्तरों में सन्तान में सन्तान युति में कहे गये

हैं। अतिक्रान्त युग वाले ब्रह्म और क्षत्र के सम्भव बताये गये हैं। ६०-६२। जिस प्रकार से उनकी प्रशान्ति और जिस तरह से प्रकृतियों का क्षय, ये दोनों क्षय और उदय सप्तविंशत् उनके क्षीर्णयुगत्व को जानते हैं। ६३।

एतेन क्रमयोगेन ऐला इक्ष्वाकवो नृपाः ।

उत्पद्यमानास्त्रोताया क्षीयमाणः कलो युगे ॥६४

अनुपान्ति युगारयान्तु यावन्मन्वन्तरक्षयम् ।

जामदग्न्येन रामेण क्षत्रोत्तरवशेषिते ॥६५

रिक्तेय वसुधासर्वा क्षत्रियैर्वसुधाधिपैः ।

द्विवंशकरण सर्वं कीर्तयिष्ये निबोध मे ॥६६

ऐलञ्चेक्ष्वाकुवशञ्च प्रकृति परिचक्षते ।

राजान् श्रेणिबद्धाश्च तथान्ये ऽस्त्रियाभुवि ॥६७

ऐलवशास्तु भूयांसो न तथेक्ष्वाकवो नृपाः ।

एष मेकशत पूर्णं कुलानामभिरोचते ॥६८

तावदेव तं भोजानां विस्ताराद् द्विगुण स्मृतम् ।

भोजानां द्विगुण क्षत्रं चतुर्द्धा तद्यथातथम् ॥६९

ते ह्यतीताः स नामनो ब्रुवन्तस्तान्निबोध मे ।

शत वं प्रतिविन्ध्यानाक्षतनागाः क्षतहयाः ॥७०

इस क्रम के योग से ऐल और इक्ष्वाकु नृप श्रेता में उत्पद्यमान होते हैं और कनिष्ठयुग में क्षीयमाण हुआ करते हैं। ६४। जब तक मन्वन्तर का क्षय होता है युगाक्षय को अनुमान किया करते हैं। जामदग्नि (परशुराम) के द्वारा समस्त क्षत्रियों के निरवशेषित होने पर इस सम्पूर्ण वसुधा के स्वामी क्षत्रियों से यह समस्त वसुधारा रिक्त हो गई थी। सब द्विवंशकरण को मैं कीर्तित करूँगा। उसे अब घाप लोग मुझसे समझ लेओ। ६५-६६। ऐलक्षत्र और इक्ष्वाकु वंश प्रकृति के अनुकूल होते हैं। श्रेणीबद्ध राजा लोग तथा अन्य भूमंडल में क्षत्रियगण हैं। ऐलक्षत्र वाले बहुत अधिक हैं और उस तरह से इक्ष्वाकु के क्षत्र वाले नृप नहीं हैं। इन कुलों के पूण एकशत अभिरोचित होता है। उतना ही विस्तार से भोजी का द्विगुण कहा

गया है। भोजों का द्विगुण ज्ञान मयातप है। ६५-६६। वे सब वतीत होगये हैं। उनके नामों को वतलाने वाले मुझमे आप लोग ज्ञान प्राप्त कर लेंगे। एकसौ प्रतिबन्धो के थे। सो नामों के थे और एकशत ह्य थे ॥७०॥

शतमेक धार्तराष्ट्रा ह्यशीतिर्जनभेजयाः ।

शतं वै ब्रह्मदत्ताना वीराणां कुरव शतम् ॥७१

ततः शतञ्च पञ्चानाः शतं काशिकुशादयः ।

तथापरं सहस्रे द्वे ये नीपाः शशविन्दवः ॥७२

इष्टवन्तश्च ते सर्वे सर्वे नियुतदक्षिणाः ।

एवं राजर्षयोऽतीताः शमशाण्य सहस्रशः ॥७३

मनावैवस्वतस्यासन्वत्तंमामेऽन्तरेविभोः ।

तेषात्तु निघ्नोत्पत्तौलोकसरिथतयः स्थिताः ॥७४

न शक्योविस्तरस्तेषां सन्तानस्य परस्परम् ।

तत्पूर्वापरयोगेन वक्तुं वयंशतरेषु ॥७५

अष्टाविंशसमाख्याता गता वैवस्वतेऽन्तरे ।

ऐते देवगणं सादृं शिष्टा ये तान्निबोधतः ॥७६

अत्वारिशतत्रयश्चैव भद्रियास्ते महारमतः ।

अवशिष्टायुगाख्यास्ते ततोवैवस्वतोह्ययम् ॥७७

एकसौ पृतराष्ट्र थे। अग्नी जन्मेजय थे। ब्रह्मदत्तो के एक शत थे जो कि महावीर हुए थे। कुरुगण शत थे ॥७१॥ पञ्चानाम एक शत थे और काशि कुशादिक एक सौ थे। जो नीप शशविन्दु थे उसी प्रीति दूसरे दो सहस्र थे ॥७२॥ वे सब इष्टवान् थे और सभी नियुत दक्षिणा वाले थे। इस प्रकार से राजर्षिगण सैकड़ों तथा सहस्रों की संख्या में अतीत हो चुके हैं। ये सब विभु वैवस्वत मनु के वर्तमान अन्तर मे थे। उनके निघ्न और उत्पत्ति मे लोकों की सरिथतियाँ दियत थीं। उनके सन्तान का परस्पर में विस्तार उनके पूर्वपर योग मे एकसौ वर्ष मे भी कहा नहीं जा सकता है ॥७३-७५॥ ये अष्टाईस वंशजन मन्वन्तर मे महासन्तान किये गये हैं। ये देवगणों के साथ मे जो गिष्ट हैं उनको भी समझलो ७६। चालीस और तीन ये महान् आत्मा वाले होने वाले हैं। वे अवशिष्ट युगाख्य हैं उसके पञ्चात् यह वैवस्वत है ॥७७

एतद्द्वी कीर्तितं सम्यक् ममामत्र्यामयोगतः ।
 पुनर्वक्तुं बहृत्वात्तु न शक्यविस्तरेण तु ॥७०॥
 उक्ता राजपयो येतु अतीतास्ते युगः सह ।
 ये ते ययातिर्ब्रह्म्यानां ये च वशां विशाम्पते ॥७१॥
 कीर्तिता धृतिमन्तस्ते य एतान् धारयेन्नरः ।
 लभते स वरान्मञ्चदुर्लभानिहनीकिकान् ॥७०॥
 आयुः कीर्ति धन स्वर्गं पुत्रवाश्चाभिजायत ।
 धारणाच्छ्रवणाश्चैव पर स्वर्गस्य धीमतः ॥७१॥

यह मन्त्र और विचार के योग में भली भाँति आपकी बतला दिया है और फिर अधिक होने के कारण विस्तार के साथ बतलाया नहीं जा सकता है । जो रात्रिपिण बतलाये गये हैं वे सब युगों के साथ अतीत हो गये हैं वे जो यद्यत् कि वश में होन लिये हैं और जो विशाम्पति के वश में हैं वे धृतिमान् सब कीर्तित कर दिये गये हैं इनको जो नर धारण करता है वह पाच शौकिक दुर्लभ वगैरे को प्राप्त किया करता है - आयु, कीर्ति, धन, स्वर्ग और पुत्रवान् अभिजात होता है । उस धीमान् को इनके धारण करने से, यवण करने से स्वर्ग में परम पद प्राप्त हुआ करता है ॥७०-७१॥

एतद्द्वी कथिन सर्वं यदुक्तं विश्वरूपिणा ।
 मात्स्य पुराणमखिलं धर्मकामार्थसाधनम् ॥७२॥
 एतत्पवित्रमायुष्यमेतस्कीर्तिविवर्धनम् ।
 एतत्पवित्रं कल्याण महापापहर शुभम् ॥७३॥
 अस्मात् पुराणादपि पादमेकं पठेत्तु यः सोऽपि विमुक्तपापः ।
 नारायणाख्यं पदमेति नूनमनङ्गवद्विव्यसुखानिभुङ्क्ते ॥७४॥

यहाँ तक विश्व स्वरूप भगवान् मत्स्य का कहा हुआ पुराण बह दिया गया जो समस्त धर्म, अर्थ, काम का सिद्ध करने वाला है ॥७२॥ यह पवित्र महा पुराण आयु और कीर्ति की वृद्धि करने वाला और परम कल्याणजनक है । बड़े से बड़े पाप भी इसका द्वारा दूर हो जाते हैं ॥७३॥ जो कोई इस पुराण का एक श्लोक भी पढ़ेगा वह पाप से विमुक्त हो जायगा और भगवान् की कृपा से देवताओं के समान दिव्य सुखों का उपभोग करेगा ॥७४॥ ॥ मत्स्य-पुराण समाप्त ॥